स्वाध्याय प्रारंभ एवं समापन की विधि

अथ पौर्वाण्हिक[1] स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं।।

चत्तारिमंगलं–अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(9 बार णमोकार मंत्र जपना–सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में)

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवलिअणंतजिणे।
णरपवर-लोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।1।।
लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वन्दे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।2।।

–लघु श्रुतभक्ति–

श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।
अंगांग - बाह्यभावित - मनन्तविषयं नमस्यामि।।1।।

इच्छामि भंते! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडयपरियम्म-सुत्त-पढमाणि-ओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

अथ पौर्वाण्हिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरहंताणं से लेकर पूरा पाठ पढ़कर 9 बार णमोकार मंत्र जपकर 'थोस्सामि' स्तव पढ़कर भक्ति पढ़ें।)

–आचार्यभक्ति–

गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः।
वंदामहे त्रिसंख्योन-नवकोटि-मुनीश्वरान्।।1।।

इच्छामि भंते! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचारित्त-जुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

पुनः स्वाध्याय समापन करते समय–

नमोऽस्तु पौर्वाण्हिकस्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् णमो अरहंताणं आदि पढ़कर 9 बार महामंत्र जपकर 'थोस्सामिस्तव' पढ़कर श्रुतभक्ति पढ़ें)

---

1. मध्यान्ह में स्वाध्याय करते समय 'अपराण्हिक' बोलें। रात्रि में स्वाध्याय के प्रारंभ के समय 'पूर्वरात्रिक' बोलें।

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारंभिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।1।।

अविरलशब्दघनौघ-प्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था-सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।2।।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।3।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः। सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, पापप्रणाशकं, पुण्यप्रकाशकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं इदं शास्त्रं श्रीषट्खण्डागमं नामधेयं, अस्य मूलग्रंथकर्तारः श्री सर्वज्ञ देवाः, तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवाः तेषां वचोनुसारमासाद्य श्रीपुष्पदन्त-भूतबलीआचार्यविरचितं गणिनीआर्यिकाश्रीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणिटीका समन्वितं। श्रोतारः सावधानतया (पठन्तु) शृण्वन्तु।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।4।।

सर्वमंगलमांगल्यं, सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।5।।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 433
ISBN 978-93-84003-25-8

श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलि विरचितः

षट्खण्डागमः

(श्री भूतबलिसूरिवर्यविरचितः)

वेदनाखण्डनाम-चतुर्थः खण्डः

(द्वितीय वेदनानुयोगद्वारस्य षष्ठवेदनाकालविधानसप्तमवेदनाभावविधानानुयोगद्वारद्वयसमन्वितः)

(एकादशो ग्रन्थः)

♦ *सिद्धान्तचिन्तामणि टीका* ♦

गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

(बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या, दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से विभूषित)

♦ *हिन्दी टीका* ♦

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

(पीएच.डी. की मानद उपाधि से विभूषित)

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com

E-mail : jambudweeptirth@gmail.com Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2540	मूल्य
500 प्रतियाँ	आश्विन शु. पूर्णिमा, 8 अक्टूबर 2014	300/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशक एवं सम्पादक :-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

श्रावण कृष्णा एकम् (13 जुलाई 2014) को परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित ''श्री गौतम गणधर वर्ष'' (2014-2015) के अन्तर्गत शरदपूर्णिमा 2014 के अवसर पर प्रकाशित

कम्पोजिंग–ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

Veer Gyanodaya Granthmala Serial No. 433
ISBN 978-93-84003-25-8

Shrimadbhagwat Pushpadant & Bhootbali Virachitah

Shatkhandagamah

(Shri Bhootbali Surivarya Virachitah)

Vedana Khand nam-Chaturthah Khandah

(With two Anuyogdwars of Sixth Vednakal Vidhan & Seventh Vednabhav Vidhan of Second Vednanuyogdwar)

Volume-11

—Siddhant Chintamani Commentary—

Ganini Pramukh Aryika Shiromani

Shri Gyanmati Mataji

(the disciple of Acharya Shri Veer Sagar Ji Maharaj, the first Pattashishya of Charitra Chakravarti Prathmacharya Shri Shantisagar Ji Maharaj & receipient of honorary degrees of D.Litt. two times.)

—Hindi Commentary—

Pragyashramni Aryika Shri Chandnamati Mataji

(receipient of honorary degree of Ph.D.)

-: Published By :-

Digambar Jain Institute of Cosmographic Research

Jambudweep-Hastinapur-250404, Distt.-Meerut (U.P.), Phone-(01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com Facebook : jaintirthjambudweep

First Edition	Veer Nirvan Samvat 2540	Price
500 Copies	Ashwin Shukla Poornima, 8 October 2014	300/-

VEER GYANODAYA GRANTHMALA

This granthmala is an ambitious project of D.J.I.C.R. in which we are publishing the original and translated works of Digambar Jain sect written in Hindi, English, Sanskrit, Prakrit, Apabhramsh, Kannad, Gujrati, Marathi Etc. We are also publishing short story type books, booklets etc. in the interest of beginners and children.

—Founder & Inspiration—

GANINI PRAMUKH ARYIKA SHIROMANI

SHRI GYANMATI MATAJI

—Guidance—

Pragya Shramni Aryika Shri Chandnamati Mataji

—Director & Editor —

Karmayogi Peethadhish Swastishri Ravindrakirti Swami Ji

—Managing Editor—

Jeevan Prakash Jain

All Rights Reserved for the Publisher

Published on the occasion of Sharad Poornima-2014 during **"Shri Gautam Gandhar Year"** (2014-2015) announced by Param Pujya Ganini Pramukh Aryika Shiromani Shri Gyanmati Mataji on Shravan Krishna Ekam, 13th July 2014.

-Composing-

Gyanmati Network

Jambudweep-Hastinapur (Meerut) U.P.

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या

प्रस्तावना आदि की विषय-सूची

1.	सम्पादकीय	9
2.	प्रस्तावना	11
4.	आचार्य चतुष्टय परिचय	20
5.	षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणि टीका का लेखन काल : एक दृष्टि में	29
6.	धवला टीका एवं सिद्धान्तचिंतामणि टीका के ग्रंथों में अन्तर (चार्ट)	36
7.	जैन शासन के महान ग्रंथ-षट्खण्डागम पर सिद्धान्तचिंतामणि टीका-एक महान कृति	40
8.	दो शब्द	42
9.	चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय	43
10.	प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय	44
11.	पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय	45
12.	प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी का परिचय	52
13.	दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय	55
14.	वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के सहयोगियों की सूची	60
15.	षट्खण्डागम ग्रंथ पूजा	64
16.	षट्खण्डागम ग्रंथ की मंगल आरती	69
15.	पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा हस्तलिखित संस्कृत टीका का एक पृष्ठ	70
16.	पूज्य श्री चंदनामती माताजी द्वारा हस्तलिखित हिन्दी टीका का एक पृष्ठ	71
17.	समर्पण	72

षट्खण्डागमः-चतुर्थखण्डः

एकादशो ग्रन्थः, सिद्धान्तचिंतामणिटीका

1.	अथ वेदनाकालविधानानुयोगद्वारम् (षोडशभेदान्तर्गतषष्ठानुयोगद्वारम्) प्रथम महाधिकारः	1
2.	अथ प्रथमा चूलिका (वेदनाकालविधानानुयोगद्वारान्तर्गता) द्वितीयो महाधिकारः (अन्तर्गत-प्रथमोऽधिकारः)	36

विषय	पृष्ठ संख्या
3. अथ द्वितीया चूलिका	93
(वेदनाकालविधानानुयोगद्वारान्तर्गता)	
द्वितीयोऽधिकारः	
प्रयागतीर्थ वन्दना	155
4. अथ वेदनाभावविधानानुयोगद्वारम्	158
(द्वितीयवेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-सप्तमवेदनाभावविधानानुयोगद्वारम्)	
तृतीयो महाधिकारः	
5. अथ प्रथमा चूलिका (वेदनाभावविधानस्य)	243
चतुर्थो महाधिकारः (अन्तर्गत-प्रथमोऽधिकारः)	
सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र वन्दना	243
सम्मेदशिखर टोंक वन्दना	247
6. अथ द्वितीया चूलिका (वेदनाभावविधानस्य)	261
(चतुर्थमहाधिकारान्तर्गत-द्वितीयोऽधिकारः)	
7. अथ तृतीया चूलिका (वेदनाभावविधानस्य)	318
(चतुर्थमहाधिकारान्तर्गत-तृतीयोऽधिकारः)	
8. अस्य वेदनाभावविधानस्य उपसंहारः	346
9. अस्य ग्रंथस्य उपसंहारः	349
श्री महावीरस्वामी स्तोत्रम्	368
10. एकादशग्रन्थस्य प्रशस्ति	371
11. हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति	377
12. टीका लेखन काल	379
13. चतुर्थ वेदनाखण्ड सूत्राणि	382
14. भजन	403
15. सरस्वती स्तोत्र	404

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

'स्वाध्यायः परमं तपः' आचार्यों ने स्वाध्याय को परम तप कहा है। स्वाध्याय करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। कर्मों का क्षय होता है। पुण्य का आस्रव एवं पापों की निर्जरा होती है। जिनेन्द्रदेव की पूजा, गुरुओं की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षट्कार्य श्रावकों को प्रतिदिन करते रहना चाहिए, जिससे उनका गृहस्थधर्म सार्थक माना है।

श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार ग्रंथ में लिखा है–

दाणं पूया मुक्खं, सावयधम्मो ण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं, जइ धम्मे तं विणा तहा सो वि।।22।।

अर्थात् श्रावक धर्म में दान और पूजा ये दो मुख्य हैं एवं मुनिधर्म में ध्यान और अध्ययन मुख्य होते है।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी राष्ट्रगौरव, युगप्रवर्तिका, श्रुतप्रकाशिका, तीर्थोद्धारिका, डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत, न्यायप्रभाकर, आगमनिष्ठ, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, सिद्धान्तचक्रेश्वरी परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने स्वाध्याय के द्वारा चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान अर्जित करके बाल, युवा, वृद्ध, विद्वान् सभी की योग्यतानुसार बाल विकास से लेकर अष्टसहस्री, नियमसार, समयसार, षट्खण्डागम जैसे ग्रंथों का लेखन, सृजन किया है। भगवान महावीर के शासन में पूज्य माताजी सर्वप्रथम आर्यिका हैं, जिन्होंने विपुल साहित्य का निर्माण किया है।

षट्खण्डागम ग्रंथ की 16 पुस्तकों पर संस्कृत टीका लेखन कार्य कोई सरल कार्य नहीं है। पूज्य माताजी ने इस क्लिष्ट ग्रंथ को भी सरल संस्कृत में लिखकर साधुवर्ग एवं विद्वानों को इनका स्वाध्याय सुगम करा दिया है। आपके पदचिन्हों पर चलने वाली प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने इसका हिन्दी में अनुवाद करके सभी स्वाध्याय प्रेमियों के लिए इसे और भी सरल कर दिया है। पूज्य चंदनामती माताजी ने जगह-जगह विशेषार्थ देकर विषय को और भी खोलकर स्पष्ट किया है। ग्रंथों में स्वाध्याय के 5 भेद बताये हैं–वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश। जिस प्रकार लकड़ी के अंदर विद्यमान अग्नि भी बिना जलाए प्रकट नहीं होती, उसी प्रकार ज्ञान का दीपक जो हमारे भीतर ही विद्यमान है, वह भी स्वाध्याय के बिना प्रदीप्त नहीं होता, अतः अंतरंगदीप को प्रज्ज्वलित करने हेतु शास्त्र का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने मूलाचार में कहा है–

विणयेण सुदमधीदं जदि वि पमादेण होदि विस्सरिदुं।
तं उवट्ठादि परभवे केवलणाणं च आहवदि।।

इसका अर्थ यह है कि जो प्राणी विनयपूर्वक श्रुत-शास्त्र को पढ़ता है, वह पढ़ा गया श्रुत यदि प्रमाद से कभी विस्मृत भी हो जावे, तो अगले भव में वह कभी न कभी उपलब्ध हो जाता है तथा केवलज्ञान की प्राप्ति कराने में भी वह स्वाध्याय कारण बन जाता है। पूज्य माताजी बताती हैं कि

आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज हमेशा कहा करते थे–''पठितव्यं खलु पठितव्यं अग्रे-अग्रे स्पष्टं भविष्यति'' अर्थात् हमेशा पढ़ते रहो, आगे-आगे विषय स्पष्ट होगा। पढ़ते समय यदि कोई विषय समझ में नहीं आता है, तो दुखी होने की आवश्यकता नहीं है, कभी न कभी वह विषय अवश्य समझ में आएगा।

षट्खण्डागम सिद्धान्तचिंतामणिटीका की इस ग्यारहवीं पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी सहित हो रहा है। यह बहुत ही प्रसन्नता का विषय है। आप सभी स्वाध्याय प्रेमीजन इस ग्रंथ का स्वाध्याय करके समीचीन ज्ञान को प्राप्त करें, यह मंगल भावना है।

पूज्य माताजी स्वस्थ रहें एवं दीर्घायु हों, जिनेन्द्रदेव से यही मंगल कामना है। वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला इसी प्रकार महान-महान ग्रंथों का प्रकाशन करते हुए दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि करता रहे। यह ग्रंथ हम सभी के लिए श्रुतज्ञान को, केवलज्ञान को प्राप्त कराने में सहायक हो, यही मंगल भावना है।

प्रस्तावना

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

-शार्दूलविक्रीडित-

आदीशो भगवानयं जिनवरादीशं मुदा नौम्यहं।
आदीशेन च लभ्यते स्म सुखमादीशाय कुर्वे नमः।
आदीशान्नपरः प्रभुः भुवि तथादीशस्य धर्मो जिनः,
आदीशे हृदयो ममापि सततं श्र्यादीश! मां रक्षतु।।1।।

-अनुष्टुप्-

नमः सिद्धान्तग्रन्थाय, श्रुतज्ञानमवाप्तये।
नमः श्री द्रव्यतीर्थाय, भावतीर्थस्य प्राप्तये।।2।।
जीयात् षट्खण्डग्रंथानां, टीका सिद्धान्तचंद्रिका।
टीकायै ज्ञानमत्यै च, नित्यं कुर्वे नमो नमः।।3।।

हुण्डावसर्पिणी काल के वर्तमान कृत युग की आदि में (तृतीयकाल के अंत में) भारत की धन्य धरा पर जन्मे प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ के श्रीचरणों में नमन करते हुए उन्हें अपने हृदय में धारण करके यही भावना है कि जिनेन्द्रदेव! आप हमारी रक्षा करें।।1।।

षट्खण्डागमरूप सिद्धान्त को श्रुतज्ञान की प्राप्ति हेतु मेरा नमस्कार है तथा आत्मतत्त्वरूप भावतीर्थ की प्राप्ति हेतु द्रव्यतीर्थ–हस्तिनापुर (जहाँ बैठकर मैंने हिन्दी टीका का लेखन किया है) को मेरा नमस्कार है।।2।।

षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणिटीका इस जग में जयशील होवे। उस टीका को एवं टीका रचयित्री पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी को मेरा बारम्बार नमस्कार है।।3।।

चिन्तामणि रत्न के समान फलदायी सिद्धान्त-चिंतामणिटीका–

भव्यात्माओं! जैसे चिन्तामणि रत्न के बारे में सुना जाता है कि वह चिंतित फल को प्रदान करने वाला होता है, जिसे प्राप्त करके मानव भौतिक सुख-संपत्तिवान् बन जाता है। उसी प्रकार से जिन सिद्धान्त ग्रंथों का अध्ययन करके स्वाध्यायी जन मनवांछित ज्ञान की पिपासा को शान्त कर लेते हैं। उन ग्रंथों की नूतन टीका का नाम है–सिद्धान्तचिंतामणिटीका।

अपनी मौलिक विचारधारा को आधार बनाकर स्वतंत्र ग्रंथ का लेखन कर लेना तो सरल माना जा सकता है किन्तु पूर्वाचार्यों की सूत्ररूप वाणी का आधार लेकर उनके मनोभावों को दृष्टि में रखकर पूर्वापर आगम से अविरुद्ध वचनरूपी मोतियों की माला पिरोते हुए किसी सैद्धान्तिक सूत्रग्रंथ की टीका लिखना अत्यंत दुरूह कार्य है।

इसकी कठिनता तो मात्र वे विशिष्ट प्रबुद्धजन ही जान सकते हैं जिन्होंने या तो उन टीकाग्रंथों का सूक्ष्मता से अवलोकन किया हो अथवा कोई ऐसा दुरूह लेखनकार्य किया हो। नीतिकारों ने इस

विषय में कहा भी है—

विद्वान् एव विजानाति, विद्वज्जनपरिश्रमम्।
न हि बन्ध्या विजानाति, पुत्रप्रसववेदनाम्।।

अर्थात् बन्ध्या स्त्री जिस प्रकार पुत्रप्रसव की वेदना को नहीं जान सकती है, उसी प्रकार विद्वान् के अतिरिक्त साधारण मनुष्य ग्रंथलेखन के परिश्रम का अनुमान भी नहीं लगा सकते हैं।

हमारे पूर्वाचार्यों ने अपने ध्यान आदि में से समय निकालकर महान् परिश्रमपूर्वक लेखन करके जैनवाङ्मय का सारतत्त्व भव्यात्माओं के लिए प्रदान किया है। उनमें से ही भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से प्राप्त अंगपूर्वों का ज्ञान जब लुप्तप्रायः होने लगा तब श्रीधरसेनाचार्य की कृपाप्रसाद से आचार्ययुगल श्री पुष्पदंत एवं भूतबलि जी ने सूत्र ग्रंथों की रचना करके ''षट्खंडागम'' नामक सिद्धांतशास्त्र का निर्माण किया।

समय के अनुसार जहाँ संक्षेप रुचि वाले शिष्यों का अभाव होने लगा वहीं स्थूलबुद्धि के धारक मनुष्यों में उन सूत्रों का सरल अर्थ जानने की जिज्ञासा भी उत्पन्न हुई। पुनः आज से लगभग बारह सौ वर्ष पूर्व ''श्रीवीरसेन'' नाम के महान् ज्ञानी आचार्य हुए जिन्होंने सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ प्राकृत और संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करके ''षट्खंडागम'' सूत्रों पर ''धवला'' नाम की टीका का लेखन किया। वर्तमान में इसी टीका के नाम पर ही ग्रंथ की पहचान हो रही है और अपने नाम के अनुरूप ही धवलाग्रंथ ज्ञानियों के मन को धवल-पवित्र करने में अमृत के समान है।

ज्ञानपिपासु भव्यात्माओं ! षट्खण्डागम ग्रंथ की सिद्धान्तचिन्तामणि टीका के हिन्दी अनुवाद सहित चतुर्थखण्ड की 11 वीं पुस्तक आपके हाथों में पहुँच रही है। इसमें वेदनाखण्ड नाम के चतुर्थ खण्ड में 593 सूत्रों के द्वारा वेदनाकालविधान और वेदनाभावविधान नाम के दो अनुयोगद्वार का वर्णन है।

पूज्य माताजी ने शौरीपुर–बटेश्वर तीर्थ पर दिनाँक 3-5-2002, वैशाख कृ. सप्तमी को दशवीं पुस्तक की टीका का समापन करके उसी दिन इस ग्यारहवीं पुस्तक का शुभारंभ किया और मंगलाचरण में उन्होंने 7 श्लोकों में चौबीसों तीर्थंकर, 170 तीर्थंकर, तीस चौबीसी के 720 तीर्थंकर, विद्यमान बीस तीर्थंकर की स्तुति करके, पंचकल्याणक की स्तुति की है पुनः सरस्वती देवी को नमस्कार करके, गणधर देवादि सभी मुनियों को नमस्कार करके सातवें श्लोक में कहा है कि–

सरस्वत्याः प्रसादेन, लेखनी मे चलिष्यति।
सिद्धान्तचिंतामणि–टीका मेऽवतरिष्यति।।

अर्थात् सरस्वती माता के प्रसाद से मेरी लेखनी चलेगी, तब मेरे द्वारा सिद्धान्तचिंतामणिटीका अवतरित होगी। उसके पश्चात् पीठिकाबंध नाम से ग्रंथ की प्रारंभिक भूमिका है। इसमें कुल 4 महाधिकार हैं, अर्थात् वेदनाकालविधान के दो महाधिकार और वेदनाभावविधान में दो महाधिकार बनाये हैं।

प्रथम वेदनाकालविधान नाम के अनुयोगद्वार में पहले नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल, समाचारकाल, अद्धाकाल, प्रमाणकाल और भावकाल इस प्रकार के 7 भेदों का निर्देश करके इनके और उत्तर भेदों को बतलाया गया है। इसमें तद्व्यतिरिक्तनोआगम द्रव्यकाल के प्रधान और

अप्रधानरूप से दो भेद बताए हैं। इनमें जो काल शेष पाँचों द्रव्यों के परिणमन में हेतु है वह प्रधानकाल माना गया है। यह प्रधानकाल कालाणुस्वरूप होकर संख्या में लोकाकाशप्रदेशों के बराबर, रत्नराशि के समान प्रदेशप्रचय से रहित, अमूर्त एवं अनादिनिधन है। अप्रधानकाल सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का बताया है। इनमें दंशकाल (डाँस मच्छरों का समय) तथा मशककाल (मच्छरों का समय) आदि को सचित्तकाल कहते हैं एवं धूलिकाल, कर्दमकाल, वर्षाकाल, शीतकाल व उष्णकाल आदि को अचित्तकाल तथा सदंश शीतकाल आदि को मिश्रकाल से नामांकित किया गया है।

इसी प्रकार समाचार काल को भी लौकिक और लोकोत्तर के भेद से दो भागों में विभक्त किया है। ये सारे विषय इस ग्रंथ में पठनीय है। इस वेदनाकालविधान के अन्तर्गत दो चूलिकाओं का वर्णन किया है।

आगे वेदनाभावविधान नामक प्रकरण में भाव के चार भेद किये हैं–नामभाव, स्थापनाभाव, द्रव्यभाव और भावभाव। इन सब भावों में से वेदनाभावविधान में कर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य की पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन तीन अधिकारों द्वारा प्ररूपणा की गई है।

इसके आगे इसी वेदनाभावविधान में क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय ये तीन चूलिकाएँ हैं। जिस प्रकरण में विवक्षित अनुयोगद्वार में कहे गये विषय का अवलंबन लेकन जो विशेष व्याख्यान किया जाता है उसे चूलिका कहते हैं। इसलिए चूलिका सर्वथा स्वतंत्र प्रकरण न होकर विवक्षित अनुयोगद्वार का ही एक अंग मानी जाती है। यहाँ इन तीन चूलिकाओं में क्रमशः प्रथम में गुणश्रेणी निर्जरा के ग्यारह स्थान (सम्यक्त्व की उत्पत्ति, श्रावक, विरत.....आदि) में किस प्रकार उत्तरोत्तर गुणश्रेणीरूप से कर्मनिर्जरा होती है, यह वर्णन है। इसमें विशेषरूप से बताया है कि इन ग्यारह स्थानों में गुणश्रेणीनिर्जरा तो उत्तरोत्तर असंख्यात गुणित होती है, किन्तु इनका काल उत्तरोत्तरसंख्यातगुणाहीन जानना चाहिए। तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में ये स्थान 10 की संख्या में माने हैं, क्योंकि वहाँ जिन के दो भेद नहीं किये हैं। पुनः द्वितीय चूलिका में अनुभागबंध, अध्यवसान स्थान का कथन 12 अनुयोगद्वारों (अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, स्थानप्ररूणा, अन्तरप्ररूपणा.....आदि) में किया गया है एवं अंतिम तृतीय चूलिका में जीवनसमुदाहरण की विचारणा के लिए आठ अनुयोगद्वार, एकस्थानजीवप्रमाणानुगम, निरंतरस्थानजीवप्रमाणानुगम....आदि) हैं।

'वेदनाखण्ड' नाम के इस चतुर्थ खण्ड में वेदनाकाल विधान के अन्तर्गत स्थितिबंध अध्यवसान प्ररूपणा की टीका में सूत्र नं. 220-221 में एक विशेष प्रकरण आया है–जस्थितिबन्ध और जघन्यस्थितिबंध का। इसकी टीका में दोनों का अंतर बताते हुए टीकाकर्त्री पूज्य माताजी ने लिखा है–

जस्थितिबंधो नाम आबाधया सहितजघन्यस्थितिबंधः, प्रधानीकृतकालत्वात्। जघन्यस्थितिबंधो नाम आबाधोनजघन्यबंधः, प्रधानीकृतनिषेकस्थितित्वात्। तेन जघन्यस्थितिबंधाद् जस्थितिबंधो विशेषाधिकः।

आबाधा से सहित जघन्य स्थितिबंध को जस्थितिबंध कहा जाता है, क्योंकि वहाँ काल की प्रधानता है। आबाधा से हीन जघन्य बन्ध जघन्यस्थिति बंध कहलाता है, क्योंकि उसमें निषेक स्थिति की प्रधानता है। इसीलिये जघन्य स्थितिबंध से जस्थितिबंध विशेष अधिक है।

उसी विषय में आगे सूत्र नं. 229 में सातावेदनीय की दाहस्थिति विशेष अधिक कही है सो उसकी टीका में दाहस्थिति का अर्थ पठनीय है।

प्राचीन ग्रंथों की टीका करना हंसी-खेल नहीं है!

ग्रंथ रचना की विधाओं में मौलिक चिन्तन के आधार पर स्वतंत्र ग्रंथ लिखकर अपनी विचारधारा को प्रस्तुत कर देना सहज है, किन्तु वीतरागी-निष्पक्ष पूर्वाचार्यों की वाणी के आधार पर पूर्वापर विरोध रहित सूत्रों की टीका लिखना जहाँ श्रमसाध्य दुरूह कार्य है, वहीं मूलग्रंथकर्ता का अभिप्राय कहीं विपरीत अर्थ का द्योतक न बन जाए यह ध्यान रखना एक कुशल आगमनिष्ठ टीकाकार के बस की ही बात होती है। इसका पूरा-पूरा ध्यान पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने अपने प्रत्येक टीकाग्रंथों में रखा है।

तदनुसार इसमें भी सूत्र 238 की टीका में ''त्रिस्थानबंधक जीवों की संख्या चतुःस्थानबंधक जीवों की अपेक्षा विशेष अधिक है'' बताते हुए धवला टीकाकार श्रीवीरसेनाचार्य के मन्तव्य को ही पुष्ट किया है। वहाँ एक प्रश्न आया है कि–

विशेष अधिक बताने वाला सूत्र विसंवाद सहित क्यों नहीं है ? इसके उत्तर में उन्होंने सम्यक्त्व को वृद्धिंगत करने वाला उत्तर दिया है।

न जायते। उक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण–''विसंवादकारणसयलदोसुम्मुक्कभूदबलिवयण-विणिग्गयस्स सुत्तस्स विसंवादित्तविरोहादो।[1]''

अस्यायमभिप्रायः–श्रीभूतबलिसूरिवर्यो विसंवादस्य कारणभूतसंपूर्णदोषैः रागद्वेषपक्षपातादि-भिर्विरहित आसीत् अतस्तस्य मुखारविंदविनिर्गतसूत्रवचनस्य विसंवादित्वं न संभवति, किंच एते पूर्वाचार्याः सत्यमहाव्रतिनः सन्ति।

वर्तमानकाले केचिद् विद्वान्सः पूर्वाचार्यग्रन्थग्रथितवचनमपि सामान्यजनलिखितवचनसदृशमिव मन्यन्ते, तत्तु न शोभते, किंच सर्वेऽपि पूर्वाचार्याः सर्वज्ञदेवकथित-गणधरदेवग्रथितवचनमेवाधारीकृत्य प्रोचुः इति ज्ञात्वा जिनागमवचनेषु शंका न कर्तव्या।

यह सूत्र विसंवाद उत्पन्न नहीं करता है। जैसा कि श्रीवीरेसनाचार्य ने कहा है–''क्योंकि जो भूतबलि भट्टारक विसंवाद के कारणभूत समस्त दोषों से रहित हैं उनके मुख से निकले हुए सूत्र के विसंवाद होने में विरोध आता है।।''

इसका अभिप्राय यह है कि श्रीभूतबली आचार्यवर्य विसंवाद के कारणभूत सम्पूर्ण दोषों से एवं राग-द्वेष-पक्षपात आदि से रहित थे, अतः उनके मुखकमल से निकले हुए सूत्र वचनों का विसंवादी होना संभव नहीं है, क्योंकि ये पूर्वाचार्य सत्यमहाव्रत का पालन करने वाले थे।

वर्तमान समय में कुछ विद्वान् पूर्वाचार्यों के द्वारा लिखे गये ग्रंथों के वचनों को सामान्य लोगों के द्वारा लिखित वचन के समान ही मानने लगते हैं, जो कि शोभास्पद नहीं है, क्योंकि सभी पूर्ववर्ती आचार्य सर्वज्ञ भगवान के द्वारा कहे गये–उनकी दिव्यध्वनि के अनुसार गणधरदेव के द्वारा ग्रथित–द्वादशांगरूप में गूंथे गये वचनों का आधार लेकर बोलते थे ऐसा जानकर–श्रद्धान करके जिनागम के वचनों में शंका नहीं करना चाहिए।

श्रेणिप्ररूपणा को दो भागों में विभक्त किया है!

ज्ञानावरण आदि कर्मों की स्थितिसंबंधी स्थितिबंध अध्यवसानस्थानों की प्रमाण प्ररूपणा के पश्चात् उन्हीं स्थानों की श्रेणी प्ररूपणा को दो भागों में विभक्त करके सूत्र नं. 252 की टीका में उनके लक्षण बताये हैं जो पाठकों के लिए विशेष ज्ञातव्य हैं–

यत्र निरंतरं स्तोकबहुत्वपरीक्षा क्रियते सा अनन्तरोपनिधा। यत्र द्विगुण-चतुर्गुणादिपरीक्षा क्रियते सा परम्परोपनिधा कथ्यते। एवं श्रेणिप्ररूपणा द्विविधा एव, तृतीयादिप्रकारासंभवात्।

जहाँ पर निरन्तर अल्पबहुत्व की परीक्षा की जाती है वह अनन्तरोपनिधा कही जाती है। जहाँ पर दुगुणत्व और चतुर्गुणत्व आदि की परीक्षा की जाती है वह परम्परोपनिधा कहलाती है। इस प्रकार श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकार की ही है, क्योंकि और तृतीयादि प्रकारों की सम्भावना नहीं है।

इस ग्रंथ में ध्यान दें!

धवला टीका वाले षट्खण्डागम ग्रंथ की 11वीं पुस्तक में 378 सूत्रों के द्वारा वेदनाक्षेत्र विधान और वेदनाकाल विधान नाम के दो अधिकार वर्णित हैं किन्तु इस सिद्धान्तचिंतामणि टीका युक्त षट्खण्डागम की 11वीं पुस्तक में वेदनाकालविधान, वेदनाभावविधान एवं तीन चूलिकाओं का वर्णन करने वाले 593 सूत्र है। अर्थात् पूर्व की 10वीं पुस्तक में ''वेदनाक्षेत्रविधान'' को समाविष्ट करके पूज्य माताजी ने इसमें वेदनाभावविधान तथा तीन चूलिकाओं को जोड़ दिया है पुनः आगे 12वीं पुस्तक में वेदनाप्रत्यय, वेदनास्वामित्व आदि 9 भेदों को देकर वेदनाखण्ड को पूर्ण किया है। यहाँ यह बात पाठकों को विशेषरूप से जानना है कि ग्रंथों की सम्पूर्ण विषयवस्तु ज्यों की त्यों धवला और सिद्धान्तचिंतामणि दोनों टीकाओं में एक समान ही है, मात्र पृष्ठों की हीनाधिकता देखते हुए ग्रंथों के पृष्ठ लगभग एक सदृश करने हेतु अध्याय कम-ज्यादा किये गये हैं, उनके क्रम में भी कोई परिवर्तन नहीं है।

आत्मवेदना का वेदन करने वाले सिद्धपरमेष्ठी भगवन्तों की वन्दनापूर्वक प्रारंभ किये गये चतुर्थ खण्ड के सप्तम ''वेदनाभावविधान'' नामक अनुयोगद्वार की टीका करते हुए इसमें तृतीय महाधिकार और चतुर्थ महाधिकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है अर्थात् दो महाधिकारों में इस अनुयोगद्वार को विभक्त किया है। उसमें से ही चतुर्थ महाधिकार में तीन चूलिकाएँ हैं।

जब पूज्य माताजी वीर नि. सं. 2529 (ईसवी सन् 2002) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली-प्रयाग (इलाहाबाद-उत्तरप्रदेश) दिगम्बर जैन तीर्थ पर अपना ससंघ वर्षायोग समापन करके भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) की ओर जा रही थीं, तब मार्ग में भगवान सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी तीर्थ के दर्शन करके मगसिर कृ. दूज, 21 नवम्बर 2002 को इस 'वेदनाभावविधान' की टीका लिखना प्रारंभ किया था, पुनः मार्ग में भी लेखन करते हुए पावापुरी सिद्धक्षेत्र पर श्रावण शु. सप्तमी, 4 अगस्त 2003 को इस अनुयोगद्वार की टीका लिखकर पूर्ण की है।

इस अनुयोगद्वार में आयुकर्म की उत्कृष्ट वेदना का सत्त्व संयतों के होता है, ऐसा बतलाते हुए 19वें सूत्र की टीका में कहा है कि-

उत्कृष्टानुभागे बंधेऽपवर्तनाघातो नास्तीति केऽप्याचार्या भणन्ति। तन्न घटते, उत्कृष्टायुर्बंधयित्वा पुनस्तं घातयित्वा मिथ्यात्वं गत्वाग्निदेवेषु उत्पन्नद्वीपायनेन मुनिना व्यभिचारात् महाबंधे

आयुरुत्कृष्टानुभागान्तरस्य उपार्धपुद्गलपरिवर्तनमात्रकालप्ररूपणाया अन्यथानुपपत्तेर्वा।

उत्कृष्ट अनुभाग को बांधने पर उसका अपवर्तनाघात नहीं होता है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि ऐसा मानने पर उत्कृष्ट आयु को बांधकर पश्चात् उसका घात करके मिथ्यात्व को प्राप्त अग्निकुमार देवों में उत्पन्न हुए द्वीपायन मुनि के साथ व्यभिचार आता है अथवा इसका घात माने बिना महाबंध ग्रंथ में प्ररूपित उत्कृष्ट अनुभाग का उपार्ध पुद्गल परिवर्तन प्रमाण अंतर भी नहीं बन सकता है।

यहाँ भाव की अपेक्षा आयु की उत्कृष्ट वेदना के अन्तर्गत उदाहरण में द्वीपायन मुनि को मिथ्यात्व भाव से मरकर अग्निकुमार देव की पर्याय में उत्पन्न होना माना है। यही बात हरिवंशपुराण में भी है, जबकि वृहद्द्रव्यसंग्रह की गाथा नं. 10 (अणुगुरुदेहपमाणो.....इत्यादि) की टीका में अशुभ तैजस शरीर के निमित्त से द्वीपायन मुनि द्वारिका नगरी को भस्मसात् करके स्वयं भी उसी में भस्म हो गये।

अर्थात् द्वीपायन मुनि के संबंध में दो मत अपने ग्रंथों में आये हैं। हमें दोनों को स्वीकार करना है और यहाँ प्रकरणानुसार महाबंध ग्रंथ के उदाहरणस्वरूप श्रीवीरसेनाचार्य ने आयु के अनुभाग का घात करके उसकी अपवर्तना बताई है।

केवली भगवान कवलाहार नहीं करते है।

इसी वेदनाभाव विधान में वेदनीय और मोहनीय कर्म की जघन्य-अजघन्य वेदना का निरूपण करते हुए आचार्यश्री भूतबली मुनिराज के सूत्रग्रथित अभिप्राय को टीका के अन्दर शंका-समाधान के रूप में प्रस्तुत किया है, जो यहाँ दृष्टव्य है-

कश्चित् पुनराशंकते–

असातावेदनीयं वेदयमानस्य सयोगिकेवलिनो भगवतः क्षुधातृषादिभिरेकादशपरीषहैर्बाध्यमानस्य कथं न भुक्तिर्भविष्यति ?

आचार्यदेवः समाधत्ते–

नैष दोषः, भोजनपानेषु जाततृष्णस्य समोहस्य मरणभयेन भुज्यमानस्य परीषहैः पराजितस्य केवलित्वविरोधात्।

संक्लेशाविनाभाविन्यां क्षुद् बाधायां दह्यमानस्य केवलित्वं युज्यते इति चेत् ?

नैतद्, किंच एषोऽपि दोषः समानमेव। किंच स्वकसहायघातिकर्माभावेन निःशक्तित्वमापन्नासाता-वेदनीयोदयात् बुभुक्षा-तृषादीनामनुत्पत्तेः।

पुनः कोई शंका करता है–

असातावेदनीय का वेदन करने वाले तथा क्षुधा-तृषा आदि ग्यारह परीषहों से बाधा को प्राप्त हुये सयोगिकेवली भगवान के भोजन का ग्रहण कैसे नहीं होगा ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं–

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जो भोजन-पान में उत्पन्न हुई इच्छा से मोहयुक्त है तथा मरण के भय से जो भोजन करता है, अतएव परीषहों से जो पराजित हुआ है ऐसे जीव के केवली होने का विरोध पाया जाता है।

शंका–संक्लेश के साथ अविनाभाव रखने वाली क्षुधा से जलने वाले के भी केवलीपना बन जाएगा?

समाधान–ऐसा भी नहीं है, क्योंकि इस प्रकार का यह दोष समान ही है, क्योंकि अपने सहायक घातिया कर्मों का अभाव हो जाने से अशक्तता को प्राप्त हुए असातावेदनीय के उदय से क्षुधा व तृषा की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।

आयुबंध का एक विशेष नियम!

तृतीय महाधिकार के सूत्र 159 में श्रीवीरसेनाचार्य के सैद्धान्तिक मत को टीकाकर्त्री ने भी अपनी टीका में श्रद्धापूर्वक स्थान देकर स्पष्ट कहा है–

"उत्कृष्टसंक्लेश-विशुद्धिभ्यां आयुर्बंधाभावो भवति.....अर्थात् उत्कृष्ट संक्लेश एवं उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा आयुकर्म का बंध नहीं होता है।"

परम्परानिर्वाहक शिष्यों के लिए महत्वपूर्ण बात!

सूत्र नं. 214 की टीका में आया है कि आचार्य शिष्यों के लिए समस्त सूत्रार्थ को नहीं कहते हैं, क्योंकि शिष्यों में उतनी अधिक शक्ति नहीं पाई जाती है।

इसे शंका-समाधान के माध्यम से खोला गया है–

कथं पुनः सकलश्रुतज्ञानोत्पत्तिः ?

आचार्यदेवः समाधत्ते–

नैष दोषः, अनुक्तावग्रह-ईहा-अवाय-धारणाभिस्तदुत्पत्तेः।

उक्तं च धवलाटीकायां–

पण्णवणिज्जा भावा, अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण, अणंतभागो सुदणिबद्धो।।
आचार्यः पादमाचष्टे, पादः शिष्यः स्वमेधया।
तद्विद्यसेवया पादः, पादः कालेन पच्यते।।

तो फिर पूर्ण श्रुतज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं–

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अनुक्तावग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के द्वारा वह उत्पन्न हो सकता है।

जैसा कि धवला टीका में कहा है–

गाथार्थ–वचन के अगोचर अर्थात् केवलज्ञान के विषयभूत जीवादिक पदार्थों के अनंतवें भागमात्र प्रज्ञापनीय अर्थात् तीर्थंकर की सातिशय दिव्यध्वनि के द्वारा प्रतिपादन के योग्य हैं तथा प्रतिपादन के योग्य उक्त जीवादिक पदार्थों का अनंतवां भाग मात्र श्रुतनिबद्ध होता है।।

आचार्य एक पाद–चरण को कहते हैं, एक पाद (द्वितीय चरण) को शिष्य अपनी बुद्धि से ग्रहण करता है, एक पाद (तृतीय चरण) उसके जानकार पुरुषों की सेवा से प्राप्त होता है तथा एक पाद (चतुर्थ चरण) समयानुसार परिपाक को प्राप्त होता है।।

अर्थात् विज्ञ गुरु की पादसेवा से श्रुतज्ञान की प्राप्ति का होना बहुत महत्वपूर्ण बात है। धवला

जैसे महान ग्रंथ की इन पंक्तियों को ध्यान में रखकर शिष्यों को अपने गुरु के प्रति समर्पित भाव का उदाहरण प्रस्तुत करके उनसे अधिक से अधिक ज्ञान का अर्जन करना चाहिए।

षट्खण्डागम पुस्तक 13 तक की हिन्दी टीका मेरे द्वारा पूर्ण हो चुकी है। पुस्तक 10 तक की हिन्दी टीका सहित प्रकाशन हो चुका है। अब यह ग्यारहवीं पुस्तक हिन्दी टीका सहित प्रकाशित हो रही है।

इनकी हिन्दी टीका लिखते समय संस्कृत ग्रंथों का पारायण करके मुझे अतीव आनंद की अनुभूति हुई है, क्योंकि माताजी की संस्कृत प्रांजल, सरल और सरस होने से सहज ही समझ में आ जाती है।

जैसा कि पूज्य माताजी ने पूरे ग्रंथ में जगह-जगह स्पष्ट कर दिया है कि यह टीका प्रमुखरूप से धवला ग्रंथ के आधार से है तथा इसमें अन्य अनेक ग्रंथों के उद्धरण देकर भी विषय को शीघ्रग्राही बनाया गया है, अतः यह उनकी मौलिक टीकाकृति के रूप में विद्वज्जगत की शिखामणि के समान है और वैशाख कृ. दूज तिथि को सोलहों ग्रंथ की टीका पूर्ण करने के कारण वह इनकी आर्यिका दीक्षा तिथि **''श्रुतज्ञानदिवस''** के रूप में संसार में अमरता को प्राप्त होवे, यही भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना है।

वास्तव में हम अगर गंभीरता से विचार करें तो पाते हैं कि पूज्य ज्ञानमती माताजी ने इस भूमण्डल को अपनी ज्ञानरश्मियों से इतना अधिक प्रकाशमान कर दिया है कि उसके आगे सूर्य का प्रकाश भी मंद पड़ जाता है। उनके ज्ञानरूपी दर्पण में अनेकों प्रतिबिम्ब स्पष्ट झलकते हैं चाहे वह तीर्थों के नवनिर्माणों के रूप में हो, विधानों की रचना के रूप में हो, ग्रंथों के लेखन के रूप में हो अथवा राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय महोत्सवों के रूप में हो।

जिस प्रकार धरसेनाचार्य, श्री पुष्पदंत-भूतबलि आदि आचार्यों ने जो भी ग्रंथ लिखे, वे सभी अपने पूर्वाचार्यों के उपदेशों के आधार पर ही लिखे, उसी प्रकार पूज्य ज्ञानमती माताजी जो कुछ भी लिखती हैं, जो कुछ भी निर्माण प्रेरणा देती हैं, वह सब आगम के आधार से ही करती हैं यही कारण है कि पूज्य माताजी की लेखनी से लिखा गया प्रत्येक शब्द सभी के लिए प्रेरणादायी बन जाता है तथा उनके द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य सभी के लिए अनुकरणीय बन जाता है।

इस ग्रंथ की टीकाकर्त्री ने वेदनाभावविधान की तीन चूलिकाओं को अलग–अलग अधिकारों में विभक्त किया है तथा यथास्थान कहीं–कहीं अपने लेखनस्थलों का भी उनमें उल्लेख करके ग्रंथ को ऐतिहासिक दस्तावेज से परिपूर्ण बना दिया हैं यथा–प्रथम चूलिका के प्रारंभ में सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की वंदना है-

सिद्धान् सर्वाञ्नमस्कृत्य, सिद्धस्थानं जिनेशिनाम्।
पूज्यं सम्मेदशैलेन्द्रं, भक्त्या संस्तौमि सिद्धये।।1।।

इस प्रकार से 20 छंदों में निबद्ध इस वंदना के पश्चात् उन्होंने संस्कृत गद्य की पंक्तियों में लिखा है कि–

आज मैं सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर पर्वतराज की वंदना के निमित्त आकर चोपड़ाकुण्ड दिगम्बर जैन मंदिर की धर्मशाला में रहकर कभी कूटों की वंदना संघ सहित करके इस सिद्धांतचिंतामणिटीका

का लेखन (चैत्र कृष्णा पंचमी, सन् 2003 में) किया है .....आदि।

तीनों चूलिकाओं की समाप्ति के साथ इस ग्यारहवीं पुस्तक का समापन करते हुए पूज्य माताजी ने तात्पर्य में लिखा है कि–

इस महाग्रंथ को पढ़कर कर्मबंध के कारणों से विरक्त होकर अपने आत्मतत्त्व का चिंतन करना चाहिए। मेरी आत्मा भगवान् आत्मा है, मैं राग–द्वेष और क्रोधादि कषाय एवं पंचेन्द्रिय विषय व्यापार से आत्मा को पृथक् करके कब अपने परमात्मतत्त्व को प्राप्त करूँगा, ऐसी भावना के द्वारा भव्यजीव रत्नत्रय की शुद्धि और सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं।

पूज्य माताजी ने इस ग्यारहवीं पुस्तक का समापन भगवान महावीर की निर्वाणभूमि पावापुरी सिद्धक्षेत्र पर किया है अतः इस ग्रंथ की प्रशस्ति में उन्होंने लिखा है कि–

महावीरस्य निर्वाण-भूमिः पावापुरी भुवि।
प्रसिद्धास्तमहं वन्दे, निर्वाणसौख्यलब्धये।।1।।

अर्थात् भगवान महावीर की निर्वाणभूमि पावापुरी संसार में प्रसिद्ध है, मैं निर्वाण सुख की प्राप्ति हेतु उस निर्वाणभूमि की वंदना करती हूँ।

मैंने इस ग्रंथ की हिन्दी टीका 30 अक्टूबर 2011, कार्तिक शुक्ला चतुर्थी, शनिवार को लिखकर पूर्ण की थी किन्तु इसके छपने का योग तीन वर्ष बाद आया है। पूज्य माताजी के पावन सान्निध्य में इसकी मैंने स्वयं पूरी वाचना की है और स्वाध्याय करके ज्ञान का रसास्वादन लिया है। ग्रंथ की टीका लिखने में अनेकानेक विषय ऐसे रहे जिन्हें समझना अति कठिन प्रतीत हुआ किन्तु ''पठितव्यं खलु पठितव्यं, अग्रे अग्रे स्पष्टं भविष्यति'' वाली नीति के अनुसार कभी निराशा को नहीं पनपने दिया। माता सरस्वती देवी एवं अपनी गुरुमाँ पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के चरणों में यही प्रार्थना है कि मेरे श्रुतज्ञान की वृद्धि हो, ताकि इन ग्रंथों का मर्म पूरी तरह से समझ सकूँ एवं आगे के पंचम खण्ड की शेष बची (14-15-16) पुस्तकों की हिन्दी टीका का कार्य मेरे द्वारा शीघ्र सम्पन्न होवे।

इस ग्रंथ का प्रूफ संशोधन आदि संघस्थ आर्यिका सुव्रतमती जी तथा बाल ब्र. कु. बीना बहिन जी ने करके अपने श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम किया है। दोनों के लिए वात्सल्यपूर्ण मंगल आशीर्वाद है।

भगवान महावीर के शासन में आ. वीरसेन, आ. कुंदकुंद, आ. अकलंक देव के मार्ग का अनुसरण करने वाली, गणिनी आर्यिका श्री ब्राह्मी माता की प्रतिमूर्ति श्री ज्ञानमती माताजी के श्रीचरणों में कोटिशः वन्दन करते हुए जिनेन्द्र भगवान से यही प्रार्थना है कि पूज्य माताजी दीर्घायु हों-शतायु हों, स्वस्थ रहें और हम सभी को अपना मंगल आशीर्वाद प्रदान करती रहें।

ज्ञानमत्यार्यिका माता, जीयात् वर्षशतं भुवि।
चन्दनामतिशिष्यायाः, पूर्यात् सर्वं मनोरथं।।

आचार्य चतुष्टय परिचय

प्रस्तुति–गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

जिनके श्रीमुखारविन्द से सिद्धान्त का ज्ञान शिष्यद्वय को प्राप्त हुआ था, उस ज्ञान के फलस्वरूप उन दोनों महामुनियों ने षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथों की रचना की तथा जिन्होंने उन सूत्रों पर धवला टीका रचकर प्रदान की, ऐसे उन चारों महान आचार्यों (श्री धरसेनाचार्य, श्रीपुष्पदन्ताचार्य, श्री भूतबली आचार्य, श्री वीरसेनाचार्य) के संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

श्री धरसेनाचार्य–

भगवान महावीर स्वामी ने भावश्रुत का उपदेश दिया, अतः वे अर्थकर्ता हैं। उसी काल में चार ज्ञान से युक्त गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रंथों की एक ही मुहूर्त्त में क्रम से रचना की अतः भावश्रुत और अर्थपदों के कर्ता तीर्थंकर हैं तथा द्रव्यश्रुत के कर्त्ता गौतम गणधर हैं। उन गौतम स्वामी ने भी दोनों प्रकार का श्रुतज्ञान लोहार्य को दिया। लोहार्य ने भी जम्बूस्वामी को दिया। परिपाटी क्रम से ये तीनों ही सकल श्रुत के धारण करने वाले कहे गये हैं और यदि परिपाटी क्रम की अपेक्षा न की जाये तो उस समय संख्यात हजार सकलश्रुत के धारी हुए। गौतमस्वामी, लोहार्य और जम्बूस्वामी ये तीनों निर्वाण को प्राप्त हुए। इसके बाद विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु, ये पाँचों ही आचार्य परिपाटी क्रम से चौदह पूर्व के धारी हुए।

तदनन्तर विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थ धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह ही महापुरुष परिपाटी क्रम से ग्यारह अंग, दशपूर्व के धारक और शेष चार पूर्वों के एकदेश के धारक हुए।

इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पांडुस्वामी, ध्रुवसेन, कंसाचार्य ये पाँचों ही आचार्य परिपाटी क्रम से सम्पूर्ण ग्यारह अंगों के और चौदह पूर्वों के एकदेश के धारक हुए।

तदनन्तर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चारों ही आचार्य सम्पूर्ण आचारांग के धारक और शेष अंग तथा पूर्वों के एकदेश के धारक हुए। ''इसके बाद सभी अंग और पूर्वों का एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परा से आता हुआ धरसेन आचार्य को प्राप्त हुआ।''[1]

सौराष्ट्र (गुजरात-काठियावाड़) देश के गिरिनगर नाम के नगर की चन्द्रगुफा में रहने वाले अष्टांग महानिमित्त के पारगामी, प्रवचन वत्सल और आगे अंगश्रुत का विच्छेद हो जायेगा, इस प्रकार उत्पन्न हो गया है भय जिनको, ऐसे उन धरसेनाचार्य से महामहिमा (पंचवर्षीय साधु सम्मेलन) में सम्मिलित हुए दक्षिणापथ के (दक्षिण देश के निवासी) आचार्यों के पास एक लेख भेजा। लेख में लिखे गये धरसेनाचार्य के वचनों को अच्छी तरह समझकर उन आचार्यों ने शास्त्र के अर्थ को ग्रहण और धारण करने में समर्थ, नाना प्रकार की उज्ज्वल और निर्मल विनय से विभूषित अंग वाले, शीलरूपी माला के धारक, गुरुओं द्वारा प्रेषण (भेजने) रूपी भोजन से तृप्त हुए, देश, कुल और जाति से शुद्ध अर्थात् उत्तम कुल और उत्तम जाति में उत्पन्न हुए, समस्त कलाओं में पारंगत और तीन बार पूछा है आचार्यों को उन्होंने (आचार्यों से तीन बार आज्ञा ली है जिन्होंने) ऐसे दो साधुओं को आंध्र देश में बहने वाली वेणानदी के तट से भेजा।

मार्ग में उन दोनों के आते समय श्री धरसेन भट्टारक ने रात्रि के पिछले भाग में स्वप्न देखा कि

---

1. तदो सव्वेसिमंग-पुव्वाणामेग-देसो आइरियपरम्पराए आगच्छमाणो धरसेनाइरियं संपत्तो।''-धवला पु. 1, पृ. 68।

समस्त लक्षणों से परिपूर्ण, सफेद वर्ण वाले दो उन्नत बैल उनकी तीन प्रदक्षिणा देकर चरणों में पड़ गये हैं। इस प्रकार के स्वप्न को देखकर संतुष्ट हुए धरसेनाचार्य ने ''जयउ सुयदेवदा, श्रुतदेवता जयवन्त हो'' ऐसा वाक्य उच्चारण किया।

उसी दिन दक्षिणापथ से भेजे हुए वे दोनों साधु धरसेनाचार्य को प्राप्त हुए। उसके बाद धरसेनाचार्य की पादवन्दना आदि कृतिकर्म करके और दो दिन बिताकर तीसरे दिन उन दोनों ने धरसेनाचार्य से निवेदन किया कि ''इस कार्य से हम दोनों आपके पादमूल को प्राप्त हुए हैं।'' उन दोनों मुनियों के इस प्रकार निवेदन करने पर ''अच्छा है, कल्याण हो'' इस प्रकार कहकर धरसेन भट्टारक ने उन दोनों साधुओं को आश्वासन दिया। इसके बाद भगवान धरसेन ने विचार किया कि–

''शैलघन, भग्नघट, सर्प, चालनी, महिष, मेंढा, जोंक, तोता, मिट्टी और मशक के समान श्रोताओं को जो मोह से श्रुत का व्याख्यान करता है, वह मूढ़ दृढ़रूप से ऋद्धि आदि तीनों प्रकार के गौरवों के अधीन होकर विषयों की लोलुपतारूपी विष के वश से मूर्च्छित हो, बोधि–रत्नत्रय की प्राप्ति से रहित होकर भववन में चिरकाल तक परिभ्रमण करता रहता है।''

इस वचन के अनुसार स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करने वाले श्रोताओं को विद्या देना संसार और भय को ही बढ़ाने वाला है, ऐसा विचार कर, शुभ स्वप्न के देखने मात्र से ही यद्यपि उन दोनों साधुओं की विशेषता को जान लिया था, तो भी फिर से उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया क्योंकि उत्तम प्रकार से ली गई परीक्षा हृदय में संतोष को उत्पन्न करती है। अनन्तर धरसेनाचार्य ने उन दोनों को दो विद्याएँ दीं। उनमें से एक अधिक अक्षर वाली थी और दूसरी हीन अक्षर वाली थी। उनको विद्याएँ देकर यह कहा कि दो दिन का उपवास करके इन विद्याओं को सिद्ध करो। (इन्द्रनंदि आचार्य ने बताया कि उन दोनों ने गुरु की आज्ञा से नेमिनाथ की निर्वाणस्थली पर जाकर विद्याओं को सिद्ध किया)। जब उनकी विद्याएँ सिद्ध हो गईं, तो उन्होंने विद्या की अधिष्ठात्री देविकाओं को देखा कि ''एक देवी के दाँत बाहर निकले हुए हैं और दूसरी कानी है।'' ''विकृतांग होना देवताओं का स्वभाव नहीं है।'' इस प्रकार उन दोनों ने विचार कर मंत्र संबंधी-व्याकरण शास्त्र में कुशल उन दोनों ने हीन अक्षर वाली विद्या में अधिक अक्षर मिलाकर और अधिक अक्षर वाली विद्या में से अक्षर निकालकर मंत्र को फिर सिद्ध किया। जिससे वे दोनों विद्या देवियाँ अपने स्वभाव से सुन्दररूप में दिखलाई पड़ीं। उन्होंने 'आज्ञा देवो' ऐसा कहा, तब इन मुनियों ने कहा कि मैंने तो गुरु की आज्ञा मात्र से ही मंत्र का अनुष्ठान किया है, मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है, तब वे देविकाएँ अपने स्थान को चली गईं ऐसा श्रुतावतार में वर्णन है।

तदनन्तर भगवान धरसेन के समक्ष योग्य विनय सहित उन दोनों ने विद्यासिद्धिसंबंधी समस्त वृत्तान्त निवेदित कर दिया। ''बहुत अच्छा'' ऐसा कहकर संतुष्ट हुए धरसेनाचार्य ने शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ वार में ग्रंथ को पढ़ाना प्रारंभ किया। इस तरह क्रम से व्याख्यान करते हुए धरसेन भगवान से उन दोनों ने आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन पूर्वान्ह काल में विनयपूर्वक ग्रंथ समाप्त किया। विनयपूर्वक ग्रंथ समाप्त किया इसलिए संतुष्ट हुए भूत जाति के व्यंतर देवों ने उन दोनों में से एक की पुष्प, बलि तथा शंख और सूर्य जाति के वाद्य विशेष के नाद से व्याप्त बड़ी भारी पूजा की। उसे देखकर धरसेन भट्टारक ने उनका ''भूतबलि'' यह नाम रखा तथा जिनकी भूतों ने पूजा की है और अस्त-व्यस्त दन्त-पंक्ति को दूर करके जिनके दाँत समान कर दिये हैं, ऐसे दूसरे का भी श्री धरसेन भट्टारक ने ''पुष्पदंत'' नाम रखा।

तदनन्तर उसी दिन वहाँ से भेजे गये उन दोनों ने ''गुरु की आज्ञा अलंघनीय होती है'' ऐसा विचार

कर आते हुए अंकलेश्वर (गुजरात) में वर्षाकाल बिताया। (गुरु ने अपनी अल्प आयु जानकर उन दोनों को वहाँ से विहार कर अन्यत्र चातुर्मास करने की आज्ञा दी और वे दोनों मुनि आषाढ़ सुदी 11 को निकलकर श्रावण वदी 4 को अंकलेश्वर आये, वहाँ पर वर्षायोग स्थापित किया)।

वर्षायोग को समाप्त कर और जिनपालित को साथ लेकर पुष्पदन्ताचार्य तो वनवासी देश को चले गये और भूतबलि भट्टारक तमिल देश को चले गये। तदनन्तर पुष्पदन्ताचार्य ने जिनपालित को दीक्षा देकर बीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणा के सूत्र बनाकर और जिनपालित मुनि को पढ़ाकर अनन्तर उन्हें भूतबलि आचार्य के पास भेजा। भूतबलि ने जिनपालित के द्वारा दिखाये गये सूत्रों को देखकर और पुष्पदन्ताचार्य अल्पायु हैं, ऐसा समझकर तथा हम दोनों के बाद महाकर्म प्रकृति प्राभृत का विच्छेद हो जायेगा; इस प्रकार की बुद्धि के उत्पन्न होने से भगवान भूतबलि ने द्रव्यप्रमाणानुगम को आदि लेकर ग्रंथ रचना की। इसलिए इस खण्ड सिद्धान्त (षट्खण्ड सिद्धान्त) की अपेक्षा भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्य भी श्रुत के कर्ता कहे जाते हैं। अनुग्रंथकर्ता गौतम स्वामी हैं और उपग्रंथकर्ता राग, द्वेष और मोह से रहित भूतबलि, पुष्पदन्त आदि अनेक आचार्य हैं।[1]

धरसेनाचार्य का समय–

नंदिसंघ की प्राकृत पट्टावली में 683 वर्ष के अंदर ही श्री धरसेन को माना है। यथा–केवली का काल 62 वर्ष, श्रुत केवलियों का 100 वर्ष, दश पूर्वधारियों का 183, ग्यारह अंगधारियों का 123 वर्ष, दस नव व आठ अंगधारी का 97 वर्ष ऐसे 62+100+183+123+97=565 वर्ष हुए, पुनः एक अंगधारियों में अर्हतबलि का 28 वर्ष, माघनंदि का 21 वर्ष, धरसेन का 19 वर्ष, पुष्पदंत का 30 वर्ष और भूतबलि का 20 वर्ष, ऐसे 118 वर्ष हुए। कुल मिलाकर 565+118=683 वर्ष के अंतर्गत ही धरसेनाचार्य हुए हैं।

इस प्रकार इस पट्टावली और इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार के आधार पर भी श्री धरसेन का समय वीर निर्वाण संवत् 600 अर्थात् ई. सन् 73 के लगभग आता है।

धरसेनाचार्य के गुरु–

उपर्युक्त पट्टावली के अनुसार इनके गुरु श्री माघनंदि आचार्य थे अथवा इन्द्रनन्दि आचार्य ने स्पष्ट कह दिया है कि इनकी गुरु परम्परा का हमें ज्ञान नहीं है।

धरसेनाचार्य की रचना–

यह तो पूर्व में आपने पढ़ा है कि धरसेनाचार्य ने अपने पास में पढ़ने के लिए आए हुए दोनों मुनियों को मंत्र सिद्ध करने का आदेश दिया था अतः ये मंत्रों के विशेष ज्ञाता थे।

अतः इनका बनाया हुआ योनिप्राभृत नाम का एक ग्रंथ आज भी उपलब्ध है। यह ग्रंथ 800 श्लोक प्रमाण प्राकृत गाथाओं में है। उसका विषय मंत्र-तंत्रवाद है, बृहत् टिप्पणिका नामक सूची में उसका उल्लेख आया है। इसी ग्रंथ की एक पाण्डुलिपि भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना में है। इस प्रति में ग्रंथ का नाम तो योनिप्राभृत ही है किन्तु उसके कर्ता का नाम पण्हसवण मुनि पाया जाता है। इन महामुनि ने उसे कूष्माण्डिनी महादेवी से प्राप्त किया था और अपने शिष्य पुष्पदन्त और भूतबलि के लिए लिखा। इन दो नामों के कथन से इस ग्रंथ का धरसेन कृत होना बहुत संभव जँचता है। प्रज्ञाश्रमणत्व एक ऋद्धि का नाम है उसके धारण करने वाले प्रज्ञाश्रमण कहलाते थे। पूना में उपलब्ध ''जोणिपाहुड़'' की इस

1. धवला पुस्तक 1, पृ. 66 से 72।

प्रति का लेखन काल सं. 1582 है अर्थात् वह प्रति चार सौ वर्ष से अधिक प्राचीन है। जोणिपाहुड़ ग्रंथ का उल्लेख धवला में भी आया है, जो इस प्रकार है–

जोणिपाहुडे भणिद-मंत-तंत-सत्तीओ पोग्गलाणुभागो त्ति घेत्तव्वो।[1]

धवला अ प्रति-पत्र।।18।।

इस प्रकार से धरसेनाचार्य के महान उपकारस्वरूप ही आज हमें षट्खण्डागम ग्रंथ का स्वाध्याय करने को मिल रहा है। इन्होंने बारहवें दृष्टिवाद अंग के अंतर्गत पूर्वों के तथा पाँचवें अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति के कुछ अंशों को पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यों को पढ़ाया था। ''दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यतानुसार षट्खण्डागम और कषायपाहुड़ ही ऐसे ग्रंथ हैं, जिनका सीधा संबंध महावीर स्वामी की द्वादशांग वाणी से माना जाता है।''

श्री धरसेनाचार्य के इतिहास से हमें यह समझना है कि ये आचार्य अंग और पूर्वों के एकदेश के ज्ञाता थे, मंत्र शास्त्र के ज्ञाता थे एवं एक योनिप्राभृत ग्रंथ भी रचा था, इन्होंने बहुत काल तक चन्द्रगुफा में निवास किया था योग्य मुनियों को अपना श्रुतज्ञान पढ़ाया था। शिष्यों को मंत्र सिद्ध करने को भी दिया था। इस प्रकार से तो हमें अवश्य सोचना चाहिए कि आज के मुनि या आचार्य किसी को मिथ्यात्व के प्रपंच से हटाकर शांति हेतु या किसी कार्य सिद्धि हेतु यदि कुछ मंत्र दे देते हैं, तो देने वाले या मंत्र जपने वाले दोनों ही मिथ्यादृष्टि नहीं हैं तथा उन्होंने श्रुत के विच्छेद के भय से जो दो मुनियों को अपना श्रुतज्ञान देकर उनके निमित्त से आज श्रुतज्ञान की परम्परा अविच्छिन्न रखी है यह महान् उपकार उनका प्रतिदिन स्मरण करना चाहिए। जिस दिन षट्खण्डागम की रचना पूरी हुई है, उस दिन चतुर्विध संघ ने मिलकर श्रुत की महापूजा की थी, उस दिन ज्येष्ठ सुदी पंचमी थी, अतः उस पंचमी को आज श्रुतपंचमी कहकर सर्वत्र श्रुतपूजा करने की प्रथा चली आ रही है। उसे भी विशेष पर्वरूप में मनाकर श्रुत की, गुरु धरसेनाचार्य, पुष्पदंत तथा भूतबलि आचार्य की पूजा करनी चाहिए।

आचार्य श्री पुष्पदन्त और भूतबलि

पुष्पदन्त और भूतबलि का नाम साथ-साथ प्राप्त होता है। फिर भी नंदिसंघ की प्राकृत पट्टावली में पुष्पदंत को भूतबलि से ज्येष्ठ माना गया है। धरसेनाचार्य के बाद पुष्पदंत का आचार्य काल 30 वर्ष का बताया है और इनके बाद भूतबलि का 20 वर्ष कहा गया है अतः इनका समय धरसेनाचार्य के समय के लगभग ही स्पष्ट है।

यह तो निश्चित ही है कि श्री धरसेनाचार्य ने दो मुनियों को अन्यत्र मुनिसंघ से बुलाकर विद्याध्ययन कराया था। अनन्तर शास्त्रसमाप्ति के दिन उनकी विनय से संतुष्ट हुए भूतजाति के व्यंतर देवों ने उन दोनों में से एक मुनि की पुष्प, बलि तथा शंख और सूर्य जाति के वाद्य विशेषों के नाद से बड़ी भारी पूजा की, उसे देखकर धरसेनाचार्य ने उनका ''भूतबलि'' यह नाम रखा और दूसरे मुनि की अस्त-व्यस्त दंत पंक्तियों को ठीक करके उनके दाँत समान कर दिये-जिससे गुरु ने उनका ''पुष्पदन्त'' यह नाम रखा। इस धवला टीका के कथन से यह बात स्पष्ट है कि इनका पूर्व नाम कुछ और ही होना चाहिए तथा इनका गृहस्थाश्रम का परिचय क्या है, यह जिज्ञासा सहज ही होती है।

---

1. धवला पृ. 1, प्रस्तावना पृ. 25-26।

विबुध श्रीधर के श्रुतावतार में भविष्यवाणी के रूप में पुष्पदंत और भूतबलि आचार्य के जीवन पर अच्छा प्रकाश देखने में आता है। यथा–

''भरत क्षेत्र के वामिदेश–ब्रह्मादेश में वसुन्धरा नाम की नगरी होगी। वहाँ के राजा नरवाहन और रानी सुरूपा पुत्र न होने से खेदखिन्न होंगे। उस समय सुबुद्धि नाम का सेठ उन्हें पद्मावती की पूजा का उपदेश देगा। तदनुसार देवी की पूजा करने पर राजा को पुत्रलाभ होगा और उस पुत्र का नाम पद्म रखा जाएगा। तदनन्तर राजा सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माण करायेगा और प्रतिवर्ष यात्रा करेगा। सेठ भी राजा की कृपा से स्थान-स्थान पर जिनमंदिरों का निर्माण करायेगा। इसी समय बसन्त ऋतु में समस्त संघ यहाँ एकत्र होगा और राजा सेठ के साथ जिन पूजा करके रथ चलायेगा। इसी समय राजा अपने मित्र मगध सम्राट को मुनीन्द्र हुआ देख सुबुद्धि सेठ के साथ विरक्त हो दिगम्बरी दीक्षा धारण करेगा। इसी समय एक लेखवाहक वहाँ आयेगा वह जिनदेव को नमस्कार कर मुनियों की तथा परोक्ष में धरसेन गुरुदेव की वंदना कर लेख समर्पित करेगा। वे मुनि उसे बाचेंगे कि ''गिरिनगर के समीप गुफावासी धरसेन मुनीश्वर अग्रायणीय पूर्व की पंचमवस्तु के चौथे प्राभृतशास्त्र का व्याख्यान आरंभ करने वाले हैं अतः योग्य दो मुनियों को भेज दो। वे मुनि नरवाहन और सुबुद्धि मुनि को भेज देंगे। धरसेन भट्टारक कुछ दिनों में नरवाहन और सुबुद्धि नाम के दो मुनियों को पठन, श्रवण और चिन्तन कराकर आषाढ़ शुक्ला एकादशी को शास्त्र समाप्त करेंगे। उनमें से एक की भूतजाति के देव बलिविधि करेंगे और दूसरे के चार दाँतों को सुन्दर बना देंगे। अतएव भूतबलि के प्रभाव से नरवाहन मुनि का नाम भूतबलि और चार दाँत समान हो जाने से सुबुद्धि मुनि का नाम पुष्पदंत होगा।''[1]

इन्द्रनंदिकृत श्रुतावतार में यह लिखा है कि इन्होंने ग्रंथ समाप्त कर गुरु की आज्ञा से वहाँ से विहार कर अंकलेश्वर में वर्षायोग बिताया। वहाँ से निकलकर दक्षिण देश में पहुँचे। वहाँ पर पुष्पदंत मुनि ने करहाटक देश में अपने भानजे जिनपालित को साथ लिया और दिगम्बरी दीक्षा देकर उन्हें साथ लेकर वनवास देश को चले गये तथा भूतबलि मुनि द्रविड़ देश में चले गये। वनवास देश में पुष्पदंताचार्य ने ''बीसदि'' सूत्रों की रचना की और जिनपालित को पढ़ाकर तथा उन सूत्रों को उसे देकर भूतबलि मुनि का अभिप्राय जानने के लिए उनके पास भेजा। उन्होंने पुष्पदंताचार्य की अल्पायु जानकर और उन सूत्रों को देखकर बहुत ही संतोष प्राप्त किया पुनः आगे श्रुत का विच्छेद न हो जाये, इस भावना से द्रव्य प्रमाणानुगम को आदि लेकर आगे के सूत्रों की रचना की।

इस प्रकार से भूतबलि आचार्य ने पुष्पदंताचार्य विरचित सूत्रों को मिलाकर पाँच खंडों के छह हजार सूत्र रचे और तत्पश्चात् महाबंध नामक छठे खण्ड की तीस हजार सूत्र ग्रंथरूप रचना की। इस तरह षट्खण्डागम की रचना कर उसे ग्रंथ रूप में निबद्ध किया। पुनः ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन उस श्रुत की महान् पूजा की। अनन्तर भूतबलि ने जिनपालित को षट्खण्डागम सूत्र देकर पुष्पदंत के पास भेजा। अपना सोचा हुआ कार्य पूर्ण हुआ, ऐसा देखकर पुष्पदंताचार्य ने भी श्रुतभक्ति के अनुराग से पुलकित होकर श्रुतपंचमी के दिन चतुर्विध संघ के समक्ष उनकी महान् पूजा की।

यह षट्खण्डागम ग्रंथ महाकर्म प्रकृति प्राभृत का अंश है तथा इसमें उसके अर्थ के साथ-साथ सूत्र भी समाविष्ट हैं। भूतबलि आचार्य ने चतुर्थ वेदनाखंड में जो ''णमोजिणाणं'' आदि 44 मंगलसूत्र दिये हैं,

1. श्रुतावतार, माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रंथमाला, ग्रंथांक 21 सिद्धान्तसारादिसंग्रह पृ. 316-317।

वे गौतम स्वामी के मुखकमल से निकले हुए हैं। इससे श्री पुष्पदंत और भूतबलि आचार्य इस महान् ग्रंथ के कर्ता नहीं हैं, बल्कि प्ररूपक हैं अतः षट्खंडागम का द्वादशांगवाणी के साथ साक्षात् संबंध है।

षट्खण्डागम का रहस्य–

यह ग्रंथ छह खण्डों में विभक्त है, अतः इसे षट्खण्डागम कहते हैं। उनके नाम–जीवट्ठाण, खुद्दाबंध, बंधसामित्तविचय, वेयणा, वग्गणा और महाबंध हैं।

श्री धरसेनाचार्य, पुष्पदंत और भूतबलि के विषय में धवला में अनेक विशेषताएँ उपलब्ध हैं। यथा–

जयउ धरसेणणाहो, जेण महाकम्मपयडिपाहुडसेलो।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ, समप्पिओ पुप्फयन्तस्स।।[1]

वे धरसेन स्वामी जयवन्त होवें, जिन्होंने महाकर्म प्रकृति-प्राभृतरूपी पर्वत को अपने बुद्धिरूपी मस्तक से उठाकर पुष्पदंत को समर्पित किया है।

पणमामि पुप्फयंतं, दुकयंतं दुण्णयंधयाररविं।
भग्गसिवमग्गकंटय-मिसिसमिइवइं सया दंतं।।[2]

जो पापों का अन्त करने वाले हैं, कुनयरूपी अंधकार का नाश करने के लिए सूर्यतुल्य हैं, जिन्होंने मोक्षमार्ग के विघ्नों को नष्ट कर दिया है, जो ऋषियों की सभा के अधिपति हैं और निरन्तर पंचेन्द्रियों का दमन करने वाले हैं, ऐसे पुष्पदन्ताचार्य को मैं प्रणाम करता हूँ।

यहाँ पर ''ऋषिसमितिपति'' विशेषण से ये महान् संघ के नेता आचार्य सिद्ध होते हैं।

ऐसे ही–

''ण चासंबद्धं भूतबलिभडारओ परूवेदि महाकम्मपयडिपाहुड-अमियवाणेण ओसारिदा णंसरागदोसमोहत्तादो।''[3]

भूतबलि भट्टारक असंबद्ध कथन नहीं कर सकते, क्योंकि महाकर्म प्रकृति प्राभृतरूपी अमृतपान से उनका समस्त रागद्वेष मोह दूर हो गया है।

इन प्रकरणों से इन पुष्पदंत और भूतबलि आचार्यों की महानता का परिचय मिल जाता है। ये आचार्य हम और आप जैसे साधारण लेखक या वक्ता न होकर भगवान महावीर की द्वादशांग वाणी के अंशों के आस्वादी और उस वाणी के ही प्ररूपक थे तथा राग, द्वेष और मोह से बहुत दूर थे। उनके संज्वलन कषाय का उदय होते हुए भी वे असत्यभाषण से सर्वथा परे होने से वीतरागी थे, महान् पापभीरू थे।

बड़े सौभाग्य की बात है कि उनके द्वारा शास्त्ररूप से निबद्ध हुआ परमागम आज हमें उपलब्ध हो रहा है और हम लोग उनकी वाणी का स्वाध्याय करके अपने असंख्यातगुणित कर्मों की निर्जरा कर रहे हैं तथा महान् पुण्य संचय के साथ-साथ ही सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कर अपने आप में कृतकृत्यता का अनुभव कर रहे हैं।

आचार्य श्री वीरसेन

जितात्मपरलोकस्य, कवीनां चक्रवर्तिनः।
वीरसेनगुरोः कीर्तिरकलंकावभासते।।[4]

---

1. धवला पृ. 1, मंगलगाथा। 2. षट्खण्डागम (धवलाटीका), पु. 1, पृ. 7। 3. धवला पुस्तक 10, पृ. 274-275। 4. हरिवंशपुराण सर्ग 1।

जिन्होंने स्वपक्ष और परपक्ष के लोगों को जीत लिया है तथा जो कवियों के चक्रवर्ती हैं, ऐसे श्री वीरसेन स्वामी की निर्मल कीर्ति प्रकाशित हो रही है।

ये आचार्य वीरसेन किनके शिष्य थे? इनका समय क्या था? इन्होंने क्या-क्या रचनाएं कीं? आदि संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

जीवन परिचय–आचार्यदेव ने स्वयं अपनी धवला टीका की प्रशस्ति में अपने गुरु का नाम एलाचार्य लिखा है। पर इसी प्रशस्ति की चौथी गाथा में गुरु का नाम आर्यनंदि और दादा गुरु का नाम चन्द्रसेन कहा है। डॉ. हीरालाल जैन का अनुमान है कि एलाचार्य इनके विद्यागुरु और आर्यनंदि इनके दीक्षागुरु थे।

इस प्रशस्ति से श्री वीरसेनाचार्य सिद्धान्त के प्रकाण्ड विद्वान, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण और न्याय के वेत्ता तथा भट्टारक पद से विभूषित थे, ऐसा स्पष्ट है।

जो भी हो, एलाचार्य गुरु का वात्सल्य इन पर असीम था, ऐसा स्पष्ट है, वे किसी न किसी रूप में इनके गुरु अवश्य थे। यथा–''एलाइरियवच्छओ'' स्वयं इस वाक्य में अपने को एलाचार्य का ''वत्स'' कहते हैं। ऐसे और भी अनेक स्थलों पर स्वयं आचार्य ने अपने को एलाचार्य का वत्स लिखा है।

समय निर्णय–इनका समय विवादास्पद नहीं है। इनके शिष्य जिनसेन ने इनकी अपूर्ण जयधवला टीका को शक संवत् 759 (ईसवी सन् 837) की फाल्गुन शुक्ला दशमी को पूर्ण किया है। अतः इस तिथि के पूर्व ही वीरसेनाचार्य का समय होना चाहिए। इसलिए इनका समय ईसवी सन् की 9वीं शताब्दी (816) का है।

इनकी रचनाएं–इनकी दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं। एक धवला टीका और दूसरी जयधवला टीका। इनमें से द्वितीय टीका तो अपूर्ण रही है।

इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार में दिया है कि ''षट्खण्डागम'' सूत्र पर श्री वप्पदेव की टीका लिखे जाने के उपरान्त कितने ही वर्ष बाद सिद्धान्तों के वेत्ता एलाचार्य हुए, ये चित्रकूट में निवास करते थे, श्री वीरसेन ने इनके पास सम्पूर्ण सिद्धान्त ग्रंथों का अध्ययन किया, अनन्तर गुरु की अनुज्ञा लेकर वाटग्राम में पहुँचे, वहाँ पर आनतेन्द्र द्वारा बनवाये गये जिनमंदिर में ठहरे। वहाँ पर श्री वप्पदेवकृत टीका पढ़ी। अनन्तर उन्होंने 72000 श्लोक प्रमाण में समस्त षट्खण्डागम पर ''धवला'' नाम से टीका रची। यह टीका प्राकृत और संस्कृत भाषा में मिश्रित होने से ''मणिप्रवालन्याय'' से प्रसिद्ध है।

दूसरी रचना ''कसायपाहुड'' सुत्त पर ''जयधवला'' नाम से टीका है। इसको वे केवल 20000 श्लोक प्रमाण ही लिख पाये थे कि वे असमय में स्वर्गस्थ हो गये। इस तरह एक व्यक्ति ने अपने जीवन में 92000 श्लोक प्रमाण रचना लिखी, यह एक आश्चर्य की बात है। श्री वीरसेन स्वामी ने वह कार्य किया है, जो कार्य महाभारत के रचयिता ने किया है। महाभारत का प्रमाण 100000 श्लोक है और इनकी टीकाएं भी लगभग इतनी ही बड़ी हैं। अतएव ''यदिहास्ति तदन्यद् यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।'' जो इसमें है सो ही अन्यत्र है और जो इसमें नहीं है सो कहीं पर नहीं है।'' यह उक्ति यहाँ भी चरितार्थ है।

इन टीकाओं से आचार्य के ज्ञान की विशेषता के साथ-साथ सैद्धान्तिक विषयों का कितना सूक्ष्म तलस्पर्शी इनका अध्ययन था, यह दिख जाता है।

वीरसेनाचार्य ने अपनी टीका में जिन आचार्यों के नाम का निर्देश ग्रन्थोल्लेखपूर्वक किया है, वे निम्न प्रकार हैं–

1. गृद्धपिच्छाचार्य का तत्त्वार्थसूत्र 2. तत्त्वार्थभाष्य (तत्त्वार्थवार्तिक भाष्य) 3. सन्मति सूत्र 4. सत्कर्म प्राभृत 5. पिंडिया 6. तिलोयपण्णत्ति 7. व्याख्याप्रज्ञप्ति 8. पंचास्तिकाय प्राभृत 9. जीवसमास 10. पूज्यपाद विरचितसारसंग्रह 11. प्रभाचन्द्र भट्टारक (ग्रंथकार) 12. समंतभद्र स्वामी (ग्रंथकार) 13. छंदसूत्र 14. सत्कर्म प्रकृति प्राभृत 15. मूलतंत्र 16. योनिप्राभृत और सिद्धिविनिश्चय।

और भी ग्रंथों के उद्धरणों या नाम का उल्लेख धवला टीका में पाया जाता है।

1. आचारांग निर्युक्ति 2. मूलाचार 3. प्रवचनसार 4. दशवैकालिक 5. भगवती आराधना 6. अनुयोगद्वार 7. चारित्रप्राभृत 8. स्थानांगसूत्र 9. शाकटायनन्यास 10. आचारांगसूत्र 11. लघीयस्त्रय 12. आप्तमीमांसा 13. युक्त्यनुशासन 14. विशेषावश्यक भाष्य 15. सर्वार्थसिद्धि 16. सौंदरनन्द 17. धनंजयनाममाला–अनेकार्थनाममाला 18. भावप्राभृत 19. बृहत्स्वयंभूस्तोत्र 20. नंदिसूत्र 21. समवायांग 22. आवश्यकसूत्र 23. प्रमाणवार्तिक 24. सांख्यकारिका 25. कर्मप्रकृति।

धवला टीका में जिन गाथाओं को उद्धृत किया है, उनमें से अधिकांश गाथाएँ गोम्मटसार, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति और वसुनंदिश्रावकाचार में भी पायी जाती हैं अतः यह अनुमान होता है कि इन प्राचीन गाथाओं का स्रोत एक ही रहा है, क्योंकि गोम्मटसार आदि ग्रंथ धवला टीका से बाद के ही हैं।

जयधवला की प्रशस्ति में कहा है–

''टीका श्री वीरसेनीया शेषाः पद्धतिपंजिका।''[1]

श्री वीरसेन की टीका ही यथार्थ टीका है, शेष टीकाएँ तो पद्धति या पंजिका हैं।

वास्तव में श्री वीरसेन स्वामी को महाकर्म प्रकृति प्राभृत और कषायप्राभृतसंबंधी जो भी ज्ञान गुरु परम्परा से उपलब्ध हुआ, उसे इन दोनों टीकाओं में यथावत् निबद्ध किया है। आगम की परिभाषा में ये दोनों टीकाएँ दृष्टिवाद के अंगभूत दोनों प्राभृतों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अतएव इन्हें यदि स्वतंत्र ग्रंथ संज्ञा दी जाये तो भी अनुपयुक्त नहीं है। यही कारण है कि आज ''षट्खण्डागम'' सिद्धान्त धवलसिद्धान्त के नाम से और ''पेज्जदोसपाहुड़'' जयधवल सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हैं।

ज्योतिष एवं गणित विषय–इस महासिद्धान्त ग्रंथ में ज्योतिष, निमित्त और गणितविषयक की भी महत्वपूर्ण चर्चायें हैं। 5वीं शताब्दी से लेकर 8वीं शताब्दी तक ज्योतिषविषयक इतिहास लिखने के लिए इनका यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है। ज्योतिषसंबंधी चर्चाओं में नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा संज्ञाओं के नाम हैं। दिन-रात्रि, मुहूर्त की चर्चा है। निमित्तों में व्यंजन और छिन्न निमित्तों की चर्चायें हैं।

इसमें प्रधानरूप से एक वर्ग समीकरण, अनेक वर्ग समीकरण, करणी, कल्पितराशियाँ, समानान्तर, गुणोत्तर, व्युत्क्रम आदि बीजगणितसंबंधी प्रक्रियायें हैं। धवला में $अ^3$ को अ के घन का प्रथम वर्गमूल कहा है। $अ^9$ को अ के घन का घन बताया है। $अ^6$ को अ के वर्ग का घन बतलाया है, इत्यादि।

आचार्य की पापभीरूता–श्री वीरसेन स्वामी आचार्यों के वचनों को साक्षात् भगवान् की वाणी समझते थे और परस्पर विरुद्ध प्रकरण में कितना अच्छा समाधान दिया है, इससे इनकी पापभीरूता

---

1. जय धवला प्रशस्ति, पद्य 39।

सहज ही परिलक्षित होती है। उदाहरण देखिये–

''आगम का यह अर्थ प्रामाणिक गुरु परम्परा के क्रम से आया है, यह कैसे निश्चय किया जाये?

नहीं, क्योंकि.....ज्ञान-विज्ञान से युक्त इस युग के अनेक आचार्यों के उपदेश से उसकी प्रमाणता जाननी चाहिए।''[1]

श्री वीरसेन स्वामी जयधवला टीका करते समय गाथा सूत्रों को और चूर्णि सूत्रों को कितनी श्रद्धा से देखते हैं–

''विपुलाचल के शिखर पर विराजमान वर्धमान दिवाकर से प्रगट होकर गौतम, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी आदि की आचार्य परम्परा से आकर और गुणधराचार्य को प्राप्त होकर गाथास्वरूप से परिणत हो पुनः आर्यमंक्षु और नागहस्ति के द्वारा यतिवृषभ को प्राप्त होकर और उनके मुखकमल से चूर्णिसूत्र के आकार से परिणत दिव्यध्वनिरूप किरण से जानते हैं।''[2]

इस प्रकरण से यह स्पष्ट है कि कषायप्राभृत ग्रंथ साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि तुल्य है।

जब किसी स्थल पर दो मत आये हैं, तब कैसा समाधान है?

''दोनों प्रकार के वचनों में से किस वचन को सत्य माना जाये?''

''इस बात को केवली या श्रुतकेवली जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता। क्योंकि इस समय उसका निर्णय नहीं हो सकता है, इसलिए पापभीरू वर्तमान के आचार्यों को दोनों का ही संग्रह करना चाहिए, अन्यथा पापभीरुता का विनाश हो जावेगा।''[3]

एक जगह वनस्पति के विषय में कुछ प्रश्न होने पर तो वीरसेन स्वामी कहते हैं कि-''गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो'' यहाँ गौतम स्वामी से पूछना चाहिए। अर्थात् हम इसका उत्तर नहीं दे सकते। अब बताइये इससे अधिक पापभीरूता और क्या होगी? वास्तव में ये आचार्य अपनी गुरुपरम्परा से प्राप्त जानकारी के अतिरिक्त मन से कुछ निर्णय देना पाप ही समझते थे। इन आचार्यों के ऐसे प्रकरणों से आज के विद्वानों को शिक्षा लेनी चाहिए। जो कि किसी भी विषय में निर्णय देते समय आचार्यों को अथवा उनके ग्रंथों को भी अप्रमाणिक कहने में अतिसाहस कर जाते हैं।

यहाँ प्रकरण को समाप्त करते हुए मेरा यही कहना है कि इन पूर्वाचार्यों के समान ही हम सभी को पापभीरु बनना चाहिए। षट्खण्डागम ग्रंथ के अवतरण में निमित्तभूत परमपूज्य आचार्यश्री धरसेन स्वामी, श्री पुष्पदन्त और भूतबली तथा वीरसेनाचार्य के श्री चरणों में मेरा कोटिशः नमन है।

---

1. धवला पु. 1, पृ. 197। 2. एदम्हादो बिउलगिरमत्थयत्थबड्ढमाणदिवायरादो परिणद-दिव्वज्झुणिकिरणादो णव्वदे। (जय ध.पृ. 313, कसायसुत्त की प्रस्तावना से)
3. धवला पु. 1, पृ. 222, 223।

षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणि टीका का लेखन काल : एक दृष्टि में

-गणिनी ज्ञानमती

भगवान महावीर स्वामी के शासन में दिगम्बर जैन महामुनि श्री धरसेनाचार्य से ज्ञान प्राप्तकर श्री पुष्पदंताचार्य एवं श्रीभूतबलि आचार्य ने ''षट्खण्डागम'' ग्रंथ की रचना की है। इसमें छह खण्ड हैं– 1. जीवस्थान 2. क्षुद्रकबंध 3. बंधस्वामित्व 4. वेदनाखण्ड 5. वर्गणाखण्ड एवं 6. महाबंध।

जीवस्थान –प्रथम खण्ड

श्री वीरसेनाचार्य द्वारा रचित उन ग्रंथों की प्राकृत-संस्कृत मिश्र ''धवला'' नाम की टीका के आधार से मैंने हस्तिनापुर तीर्थ पर वीर नि. संवत् 2521 आश्विन शुक्ला पूर्णिमा–शरत् पूर्णिमा को 8 अक्टूबर सन् 1995 में–

सिद्धान् सिद्ध्यर्थमानम्य, सर्वांस्त्रैलोक्यमूर्धगान्।
इष्टः सर्वक्रियान्तेऽसौ, शान्तीशो हृदि धार्यते।।1।।

इस प्रकार मंगलाचरण लिखकर 'सिद्धान्तचिंतामणि'' नाम से संस्कृत टीका लिखना प्रारंभ किया।

प्रथम खण्ड की टीका को मैंने मांगीतुंगी यात्रा के मध्य लिखते हुए माधोराजपुरा (राजस्थान) में वीर नि. सं. 2523, फाल्गुन कृ. 13 (दिनाँक 7-3-1997) को पूर्ण किया। इस प्रथम खण्ड में छह ग्रंथ हैं और सूत्र संख्या 2375 है।

क्षुद्रकबंध– द्वितीय खण्ड

इस क्षुद्रकबंध की टीका मैंने पद्मपुरा–अतिशय क्षेत्र पर वीर नि. सं. 2523, फाल्गुन शु. प्रतिपदा को (दिनाँक 10-3-1997) को प्रारंभ करके वीर नि. सं. 2524, मार्गशीर्ष शु. 13 (दिनाँक 12-12-1997) को हस्तिनापुर में पूर्ण किया। इसमें एक ग्रंथ है, सूत्र संख्या 1594 है।

बंधस्वामित्वविचय– तृतीय खण्ड

इसकी टीका मैंने हस्तिनापुर में मार्गशीर्ष शु. 13 (दि. 12-12-1997) को प्रारंभ की। पुनः ऋषभदेव कमल मंदिर प्रीतविहार, दिल्ली में वीर नि. सं. 2525, द्वि. ज्येष्ठ शु. 5, श्रुतपंचमी के दिन दिनाँक 18-6-1999 को पूर्ण की है। इसमें एक ग्रंथ है एवं सूत्र संख्या 324 है।

वेदना खण्ड– चतुर्थ खण्ड

मैंने जयसिंहपुरा, नई दिल्ली, अग्रवाल दि. जैन मंदिर में वीर नि. सं. 2525, आश्विन शु. 15–शरत् पूर्णिमा (दिनाँक 24-10-1999) को प्रारंभ की। पुनः प्रयाग, शौरीपुर, कुण्डलपुर, पावापुरी, सम्मेदशिखर आदि तीर्थों की यात्रा व तीर्थ विकास आदि कार्यों के मध्य वीर नि. सं. 2530, मार्गशीर्ष शु. 13 (दिनाँक 6-12-2003) में राजगृही तीर्थ पर पूर्ण की है। इसमें चार ग्रंथ हैं एवं सूत्र संख्या 1525 है।

वर्गणा खण्ड– पंचम खण्ड

इस ग्रंथ की टीका को मैंने वीर नि. सं. 2530, पौष कृ. 11 (दि. 19-12-2003) को कुण्डलपुर (जि.-नालंदा) में प्रारंभ किया। पुनः पावापुरी, वाराणसी, अयोध्या, अहिच्छत्र आदि यात्रा करते हुए हस्तिनापुर आकर वीर नि. सं. 2533, वैशाख कृ. 2 (दिनाँक 4-4-2007) में भगवान पार्श्वनाथ के गर्भकल्याणक के पवित्र दिन एवं अपनी आर्यिका दीक्षा तिथि के दिन पूर्ण किया है। इसमें चार ग्रंथ हैं एवं सूत्र संख्या 1023 है।

वर्तमान में 'धवला' नाम से प्रसिद्ध इन षट्खण्डागम के पाँच खण्डों में हिन्दी अनुवाद सहित 16 पुस्तकें प्रकाशित हैं। मैंने भी इन्हें 16 पुस्तकों में विभक्त किया है। इन ग्रंथों में कुल सूत्र 6841 हैं। मेरे द्वारा लिखित पेज 3115 हैं।

त्रित्रिपंचद्विवीराब्दे, वैशाखे द्वितयेऽसिते।
हस्तिनागपुरे तीर्थे, टीकेयं परिपूर्यते।।7।।
श्रीशान्तिनाथतीर्थेशं, नत्वात्यन्तिकशान्तये।
वन्द्यन्ते सर्वसिद्धाश्चा-प्यन्ते शुद्धात्मसिद्धये।।10।।

इस टीका के प्रारंभ में मैंने सिद्धों की वंदना करके भगवान शांतिनाथ को हृदय में विराजमान किया था। पुनः टीका के समापन में भगवान शांतिनाथ को नमस्कार करके अनंत सिद्धों की वंदना की है।

इस ग्रंथ की पूर्णता के बाद वीर नि. सं. 2533, वैशाख शु. 11 से पूर्णिमा तक बृहत् स्तर पर तेरहद्वीप जिनालय के जिनबिम्बों की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के मध्य वैशाख शुक्ला 14, दिनाँक 1-5-2007 को 'षट्खण्डागम श्रुत महोत्सव'' मनाकर इन सोलहों ग्रंथों की सभी भक्तों ने पूजा की है।

श्री ऋषभदेव चरितम्

इन्हीं 11 वर्षों के मध्य वी.नि.सं. 2524, मार्गशीर्ष शु. 12 (11-12-1997) को हस्तिनापुर में 'श्रीऋषभदेवचरित' को संस्कृत में लिखना प्रारंभ किया एवं वी.नि.सं. 2526, शरद्पूर्णिमा (24-10-1999) को जयसिंहपुरा, नई दिल्ली में पूर्ण किया।

विश्वशांति महावीर विधान

भगवान महावीर के 2600वें जन्मकल्याणक महोत्सव के अवसर पर वी. नि.सं. 2526 को कार्तिक कृ. अमावस्या को मैंने प्रीतविहार, दिल्ली में ''विश्वशांति महावीर विधान'' लिखना प्रारंभ किया। पुनः प्रयाग की ओर मंगल विहार करके मार्ग में ही लिखते हुए 2600 मंत्रों सहित इस विधान को प्रयाग (इलाहाबाद) पहुँचकर उसी दिन वी. नि. सं. 2527, पौष शु. 6, दिनाँक 1-1-2001 को मात्र 66 दिन में पूर्ण किया है।

इस प्रकार षट्खण्डागम टीका लेखन के मध्य ये दो और महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गये हैं।

अष्टादशमहाभाषा, लघुसप्तशतान्विता।
द्वादशांगमयी देवी, सा चित्ताब्जेऽवतार्यते।।

तीर्थयात्रा के मध्य टीका लेखन

(27 नवम्बर 1995 से 4 अप्रैल 2007 तक)

हस्तिनापुर तीर्थ पर जम्बूद्वीप महामहोत्सव के समय शरद्पूर्णिमा 1995 को षट्खण्डागम ग्रंथ की संस्कृत टीका प्रारंभ कर मांगीतुंगी तीर्थ पर स्थित आर्यिकारत्न श्री श्रेयांसमती माताजी की अत्यधिक प्रेरणा एवं क्षेत्र के कार्यकर्ताओं के अतीव आग्रह से मगसिर शु. पंचमी, (27 नम्बर 1995) को हस्तिनापुर से मांगीतुंगी की ओर मैंने मंगल विहार किया।

मार्ग में अनेक तीर्थ वंदना, धर्मप्रभावना करते हुए वैशाख शु. 9, शनिवार (27 अप्रैल 1996) को मांगीतुंगी क्षेत्र पर मेरा मंगल प्रवेश हुआ।

ज्येष्ठ शु. 2 से षष्ठी, (दिनाँक 19 मई से 23 मई) तक मुनि श्री रयणसागरजी महाराज ससंघ, आर्यिका श्री श्रेयांसमती माताजी ससंघ एवं मेरे ससंघ सानिध्य में 20 फुट उत्तुंग भगवान श्री मुनिसुव्रतनाथ, चौबीस तीर्थंकर प्रतिमा, सहस्रकूट प्रतिमा आदि का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानंद सम्पन्न हुआ। वहीं 1996 के चातुर्मास के

मध्य मांगीतुंगी पर्वत पर श्री ऋषभदेव की 108 फुट उत्तुंग प्रतिमा निर्माण की मैंने घोषणा की।

वहाँ से कार्तिक शु. पंचमी, (15 नवम्बर 1996) को मंगल विहार कर अहमदाबाद, उदयपुर आदि होते हुए चैत्र कृ. 6 (30 मार्च 1997) को मेरा दिल्ली में आगमन हुआ। यहाँ भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष घोषित करके मैंने 1997 के चातुर्मास में चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान आदि अनेक धर्मानुष्ठान सम्पन्न कराए हैं।

पुनः कार्तिक शु. 5, (5 नवम्बर) को दिल्ली से विहार कर मैं हस्तिनापुर आ गई, यहाँ 1998 के चातुर्मास में कुलपति सम्मेलन आदि अनेक कार्यक्रम हुए हैं।

अनंतर दिल्ली आकर सन् 1999 का चातुर्मास कनाट प्लेस, नई दिल्ली एवं सन् 2000 का चातुर्मास प्रीतविहार-दिल्ली में हुआ है। इनके मध्य श्री ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव आदि अनेक धर्मप्रभावना के कार्य सम्पन्न हुए हैं।

पुनः दिल्ली से कार्तिक शु. 5, (1 नवम्बर सन् 2000) को भगवान ऋषभदेव दीक्षा भूमि प्रयाग की ओर विहार करके 1 जनवरी 2001 को नवतीर्थ ''तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली'' पर मैं पहुँची। वहाँ नव तीर्थ निर्माण, प्रतिष्ठा, महाकुंभ मस्तकाभिषेक आदि कार्यक्रम व कौशाम्बी-प्रभासगिरी में पंचकल्याणक सम्पन्न हुए।

वहाँ से पुनरपि विहार कर दिल्ली आकर मेरे सानिध्य में 2001 के चातुर्मास में भगवान महावीर स्वामी के छब्बीस- सौवें जन्मकल्याणक महोत्सव के अन्तर्गत ''छब्बीस विश्व शांति महावीर विधान'' आदि अनुष्ठान हुए हैं।

अनंतर माघ शु. 8 (20 फरवरी 2002) को दिल्ली से भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (जि.-नालंदा) की ओर मेरा मंगल विहार हुआ। मध्य में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग में 2002 का चातुर्मास करके कार्तिक शु. 6, (10 नवम्बर) को वहाँ से विहारकर वाराणसी, आरा, पटना होते हुए पौष कृ. 10, रविवार (29 दिसम्बर 2002) को कुण्डलपुर पहुँची, वहाँ पर ''नंद्यावर्त महल'' नवतीर्थ का निर्माण एवं विशाल पंचकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हुआ।

पुनः पावापुरी, राजगृही, सम्मेदशिखर आदि की यात्रा करके 2003 व 2004 के चातुर्मास कुण्डलपुर में सम्पन्न किये।

तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी (भेलूपुर) में भगवान पार्श्वनाथ के 2881वें जन्मजयंती महोत्सव वर्ष का उद्घाटन कराकर सारनाथ (सिंहपुरी) में भगवान श्रेयांसनाथ का पंचकल्याणक, अयोध्या में प्रभु ऋषभदेव का महामस्तकाभिषेक, टिकैतनगर (जि.-बाराबंकी, उ.प्र.) में पंचकल्याणक, अहिच्छत्र तीर्थ के दर्शन, महाभिषेक आदि धर्मप्रभावना के साथ-साथ ज्येष्ठ कृ. दूज, 25 मई 2005 को हस्तिनापुर तीर्थ पर मैंने मंगल प्रवेश किया है।

यहाँ ईस्वी सन् 2005 एवं 2006 के चातुर्मास में अनेक धर्मप्रभावना के कार्य सम्पन्न हुए हैं। इस मध्य संस्कृत टीका लेखन करते हुए सन् 2007 में वैशाख कृ. द्वितीया (4 अप्रैल 2007) को टीका पूर्ण करके अपने जीवन में आध्यात्मिक कलशारोहण किया एवं वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को तेरहद्वीप जिनालय के जिनबिम्बों की राष्ट्रीय स्तर पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पूर्ण होकर जिनालय के शिखर पर स्वर्णिम कलशारोहण, ऐसे दो कलशारोहण हुए हैं।

तीर्थयात्रा के मध्य विभिन्न तीर्थ दर्शन एवं अनेक महोत्सवों का संक्षेप में विवरण

27 नवम्बर 1995 से 25 मई 2005 तक यात्रा के मध्य 1. उत्तरप्रदेश, 2. दिल्ली, 3. हरियाणा, 4. राजस्थान, 5. मध्यप्रदेश, 6. महाराष्ट्र, 7. गुजरात से वापसी दिल्ली-हस्तिनापुर आकर पुनश्च प्रयाग-

इलाहाबाद जाकर वापस आकर दिल्ली से पुनः 8. बिहार प्रदेश और 9. झारखण्ड ऐसे नव प्रदेशों के विहार–भ्रमण में लगभग दस हजार किलोमीटर की यात्रा हुई है।

सिद्धक्षेत्र की यात्रा

इस मध्य 1. सिद्धवरकूट, 2. ऊन (पावागिरी), 3. मांगीतुंगी, 4. पावागढ़, 5. तारंगा, 6. मथुरा, 7. गुलजारबाग (पटना), 8. पावापुरी, 9. राजगृही, 10. गुणावां, 11. सम्मेदशिखर ऐसे 11 सिद्धक्षेत्रों की वंदना हुई है। शिखरजी में चोपड़ाकुण्ड पर बैठकर भी मैंने टीका लिखी है।

तीर्थंकर जन्मभूमि यात्रा

ऐसे ही 1. कौशाम्बी, 2. कंपिलाजी, 3. शौरीपुर, 4. वाराणसी, 5. सिंहपुर (सारनाथ), 6. चन्द्रपुरी, 7. कुण्डलपुरी, 8. राजगृही, 9. अयोध्या, 10. रत्नपुरी (रौनाही) और 11. हस्तिनापुर ऐसे 11 जन्मभूमियों की वंदनाएँ की हैं।

प्रयाग–दीक्षा भूमि, केवलज्ञानभूमि तथा अहिच्छत्र–केवलज्ञान भूमि के दर्शन किए हैं।

इन तीर्थों पर बैठकर टीका लिखते हुए मुझे ऐसा लगता था कि मानो भगवान की वाणी के कुछ अमृत-कण ही इसमें आ रहे हैं। उन क्षणों में मुझे एक अद्‌भुत आनंद का अनुभव होता था। वास्तव में भगवन्तों की (शौरीपुर, कुण्डलपुर छोड़कर) सभी जन्मभूमियों में उनके केवलज्ञान कल्याणक में समवसरण की रचना हुई है और भगवान की दिव्यध्वनि से असंख्य जीवों ने धर्मामृत का पान किया है। उन तीर्थों की वंदना और वहाँ-वहाँ बैठकर टीका लेखन एक सुखद संयोग ही रहा है। इसी प्रकार दिल्ली, जयपुर, इंदौर, अहमदाबाद, उदयपुर, मेरठ आदि शहरों में अनेक प्रभावना के कार्यक्रम हुए हैं।

अतिशय क्षेत्र दर्शन

1. तिजारा, 2. पद्मपुरी, 3. महावीरजी, 4. केशवरायपाटन, 5. चांदखेड़ी, 6. चमत्कारजी (सवाईमाधोपुर), 7. जयपुर-खानिया में चूलगिरि, 8. अंकलेश्वर (गुजरात), 9. महुआ, 10. अणिंदा पार्श्वनाथ, 11. त्रिलोकपुर (जिला-बाराबंकी, उ.प्र.)आदि अतिशय क्षेत्रों के दर्शन किए है।

बृहत् पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

सन् 1996 में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र, सन् 1997 में प्रीतविहार, दिल्ली, सन् 1998 में कमलानगर-मेरठ (उ.प्र.), सन् 2000 में लालकिला मैदान-दिल्ली एवं सतघरा मंदिर-दिल्ली, सन् 2001 में प्रयाग-इलाहाबाद एवं प्रभासगिरी (कौशाम्बी) में, सन् 2003 में कुण्डलपुर (जिला-नालंदा), पावापुरी एवं राजगृही, सन् 2005 में सारनाथ (सिंहपुरी, काशी), सन् 2005 में ही टिकैतनगर (जिला बाराबंकी-उ.प्र.), पुनः सन् 2007 में हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर तेरहद्वीप जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा ऐसी 14 प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न हुई हैं। इसी मध्य लघु पंचकल्याणक अनेक हुए हैं।

चौबीस कल्पद्रुम महामंडल विधान का अनुष्ठान

अक्टूबर 1997 में दिल्ली में रिंग रोड पर विशाल पांडाल में एक साथ चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल बनाये गये। 3000 से अधिक श्रावक-श्राविकाओं ने केशरिया परिधान में पूजन विधान का अनुष्ठान किया।

समय-समय पर तीन लोक, जम्बूद्वीप, इन्द्रध्वज, सिद्धचक्र, सर्वतोभद्र, कल्पद्रुम आदि अनेक विधान आदि होते रहे हैं तथा शांतिविधान, गणधरवलय विधान आदि सहस्रों लघु विधान हुए हैं।

भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार

सन् 1998 में भारत की राजधानी दिल्ली से ''भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार'' का प्रवर्तन भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के करकमलों से हुआ। जिसका सारे भारत में भ्रमण होकर यह समवसरण ''तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली'' प्रयाग जैन तीर्थ पर स्थापित किया गया है। सन् 2003 में कुण्डलपुर से भगवान महावीर ज्योति रथ का भ्रमण कराया गया है।

भगवान ऋषभदेव कुलपति सम्मेलन

अक्टूबर 1998 में हस्तिनापुर में ''भगवान ऋषभदेव कुलपति सम्मेलन'' हुआ। इसमें भारत के विश्वविद्यालयों के कुलपति महोदयों ने आकर जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के गुणगान किये। पचास से अधिक प्रोफेसर, विद्वत्गण आदि आये।

वैशाख में मेरी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती के समय सन् 2006 में जम्बूद्वीप स्थल पर ''भट्टारक सम्मेलन'' सम्पन्न हुआ है। वाराणसी, फैजाबाद (अयोध्या), मेरठ आदि में विश्वविद्यालयों में प्रवचन एवं अनेक शहरों में, जेल में भी प्रवचन आदि हुए हैं। समय-समय पर अनेक विद्वानों की संगोष्ठी, शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर आदि हुए हैं।

अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव

4 फरवरी 2000 में दिल्ली में ''भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव'' मनाया गया। इसमें अष्टापद-कैलाशपर्वत की रचना करके 1008 निर्वाणलाडू चढ़ाये गये एवं त्रिकाल चौबीसी के 72 रत्नों के जिनबिम्बों की एवं श्री ऋषभदेव की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

इस निर्वाण महोत्सव का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने किया है।

कैलाश मानसरोवर यात्रा

अक्टूबर 2000 में वर्षायोग के मध्य प्रीतविहार-दिल्ली की जैन समाज ने विशाल कैलाश मानसरोवर पर्वत बनवाकर त्रिकाल चौबीसी भगवन्तों को विराजमान कराया, लाखों भक्तों ने कैलाश मानसरोवर यात्रा करके भगवान ऋषभदेव का जयघोष किया है।

महाकुंभ मस्तकाभिषेक महोत्सव

सन 2001 में प्रयाग-इलाहाबाद में भगवान ऋषभदेव का 1008 कुंभों से महाकुंभ मस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न हुआ है। प्रयाग में महाकुंभनगर में विश्व हिन्दू परिषद द्वारा आयोजित ''नवम संसद'' में श्री रामचंद्र की जन्मभूमि अयोध्या के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर मेरे द्वारा प्रवचन हुए। पुनश्च कुंडलपुर, अयोध्या, हस्तिनापुर में भी महाकुंभ मस्तकाभिषेक हुए हैं।

विश्वशान्ति महावीर विधानानुष्ठान

सन् 2001 में दिल्ली में फिरोजशाह कोटला मैदान में विशाल पांडाल में एक साथ 26 मंडल विधान बनाये गए। प्रत्येक मंडल पर 2600 मंत्रपूर्वक रत्न चढ़ाये गये। यह विशाल पूजानुष्ठान भगवान महावीर स्वामी के छब्बीस सौवें जन्मकल्याणक महोत्सव के उपलक्ष्य में कराया गया है। इसमें सम्पूर्ण विश्व की शांति की कामना की गई।

महामहोत्सव

सन् 1996 में गोम्मटगिरि तीर्थ का दशाब्दी महोत्सव मनाया गया। सन् 2001 में प्रयाग-महाकुंभ नगर में श्री ऋषभदेव पांडाल में भगवान ऋषभदेव का निर्वाणलाडू चढ़ाकर निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया। सन् 2005 में भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी भेलूपुर में पौष कृ.11 को भगवान

पार्श्वनाथ का 2881 वां जन्मकल्याणक महोत्सव का उद्घाटन किया गया। यह महोत्सव तीन वर्ष तक दिल्ली आदि सारे भारत में मनाया गया पुनः सन् 2008 में अहिच्छत्र में इसका समापन किया गया।

2005 अक्टूबर में हस्तिनापुर में चतुर्थ जंबूद्वीप महामहोत्सव, 2006 में वैशाख कृष्णा दूज को मेरा (गणिनी ज्ञानमती माता जी का) आर्यिका दीक्षा स्वर्णजयंती महोत्सव आदि कार्यक्रम विशाल स्तर पर संपन्न हुए हैं।

नवतीर्थ निर्माण

इस मध्य मांगीतुंगी में सहस्रकूट कमल मंदिर, 108 फुट उत्तुंग श्री ऋषभदेव प्रतिमा निर्माण घोषणा, दिल्ली में प्रीतविहार में कमल मंदिर, मेरठ में कमलों पर 24 तीर्थंकर, 20 तीर्थंकर, प्रयाग में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली नवतीर्थ निर्माण, कुण्डलपुर में नंद्यावर्त महल नवतीर्थ निर्माण, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, अहिच्छत्र में 72-72 पांखुड़ियों के दस कमलों पर तीस चौबीसी प्रतिमा विराजमान, खेरवाड़ा में (केशरिया जी के निकट) कैलाश पर्वत की रचना, सम्मेदशिखर, पावापुरी, गुणावां, राजगृही में नवमंदिर निर्माण व मानस्तंभ निर्माण, पिड़ावा (राजस्थान) में समवसरण रचना, माधोराजपुरा (राज.) आर्यिका दीक्षा भूमि में नूतन तीर्थ रचना आदि अनेक भव्य निर्माण भी सम्पन्न हुए हैं।

राजनेता आदि के आगमन

इस मध्य प्रतिष्ठा महोत्सव, महायज्ञविधानानुष्ठान आदि कार्यक्रमों में अनेक राजनेता आये हैं। दिल्ली में 1997 में भारत गणतंत्र शासन के पूर्व राष्ट्रपति श्री शंकरदयाल शर्मा, पावापुरी (बिहार प्रांत) में मई 2003 में महामहिम राष्ट्रपति श्री ए.पी.जे. अब्दुलकलाम, दिल्ली में सन् 1998 में एवं 2000 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी, अहमदाबाद में गुजरात के राज्यपाल श्री कृष्णपाल सिंह, प्रयाग में राज्यपाल आचार्य श्री विष्णुकांत जी शास्त्री, कुण्डलपुर (जिला-नालंदा) में राज्यपाल श्री विनोदचंद पाण्डेय एवं श्री एम.रामा जोयिस आए हैं। मांगीतुंगी में 1996 में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री मनोहर जोशी, अहमदाबाद में 1997 में गुजरात के मुख्यमंत्री श्री शंकरसिंह वाघेला, दिल्ली में 1997 में दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंहवर्मा, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह, सन् 2000 में मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित, टिकैतनगर (जि.-बाराबंकी) उ.प्र. में उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह यादव आये हैं। इसी प्रकार समय-समय पर रेलमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्री आदि अनेक नेतागण भी आते रहे हैं।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री श्यामल कुमार सेन, न्यायमूर्ति श्री सुधीर नारायण, न्यायमूर्ति श्री एम.सी. जैन (इलाहाबाद), न्यायमूर्ति श्री मिलापचंद जैन (लोकायुक्त-राजस्थान) आदि आये हैं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. श्री पी.रामचंद्रराव, राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय–फैजाबाद के कुलपति डॉ. एस.वी. सिंह, दिल्ली के लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ के कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय आदि भी समय-समय पर आकर धर्मचर्चा करते हुए लाभान्वित हुए हैं।

सन् 1998 में कुलपति सम्मेलन में बाईस कुलपति आये हैं एवं अनेक प्रोफेसर, विद्वद्गण आये हैं।

इसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष-विश्वहिन्दू परिषद–श्रीयुत अशोक सिंघल, सांसद एवं विधिवेत्ता श्री एल.एम. सिंघवी, वित्त राज्यमंत्री श्री वी. धनंजय कुमार जैन, श्री वीरेन्द्र हेगड़े, श्री कल्लप्पा आवाड़े, साहू श्री अशोक कुमार जैन, श्री देवकुमार सिंह कासलीवाल आदि महानुभाव आकर धर्मप्रभावना में भाग लेकर प्रसन्न हुए हैं।

यात्रा के मध्य विहार आदि व्यवस्था

इस यात्रा में प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी एवं जम्बूद्वीप के प्रथम पीठाधीश समाधिस्थ क्षुल्लकरत्न मोतीसागर महाराज ने आगे-आगे के मार्ग का निर्धारण व सर्वत्र सभा संचालन आदि कार्य

व्यवस्था को संभाला है, साथ ही पदविहार का कठिन श्रम किया है। कर्मयोगी ब्रह्मचारी रवीन्द्र कुमार जैन (जम्बूद्वीप के वर्तमान पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी) का तीर्थ निर्माण, विकास, जीर्णोद्धार तथा महामहोत्सव आदि कराने में अथक परिश्रम रहा है।

संघस्थ ब्रह्मचारिणी कु. बीना आदि ब्रह्मचारिणी बहनों ने संघ के आहार-विहार आदि व्यवस्था का संचालन पूर्ण भक्ति एवं कुशलता से किया है तथा प्रत्येक महोत्सव आदि कार्यों में सहयोग किया है। समय-समय पर इन सभी शिष्यों की अनुकूलता से ही मेरा लेखनकार्य निराबाध चलता रहा है। इन सबको रत्नत्रयवृद्धि के लिए मेरा बहुत-बहुत मंगल आशीर्वाद है।

श्री महावीर प्रसाद जैन, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कुसुमलता जैन–बंगाली स्वीट-दिल्ली, संघभक्त शिरोमणि (संघपति) का संघ विहार एवं प्रत्येक निर्माण आदि में महत्वपूर्ण योगदान इनके साथ ही स्व. प्रेमचंद जैन-श्रीमती निर्मला जैन, खारीबावली-दिल्ली एवं आनंद कुमार जैन, जैन मार्बल, मेरठ का योगदान, इन-इनके अतिशय पुण्य संपादन के लिए ही हुआ है। पुनश्च तीर्थ निर्माण आदि में भारत की संपूर्ण दिगम्बर जैन समाज के भक्तों की अर्थाञ्जलि ने भी अनेक तीर्थों को अतिशायी रूप प्रदान किया है। इन सभी के लिए मेरा बहुत-बहुत शुभाशीर्वाद है।

इस प्रकार अक्टूबर 1995 से अप्रैल 2007 तक 9 प्रदेशों के भ्रमण में दश हजार किमी. की यात्रा के मध्य अनेक तीर्थों की यात्रा, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, विधानानुष्ठान आदि सभी महामहोत्सवों में मेरी प्रेरणा एवं मेरा ससंघ सानिध्य रहते हुए भी मेरा संस्कृत टीका का लेखनकार्य निर्विघ्नतया होता रहा है।

जिनेन्द्र भक्ति का आश्चर्यकारी प्रभाव

इसमें मुझे स्वयं ही आश्चर्य प्रतीत होता है अथवा जिनेन्द्रदेव की भक्ति, परोक्ष से भी गुरुवर्य का वरदहस्त एवं जिनवाणी माता सरस्वती की महती अनुकंपा ही मेरी सिद्धान्तचिंतामणिटीका लेखन में वरदान बनी है, ऐसा मैं मानती हूँ।

इस टीका लेखन में षट्खण्डागम के पाँच खण्डों का स्वाध्याय, चिंतन, मनन करते हुए मन से–मानस मतिज्ञान व दिव्यश्रुतज्ञान से तीनों लोकों की यात्रा करते हुए मैंने मन से कभी सुमेरुपर्वत पर जाकर, कभी भगवान के समवसरण में बैठकर अपनी चिच्चैतन्य स्वरूप आत्मा का चिंतन करते हुए असीम–अनवधि आनंद अनुभव प्राप्त किया है। ऐसे केवलज्ञान के लिए बीजस्वरूप श्रुतज्ञान को मेरा अनंत-अनंत नमस्कार होवे।

अनंतानंत तीर्थंकर परम्परा में वर्तमान में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के शासन में मूलसंघ में श्री कुंदकुंदाम्नाय में बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागरजी महामुनिराज, उनके प्रथम शिष्य व प्रथम पट्टाधीश, महाव्रत के प्रदाता दीक्षागुरु श्री वीरसागराचार्य महामुनिराज को मेरा कोटि-कोटि नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

–इन्द्रवज्रा छंदः –

सिद्धान्त चिन्तामणिनामधेया, सिद्धान्तबोधामृतदानदक्षा।
टीका भवेत्स्वात्मपरात्मनोर्हि, कैवल्यलब्ध्यै खलु बीजभूता।।1।।

धवला टीका एवं सिद्धान्तचिंतामणि टीका के ग्रंथों में अंतर

धवला टीका (प्रथम खण्ड)	सिद्धान्तचिंतामणि टीका (प्रथम खण्ड)
पुस्तक 1 – सत्प्ररूपणा सूत्र - 177	पुस्तक 1 – सत्प्ररूपणा सूत्र - 177, पृ. 164 प्रारंभ – आश्विन शु. 15, शरदपूर्णिमा, वी.नि.सं. 2521 दिनाँक-8-10-1995, प्रातः 11.25 समापन – फाल्गुन शु.7, वी.नि.सं. 2522, पिड़ावा (राज.) दिनाँक-25-2-1996
पुस्तक 2 – आलाप अधिकार (सूत्र नहीं है)	पुस्तक 2 – आलाप अधिकार (सूत्र नहीं है), पृ. 90 प्रारंभ – चैत्र कृ.1, वी.नि.सं. 2522, उज्जैन-जयसिंहपुरा मंदिर में, दिनाँक-6-3-1996 समापन – माघ शु. 5, वी.नि.सं. 2525, हस्तिनापुर, दिनाँक-22-1-1999
पुस्तक 3 – द्रव्यप्रमाणानुगम सूत्र - 192	पुस्तक 3 – द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम सूत्र - 284 (192+92=284), पृ. 131 प्रारंभ – वैशाख शु. 12, वी.नि.सं. 2522, मांगीतुंगी, दिनाँक-30-4-1996 समापन – श्रावण कृ. 10, वी.नि.सं. 2522, मांगीतुंगी, दिनाँक-8-8-1996
पुस्तक 4 – क्षेत्र-स्पर्शन-कालानुगम सूत्र - 619	पुस्तक 4 – स्पर्शनानुगम-कालानुगम सूत्र - 527 (185+342=527), पृ. 190 प्रारंभ – श्रावण कृ. 10, वी.नि.सं. 2522, मांगीतुंगी, दिनाँक-8-8-1996 समापन – भाद्र शु. 3, वी.नि.सं. 2522, मांगीतुंगी, दिनाँक-15-9-1996

धवला टीका (प्रथम खण्ड)	सिद्धान्तचिंतामणि टीका (प्रथम खण्ड)
पुस्तक 5 – अंतरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगम सूत्र - 872	पुस्तक 5 – अंतरानुगम-भावानुगम-अल्प-बहुत्वानुगम सूत्र - 872, पृ. 193 प्रारंभ – भाद्रपद शु. 3, वी.नि.सं. 2522, मांगीतुंगी, दिनाँक-15-9-1996, अपराण्ह 5,8 बजे समापन – मार्गशीर्ष कृ. 7, वी.नि.सं. 2523, अंकलेश्वर (गुज.) दिनाँक-2-12-1996, सोमवार
पुस्तक 6 – जीवस्थान चूलिका सूत्र - 515	पुस्तक 6 – जीवस्थान चूलिका सूत्र - 515, पृ. 187 प्रारंभ – मगसिर कृ. 7, वी.नि.सं. 2523, अंकलेश्वर (गुज.) दिनाँक-2-12-1996 समापन – फाल्गुन कृ. 13, वी.नि.सं. 2523, माधोराजपुरा (राज.) दिनाँक-7-3-1996
(द्वितीय खण्ड) पुस्तक 7 – क्षुद्रकबंध सूत्र - 1594	(द्वितीय खण्ड) पुस्तक 7 – क्षुद्रकबंध सूत्र - 1594, पृ. 285 प्रारंभ – फाल्गुन शु. 1, वी.नि.सं. 2523, पद्मपुरा अतिशय क्षेत्र दिनाँक-10-3-1997 समापन – मार्गशीर्ष शु. 13, वी.नि.सं. 2524, हस्तिनापुर, दिनाँक-12-12-1997
(तृतीय खण्ड) पुस्तक 8 – बंधस्वामित्वविचय सूत्र - 324	(तृतीय खण्ड) पुस्तक 8 – बंधस्वामित्व विचय सूत्र - 324, पृ. 230 प्रारंभ – मार्गशीर्ष शु. 13, वी.नि.सं. 2524, हस्तिनापुर दिनाँक-12-12-1997 समापन – द्वि. ज्येष्ठ शु. 5, श्रुतपंचमी, वी.नि.सं. 2525, ऋषभदेव कमल मंदिर, प्रीतविहार, दिल्ली, दिनाँक-18-6-1999

धवला टीका (चतुर्थ खण्ड)	सिद्धान्तचिंतामणि टीका (चतुर्थ खण्ड)
(चतुर्थ खण्ड)	(चतुर्थ खण्ड)
पुस्तक 9 – कृति[1] अनुयोगद्वार सूत्र - 76	पुस्तक 9 – कृति अनुयोगद्वार सूत्र - 76, पृ. 140 प्रारंभ – शरद् पूर्णिमा, वी.नि.सं. 2525, जयसिंहपुरा, नई दिल्ली दिनाँक-24-10-1999 समापन – शरद् पूर्णिमा, वी.नि.सं. 2526, ऋषभदेव कमल मंदिर, प्रीतविहार, दिल्ली,दिनाँक-13-10-2000
पुस्तक 10 – वेदना[2] निक्षेप, वेदनानय, वेदनानाम, वेदना द्रव्यविधान सूत्र 213+11=224	पुस्तक 10 – वेदनानिक्षेप, वेदनानय, वेदनानाम, वेदना द्रव्यविधान, वेदनाक्षेत्र सूत्र - 323 (पृष्ठ 120) प्रारंभ – आश्विन शु.15, कमल मंदिर, प्रीतविहार, दिल्ली दिनाँक-13-10-2000 समापन – वैशाख कृ. 7, वी.नि.सं. 2528, शौरीपुर-बटेश्वर, दि.-3-5-2002
पुस्तक 11 – वेदनाक्षेत्र, वेदना काल सूत्र - 378	पुस्तक 11 – वेदनाकाल, वेदनाभाव, तीन चूलिका सूत्र - 593, पृ. 225 प्रारंभ – वैशाख कृ. 7, वी.नि.सं. 2528, शौरीपुर-बटेश्वर, दि. -3-5-2002 समापन – श्रावण शु. 7, वी. नि. सं. 2529 दिनाँक-4-8-2003, पावापुरी (बिहार)
पुस्तक 12 – वेदनाभाव से शेष 10 भेद सूत्र - 847	पुस्तक 12 – वेदनाप्रत्यय, वेदनास्वामित्व आदि 9 भेद हैं। सूत्र - 533, पृ. 175 प्रारंभ – श्रावण कृ. 10, वी.नि.सं. 2529, कुण्डलपुर, दिनाँक-24-7-2003 समापन – मगशिर शु. 13, वी.नि.सं. 2530, राजगृही, दिनाँक-6-12-2003

धवला टीका (पंचम खण्ड)	सिद्धान्तचिंतामणि टीका (पंचम खण्ड)
(पंचम खण्ड) पुस्तक 13 – स्पर्श[3], कर्म[4], प्रकृति[5] अनुयोगद्वार सूत्र - 206	(पंचम खण्ड) पुस्तक 13 – स्पर्श[3], कर्म[4], प्रकृति[5] अनुयोगद्वार सूत्र - 206 (पृष्ठ 257) प्रारंभ – पौष कृ. 11, वी.नि.सं. 2530, कुण्डलपुर, दिनाँक 19-12-2003 समापन – द्वि. श्रावण शु. 7, वी.नि.सं. 2530 दिनाँक-22-8-2004 कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार
पुस्तक 14 – बंधन[6] अनुयोगद्वार सूत्र - 797	पुस्तक 14 – बंधन[6] अनुयोगद्वार। सूत्र - 797 (पृष्ठ 351) प्रारंभ – आश्विन शु. 15, वी.नि.सं. 2530, कुण्डलपुर, दिनाँक-28-10-2004 समापन – फाल्गुन कृ. 11, वी.नि.सं. 2532, हस्तिनापुर, दिनाँक-24-2-2006
पुस्तक 15 – निबंधन[7], प्रक्रम[8], उपक्रम[9], उदय[10] अनुयोगद्वार सूत्र - 20	पुस्तक 15 – निबंधन[7], प्रक्रम[8], उपक्रम[9], उदय[10], मोक्ष[11] अनुयोगद्वार। निबंधन के 20 सूत्र, पृ. 195 प्रारंभ – फाल्गुन कृ. 11, वी.नि.सं. 2532, हस्तिनापुर, दिनाँक-24-2-2006 समापन – आश्विन शु. 15-शरद् पूर्णिमा वी.नि.सं. 2532, हस्तिनापुर, दिनाँक-6-10-2006
पुस्तक 16 – मोक्ष[11], संक्रम[12], लेश्या[13], लेश्या-कर्म[14], लेश्यापरिणाम[15], साता-सात[16], दीर्घ-ह्रस्व[17], भवधारणीय[18], पुद्गलात्त[19], निधत्तानिधत्त[20], निका-चितानिकाचित[21], कर्मस्थिति[22], पश्चिम-स्कंध[23], अल्पबहुत्व[24]। इस प्रकार 16वीं पुस्तक में मोक्ष से लेकर अल्पबहुत्व तक 14 अनुयोगद्वार हैं। इसमें सूत्र नहीं हैं तथा कृति, वेदना, स्पर्श आदि से लेकर अल्पबहुत्व तक 24 अनुयोगद्वार हैं। ये सभी अनुयोगद्वार पुस्तक 9वीं से 16वीं तक विभक्त हैं।	पुस्तक 16 – संक्रम[12] से लेकर अल्पबहुत्व[24] तक 13 अनुयोगद्वार हैं। (सूत्र नहीं है) कुल पेज 225 हैं। प्रारंभ – कार्तिक शु. 1, वी.नि.सं. 2533, हस्तिनापुर, दिनाँक-23-10-2006 समापन – वैशाख कृ. 2, वी.नि.सं. 2533, हस्तिनापुर, दिनाँक-4-4-2007

षट्खण्डागम के सूत्रों की संख्या-

प्रथम खण्ड - 2375, द्वितीय खण्ड - 1594, तृतीय खण्ड - 324, चतुर्थ खण्ड - 1525, पंचम खण्ड - 1023।

कुल सूत्र - 6841

जैनशासन के महान ग्रंथ-षट्खण्डागम पर सिद्धान्त चिन्तामणि टीका-एक महान कृति

-आर्यिका सुव्रतमती

वन्दन बारम्बार है
षट्खण्डागम ग्रंथराज को, वन्दन बारम्बार है।
श्री सिद्धान्त सुचिन्तामणि, टीका जिसमें साकार है। षट्खण्डागम.....

बीसवीं सदी में मुनि परम्परा को जीवन्त करने वाले युगप्रवर्तक चारित्र चक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज हुए हैं, जिन्होंने षट्खण्डागम के सूत्र ग्रंथों को ताड़पत्र से ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करवाकर और विद्वानों से उसका अनुवाद कराकर और ग्रंथ के रूप में प्रकाशन कराकर एक महान कार्य किया है। इन्हीं के पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज भी महान तपस्वी, ज्ञानी और ध्यानी थे।

वर्तमान में चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज का 3 बार दर्शन करने वाली, उनसे अनुभव ज्ञान प्राप्त करने वाली, चारित्र चूड़ामणी आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के कर-कमलों से आर्यिका दीक्षा को प्राप्त करने वाली युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका राष्ट्रगौरव, डबल डी. लिट् की मानद उपाधि से अलंकृत, 400 ग्रंथों की लेखिका, सिद्धान्त चक्रेश्वरी की उपाधि से विभूषित परम पूज्य आर्यिका शिरोमणि गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने जैनशासन के महान ग्रंथ षट्खंडागम सूत्र ग्रंथ पर धवला टीका का आधार लेकर 'सिद्धान्तचिन्तामणि' नाम से संस्कृत टीका लिखकर एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

8 अक्टूबर, 1995 से टीका का कार्य प्रारम्भ करके 4 अप्रैल 2007 को 3100 पृष्ठों में 16 पुस्तकों की संस्कृत टीका लिखकर जैन समाज को एक अमूल्य कृति प्रदान की है। सन् 2011 में शरदपूर्णिमा के दिन सोलहों पुस्तकों का प्रकाशन, विमोचन हो चुका है।

गुरु के पद चिह्नों पर चलने वाला शिष्य, उनकी आज्ञा का पालन करने वाला शिष्य एक दिन अवश्य ही उच्च पद को प्राप्त करता है। इस उक्ति को चरितार्थ करने वाली पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने अपनी प्रखर बुद्धि के द्वारा षट्खण्डागम की 'सिद्धान्तचिन्तामणि' टीका का हिन्दी अनुवाद किया है। अब तक 13 पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद कर चुकी हैं जिनमें से यह पुस्तक नं. 11 का हिन्दी टीका सहित प्रकाशन हो रहा है।

पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी का अभी श्रावण शुक्ला ग्यारस 17 अगस्त 2013 को रजत दीक्षा दिवस मनाया गया जिसमें पूज्य माताजी को 'प्रज्ञा पुञ्ज' विनयांजलि ग्रंथ समर्पित किया गया। पूज्य चंदनामती माताजी ने भी अब तक 150 से अधिक ग्रंथों का लेखन, सम्पादन, अनुवाद आदि कार्य किया है। भजन, पूजन, चालीसा, समयसार की गाथाओं का पद्यानुवाद, तीर्थंकरजन्मभूमि विधान, मनोकामनासिद्धि विधान, कल्याणमंदिर विधान आदि एवं संस्कृत, अंग्रेजी भाषा में भी भजन, पूजन आदि रचनाएँ की हैं। पारस चैनल, इंटरनेट आदि के

माध्यम से ज्ञान का प्रचार प्रसार कर रही हैं।

वर्तमान में इन्साइक्लोपीडिया के माध्यम से विश्व में जैनधर्म का, जिनागम–जिनवाणी के प्रचार–प्रसार का विशेष कार्य कर रही हैं। शास्त्री, विद्यावाचस्पति, प्रज्ञाश्रमणी, पीएच. डी. की मानद उपाधि से अलंकृत आप मधुरता, सरलता, मृदुता, शीतलता, कर्मठता, दृढ़ता, सहिष्णुता, वाणी में ओज, कवित्व प्रतिभा आदि गुणों से परिपूर्ण हैं। आपने भगवन्तों की, तीर्थों की, गुरु की भक्ति करते हुए सैंकड़ों भजनों के माध्यम से सभी भक्तों को भक्तिरस में अवगाहन करने का अवसर प्रदान किया है।

यह 'सिद्धान्तचिन्तामणि' टीका वर्तमान में कलियुग की अनुपम देन है। जैन समाज के लिए एक अद्भुत कृति है। चहुँमुखी विकास करने वाली, जैन भूगोल को धरती पर साकार करने वाली पूज्य माताजी के गुणों का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाना है। प्रूफ रीडिंग के माध्यम से षट्खण्डागम पुस्तक 11 का स्वाध्याय करके हृदय में अपार हर्ष एवं आह्लाद का अनुभव हुआ है। यह षट्खण्डागम ग्रंथ मेरे जीवन में एक दिन श्रुतज्ञान को, केवलज्ञान को प्राप्त कराने में सहायक हो। गुरु की अनुकम्पा, आशीर्वाद, छत्रछाया सदा प्राप्त होती रहे एवं उनके गुण मुझमें विकसित हों, यही मंगल भावना भाते हुए पूज्य माताजी के दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करते हुए पूज्य माताजी के पावन चरणों में कोटि–कोटि नमन करती हूँ—

गणिनी माता ज्ञानमती माँ के चरणों में वन्दन है।
जिनकी त्याग तपस्या लख, पावन हो जाता मन है।।
माँ का आशीष मिले सदा, यही कामना है मेरी।
संयम चारित्र में बढ़ूँ सदा, यही भावना है मेरी।।

दो शब्द

-ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

सरस्वति ! नमस्तुभ्यं, वरदे ! कामरूपिणि!
विद्यारंभं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा।।

सरस्वती माता को नमन करते हुए वर्तमान में भगवान महावीर के शासनकाल में साक्षात् सरस्वती स्वरूपा, 400 ग्रंथों की लेखिका, क्वाँरी कन्याओं की पथप्रदर्शिका, वर्तमान में सबसे प्राचीन दीक्षित, जिनागम का सार बताने वाली परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माता को नमन करती हूँ।

वर्तमान में विद्वानों के लिए यह गौरव एवं सुखद अनुभूति का विषय रहा है कि षट्खण्डागम जैसे सूत्र ग्रंथ पर 'सिद्धान्तचिन्तामणि' नामक प्रौढ़ संस्कृत टीका पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी ने लिखकर प्रदान की है। इस टीका को देख-पढ़कर विद्वानों को आश्चर्य होता है कि क्या इतने कठिन आगम ग्रंथ पर आधुनिक युग में भी संस्कृत भाषा में इतनी उत्कृष्ट टीका लिखी जा सकती है ? किन्तु इस असंभव से समझे जाने वाले कार्य को भी विदुषी माताजी ने संभव करके दिखाया है।

परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की शिष्या पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने इस टीका का हिन्दी में सरल अनुवाद करके, विशेषार्थ आदि देकर इसे और भी सरल बना दिया है। मैं अपने को परम सौभाग्यशाली मानती हूँ कि मुझे भी पूज्य माताजी के चरण सानिध्य में रहकर इन महान ग्रंथों के स्वाध्याय का लाभ मिलता रहता है तथा कभी-कभी इनकी पाण्डुलिपि लिखने का अवसर प्राप्त हो जाता है, तो मैं अपने को धन्य समझती हूँ। यद्यपि मुझे ज्यादा समझ में नहीं आता है फिर भी माताजी कहती हैं कि अभी भले ही इस ग्रंथ का स्वाध्याय समझ में न आए लेकिन आगे इसका अर्थ समझ में आएगा, क्योंकि किसी भी ग्रंथ का स्वाध्याय कभी व्यर्थ नहीं जाता।

पूज्य माताजी की वाणी जिनवाणी है। पारस चैनल के माध्यम से प्रतिदिन पूज्य माताजी का प्रवचन कई लाखों की संख्या में लोग सुनते हैं। जब वे हस्तिनापुर आते हैं तो पूज्य माताजी के दर्शन कर अपने को कृत्कृत्य मानते हुए बहुत ही आनन्दित होते हैं और कहते हैं आज हमने साक्षात् सरस्वती माता के दर्शन कर अपने जीवन को धन्य कर लिया।

प्रज्ञाश्रमणी पूज्य आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने भगवन्तों की, गुरुओं की भक्ति में सैकड़ों भजन लिखते हैं। एक भजन में पूज्य माताजी के लिए लिखा है—

शारद माता का रूप दिखाया ज्ञान का तूने अलख जगाया।
कोई साहित्य रचना न की साध्वी ने।
सैकड़ों ग्रंथ अब रच दिए मात ने।
कुन्दकुन्द का पथ दरशाया, ज्ञान का तूने अलख जगाया। शारद.....

षट्खण्डागम की इस टीका को मैं मन-वचन-काय से नमन करते हुए पूज्य माताजी से यही कामना करती हूँ कि मुझे भी इन ग्रंथों के स्वाध्याय की शक्ति और बुद्धि प्राप्त हो। मुझ जैसे अज्ञानी जन को आप अपने सम्बोधन से सदैव सन्मार्ग में लगाती रहें और हमारा मोक्षमार्ग प्रशस्त हो। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें यही जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करते हुए पूज्य माताजी द्वय के चरणों में कोटि-कोटि नमन करती हूँ।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम आचार्य
चारित्र चक्रवर्ती १०८ श्री शांतिसागर जी महाराज
संक्षिप्त परिचय

स्वस्ति श्री मूलसंघ में कुंदकुंदाम्नाय, सरस्वती गच्छ, बलात्कार गण में बीसवीं शताब्दी में प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य-चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज हुए हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है–

जन्म – आषाढ़ बदी 6, सन् 1872
निवास स्थान – भोजग्राम (जिला-बेलगाँव) कर्नाटक
नाम – सातगौंडा पाटिल
माता-पिता – माता-सत्यवती, पिता-भीमगौंडा पाटिल
क्षुल्लक दीक्षा – ज्येष्ठ शु. 13, सन् 1914
ग्राम-उत्तूर (जि. कोल्हापुर) महाराष्ट्र
दीक्षा गुरु – मुनि 108 श्री देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज
ऐलक दीक्षा – सन् 1917 गिरनार क्षेत्र, स्वयं भगवान के चरण सानिध्य में
मुनि दीक्षा – फाल्गुन शु. 14, सन् 1920
ग्राम-येरनाल (जिला-बेलगांव) कर्नाटक
दीक्षा गुरु – मुनि श्री 108 देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज
आचार्य पद – आश्विन शु. 11, सन् 1924 ग्राम-समडोली (जिला-सांगली-महाराष्ट्र)
द्वारा-चतुर्विध संघ
चारित्र चक्रवर्ती पद – सन् 1937 गजपंथा सिद्धक्षेत्र (महा.)
समाधिमरण – द्वि. भाद्रपद शु. 2, सन् 1955, कुंथलगिरि (सिद्धक्षेत्र)

आचार्य देव ने अनेक दीक्षाएँ देकर चतुर्विध संघ सहित दक्षिण से उत्तर और पूर्व से पश्चिम तक सारे भारत में मंगल विहार करके दिगम्बर जैन मुनि परंपरा को पुनरुज्जीवित किया। अनेक तीर्थों पर जिनप्रतिमाएँ स्थापित करायीं, षट्खण्डागम ग्रंथ को ताम्रपट्ट पर उत्कीर्ण कराकर जिनवाणी को स्थायित्व प्रदान किया। ऐसे बहुत से जिनधर्म प्रभावना के कार्यों से इस भूतल पर अपने यश को चिरस्थायी कर दिया।

आपने अंत में कुंथलगिरि क्षेत्र पर सल्लेखना लेकर अपने जीवनकाल में अपना आचार्यपद अपने प्रथम शिष्य मुनि श्री वीरसागर को प्रदान कर दिया था। पुनः उनकी परम्परा में द्वितीय पट्टाचार्य श्री शिवसागर मुनिराज हुए, तृतीय पट्टाचार्य श्री धर्मसागर महाराज, चतुर्थ उसके पश्चात् श्री अजितसागर महाराज, पंचम पट्टाचार्य श्री श्रेयांससागर महाराज हुए हैं तथा वर्तमान में आचार्यश्री अभिनंदनसागर महाराज, वर्तमान पट्टाचार्य के रूप में चतुर्विध संघ का संचालन करते हुए जिनधर्म की प्रभावना कर रहे हैं।

चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागराचार्य के प्रथम पट्टशिष्य चारित्रशिरोमणि पूज्य आचार्यरत्न श्री वीरसागर महाराज का परिचय-एक दृष्टि में

(संस्कृत टीकाकर्त्री पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के आर्यिका दीक्षागुरु)

स्वस्ति श्री मूलसंघ में कुन्दकुन्दाम्नाय, सरस्वती गच्छ, बलात्कारगण में बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्यश्री वीरसागर महाराज हुए हैं। उनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है–

जन्म –आषाढ़ शु. 15, सन् 1876, वि.सं. 1933

ग्राम –वीर गाँव (जि.-औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

नाम –हीरालाल

जाति एवं गोत्र –खण्डेलवाल जाति एवं गंगवाल गोत्र

पिता –श्री रामसुख जैन

माता –श्रीमती भाग्यवती जैन (भागू बाई)

क्षुल्लक दीक्षा –फाल्गुन शु. 7, सन् 1923 (वि.सं. 1980)

नाम –श्री वीरसागर महाराज

मुनिदीक्षा –आश्विन शु. 11, सन् 1924 (वि.सं. 1981)

ग्राम –समडोली-महाराष्ट्र

दीक्षागुरु –चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज

आचार्य पद घोषणा –कुंथलगिरि में आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज द्वारा प्रथम भाद्रपद शु. 7, सन् 1955 (वि.सं. 2012)

आचार्यपदारोहण –द्वि. भाद्रपद कृ. 7, सन् 1955 (वि.सं. 2012)

स्थान –खानिया-जयपुर (राज.)

समाधिमरण –आश्विन कृ. अमावस्या, सन् 1957 (वि.सं. 2014)

स्थान –खानिया-जयपुर (राज.)

षट्खण्डागम की सिद्धांतचिंतामणि टीकाकर्त्री, दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधियों से अलंकृत प्रथम ऐतिहासिक साध्वी परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात्, जीयात् श्री शांतिसागरः।
जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।
श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात्, जीयादन्तिमचन्दना।
जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

जैनशासन के वर्तमान व्योम पर छिटके नक्षत्रों में दैदीप्यमान सूर्य की भाँति अपनी प्रकाश-रश्मियों को प्रकीर्णित कर रहीं पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उठी लेखनी की अपूर्णता यद्यपि अवश्यंभावी है, तथापि आत्मकल्याण की भावना से पूज्य माताजी के श्रीचरणों में उनके दीर्घकालीन त्यागमयी जीवन के प्रति विनम्र विनयांजलिरूप मेरा यह विनीत प्रयास है।

1. जन्म, वैराग्य और दीक्षा-22 अक्टूबर सन् 1934, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में ''मैना'' का जन्म परिवार में नवीन खुशियाँ लेकर आया था। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्वजन्म से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र 18 वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् 1952 में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग के नियमों को धारण कर लिया। उसी दिन से इस कन्या के जीवन में 24 घंटे में एक बार भोजन करने के नियम का भी प्रारंभीकरण हो गया।

नारी जीवन की चरमोत्कर्ष अवस्था आर्यिका दीक्षा की कामना को अपनी हर साँस में संजोये ब्र. मैना सन् 1953 में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षित हो गईं। सन् 1955 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सान्निध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य-वीरसागर जी महाराज से सन् 1956 में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (जयपुर-राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके **''आर्यिका ज्ञानमती''** नाम प्राप्त किया।

2. अध्ययन और अध्यापन-ज्ञानप्राप्ति की पिपासा माता ज्ञानमती जी के रोम-रोम में प्रारंभ से ही कूट-कूट कर भरी थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय-मनन-चिंतन की धारा में ही उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्रोत बना-संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य-शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन। 'कातंत्र रूपमाला' रूपी बीज से पूज्य माताजी की ज्ञानसाधना रूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल-फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया। गोम्मटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रंथों को अपनी शिष्याओं और संघस्थ साधुओं को पढ़ा-पढ़ाकर आपने अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

3. लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से-भगवान महावीर के पश्चात् 2600 वर्ष के जिस इतिहास में जैन साध्वियों के द्वारा शास्त्र लेखन की कोई मिसाल दृष्टिगोचर नहीं होती थी, वह इतिहास जागृत हो उठा जब क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् 1954 में सहस्रनाम के 1008 मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। यही मंत्र सरस्वती माता का वरदहस्त बनकर पूज्य माताजी की लेखनी को ऊँचाइयों की सीमा तक ले गये। सन् 1969-70 में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ 'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वत्ता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टीकाओं के हिंदी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलकर आज लगभग 250 से भी अधिक संख्या हो चुकी है। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी-संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह-रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद व अर्थ, बाल विकास, बालभारती, नारी आलोक आदि का अध्ययन किसी को भी वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङ्मय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास, चारों अनुयोगोंरूप विविध विधाओं के अतिरिक्त पूज्य माताजी की लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि अनेकानेक भक्ति विधानों ने देश के कोने-कोने में जिनेन्द्र भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, वह अतुलनीय है। पूज्य माताजी का चिंतन एवं लेखन पूर्णतया जैन आगम से संबद्ध है, यह उनकी महान विशेषता है।

धन्य हैं ऐसी महान प्रतिभावान् सरस्वती माता!

4. सिद्धांत चक्रेश्वरी-पूज्य माताजी ने जैनशासन के सर्वप्रथम सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' की सोलहों पुस्तकों के सूत्रों की संस्कृत टीका 'सिद्धांत चिंतामणि' का लेखन करके महान कीर्तिमान स्थापित किया है। क्रम-क्रम से हिन्दी टीका सहित इन पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य चल रहा है। आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जिस प्रकार छह खण्डरूप द्वादशांगरूप जिनवाणी को परिपूर्ण आत्मसात करके साररूप में द्रव्य संग्रह, गोम्मटसार, लब्धिसार इत्यादि ग्रंथ अपनी लेखनी से प्रसवित किये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं सदी की माता ज्ञानमती जी ने समस्त उपलब्ध जैनागम का गहन अध्ययन-मनन-चिंतन करके इस सिद्धांतचिंतामणिरूप संस्कृत टीका लेखन के महत्तम कार्य से 'सिद्धांत चक्रेश्वरी' के पद को साकार कर दिया है। आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा 1000 वर्ष पूर्व लिखित 'धवलाटीका' के पश्चात् इस महान ग्रंथ की सरल टीका लेखन का कार्य प्रथम बार हुआ है।

5. शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर-जैन सिद्धांतों का मर्म विद्वत् वर्ग समझ सके, इस भावना से कितने ही शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूज्य माताजी की प्रेरणास्वरूप किया गया। सन् 1969 में जयपुर चातुर्मास के मध्य 'जैन ज्योतिर्लोक' पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी द्वारा 'जैन भूगोल एवं खगोल' का विशेष ज्ञान विद्वत्वर्ग को कराया गया। अक्टूबर सन् 1978 में हस्तिनापुर में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. मोतीचंद जी कोठारी, डा. लाल बहादुर शास्त्री सहित जैन समाज के उच्चकोटि के लगभग 100 विद्वानों का विद्वत् प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी ने विद्वत्समुदाय को यथेष्ट मार्गदर्शन प्रदान किया। समय-समय पर आज तक यह श्रृंखला चल रही है।

6. राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार-सन् 1985 में 'जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ, पुनः अनेक संगोष्ठियाँ सम्पन्न होती रहीं और सन् 1998 में 'भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' के भव्य आयोजन द्वारा देशभर के विश्वविद्यालयों से पधारे कुलपतियों को भगवान ऋषभदेव को भारतीय संस्कृति एवं जैनधर्म के वर्तमानयुगीन प्रणेता पुरुष के

रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। 11 जून 2000 को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर आयोजित इतिहासकारों के सम्मेलन द्वारा पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रांतियों के सुधार के लिए विशेष दिशा-निर्देश 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) तक पहुँचाये गये। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य सेमिनार भी समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं, जिनके प्रतिफल में देश के समक्ष समय-समय पर साहित्यिक कृतियाँ (Proceedings) प्रस्तुत हो चुकी हैं।

7. दिगम्बर समाज की साध्वी को प्रथम बार डी.लिट्. की उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ-किसी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि में पारम्परिक डिग्रियों को प्राप्त किये बिना मात्र स्वयं के धार्मिक अध्ययन के बल पर विदुषी माताजी ने अध्ययन, अध्यापन, साहित्य निर्माण की जिन ऊँचाइयों को स्पर्श किया, उस अगाध विद्वत्ता के सम्मान हेतु डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा 5 फरवरी 1995 को डी.लिट्. की मानद् उपाधि से पूज्य माताजी को सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया गया तथा दिगम्बर जैन साधु-साध्वी परम्परा में पूज्य माताजी यह उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम व्यक्तित्व बन गईं। पुनः इसके उपरांत 8 अप्रैल 2012 को पूज्य माताजी के 57वें आर्यिका दीक्षा दिवस के अवसर पर तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद में विश्वविद्यालय का प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह आयोजित करके विश्वविद्यालय द्वारा पूज्य माताजी के करकमलों डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई।

इसी प्रकार से समय-समय पर विभिन्न आचार्यों एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा पूज्य माताजी को न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, आर्यिकाशिरोमणि, गणिनीप्रमुख, वात्सल्यमूर्ति, तीर्थोद्धारिका, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, राष्ट्रगौरव, वाग्देवी इत्यादि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया है, किन्तु पूज्य माताजी इन सभी उपाधियों से निस्पृह होकर अपनी आत्मसाधना को प्रमुखता देते हुए निर्दोष आर्यिका चर्या में निमग्न रहने का ही अपना मुख्य लक्ष्य रखती हैं।

8. पूज्य माताजी की प्रेरणा से त्याग में बढ़े कदम-त्यागमार्ग में अग्रसर सम्यग्दृष्टी जीव की यह विशेषता रहती है कि वह संसार परिभ्रमण से आक्रान्त अन्य भव्यजीवों को भी मोक्षमार्ग का पथिक बनाने हेतु विशेषरूप से प्रयासरत रहता है। इसी भावना की परिपुष्टी करते हुए पूज्य माताजी ने अनेकानेक शिष्य-शिष्याओं का सृजन किया।

संघस्थ साधुओं-मुनिजनों एवं आर्यिकाओं को अध्ययन कराते हुए सन् 1956-57 में ब्र. राजमल जी को राजवार्तिक आदि अनेक ग्रंथों का अध्ययन कराकर पूज्य माताजी ने उन्हें मुनिदीक्षा लेने की प्रेरणा प्रदान की। पुनश्च ब्र. राजमल जी कालांतर में आचार्य अजितसागर जी महाराज के रूप में चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की परम्परा में चतुर्थ पट्टाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

सन् 1967 में सनावद चातुर्मास के मध्य पूज्य माताजी ने ब्र. मोतीचंद एवं युवक यशवंत कुमार को घर से निकाला, उन्हें खूब विद्याध्ययन कराया तथा यशवंत कुमार को मुनिदीक्षा दिलवायी, जो वर्तमान में आचार्यश्री वर्धमानसागर के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। ब्र. मोतीचंद जी भी क्षुल्लक मोतीसागर बनकर जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के प्रथम पीठाधीश के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

वर्तमान पट्टाचार्यश्री अभिनंदनसागर जी महाराज ने भी पूज्य माताजी से राजवार्तिक, गोम्मटसार आदि ग्रंथों का अध्ययन किया था। मुनि श्री भव्यसागर जी महाराज, मुनि श्री संभवसागर जी महाराज इत्यादि ने भी पूज्य माताजी से विद्याध्ययन किया तथा उनकी प्रेरणा से ही मुनि दीक्षा प्राप्त की। वर्तमान में पूज्य माताजी के अनन्य शिष्य स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी अत्यंत कर्मठ व्यक्तित्व के रूप में समस्त समाज में प्रसिद्धि को प्राप्त हैं।

आर्यिका माताओं की शृँखला में आर्यिका श्री पद्मावती माताजी, आर्यिका श्री जिनमती माताजी, आर्यिका श्री आदिमती माताजी, आर्यिका श्री श्रेष्ठमती माताजी, आर्यिका श्री अभयमती माताजी,

आर्यिका श्री श्रुतमती माताजी, मैं स्वयं (आर्यिका चन्दनामती) तथा आर्यिका श्री सम्मेदशिखरमती माताजी, आर्यिका श्री कैलाशमती माताजी आदि अन्य कई माताजी पूज्य माताजी से प्राप्त वैराग्यमयी संस्कारों एवं अध्यापन का ही प्रतिफल हैं। पूज्य माताजी से सर्वांगीण ग्रंथों का अध्ययन करके पूज्य जिनमती माताजी ने प्रमेयकमलमार्तण्ड, पूज्य आदिमती माताजी ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड का हिन्दी अनुवाद किया है। मुझे भी षट्खण्डागम एवं अन्य महान ग्रंथों की हिन्दी टीका, महावीर स्तोत्र की संस्कृत टीका एवं कतिपय संस्कृत रचनाएँ लिखने का सुअवसर पूज्य माताजी की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ है।

62 वर्षों की सुदीर्घ अवधि में कितने ही भव्य जीवों ने पूज्य माताजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत, पंच अणुव्रत, शक्ति अनुसार प्रतिमाएँ इत्यादि ग्रहण करके संयम के मार्ग को आत्मसात किया है। वर्तमान में पूज्य माताजी के साक्षात् सानिध्य में रहकर अनेक ब्रह्मचारिणी बहनें त्यागमार्ग में संलग्न हैं।

9. तीर्थ विकास की भावना-तीर्थंकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियों एवं विशेष रूप से जन्मभूमियों के विकास की ओर पूज्य माताजी की विशेष आंतरिक रुचि सदा से रही है। पूज्य माताजी का कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वाली ये कल्याणक भूमियाँ हमारी संस्कृति की महान धरोहर हैं अतः इनका संरक्षण-संवर्धन-विकास अत्यंत आवश्यक है।

सर्वप्रथम **भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि 'हस्तिनापुर'** में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना 'जम्बूद्वीप' आज विश्व के मानस पटल पर अंकित हो गयी है, उ.प्र. सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप से हस्तिनापुर की पहचान बताते हुए उसे एक अतुलनीय 'मानव निर्मित स्वर्ग' (A Man Made Heaven of Unparallel Superlatives And Natural Wonders) की संज्ञा प्रदान की है। सन् 1993 से 1995 तक शाश्वत जन्मभूमि 'अयोध्या' में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबीसी मंदिर' का निर्माण करवाकर उसका विश्वव्यापी प्रचार, अकलूज (महाराष्ट्र) में नवदेवता मंदिर निर्माण की प्रेरणा, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, प्रीत विहार-दिल्ली में कमलमंदिर, मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) में सहस्रकूट कमल मंदिर, अहिच्छत्र में ग्यारह शिखर वाला तीस चौबीसी मंदिर और भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की ही प्रेरणा के प्रतिफल हैं।

कितने ही अन्य स्थानों पर भी जैसे-**खेरवाड़ा में** कैलाशपर्वत निर्माण की प्रेरणा, **पिड़ावा में** समवसरण रचना की प्रेरणा, **सोलापुर (महा.) में** भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा की स्थापना, **श्री महावीर जी के शांतिवीर नगर में** मंदारवृक्ष की स्थापना, **अतिशयक्षेत्र श्री त्रिलोकपुर में** पारिजातवृक्ष की स्थापना, **केकड़ी (राज.) में** सम्मेदशिखर की रचना आदि अनेकानेक निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशन द्वारा सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। भगवान महावीर स्वामी की **जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार)** के विकास हेतु भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ, भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा सहित विश्वशांति महावीर मंदिर, नवग्रह शांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर एवं नंद्यावर्त महल आदि अनेक निर्माण आपकी प्रेरणा से इस क्षेत्र पर हुए हैं तथा कुण्डलपुर तीर्थ विश्वभर के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि **'राजगृही' में** 'मुनिसुव्रतनाथ जिनमंदिर' एवं विपुलाचल पर्वत की तलहटी में मानस्तंभ रचना, भगवान महावीर की निर्वाणस्थली **पावापुरी में** जलमंदिर के समक्ष पाण्डुकशिला परिसर में भगवान की खड्गासन प्रतिमा सहित 'भगवान महावीर जिनमंदिर', गौतम गणधर स्वामी की निर्वाणस्थली **गुणावां जी में** गौतम स्वामी की खड्गासन प्रतिमा सहित जिनमंदिर, **श्री सम्मेदशिखर जी में** भगवान ऋषभदेव मंदिर इत्यादि समस्त निर्माण भी पूज्य माताजी की संप्रेरणा से ही सम्पन्न हुए हैं।

तीर्थंकर जन्मभूमि विकास की शृँखला में **भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी में** 'श्री पुष्पदंतनाथ जिनमंदिर' का निर्माणकार्य होकर उसमें भगवान पुष्पदंतनाथ की विशाल सवा 9 फुट

उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक विराजमान हो चुकी हैं।

तीर्थंकरों की शाश्वत **जन्मभूमि अयोध्या में** वर्तमानकालीन वहाँ जन्में पाँच तीर्थंकरों की जन्मभूमि की टोकों पर जिनमंदिर निर्माण की प्रेरणा प्रदान कर आपने संस्कृति को जीवन्त करने का अभूतपूर्व प्रयास किया है। उस शृँखला में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की टोंक पर सुन्दर कलात्मक मंदिर बनकर उसमें सवा चार फुट पद्मासन श्वेत प्रतिमा विराजमान हुई हैं तथा सरयू नदी के तट पर भगवान अनन्तनाथ के मंदिर का निर्माण होकर पंचकल्याणक सम्पन्न हो चुका है। इसी प्रकार क्रमशः अन्य टोकों पर भी मंदिरों के शिलान्यास होकर निर्माण हो चुके हैं।

उल्लेखनीय है कि पूज्य माताजी के आर्यिका दीक्षास्थल-**माधोराजपुरा (राज.) में** भी 'गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती दीक्षा तीर्थ' के विकास का कार्य सम्पन्न किया जा चुका है। यहाँ सुन्दर कृत्रिम सम्मेदशिखर पर्वत का निर्माण करके 15 फुट उत्तुंग काले पाषाण वाली भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा एवं चौबीसी विराजमान की गई हैं। इस तीर्थ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा 21 नवम्बर से 26 नवम्बर 2010 तक पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज के सान्निध्य में एवं कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन (वर्तमान पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी) के निर्देशन में विशेष महोत्सवपूर्वक सम्पन हुई है।

इसी शृँखला में अतिशय क्षेत्र **श्री महावीर जी (राज.) में** पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से महावीर धाम परिसर में **पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर** का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक् वेदियों में पद्मावती, क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनाँक 29 जनवरी से 2 फरवरी 2012 तक सानंद सम्पन्न किया गया।

विशेष : तेरहद्वीप रचना, तीर्थंकरत्रय प्रतिमा एवं तीनलोक रचना-

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर तीर्थ के विकास की अद्वितीयता को अमरता प्रदान करने वाली इन रचनाओं का निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा से इतिहास में प्रथम बार हुआ। अप्रैल सन् 2007 में स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। विश्व में प्रथम बार निर्मित इस रचना में विराजमान 2127 जिनप्रतिमाओं के दर्शन करके लोग इच्छित फल की प्राप्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर में जन्मे भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमाओं एवं 56 फुट उत्तुंग निर्मित तीनलोक रचना की जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा फरवरी सन् 2010 में हुई जो हस्तिनापुर के अतिशय में चार चाँद लगा रही हैं।

10. विश्व में अनोखी 108 फुट मूर्ति निर्माण की प्रेरणा-विश्व के अप्रतिम आश्चर्य के रूप में 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा के निर्माण का कार्य मांगीतुंगी (महा.) के पर्वत पर पूज्य माताजी की प्रेरणा से द्रुतगति से चल रहा है। युगों-युगों तक जिनशासन की महिमा को विकसित करने वाली यह प्रतिमा जैन संस्कृति के विशाल व्यक्तित्व का परिचय भी जनमानस को प्रदान करेगी।

11. शिरडी (महाराष्ट्र) में ज्ञानतीर्थ-शिरडी (महाराष्ट्र) को जैन संस्कृति केन्द्र के रूप में स्थापित करने हेतु वहाँ पर 'ज्ञानतीर्थ' का निर्माण हुआ है, जिसमें पूज्य माताजी के निर्देशानुसार भगवान पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा विराजमान करके पंचकल्याणक महोत्सव (मई 2013 में) सम्पन्न हो चुका है और अब वहाँ सुन्दर कमल मंदिर का निर्माण किया जा रहा है।

12. जृम्भिका तीर्थ विकास की प्रेरणा-भगवान महावीर स्वामी की कैवल्य भूमि जृंभिका जो आज बिहार प्रान्त में जमुई के नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ एक नूतन भूमि पर भगवान की प्रतिमा विराजमान हो चुकी है तथा इस जृम्भिका तीर्थ का विकास हो रहा है।

13. धर्मप्रभावना के विविध आयाम-जम्बूद्वीप रचना के निर्माण का प्रमुख लक्ष्य लेकर 'दिगम्बर

जैन त्रिलोक शोध संस्थान' नामक संस्था का राजधानी दिल्ली में पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में गठन किया गया। इसी संस्थान ने विविध धर्मप्रभावना के कार्यों का संचालन किया है। संस्थान स्थित 'वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' द्वारा लाखों की संख्या में ग्रंथ प्रकाशन, चारों अनुयोगों के ज्ञान से समन्वित 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, णमोकार महामंत्र बैंक इत्यादि कितनी ही कार्ययोजनाएँ जिनशासन की कीर्ति को निरंतर प्रसारित कर रही हैं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1982 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राजधानी दिल्ली से उद्घाटित 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' ने तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्म के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया और अंत में यह ज्योति अखण्डरूप से तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामंत्री-श्री पी.वी. नरसिंहाराव द्वारा जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित कर दी गयी। इसी प्रकार अप्रैल सन् 1998 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन किया, जो समस्त प्रांतों में प्रवर्तन के पश्चात् भगवान ऋषभदेव की दीक्षास्थली-प्रयाग तीर्थ पर निर्मित 'समवसरण मंदिर' में स्थापित होकर युगों-युगों तक के लिए भगवान ऋषभदेव के वास्तविक समवसरण की याद दिला रहा है। भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) से सन् 2003 में 'भगवान महावीर ज्योति रथ' का विविध प्रांतों में सफल प्रवर्तन भी इसी शृँखला की विशिष्ट कड़ी है।

जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान ऋषभदेव के नाम एवं सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पूज्य माताजी ने सन् 1997 में राजधानी दिल्ली में विशाल 'चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान' आयोजित कराया, जिसका झण्डारोहण पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने किया एवं दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंह वर्मा, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह तथा श्रीमती सुषमा स्वराज आदि अनेक कैबिनेट मंत्रियों ने उपस्थित होकर धर्मलाभ लिया। साथ ही 'भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष' (सन् 1997-1998 में) तथा 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' (सन् 2000 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित) भी पूज्य माताजी की प्रेरणा द्वारा विविध धर्मप्रभावना के कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुए। विभिन्न टी.वी. चैनलों द्वारा पूज्य माताजी के 'तीर्थंकर जीवन दर्शन (सचित्र)' एवं अन्य विषयों पर प्रभावक प्रवचन लम्बे समय तक प्रसारित हुए एवं हो रहे हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन' अपनी सैकड़ों ईकाइयों द्वारा दिगम्बर जैन समाज की नारी शक्ति को सृजनात्मक कार्यों हेतु संगठित कर रहे है।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य धर्मप्रभावना के कार्य पूज्य माताजी ने सम्पन्न किये हैं जिनका यहाँ लेखन तो संभव नहीं है, किन्तु आज पूरा समाज उनके कार्यकलापों से परिचित होकर उन्हें कर्मठता की मूर्ति के रूप में पहचानता है।

14. संघर्ष विजेत्री-पूज्य माताजी ने प्रारंभ से अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया- प्रत्येक कार्य आगमानुकूल ही करना। पुनः उन कार्यों के निष्पादन में जो भी विघ्न आते हैं, उन्हें बहुत ही शांतिपूर्वक झेलकर पूरी तन्मयता के साथ उस कार्य को परिपूर्ण करना उनकी विशेषता रही है। उनका पूरा जीवन आर्ष परम्परा का संरक्षण करते हुए अपने मूलगुणों में बाधा न आने देकर जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है।

15. भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का आयोजन-23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में 6 जनवरी 2005 को पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में 'भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन किया गया। भगवान की केवलज्ञान कल्याणक भूमि 'अहिच्छत्र', निर्वाणभूमि 'श्री सम्मेदशिखर जी' इत्यादि अनेकानेक तीर्थों पर विविध आयोजनों के साथ यह वर्ष मनाया गया। वर्ष 2006 को ''सम्मेदशिखर वर्ष'' के रूप में मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने प्रदान की, ताकि तन-मन-धन से दिगम्बर जैन समाज अपने महान तीर्थराज 'श्री सम्मेदशिखर जी' के प्रति समर्पित हो सके। पुनः दिसम्बर 2007 में अहिच्छत्र में आयोजित

'सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक' के साथ इस त्रिवर्षीय महोत्सव का समापन किया गया।

16. शताब्दी का अभूतपूर्व अवसर : दीक्षा स्वर्ण जयंती -वैशाख कृष्णा दूज, वी.नि.सं. 2532 अर्थात् 15 अप्रैल 2006 को अपनी आर्यिका दीक्षा के 50 वर्ष पूर्ण करने वाली प्रथम साध्वी पूज्य माताजी वर्तमान दिगम्बर जैन साधु परम्परा में सर्वाधिक प्राचीन दीक्षित होने के गौरव से युक्त होकर हम सभी के लिए अतिशयकारी प्राचीन प्रतिमा के सदृश बन गईं। जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में 14 से 16 अप्रैल 2006 तक **'गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'** का भव्य आयोजन करके समस्त समाज ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनम्र विनयांजलि अर्पित की।

17. विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन किया राष्ट्रपति जी ने-21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य माताजी की प्रेरणा से आयोजित विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों से हुआ। पुनः सन् 2009 ''शांति वर्ष'' में पूरे देश में विश्व की शांति के लिए धार्मिक अनुष्ठान एवं संगोष्ठियों के कार्यक्रम आयोजित किए गए।

18. 'प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष' मनाने की प्रेरणा-बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के महान उपकारों से जन-जन को परिचित कराने के उद्देश्य से पूज्य माताजी ने वर्ष 2010 को ''प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष'' के रूप में मनाने की प्रेरणा समस्त समाज को प्रदान की। इस वर्ष का उद्घाटन ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, 11 जून 2010 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में भगवान शांतिनाथ जन्म-दीक्षा एवं निर्वाणकल्याणक के शुभ दिवस किया गया तथा ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, 31 मई 2011 तक यह वर्ष पूरे देश के विभिन्न अंचलों में अनेक धर्मप्रभावनात्मक कार्यक्रमों के साथ विभिन्न आयोजनोंपूर्वक मनाया गया।

19. प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष मनाने की प्रेरणा-शरदपूर्णिमा-2011 के शुभ अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज, जो पूज्य माताजी के दीक्षा गुरु भी हैं, का वर्ष मनाने की घोषणा की अतः यह वर्ष समाज द्वारा विभिन्न आयोजन पूर्वक सानंद मनाया गया।

20. चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष-जिनकी दीर्घकालिक तपस्या के वर्षों की गिनती जानकर अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिकाएँ इत्यादि भी इस बात को कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि आज जितनी मेरी उम्र भी नहीं है उससे अधिक तो पूज्य माताजी की दीक्षा की आयु है, अर्थात् 18 वर्ष की उम्र से त्याग मार्ग पर जिन्होंने कदम रखा, उन्होंने अपनी जन्मतिथि-शरदपूर्णिमा को भी त्याग से सार्थक कर उस त्यागमयी जीवन के 60 वर्ष भी उन्होंने निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण किये। इसीलिए इनके 79वें जन्मदिवस एवं 61वें त्यागदिवस पर हमने अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन के आह्वान पर चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 मनाने की घोषणा की। इस वर्ष में सभी को शक्ति अनुसार चारित्र ग्रहण करने का संदेश दिया गया।

21. मंगलमय अमृत महोत्सव-अब पूज्य माताजी के 80वें जन्मदिवस को शरदपूर्णिमा-18 अक्टूबर 2013 को ''गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव'' के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर मनाया गया। इस अवसर पर ''सम्मेदशिखर विधान'' के 80 मांडले बनाकर 80 परिवारों के द्वारा उनकी पूजन करने का विहंगम दृश्य उपस्थित हुआ। ज्ञातव्य है कि पूज्य माताजी की प्रेरणानुसार **शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर में ''आचार्य शांतिसागर धाम''** नामक स्मारक का निर्माण किया जा रहा है, जो आचार्य श्री की सम्मेदशिखर यात्रा (सन् 1927-28 में की गई) की ऐतिहासिकता का दिग्दर्शन कराएगा।

इन चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के चरणों में कोटिशः नमन है तथा भगवान जिनेन्द्र से यही प्रार्थना है कि उनके इस पवित्र त्यागमयी जीवन का हमें शताब्दी महोत्सव भी मनाने का लाभ प्राप्त हो एवं आपके द्वारा नया-नया साहित्य जनता को प्राप्त होता रहे, यही मंगलकामना है।

ग्रंथ की हिन्दी टीकाकर्त्री, पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत
प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी का परिचय

प्रस्तुति-आर्यिका स्वर्णमती
(संघस्थ-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी)

वात्सल्य की अविरल धारा, जिनमें बहती नित है,
गुरुभक्ति की प्रबल भावना, जिनमें सदा निहित है।
सामंजस्य प्रेम मैत्री जो, सिखलाती नित-प्रति हैं,
ऐसी माँ ''चंदनामती' जी, नित ही अभिवंदित हैं।।

अनंतानंत जीवों से परिपूरित संसार सागर में जो विरले जीव जन्म-मरण के कुचक्र से छूटने हेतु शाश्वत सुख की प्राप्ति के प्रयास में संलग्न होते हैं, वे ही अपने जीवन को भी सफल करते हैं और अन्य जीवन रूपी दीपकों को प्रकाशित करने में भी निमित्त बनते हैं। ऐसा ही एक मधुरिम व्यक्तित्व है-**प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी** का, जो जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की अनन्य समर्पित शिष्या होने के साथ-साथ अपने वात्सल्यमयी व्यवहार से सभी पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में सक्षम हैं। किसी भव्य जीव को जिनेन्द्र भगवान प्रणीत शाश्वत मोक्षमार्ग के प्रति आसक्त करने में जो प्रयासरत रहे, वास्तव में वह स्तुत्य है, क्योंकि अनादिकाल से जीव ने न जाने किन-किन भौतिकताओं में बंधकर स्वयं को कल्याण के पथ से वंचित रखा है।

जन्म, शिक्षा एवं वैराग्य पथ पर बढ़े बाल कदम-बाराबंकी जिले के टिकैतनगर ग्राम में 18 मई सन् 1958, ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को गणिनी ज्ञानमती माताजी जैसे महान रत्न को प्रसूत करने वाली माता मोहिनी की कोख से 12वीं संतान के रूप में जन्म लेने वाली ''कु. माधुरी'' बालपन से ही पिता श्री छोटेलाल जी सहित समस्त परिवार एवं परिजनों की लाडली बिटिया के रूप में सर्वप्रिय थीं। माँ ने दूध पिलाने से लेकर पालन-पोषण करने तक प्रत्येक संतान पर अभिन्न धार्मिक संस्कार तो डाले ही थे, जिससे कु. माधुरी भी अछूती नहीं रहीं।

तीक्ष्ण बुद्धि वाली इस बालिका ने लौकिक शिक्षा की ओर कदम बढ़ाये तो सदैव अपनी सहपाठियों सहित समस्त शिक्षक वर्ग को भी विशेष प्रभावित करते हुए क्रमशः मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। अकादमिक उपलब्धियाँ कु. माधुरी की प्रतिभा से कहीं भी परे नहीं थीं, तथापि शाश्वत उन्नति का मार्ग इस कन्यारत्न के भविष्य का निर्माता बनकर समक्ष खड़ा था अतः उसी होनहार के अनुरूप सन् 1969 में सर्वप्रथम जयपुर-राज. में अपनी बड़ी बहन कु. मैना के ''आर्यिका ज्ञानमती माताजी'' के रूप में दर्शन प्राप्त कर वैराग्य को प्राप्त इस बालिका ने मात्र 11 वर्ष की अल्प आयु में 25 अक्टूबर-शरदपूर्णिमा को दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर पुनः 13 वर्ष की आयु में सन् 1971 में सुगंधदशमी के दिन अजमेर में उनसे आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया। जिस आयु में बालक-बालिकाएँ खाने-खेलने में ही संलग्न रहते हैं, उस अल्पवय में बालब्रह्मचर्य व्रत को धारण करना कु. माधुरी के स्वर्णिम भविष्य का ही परिचायक था। माता मोहिनी की सन्तानों ने ये विशिष्ट धार्मिक संस्कार मानों विरासत में ही पाये थे।

धार्मिक अध्ययन एवं गुरुसेवा बना जीवन का प्रमुख ध्येय-वैराग्यपथ पर बढ़चली इस बाला ने अब धार्मिक अध्ययन एवं गुरु सेवा को ही अपना प्रमुख लक्ष्य बना लिया। शास्त्री, विद्यावाचस्पति इत्यादि धार्मिक शिक्षा को प्राप्त करते हुए आपने जैनागम संबंधी हजारों गाथाएँ, श्लोक इत्यादि कंठाग्र करके अपनी मेधा शक्ति का परिचय प्रदान किया। वस्तुतः इस क्षयोपशम विशेष के अतिरिक्त अविरल सेवा भावना, पूर्ण अनुकूलता, वैयावृत्ति, परिपूर्ण समर्पण, संघ में सभी के प्रति वात्सल्यमयी सौहार्दभाव इत्यादि गुणों से आपने पूज्य माताजी को विशेष प्रभावित किया था। 'गुरु यदि दिन को रात कहें तो रात, यदि रात को दिन कहें तो दिन' इस भावना का परिपालन करने वाली कु. माधुरी शास्त्री ने क्रमशः 18 वर्षों तक ब्रह्मचारिणी अवस्था में रहकर पूज्य माताजी की भरपूर सेवा की। विशेष बात यह थी कि अध्ययन के साथ-साथ

भजन, पूजन, चालीसा, लेख इत्यादि लिखने का प्रवाह भी निरंतर चलता रहा।

आर्यिका दीक्षा धारण कर बनी 'चंदनामती'-चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की गुरु परम्परा में प्रविष्ट भव्य जीव संयम धारण करना अपना आभूषण समझते हैं, तद्नुसार राजधानी दिल्ली में पूज्य ज्ञानमती माताजी से सन् 1982 में दो प्रतिमा के व्रत एवं हस्तिनापुर में सन् 1987 में सप्तम प्रतिमा के व्रतों को क्रमशः धारण करते हुए आपने नारी जीवन के सर्वोत्कृष्ट पद की प्राप्ति के क्रम में जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में श्रावण शुक्ला ग्यारस, 13 अगस्त 1989 को पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के करकमलों से आर्यिका दीक्षा प्राप्त कर **''आर्यिका चन्दनामती''** नाम प्राप्त किया। आर्यिका श्री रत्नमती माताजी (पूर्व में माता मोहिनी) एवं आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी रूप शिल्पियों से सुसंस्कारित, व्यवहार में माधुर्य गुण की धनी 'माधुरी' जी को अपने शिष्ट आचरण के अनुरूप ही नाम प्राप्त हुआ था।

प्रभावी लेखनी से सुसज्जित व्यक्तित्व-आपकी लेखनी बाल्यकाल से ही अत्यंत प्रभावी, ओजपूर्ण एवं सारगर्भित रही है, पद्य लेखन आपके लिए क्षणों का काम रहता है अतः अब तक आप सैकड़ों भजन, आरती, चालीसा, पूजन, स्तुति, मुक्तक इत्यादि का लेखन कर चुकी हैं। समयसार की गाथाओं एवं कलश काव्यों का पद्यानुवाद, भक्तामर विधान, नवग्रहशांति विधान, मनोकामना सिद्धि महावीर विधान, तीर्थंकर जन्मभूमि विधान, महावीर स्तोत्र की संस्कृत-हिन्दी टीका, ज्ञानज्योति की भारत यात्रा, अवध की अनमोल मणि, भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर, ज्ञान रश्मि, ज्ञानमती माताजी के अमूल्य प्रवचन इत्यादि कितनी ही कृतियाँ आपके ज्ञानगुण को प्रदर्शित करने में सक्षम हैं। आर्यिका रत्नमती अभिनंदन ग्रंथ, आचार्यश्री वीरसागर स्मृति ग्रंथ, गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती अभिनंदन ग्रंथ, कुण्डलपुर अभिनंदन ग्रंथ, भगवान महावीर हिन्दी-अंग्रेजी जैन शब्दकोश, गणिनी ज्ञानमती गौरव ग्रंथ, भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि ग्रंथ इत्यादि शताधिक ग्रंथों का लेखन, सम्पादन एवं समायोजन आपके कठोर परिश्रम का ही सुफल है। आपका सृजनात्मक मस्तिष्क धर्मप्रभावना के नये-नये आयामों को साकार धरातल देते हुए सदैव उत्साहपूर्ण होकर पठन-पाठन-लेखन में ही दत्तचित्त रहता है, यह गुण आपने अपनी महान गुरु पूज्य ज्ञानमती माताजी से विरासत में ही प्राप्त किया है। आप मात्र वार्तालाप के स्थान पर सदैव कार्यरत रहने की नीति में ही विश्वास रखती हैं, जो विशेष अनुकरणीय है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के मुखपत्र 'सम्यग्ज्ञान' का समायोजन भी प्रतिमाह आपके द्वारा किया जाता है। वर्तमान में आप महान सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' की पूज्य ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखित सिद्धांतचिंतामणि टीका के हिंदी अनुवाद के कार्य में संलग्न हैं, तेरह पुस्तकों की हिन्दी टीका हो चुकी है एवं आगे ग्रंथों का अनुवाद कार्य निरन्तर चल रहा है। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी इत्यादि भाषाओं की विद्वान पूज्य माताजी द्वारा जिनवाणी की जो विशिष्ट सेवा की जा रही है, वह निःसंदेह ही सभी के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करेगी।

वर्तमान में इंटरनेट पर आपके द्वारा 'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ जैनिज्म डॉट कॉम' (ऑनलाईन जैन विश्वकोश) के सम्पादन का कार्य अत्यन्त परिश्रमपूर्वक किया जा रहा है। आगामी वर्षों में दिगम्बर जैनधर्म की अनादिधिन परम्परा को आज के आधुनिकतम साधन 'इंटरनेट' के माध्यम से हृदयंगम करने हेतु यह कार्य निःसंदेह ही मील का पत्थर सिद्ध होगा।

वक्तृत्व कला की धनी पूज्य माताजी-पूज्य चंदनामती माताजी के विशिष्ट गुण के रूप में अवस्थित है उनकी वक्तृत्व क्षमता। आपकी ओजपूर्ण एवं प्रभावक प्रवचन शैली से श्रोता प्रभावित हुए बिना रह नहीं पाता है और जिन संस्कृति तथा गुरु परम्परा के प्रति अनुरक्त होकर ही प्रवचनसभा से उठता है। पूज्य ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित भक्ति विधानों की पूजा को जब आप अपनी मधुर आवाज में सम्पन्न कराती हैं तो सभी भक्तगण जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के रस का वास्तविक आस्वादन कर हर्ष विभोर हो उठते हैं।

गुरुभक्ति की विशिष्ट भावना-पूज्य चंदनामती माताजी छाया की भाँति पूज्य ज्ञानमती माताजी के साथ रहते हुए उनकी प्रत्येक कार्ययोजना में सहभागी बनकर अपना सौभाग्य समझती हैं, अयोध्या-मांगीतुंगी-प्रयाग-कुण्डलपुर (नालंदा) इत्यादि तीर्थों के विकास एवं सभी राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों को अपनी गुरु की भावना के अनुरूप सफलता के उच्च शिखर तक पहुँचाने हेतु आप हर क्षण प्रयत्नशील रही हैं, वस्तुतः ऐसे शिष्यरत्न ही अपने भविष्य को भी उज्ज्वल बना

लेते हैं। स्वयं में प्रतिभा की परिपूर्णता होते हुए भी ख्याति-पूजा-लाभ की कामना से अपना अलग व्यक्तित्व बनाने की किसी आकांक्षा ने आपको स्पर्श नहीं किया है, यह विशेष अनुकरणीय बात है। वरन् जैसे-जैसे आपकी प्रतिभा में निखार आया है, वैसे-वैसे पूज्य माताजी के प्रति आपके समर्पण की भावना में अभिवृद्धि ही हुई है। संघस्थ सभी शिष्य-शिष्याओं को पूज्य ज्ञानमती माताजी की ज्ञान एवं चारित्र रश्मियों के प्रति अधिकाधिक समर्पित होने की शिक्षा ही आपसे सर्वदा प्राप्त हुआ करती है, जो उनकी अनन्य गुरुभक्ति का ही परिचायक है। सभी के बीच सामंजस्य कैसे स्थापित हो, सभी लोग प्रसन्नचित्त होकर गुरुआज्ञा के पालन में कैसे निरत रह सकें, यही प्रयास वह सदैव किया करती हैं। यही कारण है कि हृदय के समस्त मनोभावों को आपके समक्ष व्यक्त करके सभी को विशेष संतुष्टि की अनुभूति होती है।

गुरु परम्परा की कट्टर पोषक-पूज्य ज्ञानमती माताजी के साथ हजारों कि.मी. की पदयात्रा करके आपने जनमानस में अहिंसा, शाकाहार, सदाचार की भावनाओं को आरोपित करने का विशेष पुरुषार्थ किया है, जो कि आज के समाज की प्रमुख आवश्यकता है। जैन युवावर्ग को मांसाहार से सर्वदा दूर रहने एवं रात्रि भोजन के त्याग की विशेष प्रेरणाएँ आपसे सदैव प्राप्त हुआ करती हैं। चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की गुरु परम्परा के प्रति आपका विशेष समर्पण सदा से रहा है, अतः अपने सानिध्य में आने वाले प्रत्येक बालक-बालिका पर इस गुरु परम्परा के संस्कार डालने में आपको विशेष आनंद की प्राप्ति होती है। वास्तव में भौतिकता की होड़ में नेत्र बंद कर दौड़ रहे युवावर्ग को यदि कोई वात्सल्यपूर्ण भव्य जीव शाश्वत धर्म के मार्ग के प्रति अनुरक्त करता है, तो इसे विशेष सौभाग्य ही मानना चाहिए।

प्रज्ञाश्रमणी पद एवं पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकरण-आपकी प्रखर मेधा एवं इस गुण-विभूषित व्यक्तित्व के सम्मानार्थ पूज्य ज्ञानमती माताजी ने सन् 1997 में राजधानी दिल्ली में आयोजित विशाल कल्पद्रुम महामण्डल विधान के समापन अवसर पर आपको 'प्रज्ञाश्रमणी' की उपाधि से अलंकृत किया।

आर्यिका दीक्षा की रजत जयंती के उपलक्ष्य में जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में आयोजित **'प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती रजत दीक्षा महोत्सव'** में श्रावण शुक्ला एकादशी, 17 अगस्त 2013 को आपको समाज द्वारा **'मर्यादा शिष्योत्तमा'** एवं **'गुणरत्न'** उपाधियों से अलंकृत किया गया। इस अवसर पर गुणानुवाद ग्रंथ के रूप में **'प्रज्ञा-पुञ्ज'** ग्रंथ भी आपको समर्पित किया गया।

उपाधि अलंकरण की इस श्रृँखला में 8 अप्रैल 2012 को तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय-मुरादाबाद के परिसर में आयोजित विशेष प्रथम दीक्षांत समारोह में षट्खण्डागम जैसे महान सिद्धांत ग्रंथराज की हिन्दी टीका रूप आपकी विद्वत्ता का मूल्याकंन करते हुए विश्वविद्यालय द्वारा आपको पीएच.डी. की मानद उपाधि से भी अलंकृत किया गया।

पुनश्च आप सदा यही कहा करती हैं कि पूज्य ज्ञानमती माताजी का वात्सल्यमयी वरदहस्त ही मेरे जीवन की सबसे बड़ी सौगात है और इन्हीं गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञानामृत ने ही मेरा श्रृँगार किया है अतः इस महान जिन संस्कृति, तीर्थ संरक्षण एवं गुरुसेवा में मेरे शरीर का रोम-रोम भी समर्पित होकर काम आ जाये, तो वह ही मेरे लिए सर्वाधिक आनंददायी अनुभूति है।

ऐसे आदर्श व्यक्तित्व को धारण करने वाली पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी प्रतिक्षण साधना के उच्च सोपानों पर आरोहण करते हुए कतिपय ही भवों में रत्नत्रय की पूर्ण विशुद्धि के साथ मोक्षलक्ष्मी का वरण करें, यही मंगलभावना है। साथ ही जिनेन्द्र प्रभु से यह प्रार्थना भी है कि जिन परमपूज्य प्रातःस्मरणीय राष्ट्रगौरव गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी एवं परमपूज्य श्री चंदनामती माताजी की जो महान उपकारी छत्रछाया मुझे प्राप्त हुई है, वह मोक्षप्राप्ति तक रक्षाकवच की भाँति मुझे पूर्णतया रक्षित करते हुए जिनशासन में अवगाहन के योग्य बनाएँ, ताकि एक दिन ऐसा आ सके कि अपने अनंत चतुष्टय में निमग्न होकर सदैव के लिए मेरे चतुर्गति परिभ्रमण की भी निवृत्ति हो सके।

एक अद्वितीय जैन केन्द्र

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी (अध्यक्ष)

राजधानी दिल्ली से 110 किमी. दूर उत्तरप्रदेश के जिला मेरठ स्थित पौराणिक तीर्थ **हस्तिनापुर** में सन् 1974 से 'जम्बूद्वीप' नाम से एक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र अवस्थित है। 200 फुट के व्यास में निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना **'जम्बूद्वीप'** के अन्दर हल्के गुलाबी संगमरमर से निर्मित 101 फुट ऊँचे **सुमेरु पर्वत** की शोभा आज प्रत्येक व्यक्ति के मन को आकर्षित करती है।

प्राचीन जैन साहित्य एवं भूगोल के परिचायक, वैज्ञानिकों के लिए शोध केन्द्र, आध्यात्मिक उन्नयन के लिए पवित्र स्थान, मानसिक शांति एवं जिनेन्द्र भगवान की पूजन-भक्ति के सम्पूर्ण साधनों तथा समस्त आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता सहित इस अनुपम तीर्थ की जनक संस्था का नाम है-**दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान (रजि.)।** जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से 1972 में इस संस्थान की स्थापना हुई। दिगम्बर जैन इंस्टीट्यूट ऑफ कॉस्मोग्राफिक रिसर्च **(Digambar Jain Institute of Cosmographic Research)** के नाम से प्रसिद्ध इस संस्थान का आधारभूत लक्ष्य था-जम्बूद्वीप का निर्माण और यह जम्बूद्वीप ही अंततः संस्थान का मुख्य कार्यालय बन गया।

जंबूद्वीप की 35 एकड़ पवित्र भूमि पर संस्थान के द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं/रचनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है-

1. जंबूद्वीप रचना-जिनेन्द्र भगवान की 207 प्रतिमाओं से पावन भारतीय शिल्प और जैन भूगोल का अद्वितीय उदाहरण, आधुनिक आकर्षणों-बिजली के फौव्वारे, नौका-विहार इत्यादि सहित।

2. कमल मंदिर-भगवान महावीर की अतिशयकारी खड्गासन प्रतिमा इस मंदिर में विराजमान हैं।

3. ध्यान मंदिर-24 तीर्थंकर भगवन्तों की प्रतिमाओं सहित **'ह्रीं'** रचना इस मंदिर में विराजमान हैं, जो कि 'ध्यान' (Meditation) करने हेतु उत्तमोत्तम माध्यम हैं।

4. त्रिमूर्ति मंदिर-भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबली की खड्गासन प्रतिमाओं से इस मंदिर का नाम सार्थक है। कमल पर विराजमान भगवान नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ से इस मंदिर की शोभा द्विगुणित हो गयी है।

5. वासुपूज्य मंदिर-इस मंदिर में 12वें तीर्थंकर-वासुपूज्य स्वामी की खड्गासन प्रतिमा विराजमान हैं।

6. शांतिनाथ मंदिर-जिन भगवन्तों के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणकों से हस्तिनापुर की भूमि परम-पावन हुई है, उन शांति-कुंथु और अरहनाथ भगवंतों की खड्गासन प्रतिमाएँ इस मंदिर में विराजमान हैं।

7. ॐ मंदिर-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की प्रतिमाओं सहित **ॐ** (ओम) रचना इस मंदिर में विराजित है।

8. विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर-इस मंदिर में विदेह क्षेत्र के विद्यमान 20 तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बीस कमलों पर विराजमान हैं।

9. सहस्रकूट मंदिर-जिनेन्द्र भगवान की 1008 प्रतिमाओं सहित।

10. भगवान ऋषभदेव मंदिर-धातु निर्मित भगवान ऋषभदेव की मूलनायक प्रतिमा एवं अन्य जिन प्रतिमाओं सहित।

11. भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ-'भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' में निर्मित, भगवान के जीवन चरित्र को प्रदर्शित करने वाला, 8 प्रतिमाओं से समन्वित 31 फुट ऊँचा कीर्तिस्तंभ।

12. तेरहद्वीप जिनालय-इस मंदिर के अंदर मध्यलोक के तेरहद्वीपों की अकृत्रिम रचना का अति सुन्दरता के साथ दिग्दर्शन कराया गया है, जिसमें पंचमेरु पर्वतों के साथ-साथ कुल 2127 प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

13. अष्टापद दिगम्बर जैन मंदिर-इस मंदिर के अंदर प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि अष्टापद-कैलाशपर्वत की आकर्षक प्रतिकृति विराजमान है। कैलाशपर्वत का ही दूसरा नाम अष्टापद है। 4 फरवरी 2000 को लाल किला मैदान, दिल्ली में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा इस प्रतिकृति के समक्ष निर्वाणलाडू चढ़ाकर इसका उद्घाटन किया गया।

14. नवग्रह शान्ति जिनमंदिर—पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से उत्तर भारत में प्रथम बार निर्मित इस नवग्रहशांति जिनमंदिर में नवग्रह अरिष्ट निवारक नव तीर्थंकरों की धातु निर्मित सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनके दर्शन-पूजन करके भक्तगण अपने ग्रहों की शांति करते हुए देखे जाते हैं।

15. तीर्थंकरत्रय की विशाल प्रतिमाएँ—हस्तिनापुर में जन्मे तीर्थंकर श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ भगवान की 31-31 फुट की खड्गासन प्रतिमाएँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान हुई हैं, जिनका विशाल मंदिर भी प्रस्तावित है।

16. तीनलोक की भव्य रचना—त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि करणानुयोग ग्रंथों के अनुसार तीन लोक की सुन्दर रचना का निर्माण भी पूज्य माताजी की प्रेरणा का ही सुफल है। इसमें अत्याधुनिक सुविधा के लिए लिफ्ट लगाई गई है, जिससे सभी भक्तगण सिद्धशिला तक के दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

17. जम्बूद्वीप पुस्तकालय—प्राचीन हस्तलिखित एवं प्रकाशित लगभग 15000 ग्रंथों एवं पुस्तकों के संग्रह सहित।

18. जम्बूद्वीप औषधालय

19. ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस—विशेष कृत्रिम रेल, जिसमें चौबीसों तीर्थंकरों की 16 जन्मभूमियों का विविध झाँकियों एवं चित्रावली के माध्यम से मनमोहक प्रस्तुतीकरण किया गया है।

20. वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला—1972 में संस्थापित इस ग्रंथमाला द्वारा अब तक लाखों की संख्या में 300 से अधिक ग्रंथों एवं पुस्तकों के संस्करणों का प्रकाशन हो चुका है।

21. सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका—यह पत्रिका सन् 1974 से लगातार प्रकाशित हो रही है, जिसमें जैन शास्त्रों के साररूप लेखों एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का संकलन एक स्थान पर प्राप्त होता है।

22. राजा श्रेयांस भोजनशाला—आने वाले दर्शनार्थियों को प्रतिदिन शुद्ध (जैनचर्या के अनुरूप) भोजन उपलब्ध कराने वाला यह दिगम्बर जैन समाज का प्रथम भोजनालय है, जहाँ एक साथ 500 लोग बैठकर भोजन कर सकते हैं।

23. धर्मशालाएँ—200 से अधिक फ्लैट, बंगले इत्यादि, जिनमें ठहरने संबंधी सभी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

24. मनोरंजन के साधन—तरह-तरह के झूले, बच्चों की रेल, हँसी के गोलगप्पे, नौका विहार, फौव्वारे, हरे-भरे लॉन, पूरे कैम्पस में घूमने के लिए ऐरावत हाथी (मोटर से संचालित), बिजली की आकर्षक व्यवस्था, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य इत्यादि बरबस ही दर्शनार्थियों को इस भव्य रचना की तुलना 'स्वर्ग' से करने के लिए प्रेरित करते हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा आयोजित सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम

अक्टूबर 1981-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार'**।

31 अक्टूबर 1982-फिक्की ऑडिटोरियम-दिल्ली में **'जम्बूद्वीप सेमिनार'** जिसका उद्घाटन श्री राजीव गांधी, तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा किया गया।

अप्रैल 1985-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान'** विषय पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, जिसका उद्घाटन उ.प्र. के तत्कालीन मंत्री प्रोफेसर वासुदेव सिंह द्वारा किया गया।

जून 1982 से अप्रैल 1985-लालकिला मैदान, दिल्ली से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी द्वारा 4 जून, 1982 को पूरे देश में भ्रमण करने हेतु **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति'** रथ का उद्घाटन किया गया। जनसाधारण में अहिंसा, चारित्र-निर्माण तथा विश्व बन्धुत्व के संदेश का प्रचार-प्रसार करते हुए 1045 दिन तक देश भर में भ्रमण करने के पश्चात् यह ज्ञान ज्योति तत्कालीन रक्षामंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव (भूतपूर्व प्रधानमंत्री) द्वारा जम्बूद्वीप के मुख्य द्वार के समक्ष सदैव के लिए स्थापित कर दी गई।

1992-'अंतर्राज्यीय चरित्र निर्माण संगोष्ठी' का जंबूद्वीप स्थल पर श्री नेमीचंद जैन, विधायक (मध्यप्रदेश) की अध्यक्षता में आयोजन किया गया।

'जैन गणित' एवं **'चारित्र निर्माण'** आदि विषयों पर हुई संगोष्ठियाँ **मेरठ विश्वविद्यालय एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में** आयोजित की गईं।

1993-अयोध्या में अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद के संयुक्त तत्वावधान में **'भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव'** विषय पर संगोष्ठी।

अक्टूबर 1995-मेरठ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में पंचदिवसीय **'गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती साहित्य संगोष्ठी-95'**।

मार्च-अप्रैल 1998-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 9 अप्रैल 1998 को तालकटोरा स्टेडियम, दिल्ली से देश भर में भ्रमण करने हेतु **'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ'** का उद्घाटन। 3 वर्ष तक देशभर में तीर्थंकर भगवन्तों के सर्वोदयी सिद्धांतों एवं जैनधर्म की प्राचीनता का प्रचार-प्रसार करने के पश्चात् यह समवसरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश द्वारा तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ (इलाहाबाद) में स्थापित कर दिया गया।

अक्टूबर 1998-जम्बूद्वीप स्थल पर **'राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन'**, जिसका उद्घाटन किया गया-स्वर्गीय श्री राजेश पायलट (तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा)।

फरवरी 2000-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 4 फरवरी 2000 को लाल किला मैदान, दिल्ली में एक वर्ष तक चलने वाले **'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष'** का उद्घाटन किया गया।

इस युग में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर 1008 संगोष्ठियों की शृंखला, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभों का निर्माण तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस वर्ष के अंतर्गत आयोजित किये गये।

टोरण्टो, कनाडा, न्यूजर्सी आदि विदेश की भूमियों पर भी इन्हीं प्रेरणाओं के माध्यम से 4 फरवरी 2000 को निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया।

जून 2000-जम्बूद्वीप स्थल पर 11 जून 2000 को **'जैनधर्म की प्राचीनता'** विषय पर राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया गया।

फरवरी 2001-भगवान ऋषभदेव की दीक्षाभूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में **'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ'** का नवनिर्माण। इस तीर्थ पर भगवान के दीक्षा कल्याणक के प्रतीकस्वरूप धातु के वटवृक्ष के नीचे ध्यान में लीन महायोगी ऋषभदेव की सवा पांच फुट उत्तुंग पिच्छी-कमण्डलु सहित खड्गासन प्रतिमा, केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीकस्वरूप भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमा सहित दिव्य समवसरण रचना तथा निर्वाण कल्याणक के प्रतीक स्वरूप 51 फुट उत्तुंग 'कैलाशपर्वत' की भव्य रचना पर भगवान ऋषभदेव की 14 फुट उत्तुंग अत्यंत मनोहारी लालवर्णी पद्मासन प्रतिमा तथा तीन चौबीसी के प्रतीक स्वरूप 72 जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। 'ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ' भी स्थापित है। 4 से 8 फरवरी 2001 तक 'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा' एवं 1008 महाकुंभों से कैलाशपर्वत पर प्रतिष्ठित भगवान ऋषभदेव का 'महाकुंभमस्तकाभिषेक' कार्यक्रम।

सन् 2003-2004-भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में **'नंद्यावर्त महल तीर्थ'** का निर्माण। भगवान महावीर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, नवग्रहशांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर और नंद्यावर्त महल (भगवान महावीर का जन्म महल) एवं उसमें स्थापित भगवान शांतिनाथ जिनालय इस तीर्थ के मुख्य आकर्षण हैं। महावीर की जन्मभूमि के प्रचार-प्रसार हेतु **भगवान महावीर ज्योति रथ** सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रवर्तन कर चुका है।

सन् 2005-2007-भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव-6 जनवरी 2005 को जन्मभूमि वाराणसी से इसका भव्य उद्घाटन होकर पूरे एक वर्ष तक (27 दिसम्बर 2005 तक) इसे विभिन्न आयोजनों के साथ मनाया गया।

पुनः सन् 2006 में पूज्य माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ निर्वाणभूमि ''सम्मेदशिखर वर्ष'' घोषित किया तथा दिसम्बर 2007 में केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर भगवान पार्श्वनाथ सहस्राब्दि महोत्सव का राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित करके 4 जनवरी 2008 को भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का समापन किया।

विशेषरूप से इस संस्थान द्वारा 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में 'विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ससंघ के सानिध्य में भारत गणतंत्र की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर राष्ट्रपति जी अपने पति डॉ. देवीसिंह शेखावत के साथ सम्मेलन में पधारीं। कार्यक्रम में उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री टी.वी. राजेश्वर तथा स्वास्थ्य मंत्री श्री अनंत कुमार मिश्रा भी पधारे। इसी अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा वर्ष 2009 को ''शांति वर्ष'' के रूप में मनाने की घोषणा की गई। यह 'शांति वर्ष-2009' वर्तमान में समस्त जैन समाज द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों में अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से मनाया गया।

सन् 2010 में पूज्य माताजी की प्रेरणा से गठित ''अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थंकर जन्मभूमि विकास कमेटी'' द्वारा भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकासकार्य सम्पन्न किया गया है। तीर्थ पर भगवान पुष्पदंतनाथ की सवा 9 फुट पद्मासन प्रतिमा सुन्दर जिनमंदिर में विराजमान होकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित हो चुकी हैं तथा भगवान पुष्पदंतनाथ कीर्तिस्तंभ तीर्थ की कीर्ति को दिग् दिगन्तव्यापी ख्याति प्राप्त कराने में निमित्तभूत है।

सन् 2012 में अतिशय क्षेत्र **श्री महावीर जी (राज.) में** पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से शांतिवीर नगर के निकट स्थित महावीर धाम परिसर में **पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर** का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक्

वेदियों में पद्मावती, क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनाँक 29 जनवरी से 2 फरवरी 2012 तक सानंद सम्पन्न किया गया है तथा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत इस जैन मंदिर का संचालन सुचारू रूप से किया जा रहा है।

इस संस्थान के द्वारा समय-समय पर विविध पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न होते रहते हैं। संस्थान के अद्भुत कार्यकलाप की श्रेणी में है-**णमोकार महामंत्र बैंक,** जहाँ प्रतिवर्ष श्रद्धालु भक्तों द्वारा लाखों की संख्या में णमोकार मंत्र लिखकर जमा कराए जाते हैं। ये करोड़ों महामंत्र विश्वशांति की किरणें प्रसारित करने में अतिशय धरोहरस्वरूप हैं।

संस्थान द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कार

गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार-सन् 1995 से प्रत्येक पाँच वर्ष में यह पुरस्कार जैन धर्म पर उच्चस्तरीय शोध तथा संस्थान की शैक्षणिक गतिविधियों में सहयोग हेतु किसी भी जैन विद्वान या समर्पित कार्यकर्ता को 1,00,000/-(एक लाख) रुपये की नगद राशि, प्रशस्ति-पत्र इत्यादि के साथ प्रदान किया जाता था। अप्रैल 2006 में ''गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'' के अवसर पर संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष इस पुरस्कार को देने का निर्णय लिया गया अतः अब यह पुरस्कार प्रतिवर्ष किसी वरिष्ठ विद्वान अथवा विशिष्ट समाजसेवी को प्रदान किया जाता है।

आर्यिका रत्नमती पुरस्कार-सन् 1999 में स्थापित 25,000/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप पुरस्कार-सन् 2000 में स्थापित 25,000/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

नंद्यावर्त महल पुरस्कार-सन् 2004 से प्रारंभ 25000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

श्री छोटेलाल जैन पुरस्कार-सन् 2003 में स्थापित 25,000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप बाल प्रतिभा पुरस्कार-सन् 2010 से प्रारंभ 11000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

प्रकाशचंद जैन स्मृति पुरस्कार-सन् 2012 से प्रारंभ 11000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

उपरोक्त पुरस्कारों के अतिरिक्त 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव वर्ष' के अवसर पर घोषित **'भगवान ऋषभदेव नेशनल अवार्ड', 'ब्राह्मी पुरस्कार', 'भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर पुरस्कार', 'गणिनी ज्ञानमती दीक्षा स्वर्ण जयंती पुरस्कार', 'हीरक जयंती पुरस्कार'** तथा **रूपाबाई पुरस्कार** आदि भी संस्थान द्वारा प्रदान किये जा चुके हैं।

पुनः ''गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव''-18 अक्टूबर 2013 के अवसर पर 80000/-रुपये की राशि वाला **'अमृत महोत्सव पुरस्कार'** भी प्रदान किया गया।

इस प्रकार यह संस्थान अपनी विभिन्न समर्पित कार्य योजनाओं द्वारा समाज की सेवा में प्रतिक्षण संलग्न है। मानसिक शांति, आध्यात्मिक विकास, प्राकृतिक सौन्दर्य एवं अन्य अनेक लाभ एक साथ प्राप्त करने हेतु यह संस्थान जंबूद्वीप दर्शन के लिए आपको सादर आमंत्रित करता है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला" की स्थापना सन् 1972 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)।
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.।
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली।
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई।
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.।
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।

13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली।
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., अमर चंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।

संरक्षक

1. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन एवं स्व. श्रीमती आदर्श जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
2. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनावद (म.प्र.)।
3. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
4. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
5. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
6. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
7. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द गाँधी के सुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी फलटन (महा.)।
8. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
9. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
10. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
11. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
12. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
13. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
14. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
15. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
16. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
17. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
18. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
19. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
20. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
21. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।
22. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)।
23. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की समृति में इन्दर चन्द सुमेरमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
24. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)।
25. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
26. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
27. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्लका, देहरादून (उ.प्र.)।
28. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
29. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।

30. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
31. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
32. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
33. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
34. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
35. श्रीमती सुषमा देवी ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
36. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
37. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
38. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
39. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
40. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
41. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
42. श्री प्रभा चन्द गोधा, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-6 (राज.)।
43. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
44. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन (चिकन वाले), चूड़ीवाली गली, चौक बाजार, लखनऊ।
45. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
46. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) 35 एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपकना, रांची (बिहार)।
47. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-1/20 मॉडल टाउन, दिल्ली।
48. श्री कैलाश चंद जैन, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
49. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, 405 डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
50. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
51. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
52. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
53. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
54. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी 1/122, फेज-2, अशोक विहार, दिल्ली-110052।
55. श्री चन्द्रमोहन बंसल, 11, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-5।
56. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)।
57. श्री सतीश चन्द जैन, 31 सिविल लाइन, म.नं.-10, सेक्टर-2, टाइप-5 झांसी।
58. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
59. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
60. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन,सीतापुर (उ.प्र.)।
61. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
62. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटरा पूरणजाट, जैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
63. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
64. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन 31, सिविल लाईन, सीतापुर।
65. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
66. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
67. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
68. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।

69. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।
70. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
71. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
72. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
73. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
74. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।
75. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रावंका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
76. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
77. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
78. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।
79. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।
80. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
81. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
82. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
83. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
84. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
85. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
86. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
87. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
88. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।
89. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-92।
90. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
91. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
92. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
93. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
94. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
95. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
96. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
97. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
98. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
99. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी) राज.।
100. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
101. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
102. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
103. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
104. श्री राजेन्द्र कुमार पचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
105. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
106. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)
107. डॉ. विमला जैन ''विमल'' ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

षट्खण्डागम ग्रंथ पूजा

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

–स्थापना (शंभु छंद) –

जिनशासन का प्राचीन ग्रंथ, षट्खंडागम माना जाता।
प्रभु महावीर की दिव्यध्वनि से, है इसका सीधा नाता।।
जब द्वादशांग का ज्ञान धरा पर, विस्मृत होने वाला था।
तब पुष्पदंत अरु भूतबली ने, आगम यह रच डाला था।।1।।

–दोहा –

षट्खंडागम ग्रंथ की, पूजन करूँ महान।
मन में श्रुत को धार कर, पा जाऊँ श्रुतज्ञान।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं स्थापनं ।

–अष्टक –

(तर्ज –मैं चंदन बनकर.....)

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
ज्ञानामृत पीने से, भव बाधा नशती है।
हम जल की झारी लाए, त्रयधारा करने को।।हम.।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
चन्दन की शीतलता तो, कुछ क्षण ही रहती है।
शाश्वत शीतलता हेतु, श्रुतपूजन कर लूँ मैं।।हम.।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
श्रुतवारिधि में रमने से, अक्षय पद मिलता है।
हम अक्षत लेकर आए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।3।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
स्वाध्याय परमतप द्वारा, विषयाशा नशती है।
हम पुष्पों को ले आए, पुष्पांजलि करने को।।हम.।।4।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
ज्ञानामृत का आस्वादन, ही सच्चा भोजन है।
नैवेद्य थाल ले आए, श्रुत अर्चन करने को।।हम.।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
सम्यग्दर्शन का दीपक, मन का मिथ्यात्व भगाता।
इक दीप जलाकर लाए, श्रुत अर्चन करने को।।हम.।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धांतिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
कर्मों की धूप जलाऊँ, निज ध्यान की अग्नि में।
हम धूप सुगंधित लाए, श्रुत अर्चन करने को।।हम.।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
फल के स्वादों में फँसकर, नहिं मुक्ति सुफल को पाया।
अब थाल फलों का लाए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
कोमल मृदु वस्त्रों द्वारा, निज तन को सदा ढका है।
अब वस्त्र बनाकर लाए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
जिनवाणी के अध्ययन से, इक दिन अनर्घ्य पद मिलता।
''चंदना'' अर्घ्य ले आए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।10।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा –

षट्खंडागम ग्रंथ के, सम्मुख कर जलधार।
ज्ञान और चारित्र से, करूँ भवाम्बुधि पार।।10।।

शान्तये शांतिधारा।

विविध पुष्प की वाटिका, से पुष्पों को लाय।
पुष्पांजलि अर्पण करूँ, श्रुत समुद्र के मांहि।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य

–शंभु छंद –

पहला है जीवस्थान खण्ड, छह पुस्तक की टीका इसमें।
दो सहस तीन सौ पिचहत्तर, सूत्रों का सार भरा इसमें।।
अनुयोग आठ नव चूलिकाओं, में सत्प्ररूपणा आदि कथन।
यह ज्ञान मुझे भी मिल जावे, इस हेतु करूँ श्रुत का अर्चन।।1।।

ॐ ह्रीं अष्टअनुयोगनवचूलिकासमन्वितजीवस्थाननाम-प्रथमखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम का दुतिय खण्ड, है क्षुद्रकबंध कहा जाता।
पन्द्रह सौ चौरानवे सूत्र से, सहित ग्रंथ यह कहलाता।।
सप्तम पुस्तक में है निबद्ध, यह बंध का प्रकरण बतलाता।
इस श्रुत का अर्चन करूँ कर्म, ज्ञानावरणी तब नश जाता।।2।।

ॐ ह्रीं कर्मबंधप्रकरणसमन्वितक्षुद्रकबंधनामद्वितीय-खण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है तृतियबंधस्वामित्वविचय, का खण्ड आठवीं पुस्तक में।
त्रय शतक व चौबिस सूत्रों के, द्वारा सिद्धान्त कथन इसमें।।
जो मन वच तन की शुद्धि सहित, इस आगम का अध्ययन करें।
वे कर्मबंध से छुट जाते, हम अर्घ्य चढ़ाकर नमन करें।।3।।

ॐ ह्रीं कर्मबंधादिसिद्धान्तकथनसमन्वितबंधस्वामित्व-विचयनामतृतीयखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वेदनाखण्ड नामक चतुर्थ है, खण्ड चार पुस्तक निबद्ध।
नौ से बारह तक चारों में, पन्द्रह सौ चौदह सूत्र बद्ध।।
इन शास्त्रों की पूजन से मन का, कर्म असाता नश जाता।
गौतमगणधर विरचित मंगल-सूत्रों की है इसमें गाथा।।4।।

ॐ ह्रीं ऋद्ध्यादिवर्णनसमन्वितवेदनाखण्डनामचतुर्थ-खण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम का पंचम है, वर्गणा खण्ड आचार्य ग्रथित।
हैं एक सहस तेईस सूत्र, तेरह से सोलह तक पुस्तक।।
धरसेनसूरि सम गिरि से गिरती, गंगा मानो प्रगट हुई।
श्री पुष्पदंत अरु भूतबली के, अन्तस्तल से उदित हुई।।5।।

ॐ ह्रीं गणितादिनानाविषयसमन्वितवर्गणाखण्डनाम-पंचमखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम के छठे खण्ड में, महाबंध का नाम सुना।
है महाधवल टीका उस पर, श्रीवीरसेनस्वामी ने रचा।।
इस तरह बना षट्खण्डागम, महावीर दिव्यध्वनि अंश कहा।
ये सूत्र ग्रंथ कहलाते हैं, इनकी पूजन से सौख्य महा।।6।।

ॐ ह्रीं महाधवल टीकासमन्वितमहाबंधनामषष्ठखण्ड-जिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पुष्पदंत अरु भूतबली, गुरु की कृति षट्खण्डागम है।
नौ हजार सूत्रों से युत, इस युग का यह श्रुत अनुपम है।।
बानवे सहस्र श्लोकों प्रमाण, टीका भी इसकी लिखी गई।
श्रीवीरसेन स्वामी कृत धवला, टीका को मैं जजूँ यहीं।।7।।

ॐ ह्रीं धवलामहाधवलाटीकासमन्वित षट्खंडागम जिनागमाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीगुणधर भट्टारक विरचित, है कषायप्राभृत ग्रंथ कहा।
जयधवला टीका संयुत सोलह, पुस्तक में उपलब्ध यहाँ।।
है द्वादशांग का पूर्ण सार, इन सब ग्रंथों में भरा हुआ।
इनके अतिरिक्त न सार कोई, अर्चन का मन इसलिए हुआ।।8।।

ॐ ह्रीं जयधवला टीकासमन्वितकषायप्राभृत जिनागमाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम के सूत्रों पर, गणिनी श्री ज्ञानमती जी ने।
संस्कृत टीका सिद्धान्तसुचिन्तामणि रचकर दी इस युग में।।
श्रीवीरसेन आचार्य सदृश यह, टीका भी निधि इस युग की।
चिन्तामणि सम फल दात्री उस, टीकायुत ग्रंथ को करूँ नती।।9।।

ॐ ह्रीं सिद्धान्तचिन्तामणिटीकासमन्वितषट्खण्डागम जिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य मंत्र –**ॐ ह्रीं सिद्धान्तज्ञानप्राप्तये षट्खण्डागम जिनागमाय नमः।**

जयमाला

शेर छंद –

जैवन्त हो महावीर दिव्यध्वनि जगत में। जैवन्त हो गौतम गणीश ज्ञान जगत में।।
जैवन्त हो उन रचित द्वादशांग जगत में। जैवन्त हो उपलब्ध शास्त्र अंश जगत में।।1।।

गौतम ने अपना ज्ञान फिर लोहार्य को दिया। लोहार्य स्वामी से वो जम्बूस्वामी ने लिया।।
क्रमबद्ध ये त्रय केवली निर्वाण को गये। फिर पाँच मुनी चौदह पूर्व धारी हो गये।।2।।

नंतर विशाखाचार्य आदि ग्यारह मुनि हुए। एकादशांग पूर्व दश के पूर्ण ज्ञानी थे।।
अरु शेष चार पूर्व का इक देश ज्ञान पा। परिपाटी क्रम से उसको जगत में भी दिया था।।3।।

नक्षत्राचार्य आदि पाँच मुनियों ने क्रम से। पाया था वही ज्ञान एक देश अंश में।।
नंतर सुभद्र आदि चार मुनियों ने पाया। इक अंग ज्ञान देश अंश ज्ञान भी पाया।।4।।

यह ज्ञान पुनः क्रम से श्रीधरसेन को मिला। अतएव वर्तमान में श्रुत का कमल खिला।।
इस श्रुत की कहानी सुन रोमांच होता है। शिष्यों के समर्पण का परिज्ञान होता है।।5।।

निज आयु अल्प जान दो मुनियों को बुलाया। निज ज्ञान उन्हें सौंप मन में हर्ष समाया।।
मुनिराज नर वाहन तथा सुबुद्धि ने सोचा। गुरु ज्ञानवाटिका की मैं समृद्धि करूँगा।।6।।

अध्ययन पूर्ण होने पर गुरुवंदना करी। देवों ने पुष्प आदि से गुरु अर्चना करी।।
मुनिवर सुबुद्धि जी की दंतपंक्ति बनाई। कह पुष्पदंत गुरु ने उनकी कीर्ति बढ़ाई।।7।।

मुनिराज नरवाहन को पूजा भूत सुरों ने। फिर भूतबली नाम दिया उन्हें गुरु ने।।
वे इस प्रकार पुष्पदंत भूतबलि बने। षट्खंड जिनागम को जीत चक्रपति बने।।8।।

गुजरात अंकलेश्वर में चौमासा रचाया। फिर ज्ञान को लिपिबद्ध करना मन में था आया।
श्री पुष्पदंतमुनि ने सत्प्ररूपणा रची। मुनिराज भूतबलि के पास उसे भेज दी।।9।।

आगे उन्होंने द्रव्यप्रमाणानुगम आदी। षट्खण्डों में हजारों सूत्रों की भी रचना की।।
फिर ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी की तिथि आ गई। आगम की रचना पूर्ण कर संतुष्टि छा गई।।10।।

सिद्धांतचक्रवर्ती थे धरसेन जी सचमुच। श्री पुष्पदंत भूतबली में भी थे ये गुण।।
पश्चात्वर्ति मुनि भी उनके अंशरूप हैं। जिनको मिला सिद्धान्त ज्ञान साररूप है।।11।।

त्रयखण्ड पे परिकर्म टीका कुन्दकुन्द की। थी पद्धति द्वितीय टीका शामकुण्ड की।।
श्रीतुम्बुलूर सूरि ने टीका की पंचिका। स्वामी समन्तभद्र ने चौथी रची टीका।।12।।

श्री बप्पदेव गुरु ने लिखी व्याख्याप्रज्ञप्ती। धवलादि टीकाओं के कर्ता वीरसेन जी।।
इन छह में मात्र धवला उपलब्ध आज है। पाँचों ही शेष टीका के नाम मात्र हैं।।13।।

सदि बीसवीं में भी मिले सिद्धान्त ग्रंथ ये। चारित्रचक्रवर्ति शांतिसिंधु कृपा से।।
इन सबको ताम्रपत्र पे उत्कीर्ण कराया। विद्वानों से टीकाओं का अनुवाद कराया।।14।।

संस्कृत तथा प्राकृत में मिश्र है धवल टीका। अतएव मणिप्रवालन्याय युक्त है टीका।।
इसका ही ले आधार ज्ञानमती मात ने। टीका रची सिद्धान्तचिन्तामणि नाम से।।15।।

इन सबकी टीकाओं को बार-बार मैं नमूँ। षट्खण्ड जिनागम में मूलग्रंथ को प्रणमूँ।।
मुझको भी इन्हें पढ़ने की शक्ति प्राप्त हो। माता सरस्वती मुझे तव भक्ति प्राप्त हो।।16।।

षट्खण्ड धरा जीत चक्रवर्ति ज्यों बनें। षट्खंडजिनागम को भी त्यों ही जो पढ़ें।।
सिद्धान्तचक्रवर्ति वे हों 'चन्दनामती'। पूर्णार्घ्य चढ़ाऊँ करूँ मैं वंदना-भक्ती।।17।।

–दोहा –

षट्खण्डागम ग्रंथ को, वंदन बारम्बार।
अर्घ्य समर्पण कर लहूँ, जिनवाणी का सार।।18।।

ॐ ह्रीं षट्खण्डागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

–सोरठा –

जो पूजें चितलाय, षट्खंडागम शास्त्र को।
निज अज्ञान नशाय, वे पावें श्रुतसार को।।

।। इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः ।।

श्री षट्खण्डागम ग्रंथराज की
मंगल आरती

रचयित्री-ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

तर्ज –चाँद मेरे आ जा रे.....

आज हम आरति करते हैं–2
षट्खण्डागम ग्रंथराज की, आरति करते हैं।।
महावीर प्रभू के शासन का, ग्रंथ प्रथम कहलाया।
उनकी वाणी सुन गौतम, गणधर ने सबको बताया।।
आज हम आरति करते हैं–2
वीरप्रभू के परम शिष्य की, आरति करते हैं।।1।।

क्रम परम्परा से यह श्रुत, धरसेनाचार्य ने पाया।
निज आयु अल्प समझी तब, दो शिष्यों को बुलवाया।।
आज हम आरति करते हैं–2
श्री धरसेनाचार्य प्रवर की, आरति करते हैं।।2।।

मुनि नरवाहन व सुबुद्धी, ने गुरु का मन जीता था।
देवों ने आ पूजा कर, उन नामकरण भी किया था।।
आज हम आरति करते हैं–2
पुष्पदंत अरु भूतबली की, आरति करते हैं।।3।।

श्री वीरसेन सूरी ने, इस ग्रंथराज के ऊपर।
धवला टीका रच करके, उपकार कर दिया जग पर।।
आज हम आरति करते हैं–2
वीरसेन आचार्य प्रवर की, आरति करते हैं।।4।।

गणिनी माँ ज्ञानमती ने, इस ग्रंथ की संस्कृत टीका।
लिखकर सिद्धान्तसुचिन्तामणि नाम दिया है उसका।।
आज हम आरति करते हैं–2
श्री सिद्धान्तसुचिन्तामणि की, आरति करते हैं।।5।।

चन्दनामती माताजी, माँ ज्ञानमती की शिष्या।
हिन्दी अनुवाद किया है, इस चिन्तामणि टीका का।।
आज हम आरति करते हैं–2
सरल-सरस टीका की ''सारिका'' आरति करते हैं।।6।।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा हस्तलिखित संस्कृत टीका का एक पृष्ठ

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित हिन्दी टीका का एक पृष्ठ

सविनय समर्पण

वर्तमान शासनपति भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से सीधा संबंध रखने वाले
श्री धरसेनाचार्य महामुनीन्द्र से प्राप्त ज्ञान के आधार पर
श्री पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य द्वारा रचित

षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ के चतुर्थ खण्ड

कृति-वेदना अनुयोगद्वार में से

एकादश ग्रन्थ

वेदनानिक्षेप-वेदनानय-वेदनानाम-वेदनाद्रव्यविधान-वेदनाक्षेत्र
नाम के पाँच अनुयोगद्वारों पर
श्री वीरसेनाचार्य कृत धवला टीका को प्रमुख करके
अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रचित

''सिद्धान्तचिंतामणि''

नामक संस्कृत टीका के हिन्दी अनुवाद सहित
इस ग्रंथ को संस्कृत टीकाकर्त्री
सिद्धान्तचक्रेश्वरी, वाग्देवी, युगप्रवर्तिका, राष्ट्रगौरव, चारित्रचन्द्रिका,
विश्वविद्यालय से दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत

परमपूज्य गणिनीप्रमुख
आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

के पवित्र करकमलों में गंगा नदी का जल गंगा में ही अर्पित करने के समान
समर्पित करते हुए श्रुतज्ञान वृद्धि हेतु
मंगल आशीर्वाद की आकांक्षा करती हूँ।

-समर्पणकर्त्री-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

-पावन प्रसंग-

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के
81वें जन्मोत्सव पर आयोजित
शरदपूर्णिमा महोत्सव-8 अक्टूबर 2014, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिविरचितः

षट्खण्डागमः

श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्यविरचितः

चतुर्थो वेदनाखण्डः

(द्वितीय वेदनानुयोगद्वारस्य षष्ठवेदनाकालविधानसप्तमवेदनाभावविधानानुयोगद्वारद्वयसमन्वितः)

अथ वेदनाकालविधानानुयोगद्वारम्

(षोडशभेदान्तर्गतषष्ठानुयोगद्वारम्)

एकादशो ग्रंथः

सिद्धान्तचिंतामणिटीका

(गणिनीज्ञानमतीविरचिता)

प्रथमो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

अनुष्टुप् छंदः— सिद्धान् लोकाग्रगान् सर्वान्, नत्वा सर्वार्थसिद्धये।
श्री ऋषभादिवीरान्तान्, नौमि भक्त्या त्रिशुद्धितः।।१।।

अथ वेदनाकाल विधान अनुयोगद्वार

प्रथम महाधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—लोक के अग्रभाग पर विराजमान समस्त सिद्धों को नमस्कार करके सर्वार्थसिद्धि के लिए—समस्त प्रयोजनों की सिद्धि के लिए श्री ऋषभदेव भगवान से महावीरपर्यन्त चौबीसों तीर्थंकर

आर्यास्कंध छंदः— **भरतैरावतदशसु च, षष्ठ्युत्तरशतविदेहक्षेत्रेष्वपि।**
सप्ततिशततीर्थंकरान्, द्वादशगणपूजितान् प्रवंदे मोदात्।।२।।

भूतभविष्यत्संप्रति-त्रिकालजातान् त्रिलोकतिलकश्रेष्ठान्।
त्रिंशच्चतुर्विंशतीन्, तीर्थभृतः प्रणिदधे मनसि सिद्ध्यर्थम्।।३।।

सीमंधरादिविंशति-तीर्थकरेभ्यः सततविहरमाणेभ्यः।
भव्याम्बुजसूर्येभ्यो, नमोऽस्तु मह्यं भवे भवे शं दिश्युः।।४।।

अनुपमगर्भावतरण-जन्मोत्सवनुत-सुरर्षिपरिनिष्क्रमण-।
कैवल्यबोधनिर्वाण-कल्याणानि स्तुवे भवाब्धितितीर्षुः।।५।।

अनुष्टुप् छंद;— **श्रुतदेवीं नमस्कृत्य, गणेशादीनपि स्तुवे।**
एतेषां वंदनां कृत्वा, स्ववाणीं निर्मलीक्रियाम्।।६।।

सरस्वत्याः प्रसादेन, लेखनी मे चलिष्यति।
सिद्धान्तादिचिंतामणि-टीका मेऽवतरिष्यति।।७।।

अधुना भगवन्नेमिनाथजन्मभूमिशौरीपुरी तीर्थक्षेत्रेऽस्य षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डान्तर्गत-एकादशम-ग्रंथस्य सिद्धान्तचिन्तामणिटीकालेखनं प्रारभ्य पुनः पुनः श्रीमन्तं भगवन्तं नेमिनाथं प्रणम्य प्रारब्धकार्यस्य निर्विघ्नतापूर्वकं समाप्तिर्याच्यते।

भगवान को हम मन-वचन-काय से त्रिशुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हैं।।१।।

पाँच भरतक्षेत्र और पाँच ऐरावत क्षेत्रों में तथा एक सौ साठ विदेह क्षेत्रों में, इस प्रकार एक सौ सत्तर कर्मभूमियों में होने वाले एक सौ सत्तर तीर्थंकर भगवन्तों को, जो द्वादशगणों से पूजित हैं, उन सभी की हम वंदना करते हैं।।२।।

भूत-भविष्यत् और वर्तमान ऐसे तीनों कालों में होने वाले, त्रैलोक्यतिलकरूप श्रेष्ठ तीस चौबीसी तीर्थंकर (७२) भगवन्तों को हम सर्वसिद्धि के लिए मन में धारण करते हैं।।३।।

विदेह क्षेत्र में सतत विहार कर रहे, भव्य कमलों को विकसित करने में सूर्य के सदृश सीमंधर आदि बीस तीर्थंकर भगवन्तों को मेरा नमस्कार होवे, वे मुझे भव-भव में कल्याणमार्ग दिखावें ऐसी प्रार्थना है।।४।।

तीर्थंकर भगवान के अनुपम—उपमारहित गर्भावतरण, जन्मोत्सव, लौकांतिक देवों द्वारा स्तुत्य दीक्षाकल्याणक, केवलज्ञान और निर्वाण इन पाँचों कल्याणकों की हम भव समुद्र से पार होने हेतु स्तुति करते हैं।।५।।

श्रुतदेवी—सरस्वती माता को नमस्कार करके गणधर भगवन्तों की भी हम स्तुति करते हैं, इनकी वंदना करके हम अपनी वाणी को निर्मल करते हैं।।६।।

सरस्वती माता की कृपा प्रसाद से मेरी लेखनी चलेगी और सिद्धांतचिंतामणि टीका मेरे द्वारा अवतरित होगी—मैं टीका का लेखन सरस्वती माता की कृपा से निर्विघ्न सम्पन्न करूँगी।।७।।

भगवान नेमिनाथ की जन्मभूमि शौरीपुर तीर्थक्षेत्र पर आज षट्खण्डागम के चतुर्थखण्ड के अंतर्गत इस ग्यारहवें ग्रंथ की सिद्धांतचिन्तामणि टीका का लेखन प्रारंभ करके पुनः-पुनः भगवान श्री नेमिनाथ तीर्थंकर प्रभु को नमन करके मेरे द्वारा इस प्रारंभ किये गये कार्य की निर्विघ्न समाप्ति हेतु याचना की जाती है।

यत्र माता शिवादेवी तीर्थंकरगर्भकल्याणात् प्रागेव षोडशस्वप्नान् दृष्ट्वा महाराजसमुद्रविजयपति-देवमुखार-विन्दात् तत्फलं तीर्थंकरशिशुजननी त्वं भविष्यसीति श्रुत्वा परमां प्रसन्नतां अन्वभवत्। यस्य जन्माभिषेकं सुदर्शनमेरोः पाण्डुकशिलाया उपरि सौधर्मेन्द्रः असंख्यदेवदेवीभिः सह चकार, ततश्च प्रत्यागत्यात्रैव पित्रोः करकमलयोः प्रदाय पुनरपि जन्मभूमौ प्रांगणे जन्माभिषेकविधिं कृत्वा आनन्दनर्तनं अकरोत्। सैयं जन्मभूमिः चिरकालं भव्येभ्यो जन्मपरंपराविनाशाय भूयादिति भाव्यते।

षट्खण्डागम विषयः—

श्रीमद्भगवद्धरसेनाचार्यवर्यमुखकमलादधीत्य श्रीपुष्पदन्तभूतबलिसूरिभ्यां भव्यजनानुग्रहार्थं षट्खण्डागमनामधेयो ग्रन्थो विरचितः। अस्मिन् आगमे जीवस्थान-क्षुद्रकबंध-बंधस्वामित्वविचय-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबंधाश्चेति षट्खण्डाः सन्ति।

अत्र षष्ठखण्डमन्तरेण पञ्चखण्डेषु षट्सहस्र-अष्टशत-एकचत्वारिंशत्सूत्राणि सन्ति। तद्यथा—

अस्मिन् परमागमे प्रथमखण्डे द्विसहस्र-त्रिशत-पंचसप्ततिसूत्राणि, द्वितीयखण्डे षड्न्यूनषोडश-शतसूत्राणि, तृतीयखण्डे चतुर्विंशत्यधिकत्रिशतसूत्राणि, चतुर्थखण्डे पंचविंशत्यधिकपंचदशशतसूत्राणि, पंचमखण्डे त्रयोविंशत्यधिक-सहस्राणि सूत्राणि सन्ति।

जीवस्थाननाम्नि प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणा-द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-अन्तरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगमनामाष्टानुयोगद्वाराणि, नवचूलिकाश्च सन्ति। द्वितीयखण्डे क्षुद्रकबंधे बंधकानां प्ररूपणायां ''एकजीवेन स्वामित्वं, एकजीवेन कालः'' इत्यादि एकादशानुयोगद्वाराणि सन्ति।

जहाँ पर माता शिवादेवी ने तीर्थंकर प्रभु के गर्भ कल्याणक से पूर्व ही सोलह स्वप्न देखकर अपने पति महाराज श्री समुद्रविजय के मुखारबिन्द से उन स्वप्नों का फल ''तुम तीर्थंकर शिशु की माता बनोगी'' ऐसा सुनकर परम प्रसन्नता का अनुभव किया था। सुदर्शन मेरु पर्वत की पाण्डुक शिला के ऊपर सौधर्म इन्द्र ने जिनका असंख्य देव-देवियों के साथ जन्माभिषेक किया था और वहाँ से वापस भगवान को लाकर माता-पिता के करकमलों में प्रदान किया पुनः जन्मभूमि में राजमहल के प्रांगण में जन्माभिषेक करके आनंद नामका नृत्य किया था। ऐसी वह जन्मभूमि चिरकाल तक भव्यों की जन्मपरम्परा के विनाश के लिए निमित्तभूत बने, यही मेरी भावना है।

षट्खण्डागम का विषय—

श्रीमान् भगवान् धरसेनाचार्यवर्य के मुखकमल से अध्ययन करके श्री पुष्पदंत और भूतबली आचार्य ने भव्य प्राणियों पर अनुग्रह—उपकार करने हेतु षट्खण्डागम नाम का ग्रंथ रचा। इस आगम में जीवस्थान-क्षुद्रकबंध-बंधस्वामित्वविचय-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड और महाबंध ये छह खण्ड हैं।

उनमें से यहाँ छठे खण्ड को छोड़कर पाँच खण्डों में छह हजार आठ सौ इकतालिस (६८४१) सूत्र हैं। वे इस प्रकार हैं—

इस परमागम के प्रथम खण्ड में दो हजार तीन सौ पिचहत्तर (२३७५) सूत्र हैं, द्वितीय खण्ड में पंद्रह सौ चौरानवे (१५९४) सूत्र हैं, तृतीय खण्ड में तीन सौ चौबिस (३२४) सूत्र हैं, चतुर्थ खण्ड में पंद्रह सौ पच्चीस (१५२५) सूत्र हैं और पंचम खंड में एक हजार तेईस (१०२३) सूत्र हैं।

जीवस्थान नामके प्रथमखण्ड में सत्प्ररूपणा-द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-अंतरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगम नामके आठ अनुयोगद्वार हैं और नौ चूलिकाएँ हैं। द्वितीय खण्ड में—क्षुद्रकबन्ध में बंधकों की प्ररूपणा में " एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व, एक जीव की अपेक्षा काल"

बंधस्वामित्व- विचयनाम्नि तृतीयखण्डे — बंधपदेन बंधकर्ता कथ्यते।

अत्रग्रंथे ''किं बंधः पूर्वं व्युच्छिद्यते? किं उदयः'' इत्यादि त्रयोविंशति पृच्छास्तासां उत्तराणीत्यादिरूपेण ज्ञानावरणादि-कर्मणां कारणादीनि कथ्यन्ते।

पुनश्च द्वितीयाग्रणीयपूर्वस्य पूर्वान्त-अपरान्त-ध्रुव-अध्रुव-चयनलब्धि-अध्रुवसंप्रणिधान-कल्प-अर्थ-भौमावयाद्य-सर्वार्थ-कल्पनिर्याण-अतीतकालसिद्ध-अनागतकालसिद्ध-बुद्धाश्चेति चतुर्दशाधिकाराः सन्ति। तेभ्यः 'चयनलब्धि' नामपंचमवस्तुनो विंशतिप्राभृतेषु चतुर्थं 'महाकर्मप्रकृतिनाम' प्राभृतं वर्तते। अस्य प्राभृतस्य चतुर्विंशति-अनुयोगद्वाराणि — कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व-भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध-अल्पबहुत्वानि चेति।

वेदनानामचतुर्थखण्डे कृति-वेदनानामद्वि-अनुयोगद्वारयोर्विस्तृतविवेचनमस्ति। वर्गणानामपंचमखण्डे शेषस्पर्शादिद्वाविंशत्यनुयोगद्वाराणां कथनं ज्ञातव्यम्।

एवं नामनिरूपणरूपेण संक्षेपेण पंचखंडग्रन्थानां विषयविवेचना सूचितास्ति।

चतुर्थखण्डे वेदनानाम्नि नवमग्रंथे कृति-अनुयोगद्वारं कथितमस्ति। अस्मिन् वेदनानामखंडान्तर्गते दशमग्रन्थादारभ्य वेदनानुयोगद्वारमस्ति द्वादशग्रन्थपर्यन्तमिति।

अस्मिन् वेदनानामानुयोगद्वारे षोडशाधिकाराः कथ्यन्ते —

तत्र तावत् तेषां नामानि — वेदनानिक्षेप[१]-वेदनानयविभाषणता[२]-वेदनानामविधान[३]-वेदनाद्रव्यविधान[४]-वेदनाक्षेत्रविधान[५]-वेदनाकालविधान[६]-वेदनाभावविधान[७]-वेदनाप्रत्ययविधान[८]-वेदनास्वामित्वविधान[९]-

---

इत्यादि ग्यारह अनुयोगद्वार हैं। बंधस्वामित्व नामके तृतीय खण्ड में-बंधपद से बंधकर्ता को कहा गया है।

यहाँ ग्रंथ में ''क्या बंध का पूर्व में व्युच्छेद होता है? क्या उदय होता है? इत्यादि तेईस पृच्छा हैं, उनके उत्तर इत्यादिरूप से ज्ञानावरण आदि कर्मों के कारण आदिकों को कहते हैं।

पुनश्च द्वितीय अग्रायणीय पूर्व के पूर्वान्त-अपरान्त-ध्रुव-अध्रुव-चयनलब्धि-अध्रुवसंप्रणिधान-कल्प-अर्थ-भौमावयाद्य-सर्वार्थ-कल्पनिर्याण-अतीतकालसिद्ध-अनागतकालसिद्ध और बुद्ध ये चौदह अधिकार हैं। उनमें ''चयनलब्धि'' नामक पंचमवस्तु के बीस प्राभृतों में चतुर्थ 'महाकर्मप्रकृति' नामक प्राभृत है। इस प्राभृत के कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व, भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध और अल्पबहुत्व ये चौबिस अनुयोगद्वार हैं।

वेदना नामके चतुर्थ खण्ड में कृति और वेदना नामके दो अनुयोगद्वारों का विस्तृत विवेचन है। वर्गणा नामके पंचम खण्ड में शेष स्पर्श आदि बाईस अनुयोगद्वारों का कथन जानना चाहिए।

इस प्रकार नाम निरूपणरूप संक्षेप से पाँच खण्ड के ग्रंथों की विषय विवेचना सूचित की गई है।

चतुर्थ खण्ड में वेदना नामके नवमें ग्रंथ में कृति-अनुयोगद्वार कहा गया है। इस वेदना खण्ड के अंतर्गत दशवें ग्रंथ से लेकर बारहवें ग्रंथ तक वेदना अनुयोगद्वार का वर्णन है।

इस वेदना नामक अनुयोगद्वार में सोलह अधिकार कहे हैं —

उनमें नाम इस प्रकार हैं — १. वेदनानिक्षेप २. वेदनानयविभाषणता ३. वेदनानामविधान ४. वेदनाद्रव्यविधान ५. वेदनाक्षेत्रविधान ६. वेदनाकालविधान ७. वेदनाभावविधान ८. वेदनाप्रत्ययविधान

वेदनावेदनविधान[१०]-वेदनागतिविधान[११]-वेदनाअनंतरविधान[१२]-वेदनासन्निकर्षविधान[१३]-वेदनापरिमाण-विधान[१४]-वेदनाभागाभागविधान[१५]-वेदनाल्पबहुत्वानि[१६] चेति। इमे षोडशअधिकाराद्वितीयवेदनानुयोगद्वार-स्यान्तर्भेदा अपि श्रीभूतबलिसूरिवर्येण अनुयोगद्वारनामभिरेव कथिताः सन्ति[१]।

तत्र दशमग्रंथे आद्याः पंचाधिकारा वर्णिताः सन्ति। अधुना अस्मिन् एकादशमग्रंथे वेदनाकालविधान-वेदनाभावविधाननामनी द्वे अनुयोगद्वारे कथयिष्यतः। अग्रे द्वादशग्रन्थे शेषनवानुयोगद्वाराणि वर्णयिष्यन्ते।

अथ अस्य षट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे एकादशे ग्रंथे वेदनानुयोगद्वारस्य षोडशानुयोग- द्वारान्तर्गत वेदनाकालविधाननाम्नि षष्ठेऽनुयोगद्वारे द्वौ महाधिकारौ कथयिष्येते। पुनश्च षोडशानुयोगद्वारान्तर्गत- वेदनाभावविधाननाम्नि सप्तमेऽनुयोगद्वारे द्वौ महाधिकारौ वर्णयिष्येते। एते मिलित्वा अस्मिन् ग्रंथे चत्वारो महाधिकाराः सन्ति।

तत्र तावत् वेदनाकालविधाने प्रथमे महाधिकारे पंचत्रिंशत्सूत्राणि। द्वितीये महाधिकारे अधिकारद्वय-समन्वितयोः द्वयोः चूलिकयोः चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशतसूत्राणि।

पुनश्च वेदनाभावविधाने द्वौ महाधिकारौ कथयिष्यतः। तत्र तृतीये महाधिकारे चतुःसप्तत्यधिकशतसूत्राणि। पुनश्च चतुर्थे महाधिकारे चत्वारिंशदधिकशतसूत्राणि इति अस्य एकादशग्रंथस्य त्रिनवत्यधिकपंचशतसूत्रैः समुदायपातनिका सूचिता भवति।

तत्रापि संप्रति वेदनाकालविधाने प्रथमे महाधिकारे पंचभिः स्थलैः पंचत्रिंशत्सूत्राणि सन्ति। तत्र तावत्प्रथमस्थले ''वेयणकालविहाणे'' इत्यादिना वेदनाकालविधानस्य कथनप्रतिज्ञापूर्वकं त्रिभेदतन्नाम-प्ररूपणत्वेन सूत्रद्वयं कथ्यते। तदनु द्वितीये स्थले प्रथमभेदपदमीमांसाकथनत्वेन ''पदमीमांसाए'' इत्यादिना

९. वेदनास्वामित्व विधान १०. वेदनावेदनविधान ११. वेदनागतिविधान १२. वेदनाअंतरविधान १३. वेदनासन्निकर्ष विधान १४. वेदनापरिमाण विधान १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्व विधान। ये सोलह अधिकार द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्भेद हैं फिर भी श्रीभूतबली आचार्य ने अनुयोगद्वार नाम से ही कहा है।

इसमें दशवें ग्रंथ में आदि के पाँच अधिकार कहे हैं। इस ग्यारहवें ग्रंथ में वेदनाकाल विधान और वेदनाभाव विधान ये दो अनुयोगद्वार कहेंगे। आगे बारहवें ग्रंथ में शेष नौ अनुयोगद्वारों का वर्णन करेंगे।

अब इस षट्खण्डागम में वेदना नामके चतुर्थ खण्ड में इस ग्यारहवें ग्रंथ में वेदनानुयोगद्वार के सोलह अनुयोगद्वार के अंतर्गत वेदनाकाल विधान नामके छठे अनुयोगद्वार में दो महाधिकारों का कथन करेंगे। पुनश्च सोलह अनुयोगद्वारों के अंतर्गत वेदनाभावविधान नामके सातवें अनुयोगद्वार में दो महाधिकार का वर्णन करेंगे। ये सब मिलाकर इस ग्रंथ में चार महाधिकार हैं।

उनमें से वेदनाकालविधान के प्रथम महाधिकार में पैंतिस सूत्र हैं। द्वितीय महाधिकार में दो अधिकारों से समन्वित दो चूलिकाओं में दो सौ चवालिस (२४४) सूत्र हैं।

पुनः वेदनाभावविधान में दो महाधिकार कहेंगे। उस तृतीय महाधिकार में एक सौ चौहत्तर (१७४) सूत्र हैं। उसके बाद चतुर्थ महाधिकार में एक सौ चालिस सूत्र हैं, इस प्रकार इस ग्यारहवें ग्रंथ में पाँच सौ तिरानवे (५९३) सूत्रों के द्वारा समुदायपातनिका सूचित की गई है।

उसमें भी यहाँ इस वेदनाकाल विधान नामके प्रथम महाधिकार में पाँच स्थलों में पैंतिस सूत्र हैं। उनमें से प्रथम स्थल में 'वेयणकाल विहाणे'' इत्यादि के द्वारा वेदनाकाल विधान के कथन की प्रतिज्ञापूर्वक तीन भेद और उनमें नामों का प्ररूपण करने वाले दो सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में प्रथम भेद पदमीमांसा का कथन करने वाले ''पदमीमांसाए' इत्यादि के द्वारा ज्ञानावरणीय आदि की, काल की अपेक्षा क्या वेदना

१. धवला पु. ७, सूत्र १।

ज्ञानावरणीयादीनां कालापेक्षया किं वेदना उत्कृष्टेत्यादि कथनत्वेन सूत्रत्रयं निगदिष्यते। पुनः तृतीयस्थले ''सामित्तं'' इत्यादिना स्वामित्वस्य द्वौ भेदौ कथयित्वा स्वामित्वे उत्कृष्टपदे कालापेक्षया कर्मणां वेदनाप्रतिपादनत्वेन अष्टौ सूत्राणि प्रतिपादयिष्यन्ते। ततःपरं चतुर्थस्थले स्वामित्वेन जघन्यपदे ''सामित्तेण'' इत्यादिना ज्ञानावरणीयादि कर्मणां कालवेदनाप्ररूपणत्वेन एकादश सूत्राणि कथयिष्यन्ते। तत्पश्चात् पंचमस्थले अल्पबहुत्वकथनार्थं त्रिभेदानुक्त्वा ''अप्पाबहुए त्ति'' इत्यादिना अल्पबहुत्वं एकादशसूत्रैः निगदिष्यते इति वेदनाकालविधानस्य समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना वेदनाकालविधानभेद-प्रभेदप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

वेयणकालविहाणे त्ति। तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति।।१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र कालः सप्तविधः—नामकालः स्थापनाकालो द्रव्यकालः सामाचारकालः अद्धाकालः प्रमाणकालो भावकालश्चेति। तत्र नामकालो नामकालशब्दः। स्थापनाकालः, स एष इति बुद्ध्या एकत्वं कृत्वा स्थापयितव्यम्। द्रव्यकालो द्विविधः—आगमद्रव्यकालो, नोआगमद्रव्य-कालश्चेति। कालप्राभृतज्ञायकोऽनुपयुक्त आगमद्रव्यकालः। तत्र नोआगमद्रव्यकालः त्रिविधः—ज्ञायकशरीर-नोआगमद्रव्यकालो, भाविनोआगमद्रव्यकालो ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकालश्चेति। ज्ञायकशरीर-भाविनोआगमद्रव्यकालौ सुगमौ स्तः।**

तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकालो द्विविधः—प्रधानोऽप्रधानश्चेति। तत्र प्रधानद्रव्यकालो नाम लोकाकाश-

---

उत्कृष्ट है? इत्यादि कथन हेतु तीन सूत्र कहेंगे। पुनः तृतीय स्थल में 'सामित्तं'' इत्यादि के द्वारा स्वामित्व के दो भेद कहकर स्वामित्व के उत्कृष्ट पद में काल की अपेक्षा कर्मों की वेदना का प्रतिपादन करने वाले आठ सूत्र प्रतिपादित करेंगे। उसके पश्चात् चतुर्थ स्थल में स्वामित्व की अपेक्षा जघन्य पद में ''सामित्तेण'' इत्यादि के द्वारा ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की कालवेदना को प्ररूपित करने हेतु ग्यारह सूत्र कहेंगे। तत्पश्चात् पंचमस्थल में अल्पबहुत्व का कथन करने हेतु तीन भेदों को कहकर ''अप्पाबहुएत्ति'' इत्यादि के द्वारा ग्यारह सूत्रों से अल्पबहुत्व को कहेंगे। इस प्रकार वेदनाकाल विधान की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब वेदना कालविधान के भेद-प्रभेदों का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

वेदनाकालविधान अनुयोगद्वार प्रारंभ होता है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ काल के सात भेद बताए गये हैं—नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल, सामाचारकाल, अद्धाकाल, प्रमाणकाल और भावकाल। उनमें 'काल' शब्द नामकाल कहा जाता है। 'वह यह है' इस प्रकार बुद्धि से अभेद करके स्थापित जो द्रव्य है वह स्थापनाकाल है। द्रव्यकाल के दो भेद हैं—आगमद्रव्यकाल और नोआगमद्रव्यकाल। कालप्राभृत का जानकार उपयोगरहित जीव आगमद्रव्यकाल है। नोआगमद्रव्यकाल के तीन भेद हैं—ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यकाल, भावी नोआगमद्रव्यकाल और ज्ञायक शरीर-भावितद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकाल। इनमें ज्ञायकशरीर और भावी नोआगमद्रव्यकाल ये दोनों सुगम हैं।

तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकाल के दो भेद हैं—प्रधान और अप्रधान। उनमें प्रधानद्रव्यकाल प्रदेशों

प्रदेशप्रमाणः शेषपंचद्रव्यपरिणमनहेतुभूतो रत्नराशिरिव प्रदेशप्रचयविरहितोऽमूर्तोऽनादिनिधनः।

उक्तं च— कालो परिणामभवो, परिणामो दव्वकालसंभूदो।
दोण्हं एस सहाओ, कालो खणभंगुरो णियदो[1]।।१।।

समयादिरूपो व्यवहारकालोऽस्ति जीवपुद्गलयोः परिणमनेन विज्ञायमानत्वात्। अतः स तेनोत्पन्न इति कथ्यते, जीवपुद्गलयोः परिणमनं द्रव्यकाले सत्येव भवतीति तेन द्रव्यकालेनोत्पन्नो भवतीति कथ्यते। एषोऽनयोर्द्वयो- र्व्यवहारनिश्चयकालयोः स्वभावोऽस्ति। एतयोर्व्यवहारकालः क्षणक्षयी निश्चयकालोऽविनश्वरश्चेति।

ण य परिणमइ सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेसिं।
विविहपरिणामियाणं हवइ हु हेऊ सयं कालो।।२।।
लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा।।३।।
कालो त्ति य ववएसो सब्भावपरूवओ हवइ णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई।।४।।[2] इति

अप्रधानद्रव्यकालस्त्रिविधः—सचित्तोऽचित्तो मिश्रकश्चेति। तत्र सचित्तः—यथा दंशकालो मशककाल-इत्येवमादिः। दंशमशकयोरेवोपचारेण कालत्वविधानात्। अचित्तकालः—यथा धूलिकालः कर्दमकालः

की अपेक्षा लोकाकाश के प्रदेश के बराबर है, शेष पाँच द्रव्यों के परिवर्तन के कारण हैं, रत्नराशि के समान प्रदेशप्रचय से रहित हैं, अमूर्त व अनादिनिधन हैं।

कहा भी है—

गाथार्थ—काल परिणमनशील है और परिणमन द्रव्यकाल के होने पर होता है। यह दोनों—व्यवहार एवं निश्चयकाल का स्वभाव है। इनमें व्यवहारकाल क्षणभंगुर एवं निश्चयकाल नियत—अविनाशीक माना जाता है।।१।।

अर्थात् समय आदिरूप व्यवहारकाल चूँकि जीव व पुद्गल के परिणमन से जाना जाता है। अतः वह उससे उत्पन्न कहा जाता है, और जीव व पुद्गल का परिणाम चूँकि द्रव्यकाल के होने पर होता है, अतएव वह द्रव्यकाल से उत्पन्न कहा जाता है। उन दोनों अर्थात् व्यवहार और निश्चय काल का स्वभाव है। इनमें व्यवहारकाल क्षणक्षयी अर्थात् विनश्वर और निश्चयकाल अविनश्वर होता है।

गाथार्थ—वह काल न स्वयं परिणमता और न अन्य पदार्थ को अन्य स्वरूप से परिणमाता है, किन्तु स्वयं अनेक पर्यायों में परिणत होने वाले पदार्थों के परिणमन में वह उदासीन निमित्त मात्र होता है।।२।।

लोकाकाश में एक एक प्रदेश पर जो रत्नराशि के समान एक-एक स्थित हैं, उन्हें कालाणु जानना चाहिए।।३।।

'काल' यह नाम निश्चयकाल के अस्तित्व को प्रकट करता है, जो द्रव्य स्वरूप से नित्य है। दूसरा व्यवहार काल यद्यपि उत्पन्न होकर नष्ट होने वाला है, तथापि वह (समयसन्तान की अपेक्षा व्यवहार नय से आवली व पल्य आदि स्वरूप से) दीर्घ काल तक स्थित रहने वाला है।।४।।

अप्रधान द्रव्यकाल के तीन भेद होते हैं—सचित्त, अचित्त और मिश्र। उनमें दंशकाल, मशककाल इत्यादि सचित्त काल हैं, क्योंकि इनमें दंश व मशक के ही उपचार से काल का विधान किया गया है।

---

१. षट्खंडागम (धवला टीका समन्वित), पु. ११, पृ. ७५। २. षट्खंडागम (धवला टीका समन्वित), पु. ११, पृ. ७६।

उष्णकालः वर्षाकालः शीतकाल इत्येवमादिः। मिश्रकालः—यथा सदंशशीतकालः इत्येवमादिः। सामाचारकालो द्विविधः—लौकिको लोकोत्तरश्चेति। तत्र लोकोत्तरीयः सामाचारकालः—यथा वंदनकालः नियमकालः स्वाध्यायकालो ध्यानकाल इत्येवमादिः। लौकिकसामाचारकालः—यथा कर्षणकालो लुननकालो वपनकाल इत्येवमादिः। आतापनकालो वृक्षमूलकालो बाह्यशयनकाल इत्यादीनां कालानां लोकोत्तरीयसामाचारकालेऽन्तर्भावः कर्तव्यः, क्रियाकालत्वं प्रति विशेषाभावात्।

अद्धाकालस्त्रिविधः—अतीतोऽनागतो वर्तमानश्चेति।

प्रमाणकालः—पल्योपम-सागरोपम-उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी-कल्पादिभेदेन बहुप्रकारः।

भावकालः द्विविधः—आगमतो नोआगमतश्चेति। तत्र कालप्राभृतज्ञायक उपयुक्त आगमभावकालः। नोआगमभावकालः, औदयिकादिपंचानां भावानां स्वकरूपम्।

एतेषु कालेषु प्रमाणकालेन प्रकृतम्।

कालस्य विधानं कालविधानं, वेदनायाः कालविधानं वेदनाकालविधानम्। तत्र इमानि त्रीणि अनुयोगद्वाराणि भवन्ति।

कुतः?

संख्या-गुणकार-स्थान-जीवसमुदाहार-ओज-युग्मानुयोगद्वाराणामेवात्रैवान्तर्भावदर्शनात्।

संप्रति त्रयाणामनुयोगद्वाराणां नामप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

पदमीमांसा-सामित्तमप्पाबहुए त्ति।।२।।

धूलिकाल, कर्दमकाल, उष्णकाल, वर्षाकाल एवं शीतकाल इत्यादि सब अचित्तकाल हैं। सदंश शीतकाल इत्यादि मिश्रकाल हैं। सामाचारकाल के दो भेद हैं—लौकिक और लोकोत्तर। उनमें वंदनाकाल, नियमकाल, स्वाध्यायकाल व ध्यानकाल इत्यादि लोकोत्तरीय सामाचार काल है। कर्षणकाल, लुननकाल व वपनकाल इत्यादि लौकिक सामाचारकाल हैं। आतापनकाल, वृक्षमूलकाल व बाह्यशयनकाल इत्यादि कालों का लोकोत्तरीय सामाचारकाल में अन्तर्भाव करना चाहिए, क्योंकि क्रियाकाल के प्रति कोई भेद नहीं है अर्थात् क्रियाकाल की अपेक्षा इनमें कोई विशेषता नहीं है।

अद्धाकाल के तीन भेद होते हैं—अतीत, अनागत और वर्तमान।

प्रमाणकाल पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी और कल्पादिके भेद से बहुत प्रकार का है।

भावकाल दो प्रकार के हैं—आगमभावकाल, और नोआगमभावकाल। उनमें कालप्राभृत का जानकार उपयोग युक्त जीव आगमभावकाल है। नोआगमभावकाल औदयिक आदि पाँच भावों स्वरूप है।

इन कालों में प्रमाणकाल प्रकृत है।

काल का जो विधान है वह कालविधान है, वेदना का कालविधान वेदनाकाल विधान कहा जाता है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं।

कैसे ?

क्योंकि संख्या, गुणकार, स्थान, जीवसमुदाहार, ओज और युग्म, इन अनुयोगद्वारों का उक्त तीनों अनुयोगद्वारों में अन्तर्भाव देखा जाता है।

अब तीनों अनुयोगद्वारों के नाम प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार हैं।।२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पदमीमांसा स्वामित्वमल्पबहुत्वं चेति त्रीण्यनुयोगद्वाराणि सन्ति।**

त्रिष्वनुयोगद्वारेषु पदमीमांसा चैव प्रथमं किमर्थमुच्यते?

नैतत्, किं च—पदेष्वनवगतेषु पदस्वामित्व-पदाल्पबहुत्वयोः प्ररूपणोपायाभावात्।

तदनंतरं स्वामित्वप्ररूपणं किमर्थं क्रियते?

न, प्रमाणेऽनवगते पदाल्पबहुत्वानुपपत्तेः। तस्मात् एष एव अनुयोगद्वारक्रमो भवति, निरवद्यत्वात्।

एवं प्रथमस्थले वेदनाकालविधानतत्भेदकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

कालापेक्षया-ज्ञानावरणीयकर्मवेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

पदमीमांसाए णाणावरणीयवेयणा कालदो किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किमजहण्णा ?।।३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्मिन् सूत्रे ज्ञानावरणग्रहणं शेषकर्मप्रतिषेधफलं। कालनिर्देशो द्रव्यक्षेत्र-भावप्रतिषेधफलः। एतत्पृच्छासूत्रं येन देशामर्शकं तेनान्याः नव पृच्छाः सूचयति।**

ज्ञानावरणीयवेदना किमुत्कृष्टा किमनुत्कृष्टा किं जघन्या किमजघन्या किं सादिका किमनादिका किं ध्रुवा किमध्रुवा किमोजा किं युग्मा किमोमा किं विशिष्टा किं नोम-नोविशिष्टा इति।

पुन एतेनैव सूत्रेण अन्यास्त्रयोदश पदविषयपृच्छाः सूचिताः सन्ति।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार सूत्र में कहे गये हैं।

शंका—इन तीनों अनुयोगद्वारों में पहिले पदमीमांसा का ही निर्देश किसलिये किया है?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि पदों के अज्ञात होने पर पदस्वामित्व और पदअल्पबहुत्व की प्ररूपणा का कोई उपाय नहीं है।

शंका—पदमीमांसा के पश्चात् स्वामित्व प्ररूपणा किसलिये की जाती है?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि प्रमाण का ज्ञान न होने पर पदों का अल्पबहुत्व बन नहीं सकता। इस कारण यही अनुयोगद्वार क्रम ठीक है, क्योंकि उसमें कोई दोष नहीं है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में वेदनाकालविधान और उसके भेदों का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब काल की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ—

पदमीमांसा अधिकार में ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कृष्ट है, क्या जघन्य है और क्या अजघन्य है?।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र में ज्ञानावरण पद का ग्रहण शेष कर्मों का प्रतिषेध करने के लिए किया है। काल का निर्देश द्रव्य, क्षेत्र, भाव का प्रतिषेध करने वाला है। यह पृच्छा सूत्र चूँकि देशामर्शक है, अतः वह सूत्रोक्त चार पृच्छाओं के अतिरिक्त नौ दूसरी पृच्छाओं को भी सूचित करता है।

ज्ञानावरणीयवेदना क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कष्ट है, क्या जघन्य है, क्या अजघन्य है, क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है, क्या ओज है, क्या युग्म है, क्या ओम है, क्या विशिष्ट है और क्या नो ओम-नोविशिष्ट है ?

पुनः इसी सूत्र के द्वारा दूसरी तेरह पदविषयक पृच्छायें सूचित की गई हैं।

कास्ता इति चेत् ?

उच्यते—उत्कृष्टज्ञानावरणीय वेदना किमनुत्कृष्टा किं जघन्या किमजघन्या किं सादिका किमनादिका किं ध्रुवा किमध्रुवा किमोजा किं युग्मा किमोमा किं विशिष्टा किं नोम-नोविशिष्टा इति उत्कृष्टपदे द्वादश पृच्छाः सन्ति।

एवं शेषपदानां अपि प्रत्येकं द्वादश पृच्छा वक्तव्याः। अत्र सर्वपृच्छासमास एकोनसप्ततिशतमात्रः (१६९)। तस्मात् एतद् देशामर्शकसूत्रं त्रयोदशसूत्रात्मकं भवति।

संप्रत्येतेषां सूत्राणां प्ररूपणाकरणार्थं उत्तरदेशामर्शकसूत्रमवतार्यते —

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णा वा अजहण्णा वा।।४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतदपि देशामर्शकसूत्रं। तेनात्र शेषनवपदानि वक्तव्यानि। देशामर्शकत्वादेव शेषत्रयोदशसूत्राणामत्रान्तर्भावो वक्तव्यः।**

अत्र तावत्प्रथमसूत्रप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—

ज्ञानावरणीयवेदना कालतः स्यादुत्कृष्टा स्यादनुत्कृष्टा स्याज्जघन्या स्यादजघन्या। स्यात्सादिका, पर्यायार्थिक-नयेऽवलम्ब्यमाने ज्ञानावरणीयसर्वस्थितीनां सादित्वोपलंभात्। स्यादनादिका, द्रव्यार्थिकनयेऽव-लम्ब्यमानेऽनादित्व-दर्शनात्। स्याद् ध्रुवा, द्रव्यार्थिकनयेऽवलम्ब्यमाने ज्ञानावरणीयकालवेदनायाः विनाशानुपलंभात्। स्यादध्रुवा पर्यायार्थिकनयार्पणायां अध्रुवत्वदर्शनात्। स्यादोजा, कुत्रापि कालविशेषे

वे कौन सी हैं ?

ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं—उत्कृष्ट ज्ञानावरणीयवेदना क्या अनुत्कष्ट है, क्या जघन्य है, क्या अजघन्य है, क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है, क्या ओज है, क्या युग्म है, क्या ओम है, क्या विशिष्ट है और क्या नोओम-नोविशिष्ट है, ये बारह पृच्छायें उत्कृष्ट पद के विषय हैं।

इसी प्रकार शेष पदों में से भी प्रत्येक पद के विषय में बारह पृच्छाओं को कहना चाहिये। यहाँ सब पृच्छाओं का योग एक सौ उनत्तर (१६९) मात्र है। इस कारण यह देशामर्शक सूत्र तेरह सूत्रों स्वरूप है।

अब इन्हीं सूत्रों की प्ररूपणा करने हेतु अगले देशामर्शक सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

उक्त ज्ञानावरणीय वेदनाकाल की अपेक्षा उत्कृष्ट भी है, अनुत्कृष्ट भी है, जघन्य भी है और अजघन्य भी है।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह भी देशामर्शक सूत्र है। इसलिये यहाँ शेष नौ पदों को और कहना चाहिये। देशामर्शक होने से ही शेष—सभी तेरहसूत्रों का इसमें अंतर्भाव बतलाना चाहिये।

उनमें यहाँ पहले प्रथम सूत्र की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—

ज्ञानावरणीयवेदना काल की अपेक्षा कथंचित् उत्कृष्ट, कथंचित् अनुत्कृष्ट, कथंचित् जघन्य और कथंचित् अजघन्य है। वह कथंचित् सादि भी है, क्योंकि पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर ज्ञानावरणीय की सभी स्थितियां सादि पायी जाती हैं। कथंचित् वह अनादि भी है, क्योंकि द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करने पर ज्ञानावरणीय की वेदना में अनादिता देखी जाती है। कथंचित् ध्रुव है,क्योंकि द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करने पर ज्ञानावरणीय की कालवेदना का विनाश नहीं पाया जाता है। कथंचित् वह अध्रुव है क्योंकि

कलि-तेजौज-संख्याविशेषाणामुपलंभात्। स्याद् युग्मा, कुत्रापि कालविशेषे कृतबादरयुग्मानां संख्याविशेषाणामुपलंभात्। स्यादोमा, कुत्रापि कालविशेषे परिहाणिदर्शनात्। स्याद् विशिष्टा, क्वापि वृद्धिदर्शनात्। स्यान्नोम-नोविशिष्टा, कुत्रापि बंधवशेन कालस्यावस्थानदर्शनात्।(१३)

संप्रति द्वितीयसूत्रस्यार्थः कथ्यते। तद्यथा—

उत्कृष्टज्ञानावरणीयवेदना जघन्या अनुत्कृष्टा च न भवति, प्रतिपक्षत्वात्। स्यादजघन्या, जघन्यादुपरिमा-शेषकालविकल्पावस्थितेऽजघन्ये उत्कृष्टस्यापि संभवात्। स्यात्सादिका, अनुत्कृष्टकालादुत्कृष्टकालोत्पत्तेः। ध्रुवपदं नास्ति, उत्कृष्टस्थितेः सर्वकालमवस्थानाभावात्। द्रव्यार्थिकनयेऽवलम्बितेऽपि न ध्रुवपदमस्ति। चतसृष्वपि गतिषु उत्कृष्टपदस्य कदाचित्संभवात्। स्यादध्रुवा, उत्कृष्टपदस्य सर्वकालमवस्थानाभावात्। स्यात् कृतयुग्मा, उत्कृष्टकाले बादरयुग्मकलितेजौजसंख्याविशेषाणामभावात्। स्यान्नोम-नोविशिष्टा, वर्द्धिते हापिते च उत्कृष्टत्व-विरोधात्। एवं उत्कृष्टज्ञानावरणीयवेदना पंचपदात्मिका (५)भवति।

अनुत्कृष्टज्ञानावरणीयवेदना स्याद् जघन्या, उत्कृष्टं मुक्त्वाधस्तनशेषविकल्पेऽनुत्कृष्टे जघन्यस्यापि संभवात्। स्यादजघन्या, अनुत्कृष्टस्याजघन्याविनाभावित्वात्। स्यात्सादिका, उत्कृष्टादनुत्कृष्टस्योत्पत्तेः अनुत्कृष्टादपि अनुत्कृष्टविशेषोत्पत्तिदर्शनाच्च। स्यादनादिका, द्रव्यार्थिकनयेऽवलंबितेऽनुत्कृष्टपदस्य बंधाभावात्। स्याद् ध्रुवा, द्रव्यार्थिकनयेऽवलंबितेऽनुत्कृष्टपदस्य विनाशाभावात्। स्यादध्रुवा, पर्यायार्थिकनयेऽवलंबिते अनुत्कृष्टपदस्य ध्रुवत्वाभावात्। स्यादोजा, कुत्रापि अनुत्कृष्टपदविशेषे द्विविधविषमसंख्योपलंभात्। स्याद्

पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर उसकी अस्थिरता देखी जाती है। कथंचित् वह ओज है, क्योंकि किसी कालविशेष में कलिओज और तेजोज संख्याविशेष पाये जाते हैं। कथंचित् वह युग्म है, क्योंकि किसी कालविशेष में कृतयुग्म और बादरयुग्म संख्याविशेष पाये जाते हैं। कथंचित् वह ओम है, क्योंकि किसी कालविशेष में हानि देखी जाती है। कथंचित् वह विशिष्ट है, क्योंकि किसी कालविशेष में वृद्धि देखी जाती है। कथंचित् वह नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि कहीं पर बंध के वश से कालका अवस्थान देखा जाता है। (१३)

अब द्वितीय सूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—

उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय वेदना जघन्य और अनुत्कृष्ट नहीं होती, क्योंकि ये उससे विरुद्ध हैं। कथंचित् वह अजघन्य है, क्योंकि जघन्य से ऊपर के समस्त कालविकल्पों में अवस्थित अजघन्य पद में उत्कृष्ट पद भी सम्भव है। कथंचित् वह सादि है, क्योंकि अनुत्कृष्ट काल से उत्कृष्ट काल उत्पन्न होता है। ध्रुव पद नहीं है, क्योंकि, उत्कृष्ट स्थिति का सर्वकाल में अवस्थान नहीं रहता। द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करने पर भी ध्रुव पद सम्भव नहीं है, क्योंकि चारों ही गतियों में उत्कृष्ट पद कदाचित् ही सम्भव होता है। कथंचित् वह अध्रुव है, क्योंकि उत्कृष्ट पद का सर्वकाल में अवस्थान नहीं है। कथंचित् कृतयुग्म है, क्योंकि उत्कृष्ट के काल में बादरयुग्म, कलिओज और तेजोज संख्याविशेषों का अभाव है। कथंचित् वह नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि वृद्धि व हानि के होने पर उत्कृष्टपने का विरोध पाया जाता है। इस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञानावरणीयवेदना पांच (५) पदरूप होती है।

अनुत्कृष्ट ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् जघन्य है, क्योंकि उत्कृष्ट को छोड़कर अधस्तन समस्त विकल्पों रूप अनुत्कृष्ट पद में जघन्य पद भी सम्भव है। कथंचित् वह अजघन्य है, क्योंकि अनुत्कृष्ट पद अजघन्य पद का अविनाभावी है। कथंचित् वह सादि है, क्योंकि उत्कृष्ट पद से अनुत्कृष्ट पद उत्पन्न होता है। तथा अनुत्कृष्ट से भी अनुत्कृष्ट विशेष की उत्पत्ति देखी जाती है। कथंचित् वह अनादि है, क्योंकि द्रव्यार्थिकनय का अवलम्बन करने पर अनुत्कृष्ट पद का बंध नहीं होता। कथंचित् वह ध्रुव है, क्योंकि द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन लेने पर अनुत्कृष्ट पद का विनाश नहीं होता। कथंचित् वह अध्रुव है, क्योंकि पर्यायार्थिक नय का

युग्मा, अनुत्कृष्टपदविशेषे, द्विविधसमसंख्यादर्शनात्। स्यादोमा, कुत्रापि हानितः समुत्पन्नानुत्कृष्टपदोपलंभात्। स्याद् विशिष्टा, कुत्रापि वृद्धितोऽनुत्कृष्टपदोत्पत्तेः। स्यान्नोम-नोविशिष्टा, अनुत्कृष्टजघन्येऽनुत्कृष्टपदविशेषे वार्पिते वृद्धिहान्योरभावात्। एवं ज्ञानावरणीयानुत्कृष्टवेदना एकादशपदात्मिका (११)।

एवं तृतीयसूत्रप्ररूपणा कृता।

संप्रति चतुर्थसूत्रप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—

जघन्यज्ञानावरणीयवेदना स्यादनुत्कृष्टा, अनुत्कृष्टजघन्यस्य ओघजघन्येन एकत्वदर्शनात्। स्यात्सादिका, अजघन्यात् जघन्यपदोत्पत्तेः। स्यादनादिका इति नास्ति, सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमयबंधे चरमसमयक्षीण-कषायसत्त्वे च द्रव्यार्थिकनयेऽवलंब्यमानेऽपि अनादित्वानुपलंभात्। स्यादध्रुवा। स्यात्कलिओजा, क्षीणकषायचरमसमयस्थिति-ग्रहणात्। स्यान्नोम-नोविशिष्टा। एवं जघन्यकालवेदना पंचप्रकारा स्वरूपेन षट्प्रकारा वा (५)।

एवं चतुर्थसूत्रप्ररूपणा गता।

इत्यादिप्रकारेण चतुर्दशमसूत्रपर्यंतमर्थं धवलाटीकातो ज्ञात्वा एतेषां भंगानामंकविन्यास एषो दृष्टव्यः-

१३	५	११	५	११	१०	१२	१२	१०	१०	१०	८	८	१०

अवलम्बन करने पर अनुत्कृष्ट पद ध्रुव नहीं है। कथंचित् वह ओज है, क्योंकि किसी अनुत्कृष्ट पद विशेष में दोनों प्रकार की विषम संख्यायें देखी जाती हैं। कथंचित् वह युग्म है क्योंकि किसी अनुत्कृष्ट पद विशेष में दोनों प्रकार की सम संख्यायें देखी जाती हैं। कथंचित् वह ओम है, क्योंकि कहीं पर हानि से उत्पन्न हुआ अनुत्कृष्ट पद पाया जाता है। कथंचित् वह विशिष्ट है, क्योंकि कहीं पर बुद्धि से अनुत्कृष्ट पद उत्पन्न होता है। कथंचित् वह नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि अनुत्कृष्ट भूत जघन्य पद की अथवा अन्य अनुत्कृष्ट पदविशेष की विवक्षा करने पर वृद्धि और हानि का अभाव रहता है। इस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म की अनुत्कृष्टवेदना ग्यारहपदरूप है। (११)

इस प्रकार तीसरे सूत्र की प्ररूपणा की गई हैं।

अब चतुर्थ सूत्र की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—

जघन्य ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट है, क्योंकि अनुत्कृष्ट जघन्य की ओघजघन्य से एकता देखी जाती है। कथंचित् वह सादि है, क्योंकि अजघन्य से जघन्य पद उत्पन्न होता है। कथंचित् अनादि यह पद नहीं है, क्योंकि सूक्ष्मसाम्परायिक के अंतिम समय संबंधी बन्ध होता है और क्षीणकषाय के अंतिम समय संबंधी सत्व में द्रव्यार्थिकनय का अवलम्बन करने पर भी अनादिपना नहीं पाया जाता है। कथंचित् वह अध्रुव है। कथंचित् वह कलिओज है, क्योंकि क्षीणकषाय के अंतिम समय संबंधी स्थिति का ग्रहण किया गया है। कथंचित् वह नोओम-नोविशिष्ट है। इस प्रकार जघन्य कालवेदना (५) प्रकार अथवा अपने स्वरूप से छह प्रकार भी है।

इस प्रकार चतुर्थ सूत्र की प्ररूपणा की गई है।

इत्यादि प्रकार से चौदहवें सूत्र तक अर्थ धवला टीका से जानकर उनके भंगों का विन्यास इस प्रकार जानना चाहिए।

१३	५	११	५	११	१०	१२	१२	१०	१०	१०	८	८	१०

अधुना शेषकर्मणां वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं सत्तण्णं कम्माणं।।५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा ज्ञानावरणीयस्य पदमीमांसा कृता तथा सप्तानां कर्मणां कर्तव्या, विशेषाभावात्।**

एवं द्वितीयस्थले प्रथमभेदपदमीमांसान्तर्गतभेदकथनपरत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

एवं अन्तःकृतौजानुयोगद्वारा पदमीमांसा।

इति समाप्तमनुयोगद्वारम्।

अधुना स्वामित्वभेदप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे।।६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**तत्र जघन्यं चतुर्विधं—नाम-स्थापना-द्रव्य-भावजघन्यं चेति। नामस्थापना-जघन्ये सुगमे स्तः। द्रव्यजघन्यं द्विविधं—आगमद्रव्यजघन्यं नोआगमद्रव्यजघन्यं चेति। तत्र जघन्यप्राभृतज्ञायकः अनुपयुक्त आगमद्रव्यजघन्यं। नोआगमद्रव्यजघन्यं त्रिविधं—ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्य-जघन्यभेदेन। ज्ञायकशरीरं भावि च गतं।**

तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यजघन्यं द्विविधं—ओघजघन्यमादेशजघन्यं च। तत्र ओघजघन्यं चतुर्विधं—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्चेति। तत्र द्रव्यजघन्यमेकः परमाणुः। क्षेत्रजघन्यमेक आकाशप्रदेशः।

अब शेष कर्मों की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार शेष सातों कर्मों के उत्कृष्ट आदि पदों की प्ररूपणा करना चाहिए।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिसप्रकार ज्ञानावरणीय कर्म की पदमीमांसा की गई है, उसी प्रकार शेष सात कर्मों की पदमीमांसा करना चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में प्रथम भेद की पदमीमांसा के अंतर्गत भेदों का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार ओजानुयोगद्वार गर्भित पदमीमांसा नाम का अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

अब स्वामित्व के भेद प्रतिपादित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व दो प्रकार का है—जघन्यपद में और उत्कृष्ट पद में।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उनमें से जघन्य के चार भेद हैं—नामजघन्य, स्थापनाजघन्य, द्रव्यजघन्य और भावजघन्य। इनमें नाम जघन्य और स्थापनाजघन्य सुगम हैं। द्रव्यजघन्य दो प्रकार का है—आगमद्रव्यजघन्य और नोआगमद्रव्यजघन्य। उनमें जघन्य प्राभृत का जानकार उपयोग रहित जीव आगमद्रव्यजघन्य है। नोआगमद्रव्यजघन्य तीन प्रकार का है—ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यजघन्य, भावी नोआगमद्रव्यजघन्य और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यजघन्य। इनमें ज्ञायकशरीर और भावी नोआगमद्रव्यजघन्य विदित हैं।

तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यजघन्य दो प्रकार का है—ओघजघन्य और आदेशजघन्य। उनमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से ओघजघन्य चार प्रकार का है। इनमें से एक परमाणु को द्रव्यजघन्य कहा

कालजघन्यमेकः समयः। भावजघन्यं परमाणौ एकः स्निग्धत्वगुणः।

आदेशजघन्यमपि द्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चतुर्विधं।

एवमेव उत्कृष्टमपि चतुर्विधं भवति। विस्तरेण धवलाटीकायां पठितव्यम्।

अधुना उत्कृष्टपदे ज्ञानावरणीयवेदनाप्रतिपादनार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा कालदो उक्कस्सिया कस्स ?।।७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्मिन् सूत्रे उत्कृष्टपदनिर्देशो जघन्यपदप्रतिषेधफलः। ज्ञानावरणनिर्देशः शेषकर्मप्रतिषेधफलः। कालनिर्देशः क्षेत्रादिप्रतिषेधफलः। कस्य इति पृच्छायां—किं देवस्य? किं नारकस्य? किं मनुष्यस्य? किं तिरश्चः इति।**

अस्योत्तररूपेण सूत्रमवतारितम् —

अण्णदरस्स पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छाइट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स कम्मभूमियस्स अकम्मभूमियस्स वा कम्मभूमिपडिभागस्स वा संखेज्जवासाउअस्स वा असंखेज्जवासाउअस्स वा देवस्स वा मणुस्सस्स वा तिरिक्खस्स वा णेरइयस्स वा इत्थिवेदस्स वा पुरिसवेदस्स वा

जाता है। एक आकाशप्रदेश क्षेत्रजघन्य है। कालजघन्य एक समय है। परमाणु में रहने वाला एक स्निग्धत्व गुण भावजघन्य है। आदेशजघन्य भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार प्रकार का है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट भी चार प्रकार का होता है। उसका विस्तृत वर्णन धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

अब उत्कृष्ट पद में ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व से उत्कृष्ट पद में ज्ञानावरणीय वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है?।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र में उत्कृष्ट पद का निर्देश जघन्य पद के प्रतिषेध के लिये किया गया है। ज्ञानावरण पद का निर्देश शेष कर्मों के प्रतिषेध के लिये है। कालका निर्देश क्षेत्र आदि का प्रतिषेध करने वाला है। 'किसके होती है' इससे वह क्या देव के होती है? क्या नारकी के होती है? क्या मनुष्य के होती है? और क्या तिर्यंच के होती है? इस प्रकार पृच्छा की गई है।

इसके उत्तर हेतु सूत्र अवतरित किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

अन्यतर पंचेन्द्रिय जीव के जो संज्ञी है, मिथ्यादृष्टि है, सब पर्याप्तियों से पर्याप्त है, कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज अथवा कर्मभूमिप्रतिभागोत्पन्न है, संख्यात वर्षायुष्क अथवा असंख्यातवर्षायुष्क है, देव-मनुष्य-तिर्यंच अथवा नारकी है, स्त्रीवेद, पुरुषवेद अथवा नपुंसकवेद में से किसी भी वेद से संयुक्त है, जलचर अथवा नभचर है, साकार

णउंसयवेदस्स वा जलचरस्स वा थलचरस्स वा खगचरस्स वा सागार-जागार-सुदोवजोगजुत्तस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उक्कस्सट्ठिदिसंकिलेसे वट्टमाणस्स, अधवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स तस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो उक्कस्सा।।८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूत्रे 'अण्णदरस्स' इति निर्देशः अवगाहनादीनां प्रतिषेधाभावप्रतिपादन-फलोऽस्ति। 'पंचिंदियस्स' इति निर्देशो विकलेन्द्रियप्रतिषेधफलः। ज्ञानावरणीयस्य उत्कृष्टस्थितिं पंचेन्द्रिया एव बध्नन्ति न च विकलेन्द्रियजीवा इत्युक्तं भवति।**

ते च पंचेन्द्रिया द्विविधाः—संज्ञिनोऽसंज्ञिनश्चेति। तत्रासंज्ञिनः उत्कृष्टस्थितिं न बध्नन्ति इति ज्ञापनार्थं 'सण्णिस्स' इति सूत्रे निर्दिष्टम्।

ते च संज्ञिपंचेन्द्रिया गुणस्थानभेदेन चतुर्दशविधाः। तत्र सासादनादिगुणस्थानवर्तिनः उत्कृष्टां स्थितिं न बध्नन्ति इति ज्ञापनार्थं सूत्रे 'मिच्छाइट्ठिस्स' इति निर्दिष्टमस्ति। ते च मिथ्यादृष्टयः पर्याप्तगता अपर्याप्तगताश्च द्विविधाः। तत्रापर्याप्तगता उत्कृष्टां स्थितिं न बध्नन्तीति ज्ञापनार्थं ''सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स'' इति भणितं।

पंचेन्द्रियपर्याप्तमिथ्यादृष्टयः कर्मभूमिजा अकर्मभूमिजाश्च द्विविधा। तत्र अकर्मभूमिजा उत्कृष्टां स्थितिं न बध्नन्ति, पंचदशकर्मभूमिषु उत्पन्ना एव उत्कृष्टस्थितिं बध्नन्ति इति ज्ञापनार्थं ''कम्मभूमियस्स वा'' इति भणितं।

भोगभूमिषु उत्पन्नानामिव देवनारकाणां स्वयंप्रभनगेन्द्रपर्वतस्य बाह्यभागप्रभृति यावत्स्वयंभूरमणसमुद्र

उपयोगवाला है, जागृत है, श्रुतोपयोग से युक्त है, उत्कृष्ट स्थिति के बंध योग्य उत्कृष्ट स्थिति संक्लेश में वर्तमान है अथवा कुछ मध्यम संक्लेश परिणाम से युक्त है उसके ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।।८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्र में 'अन्यतर' इस पद का निर्देश अवगाहना आदिकों के प्रतिषेध के अभाव को प्रतिपादित करता है। पंचेन्द्रिय पद का निर्देश विकलेन्द्रिय का प्रतिषेध करता है। इससे यह फलित होता है कि ज्ञानावरणीय की उत्कृष्ट स्थिति को पंचेन्द्रिय जीव ही बांधते हैं, विकलेन्द्रिय नहीं बांधते हैं।

वे पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—संज्ञी और असंज्ञी। उनमें असंज्ञी पंचेन्द्रिय उत्कृष्ट स्थिति को नहीं बांधते हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ सूत्र में संज्ञी पद का निर्देश किया है।

वे संज्ञी पंचेन्द्रिय गुणस्थानों के भेद से चौदह प्रकार के हैं। उनमें सासादनसम्यग्दृष्टि आदिक गुणस्थानवर्ती जीव उत्कृष्ट स्थिति को नहीं बांधते हैं इस बात के ज्ञापनार्थ मिथ्यादृष्टि पद का निर्देश किया है। वे मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के हैं। उनमें अपर्याप्तक जीव उत्कृष्ट स्थिति को नहीं बांधते हैं इस बात के ज्ञापनार्थ सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ ऐसा कहा है।

पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज इस तरह दो प्रकार के हैं। उनमें अकर्मभूमिज जीव उत्कृष्ट स्थिति को नहीं बांधते हैं, किन्तु पंद्रह कर्मभूमियों में उत्पन्न हुए जीव ही उत्कृष्ट स्थिति को बांधते हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ 'कर्मभूमिज' पद का निर्देश किया है।

भोगभूमियों में उत्पन्न हुए जीवों के समान देव-नारकियों के तथा स्वयंप्रभ पर्वत के बाह्य भाग से लेकर

इति अत्र कर्मभूमिप्रतिभागे उत्पन्नतिरश्चां च उत्कृष्टस्थितिबंधप्रतिषेधे प्राप्ते सति तन्निराकरणार्थं ''अकम्मभूमियस्स वा कम्मभूमिपडिभागस्स वा'' इति भणितं।

अत्र सूत्रे ''अकम्मभूमियस्स वा'' इत्युक्ते देवनारका गृहीतव्याः। ''कम्मभूमिपडिभागस्स वा'' इत्युक्ते स्वयंप्रभनगेन्द्रपर्वतस्य बाह्ये भागे समुत्पन्नानां ग्रहणं ज्ञातव्यम्।

''संखेज्जवासाउअस्स वा'' इत्युक्ते सार्धद्वयद्वीपसमुद्रोत्पन्नस्य कर्मभूमिप्रतिभागोत्पन्नस्य च ग्रहणं। ''असंखेज्जवासाउअस्स वा'' इत्युक्ते देवनारकाणां ग्रहणं, न समयाधिकपूर्वकोटिप्रभृति-उपरिमायुष्कसमन्वित-तिर्यग्मनुष्याणां ग्रहणं, पूर्वसूत्रेण तेषां विहितप्रतिषेधत्वात्। देवनारकेषु संख्यातवर्षायुष्काणां कथमसंख्यातवर्षायुष्कत्वमिति भणिते सत्यं न ते असंख्यातवर्षायुष्काः, किन्तु संख्यातवर्षायुष्काश्चैव, समयाधिक पूर्वकोटि प्रभृत्युपरिमायुष्क-विकल्पानां असंख्यातवर्षायुरन्तोऽभ्युपगमात्।

अथ कश्चिदाह—

समयाधिकपूर्वकोट्याः संख्यातवर्षरूपतायां सत्यां असंख्यातवर्षरूपत्वं कथं संभवति ?

आचार्यदेवः प्राह—

नैतत्, राजवृक्ष इव रूढिबलेन परित्यक्तस्वकार्थस्य असंख्यातवर्षशब्दस्य आयुर्विशेष वर्तमानस्य ग्रहणात्।

चातुर्गतिकसंज्ञि-पंचेन्द्रिय-पर्याप्तमिथ्यादृष्टीनां उत्कृष्टस्थितिबंधप्रतिषेधो नास्तीति ज्ञापनार्थं देवस्य वा मनुष्यस्य वा तिरश्चो वा नारकस्य वेति उक्तं भवति। त्रिष्वपि वेदेषु उत्कृष्टस्थितिबंधप्रतिषेधो नास्तीति ज्ञापनार्थं ''इत्थिवेदस्स वा पुरिसवेदस्स वा णउंसयवेदस्स वा'' इत्युक्तं भवति। चरणविशेषाभावप्रतिपादनार्थं

स्वयम्भूरमण समुद्र तक इस कर्मभूमिप्रतिभाग में उत्पन्न हुए तिर्यंचों के भी उत्कृष्ट स्थिति के बंध का प्रतिषेध प्राप्त होने पर उसका निराकरण करने के लिए ''अकर्मभूमिज के अथवा कर्मभूमिप्रतिभागोत्पन्न जीव के'' ऐसा कहा है।

यहाँ सूत्र में अकर्मभूमिज पद से देव-नारकियों का ग्रहण करना चाहिए। कर्मभूमिप्रतिभाग पद का निर्देश करने पर स्वयंप्रभ पर्वत के बाह्य भाग में उत्पन्न हुए जीवों का ग्रहण किया गया जानना चाहिए।

'संख्यातवर्षायुष्क' कहने पर अढ़ाई द्वीप-समुद्रों में उत्पन्न हुए तथा कर्मभूमिप्रतिभाग में उत्पन्न हुए जीव का ग्रहण करना चाहिए। 'असंख्यातवर्षायुष्क' से देव-नारकियों का ग्रहण किया गया है। इस पद से एक समय अधिक पूर्वकोटि उपरिम आयुविकल्पों से संयुक्त तिर्यंचों व मनुष्यों का ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि पूर्व सूत्र से उनका प्रतिषेध किया जा चुका है।

शंका—देव तथा नारकियों में जो संख्यातवर्षायुष्क हैं उनका फिर असंख्यातवर्ष आयुष्कपना कैसे बनेगा ?

समाधान—इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि जो संख्यातवर्षायुष्क देव हैं वे असंख्यातवर्षायुष्क नहीं हैं, परन्तु संख्यातवर्षायुष्क ही हैं। परन्तु यहाँ पर एक समय अधिक आदि पूर्वकोटि को लेकर आगे के आयुविकल्पों को असंख्यात वर्षायु के भीतर स्वीकार किया गया है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—एक समय अधिक पूर्वकोटि के संख्यातवर्षरूपता होते हुए भी असंख्यातवर्षरूपता कैसे सम्भव है?

आचार्य देव इसका समाधान देते हैं कि—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि राजवृक्ष (वृक्षविशेष) के समान 'असंख्यातवर्ष' शब्द रूढ़िवश अपने अर्थ को छोड़कर आयुविशेष में रहने वाला यहां ग्रहण किया गया है।

चारों गतियों के संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टियों के उत्कृष्ट स्थिति के बंध का प्रतिषेध नहीं है, इस बात के ज्ञापनार्थ देव के, मनुष्य के, तिर्यंच के अथवा नारकी के ऐसा कहा है। तीनों ही वेदों में उत्कृष्ट स्थिति के बंध का प्रतिषेध नहीं है, इस बात के ज्ञापनार्थ 'स्त्रीवेदी के अथवा पुरुष वेदी के अथवा नपुंसकवेदी के'

''जलचरस्स वा थलचरस्स वा खगचरस्स वा'' इति भणितं अस्ति। तत्र मत्स्यकच्छपादयो जलचराः, सिंह-वृक-व्याघ्रादयः स्थलचराः, गृद्ध-ढेंक-श्येनादयः खगचराः। दर्शनोपयोगयुक्ता उत्कृष्टस्थितिं न बध्नन्ति, ज्ञानोपयोगयुक्ताश्चैव बध्नन्ति इति ज्ञापनार्थं सूत्रे साकारनिर्देशः कृतः। सुप्ता उत्कृष्टस्थितिं न बध्नन्ति, जागृतजीवाश्चैव बध्नन्ति इति ज्ञापनार्थं ''जागार'' शब्दग्रहणं कृतम्। श्रुतोपयोगयुक्ताश्चैवोत्कृष्टस्थितिं बध्नन्ति, न मत्युपयोगयुक्ता इति ज्ञापनार्थं ''सुदोवजोगजुत्तस्स'' इति भणितं वर्तते।

उत्कृष्टायाः स्थितेः बंधप्रायोग्यसंक्लेशस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि सन्ति। तत्र चरमसंक्लेशस्थानेन उत्कृष्टस्थितिं बध्नातीति ज्ञापनार्थं उत्कृष्टस्थितेः उत्कृष्टस्थितिसंक्लेशे वर्तमानस्य इति भणितं। उत्कृष्टस्थिति-बंधप्रायोग्यशेषसंक्लेशस्थानैः उत्कृष्टस्थितिबंधस्य प्रतिषेधे प्राप्ते तैरपि बध्नातीति ज्ञापनार्थं ईषन्मध्यम-परिणामस्येति उक्तं।

अथवा, उत्कृष्टस्थितिबंधप्रायोग्यासंख्यातलोकमात्रसंक्लेशस्थानानि पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्र-खंडानि कृत्वा तत्र चरमखंडस्य उत्कृष्टस्थितिसंक्लेशो नाम। तत्र वर्तमानस्य उत्कृष्टस्थितिबंधो भवति। शेष द्विचरमादिखंडैः उत्कृष्टस्थितिबंधप्रतिषेधे प्राप्ते तैरपि उत्कृष्टस्थितिबंधो भवतीति ज्ञापनार्थमीषन्मध्यम-परिणामस्य इत्युक्तं भवति। एवं विधेन जीवेन ज्ञानावरणीयस्य त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिस्थितिबंधे प्रबद्धे तस्य ज्ञानावरणीयस्य वेदना कालतः उत्कृष्टा।

तात्पर्यमेतत्—चतुर्गतिषु यः कश्चित्संज्ञी पंचेन्द्रियः पर्याप्तः त्रिष्वपि वेदेषु कतमो वेदयुतो जलचरः

ऐसा कहा है। चरण अर्थात् गमनविशेष का अभाव बतलाने के लिये 'जलचर के अथवा थलचर के अथवा नभचर के' ऐसा कहा है। उनमें मत्स्य और कच्छप आदि जीव जलचर हैं, सिंह, वृक और बाघ आदि थलचर हैं तथा गृद्ध, ढेंक और श्येन आदि नभचर जीव हैं। दर्शनोपयोग से सहित जीव उत्कृष्ट स्थिति को नहीं बांधते हैं, किन्तु ज्ञानोपयोग युक्त जीव ही उसे बांधते हैं, इस बात के बतलाने के लिए 'साकार' पद का निर्देश किया गया है। सोया हुआ जीव उत्कृष्ट स्थिति को नहीं बांधता है, किन्तु जागृत जीव ही उसे बांधता है, इस बात के ज्ञापनार्थ 'जागृत' पद का ग्रहण किया गया है। श्रुतोपयोग युक्त जीव ही उत्कृष्ट स्थिति को बांधता है, न कि मतिउपयोग युक्त जीव, इस बात के ज्ञापनार्थ 'श्रुतोपयोग युक्त जीव के' ऐसा कहा है।

उत्कृष्ट स्थिति के बंध योग्य संक्लेशस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं उनमें से अंतिम संक्लेशस्थान के द्वारा उत्कृष्ट स्थिति को बांधता है, इस बात के ज्ञापनार्थ 'उत्कृष्ट स्थिति के बंध योग उत्कृष्ट स्थितिसंक्लेश में वर्तमान' ऐसा कहा है। अब इससे उत्कृष्ट स्थिति के बंध योग्य शेष संक्लेशस्थानों के द्वारा उत्कृष्ट स्थिति के बंध का निषेध प्राप्त होने पर उनसे भी उक्त स्थिति बांधता है, इस बात को बतलाने के लिए 'कुछ मध्यम परिणामों से युक्त जीवों के' ऐसा कहा गया है।

अथवा उत्कृष्ट स्थिति के बंध योग्य असंख्यातलोकप्रमाण संक्लेशस्थानों के पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र खण्ड करके उनमें अंतिम खण्ड का नाम उत्कृष्ट स्थितिसंक्लेश है। इस अंतिम खण्ड में रहने वाले जीव के उत्कृष्ट स्थिति का बंध होता है। अब इससे शेष द्विचरम आदिक खण्डों के द्वारा उत्कृष्ट स्थिति के बंध का प्रतिषेध प्राप्त होने पर उनसे भी उत्कृष्ट स्थिति का बंध होता है, इस बात के ज्ञापनार्थ 'कुछ मध्यम परिणामों से युक्त जीव के' ऐसा कहा है। इस प्रकार के विशेषणों से विशिष्ट जीव के द्वारा ज्ञानावरणीय के तीस कोडाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थितिबंध के बांधने पर उसके ज्ञानावरणीय की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।

तात्पर्य यह है कि—चारों गतियों में कोई संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीव तीनों ही वेदों में से कौन से

स्थलचरो नभश्चरो वा ज्ञानावरणीयकर्मणः त्रिंशत्कोटाकोटिसागरोपमां उत्कृष्टां स्थितिं बंधयितुं शक्नोति अस्यैव जीवस्य ज्ञानावरणीयस्य उत्कृष्टा वेदना कालापेक्षया भवति इति ज्ञातव्यम्। जघन्यस्थितिबंधस्य स्वामी कश्चिन्महामुनिरेव। अतः मध्यमस्थितिबंधयोग्यप्राप्ते सत्येव मोक्षोपायः पुरुषार्थो विधातव्यः।

संप्रति अनुत्कृष्टवेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।।९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**ततो व्यतिरिक्तं तद्व्यतिरिक्तं, उत्कृष्टस्थितिबंधव्यतिरिक्ता अनुत्कृष्टस्थितिवेदना भवतीत्युक्तं ज्ञातव्यं। सा चानुत्कृष्टवेदना अनेकप्रकारा अतः तस्याः स्वामिनोऽपि अनेकविधा भवन्ति। तेषां प्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—त्रिसहस्रवर्षप्रमाणामाबाधां कृत्वा त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिस्थितेः प्रबद्धायां उत्कृष्टस्थितिर्भवति। पुनः अन्येन जीवेन समयोनत्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिषु बद्धासु प्रथममनुत्कृष्टस्थानं भवति। अत्र उत्कृष्टस्थितिप्रमाणं संदृष्ट्या चत्वारिंशद्रूपाधिकद्विशतमात्रं (२४०) ज्ञातव्यम्। अनुत्कृष्ट-उत्कृष्टस्थितेः एकोनचत्वारिंशद्रूपाधिकद्विशतमात्रा (२३९)। ततः अन्येन जीवेन द्विसमयोनोत्कृष्टस्थितेः प्रबद्धायां द्वितीयमनुत्कृष्टस्थानं भवति। तस्य प्रमाणमेतत् (२३८)। एतेन क्रमेण आबाधाकाण्डकेन हीनोत्कृष्टस्थितेः प्रबद्धायां अन्यदनुत्कृष्टस्थानं भवति। अत्राबाधाकाण्डकप्रमाणं त्रिंशद्रूपाणि (३०)। एतस्यामुत्कृष्टस्थितौ अपनीते तत्रस्थस्थितिबंधस्थानं एतावन्मात्रं भवति (२१०)।**

एतस्याः विस्तरव्याख्यानं धवलाटीकायां पठितव्यम्।

वेद वाला जलचर, थलचर अथवा नभचर जीव ज्ञानावरणीय कर्म की तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति को बांध सकता है, उसी जीव के ज्ञानावरणीय की उत्कृष्ट वेदनाकाल की अपेक्षा होती है, ऐसा जानना चाहिए। जघन्यस्थितिबंध के स्वामी कोई महामुनि ही होते हैं। अतः मध्यमस्थितिबंध की योग्यता प्राप्त होने पर ही मोक्ष के उपाय का पुरुषार्थ करना चाहिए।

अब अनुत्कृष्ट वेदना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे भिन्न अनुत्कृष्ट वेदना होती है।।९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उससे व्यतिरिक्त—भिन्न तद्व्यतिरिक्त है, अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिबंध से भिन्न अनुत्कृष्ट स्थितिवेदना होती है ऐसा सूत्र का अर्थ जानना चाहिए। और वह अनुत्कृष्ट वेदना अनेक प्रकार की है, अतः उसके स्वामी भी अनेक प्रकार के होते हैं। उनकी प्ररूपणा करते हैं, वह इस प्रकार है—

तीन हजार वर्ष आबाधा करके तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम मात्र स्थिति के बांधने पर उत्कृष्ट स्थिति होती है। फिर अन्य जीव के द्वारा एक समय कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थिति के बांधने पर प्रथम अनुत्कृष्ट स्थान होता है। यहाँ पर उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण संदृष्टि में दो सौ चालीस (२४०) अंक है। अनुत्कृष्ट-उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण दो सौ उनतालीस (२३९) अंक है। उससे अन्य जीव के द्वारा दो समय कम उत्कृष्ट स्थिति के बांधने पर द्वितीय अनुत्कृष्ट स्थान होता है। उसका प्रमाण यह है-(२३८)। इस क्रम से आबाधा काण्डक से हीन उत्कृष्ट स्थिति के बांधने पर अन्य अनुत्कृष्ट स्थान होता है। यहाँ आबाधा काण्डक का प्रमाण तीस अंक रूप (३०) है। इसकी उत्कृष्ट स्थिति में से घटा देने पर वहाँ का स्थितिबंध स्थान इतना मात्र होता है-२४०-३०=२१०।

इसका विस्तृत व्याख्यान धवला टीका में देखना चाहिए।

संप्रति षट्कर्मणामुत्कृष्टस्वामित्वप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं छण्णं कम्माणं।।१०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**ज्ञानावरणीयस्य प्ररूपणानन्तरं आयुर्मुक्त्वा शेष षण्णां कर्मणां उत्कृष्टानुत्कृष्ट-स्वामित्वं प्ररूपयितव्यं। विशेषेण—मोहनीयस्योत्कृष्टा स्थितिः सप्ततिसागरोपमकोटाकोटिमात्रा। अनुत्कृष्टस्वामित्वे भण्यमाने संज्ञिपंचेन्द्रियमिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् चरमसमयसूक्ष्मसांपरायिकस्तावत् स्वामिनः इति वक्तव्यं।**

नाम-गोत्रयोरुत्कृष्टस्थितिर्विंशतिसागरोपमकोटाकोटिमात्रा। एतेषां अनुत्कृष्टस्थितिस्वामित्वे भण्यमाने संज्ञिपंचेन्द्रियमिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् चरमसमयायोगिस्वामीति वक्तव्यं। एवं वेदनीयस्यापि प्ररूपणा कर्तव्या। विशेषतस्तु—उत्कृष्टस्थितिः त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिमात्रा ज्ञातव्या।

संप्रत्यायुर्वेदना प्रतिपादनार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

सामित्तेण उक्कस्सपदे आउअवेयणा कालदो उक्कस्सिया कस्स ?।।११।।

अण्णदरस्स मणुसस्स वा पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स वा सण्णिस्स सम्माइट्ठिस्स वा (मिच्छाइट्ठिस्स वा) सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स

अब छह कर्मों के उत्कृष्ट स्वामित्व की प्ररूपणा हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

ज्ञानावरणीय के समान ही शेष छह कर्मों के उत्कृष्ट स्वामित्व की प्ररूपणा करना चाहिए।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ज्ञानावरणीय कर्म की प्ररूपणा के पश्चात् आयुकर्म को छोड़कर शेष छह कर्मों के उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट स्वामित्व की प्ररूपणा करना चाहिए।

विशेष बात यह है कि—मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्वामित्व का कथन करते समय संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि से लेकर अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसांपरायिक तक स्वामी है, ऐसा कहना चाहिये।

नाम व गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण है। इसकी अनुत्कृष्ट स्थिति के स्वामित्व का कथन करते समय संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि से लेकर चरमसमयवर्ती अयोगकेवली तक स्वामी हैं ऐसा कहना चाहिए। इसी प्रकार वेदनीय कर्म की भी प्ररूपणा कहना चाहिए। विशेष इतना है कि उसकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण है ऐसा जानना चाहिए।

अब आयुकर्म की वेदना को प्रतिपादित करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व की अपेक्षा उत्कृष्ट पद में आयु कर्म की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ?।।११।।

जो कोई मनुष्य या पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी है, सम्यग्दृष्टि (अथवा मिथ्यादृष्टि) है सब पर्याप्तियों से पर्याप्त है, कर्मभूमि या कर्मभूमिप्रतिभाग में उत्पन्न हुआ है, संख्यात

कम्मभूमियस्स वा कम्मभूमिपडिभागस्स वा संखेज्जवासाउअस्स इत्थिवेदस्स वा पुरिसवेदस्स वा णउंसयवेदस्स वा जलचरस्स वा थलचरस्स वा सागार-जागार-तप्पाओग्ग संकिलिट्ठस्स वा (तप्पाओग्गविसुद्धस्स वा) उक्कस्सियाए आबाधाए जस्स तं देव-णिरयाउअं पढमसमए बंधंतस्स आउअवेयणा कालदो उक्कस्सा।।१२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अवगाहना-कुल-जाति-वर्ण-विन्यास-संस्थानादिभेदैर्विशेषाभावप्ररूपणार्थं 'अण्णदरस्स'' इति भणितं उत्तरसूत्रे। देवानामुत्कृष्टायुषो मनुष्या एव बंधका, नारकाणां उत्कृष्टायुषो मनुष्याः संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यंचो वा बंधकाः इति ज्ञापनार्थं सूत्रे ''मणुस्सस्स वा पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स वा सण्णिस्स'' इति भणितं। देवानामुत्कृष्टायुः सम्यग्दृष्टयश्चैव बध्नन्ति, नारकाणामुत्कृष्टायुर्मिथ्यादृष्टयश्चैव बध्नन्तीति ज्ञापनार्थं ''सम्मादिट्ठिस्स वा मिच्छादिट्ठिस्स वा'' इति कथितं। षड्भिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तगता एव नारकाणामुत्कृष्टायुर्बध्नन्ति इति सूचनार्थं 'सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स'' इति निरूपितमस्ति।**

देवानामुत्कृष्टायुः पंचदशकर्मभूमिषु एव बध्यते, नारकाणामुत्कृष्टायुः पंचदशकर्मभूमिषु कर्मभूमिप्रतिभागेषु च बध्यते, इति सूचनार्थं ''कम्मभूमियस्स वा कम्मभूमिपडिभागस्स वा'' इति प्ररूपितं। देवनारकाणामुत्कृष्टायुर-संख्यातवर्षायुष्काः तिर्यञ्चो मनुष्या वा न बध्नन्ति, संख्यातवर्षायुष्काश्चैव बध्नन्ति इति ज्ञापनार्थं ''संखेज्जवा-

---

वर्ष की आयुवाला है, स्त्रीवेद अथवा पुरुषवेद या नपुंसकवेद से संयुक्त है, जलचर अथवा थलचर है, साकार उपयोग से सहित है, जागरूक है, तत्प्रायोग्य संक्लेश (अथवा विशुद्धि) से संयुक्त है, तथा जो उत्कृष्ट आबाधा के साथ देव व नारकियों की उत्कृष्ट आयु को बांधने वाला है, उसके बांधने के प्रथम समय में आयु कर्म की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।।१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अवगाहना-कुल-जाति-वर्ण-विन्यास और संस्थान आदि के भेदों से विशेषता का अभाव बतलाने हेतु उत्तर सूत्र में ''अण्णदरस्स'' यह कहा है।

देवों की उत्कृष्ट आयु के बंधक मनुष्य ही होते हैं तथा नारकियों की उत्कृष्ट आयु के बंधक मनुष्य अथवा संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच होते हैं यह बतलाने के लिये ''मणुस्सस्स वा पंचिंदिय तिरिक्खजोणियस्स वा सण्णिस्स' ऐसा कहा है। देवों की उत्कृष्ट आयु को सम्यग्दृष्टि ही बांधते हैं तथा नारकियों की उत्कृष्ट आयु को मिथ्यादृष्टि ही बांधते हैं, यह प्रकट करने के लिए ''सम्मादिट्ठिस्स वा मिच्छादिट्ठिस्स वा'' ऐसा निर्देश किया है। जो छह पर्याप्तियों से पर्याप्त हो चुके हैं वे ही नारकियों की उत्कृष्ट आयु को बांधते हैं, यह बतलाने के लिये ''सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स'' यह कहा है।

देवों की उत्कृष्ट आयु पंद्रह कर्मभूमियों में ही बंधती है तथा नारकियों की उत्कृष्ट आयु पंद्रह कर्मभूमियों और कर्मभूमि प्रतिभागों में भी बांधी जाती है, यह बतलाने के लिए ''कम्मभूमियस्स कम्मभूमिपडिभागस्स वा'' ऐसा कहा है। देवों व नारकियों की उत्कृष्ट आयु को असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच या मनुष्य नहीं बांधते हैं, किन्तु संख्यातवर्षायुष्क ही बांधते हैं यह बतलाने के लिये 'संखेज्जवासाउअस्स'' ऐसा निर्देश किया है। देवों

साउअस्स'' इति प्ररूपितं। देवनारकाणामुत्कृष्टायुर्बंधस्य त्रिभिर्वेदैर्विरोधो नास्तीति ज्ञापनार्थं ''इत्थिवेदस्स वा पुरिसवेदस्स वा णवुंसयवेदस्स वा'' इति भणितमस्ति।

अत्र भाववेदस्य ग्रहणमस्ति, अन्यथा द्रव्यस्त्रीवेदेनापि नारकाणामुत्कृष्टायुषो बंधप्रसंगात्। न च तेन सह तस्य बंधः—''आ पंचमी त्ति सीहा इत्थीओ जंति छट्ठिपुढवि त्ति'' एतेन सूत्रेण सह विरोधात्।

न च देवानामुत्कृष्टायुर्द्रव्यस्त्रीवेदेन सह बध्यते, ''णियमा णिग्गंथलिंगेण ''इति सूत्रेण सह विरोधात्। न च द्रव्यस्त्रीणां निर्ग्रंथत्वमस्ति, चेलादिपरित्यागेन विना तासां भावनिर्ग्रन्थत्वाभावात्। न च द्रव्यस्त्रीनपुंसक-वेदानां चेलादित्यागोऽस्ति, छेदसूत्रेण सह विरोधात्।

देवानामुत्कृष्टायुषो मनुष्याः संयताः स्थलचारिणो—भूमिजाः बंधकाः , नारकाणामुत्कृष्टायुषः स्थलचारिणो मनुष्याः मिथ्यादृष्टयो जलचर-स्थलचरसंज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यञ्चो मिथ्यादृष्टयो वा बंधकाः, इति ज्ञापनार्थं ''जलचरस्स वा थलचरस्स वा'' इति भणितम्।

अत्र कश्चिदाशंकते—

खगचारिणो देवनारकाणां उत्कृष्टायुः किन्न बध्नन्ति ?

आचार्यः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, नभश्चारिणां पक्षिणां सप्तमपृथ्वीनारकेषु अनुत्तरविमानवासिदेवेषु वा उत्पन्नं प्रति शक्तेरभावात्। अत्र न विद्याधराणां खगचरत्वमस्ति, विद्याया विना स्वभावतश्चैव गगनगमनसमर्थेषु खगचरत्वप्रसिद्धेः।

व नारकियों की उत्कृष्ट आयु के बंध का तीनों वेदों के साथ विरोध नहीं है यह बतलाने के लिये ''इत्थिवेदस्स वा पुरिसवेदस्स वा णवुंसयवेदस्स वा'' ऐसा कहा है।

यहाँ भाववेद का ग्रहण किया है, अन्यथा द्रव्यवेद का ग्रहण करने पर द्रव्य स्त्रीवेद के साथ भी नारकियों की उत्कृष्ट आयु के बंध का प्रसंग आता है। परन्तु उसके साथ नारकियों की उत्कृष्ट आयु का बंध होता नहीं है, क्योंकि ''पांचवीं पृथिवी तक सिंह और छठी पृथिवी तक स्त्रियां जाती हैं'' इस सूत्र के साथ विरोध आता है।

देवों की भी उत्कृष्ट आयु द्रव्य स्त्रीवेद के साथ नहीं बंधती, क्योंकि अथवा ''(अच्युत कल्प से ऊपर) नियमतः निर्ग्रंथ लिंग से ही उत्पन्न होते हैं'' इस सूत्र के साथ विरोध होता है। और द्रव्य स्त्रियों के निर्ग्रंथता संभव नहीं है, क्योंकि वस्त्रादिपरित्याग के बिना उनके भावनिर्ग्रंथता का अभाव है। द्रव्य स्त्रीवेदी व नपुंसकवेदी वस्त्रादि का त्याग करके निर्ग्रंथ लिंग धारण कर सकते हैं ऐसी आंशका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वैसा स्वीकार करने पर छेदसूत्र के साथ विरोध होता है।

देवों की उत्कृष्ट आयु के बंधक स्थलचारी भूमिज संयत मनुष्य तथा नारकियों की उत्कृष्ट आयु के बंधक स्थलचारी मिथ्यादृष्टि मनुष्य एवं जलचारी व स्थलचारी संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि हैं, इसके ज्ञापनार्थ ''जलचरस्स वा थलचरस्स वा'' ऐसा कहा है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

आकाशचारी खगचर जीव देव व नारकियों की उत्कृष्ट आयु क्यों नहीं बांधते हैं ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि नभचर पक्षियों के सप्तम पृथिवी के नारकियों में अथवा अनुत्तर विमानवासी देवों में उत्पन्न होने की सामर्थ्य नहीं है। यदि कहा जाय कि विद्याधर भी तो आकाशचारी हैं, वे वहाँ उत्पन्न हो सकते

दर्शनोपयोगे वर्तमानानां उत्कृष्टायुर्बंधो न भवति, किन्तु ज्ञानोपयोगे वर्तमानानामेव इति ज्ञापनार्थं सूत्रे ''सागार'' निर्देशः कृतः। सुप्तानामायुष उत्कृष्टबंधो न भवति इति सूचनार्थं ''जागार'' निर्देशः कृतः।

यथा शेषकर्मणां उत्कृष्टस्थितयः उत्कृष्टसंक्लेशेन बध्यन्ते, तथायुषः उत्कृष्टस्थितिः उत्कृष्टविशुद्धया उत्कृष्टसंक्लेशेन वा न बध्यते इति ज्ञापनार्थं ''तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स वा तप्पाओग्गविसुद्धस्स वा'' इति भणितमस्ति।

उत्कृष्टाबाधाया विना उत्कृष्टस्थितिर्न भवतीति ज्ञापनार्थं ''उक्कस्सियाए आबाहाए'' इति कथितं। द्वितीयादिसमयेषु आबाधा उत्कृष्टा न भवतीति पूर्वकोटित्रिभागमाबाधां कृत्वा ''देवणेरइयाणं उक्कस्साउअं बंधमाणपढमसमए चेव उक्कस्साउअवेयणा होदि'' इति भणितमस्ति।

तात्पर्यमेतत्—सूत्रे यत् ''इत्थिवेदस्स वा... णउंसयवेदस्स वा'' कथितमस्ति तद्भाववेदापेक्षयैव ज्ञातव्यम् न च द्रव्यवेदापेक्षया इति। द्रव्येण पुरुषवेदो भवितव्य एव, इत्थं सर्वत्र अवबोद्धव्यमस्ति।

संप्रति अनुत्कृष्टायुर्वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।।१३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**ततः उत्कृष्टाद् व्यतिरिक्तं तद्व्यतिरिक्तं सा अनुत्कृष्टा। एषानुत्कृष्टकालवेदना असंख्यातविकल्पा। तेन तस्याः स्वामित्वमपि असंख्यातविकल्पम्। तद्यथा—पूर्वकोटित्रिभागमाबाधां कृत्वा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुर्येन बद्धं स उत्कृष्टकालस्वामी। येन समयोनं प्रबद्धं स अनुत्कृष्टकालस्वामी। येन**

हैं, तो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि विद्या की सहायता के बिना जो स्वभाव से ही आकाशगमन में समर्थ हैं उनमें ही खगचरत्व की प्रसिद्धि है।

दर्शनोपयोग में वर्तमान जीवों के उत्कृष्ट आयु का बंध नहीं होता, किन्तु ज्ञानोपयोग में वर्तमान जीवों के ही उसका बंध होता है, यह बतलाने के लिए 'सागार' पद का निर्देश किया है। सोये हुए जीवों के उत्कृष्ट आयु का बंध नहीं होता, यह बतलाने के लिए 'जागार' पद का प्रयोग किया है।

जिस प्रकार शेष कर्मों की उत्कृष्ट स्थितियां उत्कृष्ट संक्लेश से बंधती हैं, वैसे ही आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट विशुद्धि अथवा उत्कृष्ट संक्लेश से नहीं बंधती है, यह बतलाने के लिये ''तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स वा तप्पाओग्गविसुद्धस्स वा'' ऐसा कहा है।

उत्कृष्ट आबाधा के बिना उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती है, यह ज्ञान कराने के लिये 'उक्कस्सियाए आबाधाए' ऐसा कहा है। चूँकि द्वितीयादिक समयों में आबाधा उत्कृष्ट होती नहीं है, अतः पूर्वकोटि के तृतीय भाग को आबाधा करके देवों व नारकियों की उत्कृष्ट आयु को बांधने वाले जीव के बंध के प्रथम समय में ही उत्कृष्ट आयुवेदना होती है, ऐसा कहा है।

तात्पर्य यह है कि—सूत्र में ''इत्थिवेदस्स वा.....णवुंसयवेदस्स वा'' कहा है, वह भाववेद की अपेक्षा ही जानना चाहिए, न कि द्रव्यवेद की अपेक्षा। क्योंकि द्रव्य से पुरुषवेद ही होना चाहिए ऐसा सर्वत्र जानना चाहिए।

अब आयुकर्म की अनुत्कृष्ट वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

उनसे भिन्न अनुत्कृष्ट वेदना होती है।।१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उससे अर्थात् उत्कृष्ट से भिन्न वह अनुत्कृष्ट कहलाती है। यह अनुत्कृष्ट कालवेदना असंख्यात भेदरूप है। इसीलिए उसके स्वामित्व के भी असंख्यात विकल्प हैं।

वह इस प्रकार हैं—पूर्वकोटि के तृतीय भाग को आबाधा करके तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु को

द्विसमयोनं प्रबद्धं सोऽपि अनुत्कृष्टकालस्वामी। येन त्रिसमयोनं प्रबद्धं सोऽपि अनुत्कृष्टकालस्वामी। एवमसंख्यात-भागहानिर्भूत्वा तावद् गच्छति यावद् जघन्यपरीतासंख्यातेन उत्कृष्टायुःस्थितिं खण्डयित्वा तत्रैकखण्डं परिहीन इति। पुनः उत्कृष्टायुरुत्कृष्टसंख्यातेन खण्डयित्वा तत्रैकखण्डपरिहीणे असंख्यातभागहान्या परिसमाप्तिः संख्यातभागहान्या आदिश्च भवति। एवं संख्यातभागहानिर्भूत्वा तावद् गच्छति यावद् उत्कृष्टायुषोऽर्द्धं समयोनं परिहीणमिति।

विस्तरेण धवलाटीकायां पठितव्यं।

अत्र षडनुयोगद्वारैर्जीवसमुदाहारः कथ्यते। तद्यथा—

उत्कृष्टे स्थाने जीवाः सन्ति। तदनंतरं अधस्तनस्थानेऽपि जीवाः सन्ति। एवं नेतव्यं यावदनुत्कृष्टजघन्य-स्थानं इति।

आयुषः उत्कृष्टस्थाने जीवा असंख्याताः, नारकोत्कृष्टायुर्बध्यमानजीवानामसंख्यातानामुपलंभात्। एवं सर्वत्र नेतव्यं। विशेषेण एकेन्द्रियप्रायोग्यस्थानेषु एकैकेषु जीवा अनन्ताः। तस्मात् अधस्तनेषु क्षपकश्रेण्यां एव लभ्यमानेषु संख्याताः सन्ति।

श्रेणिप्ररूपणा न शक्यते कर्तुं, विशिष्टोपदेशाभावात्। उत्कृष्टस्थानजीवप्रमाणेन सर्वस्थानजीवाः कियता कालेन अपह्रियन्ते? अनन्तेन कालेन। एवं त्रसकायिकप्रायोग्यसर्वस्थानजीवानां वक्तव्यम्। एकेन्द्रियप्रायोग्य-स्थानजीवप्रमाणेन सर्वजीवाः कियता कालेन अपह्रियन्ते ? अंतर्मुहूर्त्तेण। एवं सर्वत्र नेतव्यम्।

जिसने बांधा है वह काल की अपेक्षा उत्कृष्ट वेदना का स्वामी है। जिसने एक समय कम उत्कृष्ट आयु को बांधा है व अनुत्कृष्ट कालवेदना का स्वामी है। जिसने दो समय कम उत्कृष्ट आयु को बांधा है वह भी अनुत्कृष्ट कालवेदना का स्वामी है। जिसने तीन समय कम उत्कृष्ट आयु को बांधा है वह भी अनुत्कृष्ट कालवेदना का स्वामी है। इस प्रकार असंख्यातभागहानि होकर तब तक जाती है जब तक जघन्य परीतासंख्यात से उत्कृष्ट आयुस्थिति को खंडित करने पर उसमें एक खण्ड प्रमाण हानि नहीं हो जाती। पश्चात् उत्कृष्ट आयु को उत्कृष्ट संख्या से खंडित करके उसमें से एक खण्ड प्रमाण हानि के हो जाने पर असंख्यातभागहानि की समाप्ति और संख्यातभागहानि का प्रारंभ होता है। इस प्रकार संख्यातभागहानि होकर तब तक जाती है जब तक उत्कृष्ट आयु का एक समय कम अर्धभाग हीन नहीं हो जाता।

इसको विस्तार से धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

यहाँ छह अनुयोगद्वारों के द्वारा जीवसमुदाहार कहा जा रहा है। जो इस प्रकार है—

उत्कृष्ट स्थान में जीव हैं। उसके पश्चात् नीचे के स्थान में भी जीव हैं। इस प्रकार अनुत्कृष्ट-जघन्य स्थान तक ले जाना चाहिए।

आयु के उत्कृष्ट स्थान में असंख्यात जीव हैं, क्योंकि नारकियों की उत्कृष्ट आयु को बांधने वाले असंख्यात जीव पाये जाते हैं। इसी प्रकार सब स्थानों में जानना चाहिए। विशेषता इतनी है कि एकेन्द्रिय के योग्य स्थानों में से एक-एक स्थान में अनंत जीव हैं। उससे नीचे के क्षपकश्रेणी में ही पाये जाने वाले स्थानों में संख्यातजीव हैं।

श्रेणिप्ररूपणा करना शक्य नहीं है, क्योंकि इसके संबंध में विशिष्ट उपदेश का अभाव है।

प्रश्न—उत्कृष्ट स्थान संबंधी जीवों के प्रमाण से सब स्थानों के जीव कितने काल के द्वारा अपहृत होते हैं?

उत्तर—उक्त प्रमाण से वे अनन्त काल के द्वारा अपहृत होते हैं।

इसी प्रकार त्रसकायिक प्रायोग्य सब स्थानों के जीवों की प्ररूपणा करना चाहिए। एकेन्द्रिय प्रायोग्य

उत्कृष्टे स्थाने जीवाः सर्वजीवानां कियान् भागः ?

अनन्तिमभागः। एवं त्रसप्रायोग्यसर्वस्थानेषु वक्तव्यम्। वनस्पतिकायिकप्रायोग्येषु स्थानेषु सर्वस्थानजीवानामसंख्यातभागः। एवं सर्वत्र वनस्पतिप्रायोग्यस्थानेषु वक्तव्यम्।

जघन्यस्थाने सर्वस्तोका जीवाः। उत्कृष्टे स्थाने जीवा असंख्यातगुणाः। अजघन्य-अनुत्कृष्टेषु स्थानेषु जीवा अनंतगुणाः। अनुत्कृष्टे स्थाने जीवा विशेषाधिकाः। अजघन्येषु स्थानेषु जीवा विशेषाधिकाः। सर्वेषु स्थानेषु जीवा विशेषाधिकाः।

तात्पर्यमत्र—एतत्सर्वं पठित्वा सिद्धान्तग्रंथपठन-पाठनयोः कालशुद्ध्यादयः विधिवत् करणीयाः ज्ञानावरणकर्मक्षयार्थं श्रुतज्ञानवृद्ध्यर्थं स्वात्मसिद्ध्यर्थं चेति।

एवं तृतीयस्थले स्वामित्वे उत्कृष्टपदापेक्षया कालवेदनाकथनत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

एवमुत्कृष्टस्वामित्वं समाप्तम्।

संप्रति जघन्यपदे ज्ञानावरणीयवेदना निरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेदणा कालदो जहण्णिया कस्स ?।।१४।।

स्थानों संबंधी जीवों के प्रमाण से सब जीव कितने काल द्वारा अपहृत होते हैं? उक्त प्रमाण से वे अंतर्मुहूर्त काल के द्वारा अपहृत होते हैं। इसी प्रकार सर्वत्र ले जाना चाहिये।

उत्कृष्ट स्थान में जीव सब जीवों के कितनेवें भाग प्रमाण हैं ?

वे उनके अनंतवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार त्रस प्रायोग्य सब स्थानों में कहना चाहिए। वनस्पतिकायिक प्रायोग्य स्थानों में सब स्थानों के जीवों के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार सर्वत्र वनस्पतिकायिक प्रायोग्य स्थानों में कहना चाहिये।

जघन्य स्थानों में सबसे स्तोक जीव हैं। उत्कृष्ट स्थान में उनसे असंख्यातगुणे जीव हैं। अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थानों में जीव उनसे अनंतगुणे हैं। अनुत्कृष्ट स्थान में जीव उनसे विशेष अधिक हैं। अजघन्य स्थानों में जीव उनसे विशेष अधिक हैं। सब स्थानों में जीव उनसे विशेष अधिक हैं।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—यह सब वर्णन पढ़कर यह समझना है कि ज्ञानावरण कर्म को क्षय करने के लिये, श्रुतज्ञान की वृद्धि एवं स्वात्म सिद्धि के लिए सिद्धांतग्रंथ के पठन-पाठन में कालशुद्धि आदि विधिवत् करना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में स्वामित्व में उत्कृष्ट पद की अपेक्षा कालवेदना का कथन करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

अब जघन्यपद में ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना का निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व से जघन्य पद में ज्ञानावरणीय की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य किसके होती है ?।।१४।।

अण्णदरस्स चरिमसमयछदुमत्थस्स तस्स णाणावरणीयवेदणा कालदो जहण्णा।।१५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**''जहण्णपदे'' इति पूर्वोक्ताधिकारस्मरणार्थं निर्दिष्टं। शेषकर्मप्रतिषेधार्थो ''णाणावरणीय'' निर्देशः। 'काल' निर्देशः क्षेत्रादिप्रतिषेधफलः।**

पूर्वानुपूर्विक्रमं मुक्त्वा पश्चादानुपूर्व्या जघन्यस्वामित्वप्ररूपणा किमर्थं क्रियते ?

नैतत्, तिसृभिरपि आनुपूर्वीभिः प्ररूपिते दोषो नास्ति इति ज्ञापनार्थं तथाप्ररूपणात्। अथवा, जघन्यस्थाना-दुत्कृष्टस्थानं संगृहीताशेषस्थानविकल्पात् प्रधानमिति ज्ञापनार्थं पूर्वमुत्कृष्टस्थानप्ररूपणा कृता। शेषं सुगमम्।

अधुना उत्तरसूत्रेण निरूप्यते—

अवगाहनादिभेदैर्जघन्यकालविरोधाभावप्ररूपणार्थं सूत्रे 'अण्णदरस्स' इति भणितमस्ति। छद्म नाम आवरणमत्र, तस्मिन् तिष्ठतीति छद्मस्थः, ''तस्स छदुमत्थस्स'' इति निर्देशेन केवलिजिनानां प्रतिषेधः कृतः। ''चरिमसमय-छदुमत्थस्स'' इति निर्देशो द्विचरमादिछद्मस्थप्रतिषेधफलः।

क्षीणकषायद्विचरमसमये किन्न जघन्यस्वामित्वं दीयते ?

न, तत्र ज्ञानावरणीयस्य द्विसमयिकस्थितिदर्शनात्।

जो कोई भी जीव छद्मस्थ अवस्था के अंतिम समय में वर्तमान है उसके काल की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म की जघन्य वेदना होती है।।१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—''जहण्ण पदे'' अर्थात् ''जघन्यपद में'' यह कथन पूर्वोक्त अधिकार का स्मरण कराने के लिए किया है। शेष कर्मों का प्रतिषेध करने के लिये ''ज्ञानावरणीय' पद का निर्देश किया है। काल के निर्देश का प्रयोजन क्षेत्रादिकों का प्रतिषेध करना है।

शंका—पूर्वानुपूर्वीक्रम को छोड़कर पश्चादानुपूर्वी से जघन्य स्वामित्व की प्ररूपणा किसलिये की जा रही है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि तीनों ही आनुपूर्वियों से प्ररूपणा करने पर कोई दोष नहीं होता है, यह बतलाने के लिए यहाँ पश्चादानुपूर्वीक्रम से प्ररूपणा की गई है। अथवा जघन्य स्थान की अपेक्षा समस्त स्थान भेदों का संग्रहकर्ता होने से उत्कृष्ट स्थान प्रधान है, यह ज्ञात कराने के लिये पहिले उत्कृष्ट की प्ररूपणा की गई है।

शेष कथन सुगम है।

अब उत्तरसूत्र की अपेक्षा निरूपण करते हैं—

अवगाहना आदि के भेदों से जघन्य काल वेदना के होने में कोई विरोध नहीं हैं, यह बतलाने के लिये सूत्र में 'अन्यतर' पद का ग्रहण किया गया है। छद्म शब्द का अर्थ आवरण है, उसमें जो स्थिति है वह छद्मस्थ कहा जाता है। यहाँ छद्मस्थ पद का निर्देश करने से केवली का प्रतिषेध किया गया है। अंतिम समयवर्ती छद्मस्थ इस निर्देश का फल द्विचरम-त्रिचरम आदि समयों में वर्तमान छद्मस्थों का प्रतिषेध करना है।

शंका—क्षीणकषाय गुणस्थान के द्विचरम समय में जघन्य वेदना का स्वामित्व क्यों नहीं दिया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहां ज्ञानावरणीय की दो समय प्रमाण स्थिति देखी जाती है।

एवं त्रिचरमादिछद्मस्थेषु अपि जघन्यस्वामित्वाभावो ज्ञात्वा वक्तव्यः। तस्मात् क्षीणकषायचरमसमये एकसमयिकस्थितिज्ञानावरणकर्मस्कंधे जघन्यस्वामित्वं भवतीति गृहीतव्यम्।

अधुना अजघन्यवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।१६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतस्माद् यद् व्यतिरिक्तं तदजघन्यकालवेदना भवति। सा चानेकविकल्पा। तेन तद्भेदप्ररूपणाद्वारेण तेषां स्थानानां स्वामित्वप्ररूपणं करिष्यन्ति आचार्यदेवाः। तद्यथा—**

एकः क्षपकः परिपाट्या कर्माणि क्षपयित्वा चरमसमयवर्ती क्षीणकषायगुणस्थानी जातः। तस्य क्षीणकषायनाम्नो द्वादशमगुणस्थानवर्तिमहामुनेः चरमसमये एका स्थितिरेकसमयकालप्रमाणा स्थिता। तस्य महामुनेः ज्ञानावरणीयवेदना कालतो जघन्या। एषो जघन्यकालस्वामी। पुनः अन्यैको जीवः पूर्वविधानेन आगत्य द्विचरमसमयक्षीणकषायवर्ती जातः सोऽजघन्यकालस्वामी। एतद् द्वितीयस्थानं कथितम्। पुनः अन्यो जीवः त्रिचरमसमयक्षीणकषायवर्ती जातः। एषोऽपि अजघन्यकालस्वामी। तत्तृतीयस्थानं कथितम्। एवं चतुर्थादिक्रमेण अवतारयितव्यं यावत् क्षीणकषायकालस्य संख्यातभाग इति। एते निरन्तरस्थानस्वामिनो भवन्ति।

विस्तरेण धवलाटीकायां द्रष्टव्यं।

एवं संख्यातपल्योपमैर्हीनं त्रिंशत्कोटाकोटीमात्राजघन्यस्थानविकल्पा ज्ञानावरणीयस्य प्ररूपिताः।

इसी प्रकार त्रिचरम आदि छद्मस्थों में भी जघन्य वेदना के स्वामित्व का अभाव जानकर कहना चाहिये। इसीलिये क्षीणकषाय के अंतिम समय में ज्ञानावरण कर्मस्कंध की एक समयवाली स्थिति युक्त जीव जघन्य वेदना का स्वामी होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

अब अजघन्य वेदना का निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

जघन्य वेदना से भिन्न अजघन्य वेदना होती है।।१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस जघन्यवेदना से जो भिन्न है वह अजघन्य कालवेदना होती है। और वह अनेक भेदरूप है। इसलिये उसके भेदों की प्ररूपणा करते हुए उन स्थानों के स्वामित्व की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—

कोई एक क्षपक परिपाटी से कर्मों का क्षपण करके क्षीणकषाय के अंतिम समयवर्ती हुआ। उन क्षीणकषाय नाम वाले बारहवें गुणस्थानवर्ती महामुनि के अंतिम समय में एक समय काल प्रमाण स्थिति रहती है। उन महामुनि के ज्ञानावरणीय की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है। यह जघन्य काल वेदना का स्वामी है। पुनः अन्य कोई एक जीव पूर्व विधि से आ करके क्षीणकषाय के द्विचरम समयवर्ती हुआ। वह अजघन्य कालवेदना का स्वामी है। यह द्वितीय स्थान है। पुनः कोई एक और जीव क्षीणकषाय के त्रिचरम समयवर्ती हुआ वह भी अजघन्य काल वेदना का स्वामी है। वह तीसरा स्थान है। इसी प्रकार चतुर्थ-पंचम आदि के क्रम से क्षीणकषाय काल के संख्यातवें भाग तक उतारना चाहिये। ये सब निरन्तर स्थानों के स्वामी होते हैं।

विस्तार से इसका वर्णन धवलाटीका में देखना चाहिए।

इस प्रकार संख्यात पल्योपमों से हीन तीस कोड़ाकोड़ी मात्र ज्ञानावरणीय कर्म के अजघन्य स्थान विकल्प प्ररूपित किये गये हैं।

अत्र जीवसमुदाहारप्ररूपणा यथानुत्कृष्टस्थानेषु प्ररूपिता तथा प्ररूपयितव्या।

दर्शनावरणान्तरायकर्मवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं।।१७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा ज्ञानावरणीयस्य जघन्याजघन्यस्थितिस्वामित्वप्ररूपणा कृता तथा दर्शनावरणीय-अंतरायाणां अपि कर्तव्या, विशेषाभावात्।**

अधुना वेदनीयवेदनाप्रतिपादनार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

सामित्तेण जहण्णपदे वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णिया कस्स ?।।१८।।

अण्णदरस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स तस्स वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णा।।१९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अवगाहना-संस्थानादिभिर्विशेषो नास्तीति 'अण्णदरस्स' सूत्रे कथितं। भव्यसिद्धिको नाम अयोगिभट्टारकः। तस्य चरमसमये एका स्थितिः एकसमयकाला भवतीति भव्यसिद्धिकचरमसमये जघन्यस्वामित्वं कथितं।**

द्विचरमादिसमयेषु जघन्यस्वामित्वं किन्न भण्यते?

यहाँ जीवसमुदाहार की प्ररूपणा जैसे अनुत्कृष्ट स्थानों में की गई है वैसे ही करनी चाहिए।

अब दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार दर्शनावरणीय एवं अंतराय कर्मों की जघन्य व अजघन्य स्थिति के स्वामित्व की प्ररूपणा करना चाहिये।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जैसे ज्ञानावरणीय कर्म की जघन्य व अजघन्य स्थिति के स्वामित्व की प्ररूपणा की है वैसे ही दर्शनावरणीय और अंतराय की भी करना चाहिये, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब वेदनीय कर्म की वेदना के प्रतिपादन हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व से जघन्य पद में वेदनीय कर्म की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य किसके होती है?।।१८।।

जो कोई जीव भव्यसिद्धिककाल के अंतिम समय में स्थित है उसके वेदनीय की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है।।१९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अवगाहना व संस्थान आदिकों से कोई विशेषता नहीं होती है, यह बतलाने के लिये सूत्र में 'अन्यतर' पद का प्रयोग किया है। भव्यसिद्धिक से अयोगकेवली भट्टारक विवक्षित हैं। उनके अंतिम समय में एक समय काल वाली एक स्थिति होती है।

शंका—अयोगकेवली के द्विचरमादिक समयों में जघन्य स्वामित्व क्यों नहीं बतलाया जाता है ?

नैतत्, तत्र वेदनीयस्य अयोगिकेवलिनः एकसमयस्थितेः अनुपलंभात्।

तात्पर्यमत्र — अयोगिकेवलिनां भक्त्यैव अयोगिकेवलिपदप्राप्तिर्भविष्यति। तत्पदप्राप्त्यर्थमेव स्वाध्यायादिसर्वः प्रयासोऽस्माकमिति।

अधुना अजघन्यवेदनाप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।२०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **ततो जघन्याद् व्यतिरिक्तं तद्व्यतिरिक्तं, सा अजघन्या स्थितिवेदना भवति। यथा ज्ञानावरणीयस्य अजघन्यस्थानप्ररूपणा कृता तथा कर्तव्या। विशेषेण — अयोगिचरमसमयात् तावन्निरंतर-स्थानप्ररूपणा कर्तव्या यावदयोगिप्रथमसमय इति। पुनः सयोगिकेवलिचरमसमये स्थितस्य सान्तरमजघन्यस्थानं भवति।**

कुतः ?

तत्र चरमफाल्या अन्तर्मुहूर्त्तमात्राया दर्शनात्।

पुनः अधस्तनरूपोनोत्कीरणकालमात्रनिरन्तरस्थानेषु उत्पन्नेषु सकृत् सान्तरस्थानमुत्पद्यते, तत्रान्तर्मुहूर्त-स्थानान्तरदर्शनात्। एवं नेतव्यं यावद् लोकपूरणं समुद्घातं कृत्वा स्थितसयोगिकेवली इति। ततः प्रतरगतकेवलिनि भगवति अन्यमपुनरुक्तसान्तरस्थानं।

कुतः ?

लोकपूरणसमुद्घातगतकेवलिस्थितिसत्त्वात् प्रतरगतकेवलिस्थितिसत्त्वस्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि अयोगकेवली के उक्त समयों में वेदनीय की एक समयवाली स्थिति नहीं पायी जाती है।

तात्पर्य यह है कि — अयोगिकेवली भगवन्तों की भक्ति से ही अयोगिकेवली पद की प्राप्ति होगी। उस पद की प्राप्ति हेतु ही हम सभी के लिए स्वाध्याय आदि सभी प्रयास हैं।

अब अजघन्य वेदना का प्ररूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

उससे भिन्न अजघन्य स्थिति वेदना होती है।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उससे अर्थात् जघन्य स्थिति वेदना से जो भिन्न वेदना है वह अजघन्य स्थिति वेदना है। यहाँ जैसे ज्ञानावरणीय के अजघन्य स्थानों की प्ररूपणा की गई है वैसे ही वेदनीय के भी करना चाहिए। विशेष इतना है कि अयोगकेवली के अंतिम समय से लेकर अयोगकेवली के प्रथम समय तक निरंतर स्थानों की प्ररूपणा करना चाहिए। फिर सयोगकेवली गुणस्थान के अंतिम समय में स्थित भगवान के सान्तर अजघन्य स्थान होता है।

ऐसा क्यों है ?

क्योंकि, वहाँ अंतिम फालि अन्तर्मुहूर्त प्रमाण देखी जाती है।

पुनः नीचे एक कम उत्कीरणकाल प्रमाण निरन्तर स्थानों के उत्पन्न होने पर एक बार सान्तर स्थान उत्पन्न होता है।

कैसे ?

क्योंकि वहाँ अंतर्मुहूर्त स्थानान्तर देखा जाता है। इस प्रकार लोकपूरण समुद्घात को करके स्थित

ततः कपाटगतकेवलिनि भगवति अन्यं सान्तरमपुनरुक्तस्थानं, प्रतरगतकेवलिस्थितिसत्त्वात् कपाटगतकेवलि-भगवत्स्थिति सत्त्वस्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्। ततः दण्डगतकेवलिनि सान्तरमपुनरुक्तस्थानं, कपाटगत-केवलिस्थितिसत्त्वात् दण्डगतकेवलिस्थितिसत्त्वस्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्। दण्डाभिमुखकेवलिनि अन्यं सान्तरमपुनरुक्तस्थानं, दण्डगतकेवलिस्थितिसत्त्वात् एतस्मिन् असंख्यातगुणस्थितिसत्त्वदर्शनात्। एतस्मात् प्रभृति अधो निरन्तरस्थानानि तावदुत्पद्यते यावत् क्षीणकषायचरमसमय इति। अत्रान्तरे स्थिति काण्डकाभावात्। एतस्मादधः निरन्तरसान्तरक्रमेण ज्ञानावरणीयविधानेन अजघन्यस्थानप्ररूपणा कर्तव्या, विशेषाभावात्।

तात्पर्यमत्र — स्थानप्ररूपणामधीत्य स्वात्मशुद्ध्यर्थं स्वशुद्धपरमात्मतत्त्वमेवाभ्यसनीयमिति।

संप्रति आयुर्नामगोत्रजघन्यवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं आउअ-णामगोदाणं।।२१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **यथा वेदनीयस्य जघन्याजघन्यस्वामित्वप्ररूपणा कृता तथा एतेषां अपि जघन्य-अजघन्यस्वामित्वं वक्तव्यं, विशेषाभावात्। विशेषेण — आयुषोऽजघन्यस्वामित्वप्ररूपणायां यो विशेषोऽस्ति स एव वक्ष्यते। तद्यथा — भव्यसिद्धिक द्विचरमसमये एकमजघन्यस्थानं। पुनः त्रिचरमसमये द्वितीयमजघन्य-स्थानं। पुनः चतुर्थचरमसमये तृतीयमजघन्यस्थानं। अत्र द्विगुणवृद्धिर्भवति। एतस्मात् प्रभृति संख्यातगुणवृद्धि-**

सयोगकेवली तक ले जाना चाहिये। पश्चात् प्रतरसमुद्घातगत केवली भगवान में अन्य अपुनरुक्त सांतर स्थान होता है। क्योंकि लोकपूरण समुद्घातगत केवली के स्थितिसत्व से प्रतरसमुद्घातगत केवली का स्थितिसत्व असंख्यातगुणा पाया जाता है। पश्चात् कपाटसमद्घातगत केवली में अन्य सान्तर अपुनरुक्त स्थान होता है, क्योंकि प्रतरगत केवली के स्थितिसत्व के कपाटगत केवली का स्थितिसत्व असंख्यातगुणा पाया जाता है। पश्चात् दण्डसमद्घातगत केवली में अन्य सान्तर अपुनरक्त स्थान होता है, क्योंकि कपाटसमुद्घातगत केवली के स्थितिसत्व से दण्डसमुद्घातगत केवली का स्थितिसत्व असंख्यातगुणा पाया जाता है। दण्डसमुद्घात के अभिमुख हुये केवली में अन्य सान्तर अपुनरुक्त स्थान होता है, क्योंकि दण्डसमुद्घातगत केवली के स्थितिसत्व से उसके अभिमुख हुए केवली में असंख्यातगुणा स्थितिसत्व देखा जाता है। यहाँ से लेकर नीचे क्षीणकषाय के अंतिम समय तक निरंतर स्थान उत्पन्न होते हैं, क्योंकि इस बीच में स्थितिकाण्डक का अभाव है। इसके नीचे निरंतर और सान्तर क्रम से ज्ञानावरणीय के विधान के अनुसार अजघन्य स्थानों की प्ररूपणा करना चाहिए, क्योंकि उनमें कोई विशेषता नहीं है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — स्थान प्ररूपणा को पढ़कर निज आत्म शुद्धि के लिए अपने शुद्ध परमात्मतत्त्व का ही अभ्यास करना चाहिए।

अब आयु-नाम और गोत्र कर्म की जघन्य वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार आयु, नाम और गोत्र कर्मों के जघन्य एवं अजघन्य स्वामित्व की प्ररूपणा है।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जैसे वेदनीय कर्म के जघन्य व अजघन्य स्वामित्व की प्ररूपणा की गई है, वैसे ही इन तीनों कर्मों के जघन्य व अजघन्य स्वामित्व की प्ररूपणा करना चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है। विशेष इतना है कि-आयु कर्म के अजघन्य स्वामित्व की प्ररूपणा में जो

भूत्वा तावद् गच्छति यावदुत्कृष्टसंख्यातगुणकारस्वरूपेण द्वौ समयौ प्रविष्टौ इति। एतत्प्रकरणं धवलाटीकायां पठितव्यम्।

संप्रति मोहनीयस्य जघन्याजघन्यवेदनानिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यन्ते —

सामित्तेण जहण्णपदे मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णिया कस्स?।।२२।।

अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमयसकसाइयस्स मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णा।।२३।।

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।२४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**उत्तरसूत्रे 'खवगस्स' इति निर्देशः उपशामक प्रतिषेधफलः। 'सकसाइयस्स' इति निर्देशः क्षीणकषायादिप्रतिषेधफलः। द्विचरमादिसकषायिकप्रतिषेधार्थं चरमसमयेन सकषायी विशेषितः। अत्र चरमसमयसूक्ष्मसांपरायिकस्य दशमगुणस्थानवर्तिनो मोहनीयवेदना जघन्या भवतीत्युक्तं भवति।**

ज्ञानावरणाजघन्यप्ररूपकसूत्रस्येव मोहनीयस्यापि अजघन्यवेदना प्ररूपयितव्या।

कुछ विशेषता है उसे कहते हैं। यथा—भव्यसिद्धिक जीव के द्विचरम समय में एक अजघन्य स्थान होता है। पश्चात् त्रिचरम समय में द्वितीय अजघन्य स्थान होता है। चतुश्चरम समय में तृतीय अजघन्य स्थान होता है। यहाँ दुगुणी वृद्धि होती है। यहाँ से संख्यातगुणवृद्धि प्रारंभ होकर तब तक जाती है जब तक कि उत्कृष्ट संख्यात गुणकार स्वरूप से दो समय प्रविष्ट नहीं हो जाते हैं। यह प्रकरण धवलाटीका में पढ़ना चाहिए।

अब मोहनीय कर्म की जघन्य-अजघन्य वेदना का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व से जघन्य पद में मोहनीय कर्म की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य किसके होती है ?।।२२।।

जो कोई क्षपक सकषाय अवस्था के अंतिम समय में स्थित है उसके मोहनीय कर्म की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है।।२३।।

उससे भिन्न अजघन्य वेदना होती है।।२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उत्तरसूत्र में "खवगस्स" अर्थात् क्षपक पद के निर्देश का प्रयोजन उपशामक का प्रतिषेध करना है। "सकसाइस्स" अर्थात् सकषाय इस पद का निर्देश क्षीणकषाय आदि का प्रतिषेध करना है। द्विचरम सकषायी आदि का प्रतिषेध करने के लिए सकषायी को 'चरम समय' विशेषण से विशेषित किया गया है। अभिप्राय यह है कि सूक्ष्मसाम्परायिक नामके दशवें गुणस्थान के अंतिम समय में स्थित जीव के मोहनीयकर्म की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है।

ज्ञानावरण के जघन्य स्वामित्व की प्ररूपणा करने वाले सूत्र के समान मोहनीय की भी अजघन्य वेदना की प्ररूपणा करना चाहिए।

कोटाकोटिसागरवर्षेभ्यः पूर्वं भगवन्तः ऋषभदेवाः आहारार्थं विहरन्तोः हस्तिनापुरक्षेत्र-मागताः। अत्र जातिस्मरणनिमित्तेन आहारविधिं ज्ञात्वा नवधाभक्तिपूर्वकं भगवद्भ्यः आहारं इक्षुरसं प्रदाय पंचाश्चर्यवृष्टिमवाप युवराज श्रेयांसकुमारः सोमप्रभभ्रात्रा सह। सैयं वैशाखशुक्लातृतीया-अक्षयतृतीया सदा भव्येभ्योऽक्षयसुख प्राप्त्यर्थं भूयादिति।[१]

एवं चतुर्थस्थले स्वामित्वेन जघन्यपदे कर्मणां वेदनाकालनिरूपणत्वेन एकादश सूत्राणि गतानि।

एवं स्वामित्वं स्वकान्तःक्षिप्त-स्थान-संख्या-जीवसमुदाहारानुयोगद्वारं समाप्तम्।

अधुना अल्पबहुत्वभेदप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अप्पाबहुए त्ति। तत्थ इमाणि तिण्णि अणुओगद्दाराणि — जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे।।२५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **अल्पबहुत्वे त्रीण्येवानुयोगद्वाराणि भवन्तीति ज्ञातव्यम्।**

एतत् कथं ज्ञायते?

जघन्योत्कृष्टपदेषु एक द्विसंयोगेन त्रीन् संयोगान् मुक्त्वा एतस्मादधिकभंगोत्पत्तेः अनुपलंभात्। अनेनैव ज्ञायते अस्मिन् त्रीण्येव अनुयोगद्वाराणि भवन्ति।

अधुना जघन्यपदे कर्मवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष पूर्व भगवान् ऋषभदेव आहार के लिए विहार करते हुए हस्तिनापुर क्षेत्र में आए थे। यहाँ के युवराज श्रेयांसकुमार ने जतिस्मरण के निमित्त से आहार विधि को जानकर अपने भाई राजा सोमप्रभ के साथ नवधाभक्तिपूर्वक भगवान् (महामुनि ऋषभदेव) को इक्षुरस का आहार देकर देवों द्वारा पंचाश्चर्यवृष्टि को प्राप्त किया था। आहारदान की वह तिथि वैशाख शुक्ला तृतीया-अक्षयतृतीया सदा भव्यजनों को अक्षयसुख की प्राप्ति का कारण होवे यही कामना है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में स्वामित्व की अपेक्षा जघन्यपद में वेदनाकाल का निरूपण करने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार स्थान-संख्या एवं जीव समुदाहार से गर्भित स्वामित्व अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

अब अल्पबहुत्व के भेदों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

अब अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार का अधिकार है। उसमें जघन्य पद में, उत्कृष्ट पद में और जघन्य-उत्कृष्ट पद में ये तीन अनुयोगद्वार हैं।।२५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अल्पबहुत्व अधिकार में तीन ही अनुयोगद्वार होते हैं ऐसा जानना चाहिए।

शंका — यह कैसे जाना जाता है?

समाधान — क्योंकि जघन्य व उत्कृष्ट पद में एक व दो के संयोग से होने वाले तीन भंगों को छोड़कर इनसे अधिक भंगों की उत्पत्ति नहीं देखी जाती है, अतः इसी से जाना जाता है कि उसमें तीन ही अनुयोगद्वार होते हैं।

अब जघन्यपद में कर्म की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

---

१. अक्षयतृतीया के दिन यह प्रकरण लिखा था।

जहण्णपदेण अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणाओ कालदो जहण्णियाओ तुल्लाओ।।२६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अष्टानामपि कर्मणां एकसमयकालस्य एकस्याः स्थितेः जघन्यकालवेदनाया ग्रहणात्।**

परमाणुभेदेन कालभेदोऽत्र किन्न गृहीतः ?

न, कालं मुक्त्वात्र प्रदेशानां विवक्षाभावात्। समयभावेन एकत्वमापन्नसमयविशेषे परमाणुप्रवेशाद् वा। येनैता अष्टावपि कालवेदनास्तुल्यास्तेन जघन्यपदाल्पबहुत्वं नास्तीति भावार्थः।

संप्रति उत्कृष्टपदेऽल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

उक्कस्सपदे सव्वत्थोवा आउअवेयणा कालदो उक्कस्सिया।।२७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पूर्वकोटित्रिभागाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणत्वात्।**

णामा-गोदवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्ज-गुणाओ।।२८।।

सूत्रार्थ—

जघन्य पद की अपेक्षा आठों ही कर्मों की काल से जघन्य वेदनायें तुल्य हैं।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चूँकि आठों ही कर्मों का एक-एक समय काल वाली एक स्थिति को जघन्य कालवेदना के रूप में ग्रहण किया गया है, इसलिए जघन्यपद की अपेक्षा आठों ही कर्मों की काल से जघन्य वेदनायें एक सदृश होती हैं।

शंका—परमाणु के भेद से काल के भेद को यहाँ क्यों नहीं ग्रहण किया गया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि काल को छोड़कर यहाँ प्रदेशों की विवक्षा नहीं की गई है। अथवा, समय स्वरूप से अभेद-एकत्व को प्राप्त हुए समयविशेष में परमाणुओं का प्रवेश नहीं होने से कालभेद को ग्रहण नहीं किया गया है। चूँकि ये आठों ही कालवेदनायें परस्पर समान हैं, अतः जघन्य अल्पबहुत्व नहीं है, यह भावार्थ है।

अब उत्कृष्ट पद में अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उत्कृष्ट पद की अपेक्षा काल से उत्कृष्ट आयुकर्म की वेदना सबसे कम है।।२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ कारण यह है कि वह पूर्वकोटि के तृतीय भाग से अधिक तैंतीस सागरोपमप्रमाण है।

सूत्रार्थ—

उससे नाम व गोत्र कर्म की काल से उत्कृष्ट वेदनायें दोनों ही तुल्य व संख्यातगुणी हैं।।२८।।

विंशतिसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणत्वात्। अत्र गुणकाराः संख्याताः समयाः। एकरूपस्य असंख्यातभागाभ्यधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमपल्योपमशलाकाभिः विंशतिसागरोपमकोटाकोटिपल्योपम शलाकासु खण्डितासु तत्र एकभागो गुणकारो भवतीत्युक्तं भवति।

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइयवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।।२९।।

विंशतिसागरोपमकोटाकोटिभ्यः त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटीनां द्विभागाधिकत्वदर्शनात्।

मोहणीयस्स वेयणा कालदो उक्कस्सिया संखेज्जगुणा।।३०।।

कुतः? त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिभ्यः सप्ततिसागरोपमकोटाकोटीनां सत्त्रिभागद्विरूपगुणकारत्वोपलंभात्।

एवं उत्कृष्टवेदना समाप्ता।

अधुना जघन्योत्कृष्टपदेऽल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रपंचकमवतार्यते —

जहण्णुक्कस्सपदे अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणाओ कालदो जहण्णियाओ तुल्लाओ थोवाओ।।३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वे बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण हैं। यहाँ गुणकार संख्यात समय हैं। एकरूप के असंख्यातवें भाग से अधिक तेतीस सागरोपमों की पल्योपम शलाकाओं का बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों की पल्योपम शलाकाओं में भाग देने पर जो एक भाग लब्ध होता है वह यहाँ गुणकार है ऐसा अभिप्राय है।

सूत्रार्थ—

उनसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय कर्म की काल से उत्कृष्ट वेदनायें चारों ही तुल्य हैं एवं विशेष अधिक हैं।।२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण यह है कि बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों से तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम द्वितीय भाग से अधिक देखे जाते हैं।

सूत्रार्थ—

उनसे मोहनीय कर्म की काल की अपेक्षा उत्कृष्ट वेदना संख्यातगुणी है।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ऐसा कैसे है? क्योंकि तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों से सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमों का एक तृतीय भाग दो अंकरूप गुणकार देखा जाता है।

इस प्रकार उत्कृष्ट वेदना समाप्त हुई।

अब जघन्य और उत्कृष्ट पद में अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जघन्य-उत्कृष्ट पद में काल की अपेक्षा आठों ही कर्मों की जघन्य वेदनायें परस्पर तुल्य व स्तोक हैं।।३१।।

कुतः? एकसमयत्वात्।

आउअवेयणा कालदो उक्कस्सिया असंखेज्जगुणा।।३२।।

कुतः? एकसमयं दृष्ट्वा पूर्वकोटित्रिभागाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमेषु असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

णामागोदवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ (असंखेज्जगुणाओ)।।३३।।

अत्र को गुणकारः? संख्याताः समयाः। कारणं पूर्वमिव वक्तव्यम्।

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइयवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।।३४।।

कारणं पूर्वमिव कथयितव्यम्।

मोहणीयवेयणा कालदो उक्कस्सिया संखेज्जगुणा।।३५।।

को गुणकारः? संख्याताः समयाः। कारणं पूर्वमिव वक्तव्यं।

एवं पंचमस्थले वेदनाकालविधानकथनत्वेनाल्पबहुत्वापेक्षया च कालनिरूपणत्वेन एकादशसूत्राणि गतानि।

कैसे ? क्योंकि उनका कालप्रमाण एक समय है।

सूत्रार्थ—

उनसे आयु कर्म की काल की अपेक्षा उत्कृष्ट वेदना असंख्यातगुणी है।।३२।।

क्यों ? क्योंकि एक समय की अपेक्षा पूर्वकोटि के तृतीय भाग से अधिक तेंतीस सागरोपम असंख्यातगुणे पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ—

उसके काल की अपेक्षा उत्कृष्ट नाम व गोत्र कर्म की वेदनायें दोनों ही तुल्य व संख्यातगुणी हैं अथवा असंख्यातगुणी हैं।।३३।।

यहाँ गुणकार क्या है? संख्यात समय यहाँ गुणकार है। इसका कारण पहले के ही समान कहना चाहिए।

सूत्रार्थ—

उनसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय कर्म की काल की अपेक्षा उत्कृष्ट वेदनायें चारों ही तुल्य व विशेष अधिक हैं।।३४।।

इसका कारण पहले के समान ही कहना चाहिए।

सूत्रार्थ—

इनसे मोहनीय कर्म की काल की अपेक्षा उत्कृष्ट वेदना संख्यातगुणी है।।३५।।

गुणकार क्या है? संख्यात समय गुणकार है। इसका कारण पूर्व के समान ही कहना चाहिए।

इस प्रकार पंचमस्थल में वेदनाकालविधान का कथन करने वाले और अल्पबहुत्व की अपेक्षा काल का निरूपण करने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

एवं अल्पबहुत्वानुयोगद्वारं स्वकान्तः क्षिप्तगुणकाराधिकारं समाप्तम्।

सर्वान् सिद्धान् सदा वन्दे, मनोवाक्कायशुद्धितः।
यमपाशविनाशाय, स्वात्मनः सौख्यसिद्धये।।१।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिसूरिवर्यप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीभूतबलि-विरचित-वेदनाखंडनाम्नि चतुर्थखण्डे एकादशे ग्रंथे श्रीवीरसेनाचार्यरचितधवलाटीका-प्रमुखनानाग्रंथाधारेण विरचिते विंशतितमे शताब्दौ चारित्रचक्रवर्ती-प्रथमाचार्य-श्रीशांतिसागरगुरुस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागरा-चार्यस्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीपरचनाप्रेरिकागणिनी ज्ञानमती-कृत-सिद्धांतचिंतामणि-टीकायां वेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गतषष्ठ-वेदनाकाल-विधानानुयोगद्वारनामायं प्रथमो महाधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार गुणकार अधिकार गर्भित अल्पबहुत्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

श्लोकार्थ—यम के पाश—जाल को नष्ट करने के लिए, आत्मसुख की सिद्धि के लिए समस्त सिद्ध भगवन्तों की मैं मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक वंदना करता हूँ।।१।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली आचार्यवर्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ में श्रीभूतबली आचार्य विरचित वेदनाखण्ड नामक चतुर्थ खण्ड में ग्यारहवें ग्रंथ में श्रीवीरसेनाचार्य द्वारा रचित धवलाटीका को प्रमुख करके नाना ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर गुरु, उनके प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागर आचार्य, उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी आर्यिका ज्ञानमती कृत सिद्धांत-चिंतामणि टीका में वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अंतर्गत छठा वेदनाकालविधान अनुयोगद्वार नामका यह प्रथम महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ प्रथमा चूलिका

(वेदनाकालविधानानुयोगद्वारान्तर्गता)

द्वितीयो महाधिकारः

(अन्तर्गत-प्रथमोऽधिकारः)

मंगलाचरणम्

कालचक्राद्विनिर्गन्तुं, त्रिकालं नौमि निष्कलान्।
कालकलाव्यतीतांश्च, पुष्यन्तु नः समीहितम्।।१।।

अथ द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-षष्ठे वेदनाकालविधानानुयोगद्वारे एकादशग्रन्थे चूलिकानाम्नि द्वितीये महाधिकारे पंचभिः स्थलैः एकोनत्रिंशदधिकशत-सूत्राणि कथयिष्यन्ते। तत्र तावत्प्रथमस्थले मूलप्रकृतिस्थितिबंधे ''एत्तो मूलपयडि'' इत्यादिना चत्वारि अनुयोगद्वाराणि कथनार्थं सूत्रमेकं। ततः परं द्वितीयस्थले प्रथमस्थितिबंधस्थानप्ररूपणायां अल्पबहुत्वापेक्षया ''ट्ठिदिबंधट्ठाण''-इत्यादिना चतुःषष्टिसूत्राणि वक्ष्यन्ते। तदनु तृतीयस्थले द्वितीयभेद-निषेकप्ररूपणायां द्वयान्तरस्थलगर्भितत्वेन ''णिसेयपरूवणदाए'' इत्यादिना विंशतिसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले तृतीयभेदाबाधाकाण्डकप्ररूपणायां ''आबाधाकंडय-'' इत्यादिना सूत्रद्वयं उच्यते। तदनन्तरं पंचमे स्थले चतुर्थभेदाल्पबहुत्वकथनत्वेन ''अप्पाबहुए'' इत्यादिना द्विचत्वारिंशत्सूत्राणि इति द्वितीयमहाधिकारस्य समुदायपातनिका कथिता भवति।

अथ प्रथम चूलिका

(वेदनाकाल विधान अनुयोगद्वार के अंतर्गत)

द्वितीय महाधिकार

(अंतर्गत-प्रथम अधिकार)

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—कालचक्र से छुटकारा पाने हेतु मैं निष्कल—शरीररहित सिद्धपरमेष्ठियों को तीनों कालों में नमन करता हूँ, जो काल की कलाओं से रहित हो चुके हैं अर्थात् कालचक्र से छूट चुके हैं ऐसे वे सिद्ध भगवान् हमें इच्छित फल की प्राप्ति करावें।।१।

अब द्वितीय वेदनानुयोग द्वार के सोलह भेदों के अंतर्गत छठे वेदनाकालविधान नामक अनुयोगद्वार नामके ग्यारहवें ग्रंथ में चूलिका नामके द्वितीय महाधिकार में पाँच स्थलों के द्वारा एक सौ उनतीस (१२९) सूत्र कहेंगे। उनमें से प्रथम स्थल में मूल प्रकृतिस्थितिबंध में ''एत्तो मूलपयडि'' इत्यादि चार अनुयोगद्वारों का कथन करने के लिए एक सूत्र है। उसके आगे द्वितीय स्थल में प्रथम स्थितिबंध स्थान की प्ररूपणा में अल्पबहुत्व की अपेक्षा ''ट्ठिदिबंधट्ठाण'' इत्यादि चौंसठ (६४) सूत्र कहेंगे। पुनः तृतीय स्थल में द्वितीय भेद निषेकप्ररूपणा में दो अन्तरस्थलों में गर्भित ''णिसेयपरूवणदाए'' इत्यादि बीस सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में तृतीय भेद आबाधा काण्डकप्ररूपणा में ''आबाधाकंडय'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। तदनन्तर पंचम स्थल में चतुर्थ भेद अल्पबहुत्व का कथन करने हेतु ''अप्पाबहुए'' इत्यादि बयालिस (४२) सूत्र हैं। इस प्रकार द्वितीय

अधुना मूलप्रकृति-स्थितिबंधभेदप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

एत्तो मूलपयडिट्ठिदिबंधे पुव्वं गमणिज्जे तत्थ इमाणि चत्तारि अणुयोग-द्दाराणि-ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणा णिसेयपरूवणा आबाधाकंडय परूवणा अप्पाबहुए त्ति।।३६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अथ कश्चिदाह—**

पदमीमांसा स्वामित्वमल्पबहुत्वमिति त्र्यनुयोगद्वारैः कालविधानं प्ररूपितं। एतत्समाप्तं, सूत्रस्यादौ कालविधाने त्रीण्येवानुयोगद्वाराणि भवन्तीति प्ररूपितत्वात्। यदि वा न समाप्तं तर्हि कालविधाने त्रीण्येवानुयोगद्वाराणि भवन्तीति भणितसूत्रस्य अनर्थकत्वं प्रसज्येत। न च सूत्रमनर्थकं भवति, विरोधात्। ततः कालविधानं समाप्तं एव। एवं समाप्ते उपरिसूत्रारंभोऽनर्थक इति चेत् ?

अत्र परिहार उच्यते—

त्रिभिरनुयोगद्वारैः कालविधानं प्ररूप्य समाप्तं चैव। किन्तु तस्य समाप्तस्य वेदनाकालविधानस्य उपरि ग्रन्थेण चूलिका उच्यते।

चूलिका का इति चेत् ?

कालविधानेन सूचितार्थानां विवरणं चूलिका नाम। यस्यां अर्थप्ररूपणायां कृतायां पूर्वप्ररूपितार्थे

महाधिकार के सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब मूलप्रकृति-स्थितिबंध के भेदों का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

आगे मूलप्रकृतिस्थितिबंध पूर्व में ज्ञातव्य है। उसमें स्थितिबंधस्थान प्ररूपणा, निषेकप्ररूपणा, आबाधाकाण्डक प्ररूपणा और अल्पबहुत्व, ये चार अनुयोगद्वार हैं।।३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ कोई शंका करता है कि—

पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन तीन अनुयोगद्वारों के द्वारा कालविधान की प्ररूपणा की जा चुकी है। वह समाप्त हो चुकी है, क्योंकि कालविधानों में सूत्र के प्रारंभ में 'तीन ही अनुयोगद्वार होते हैं' ऐसा कहा गया है। फिर भी यदि उसको समाप्त न माना जाय तो फिर "कालविधान में तीन ही अनुयोगद्वार हैं" इस प्रकार वहां कहे गये सूत्र के अनर्थक होने का प्रसंग आवेगा। किन्तु सूत्र अनर्थक होता नहीं है, क्योंकि इसमें विरोध प्राप्त होता है। इस कारण कालविधान को समाप्त ही मानना चाहिये। इस प्रकार उसके समाप्त हो जाने पर ऊपर के सूत्र का प्रारंभ करना अनर्थक है?

इस शंका का परिहार करते हैं—

तीन अनुयोगद्वारों के द्वारा कालविधान की प्ररूपणा हो चुकने पर वह समाप्त ही हो गया है। किन्तु आगे के ग्रंथ से समाप्ति को प्राप्त हुए उक्त कालविधान की चूलिका कही जाती है।

शंका—चूलिका किसे कहते हैं?

समाधान—कालविधान के द्वारा सूचित अर्थों का विशेष वर्णन करना चूलिका कहलाती है। जिस अर्थ

शिष्याणां निश्चय उत्पद्यते सा चूलिका इति भणितं भवति। तस्मादुपरिमग्रंथावतारः संबद्ध इति गृहीतव्यः।

सूत्रे 'मूलपयडिट्ठिदिबंधे' इति निर्देशेन उत्तरप्रकृतिस्थितिबंधस्य निराकरणं कृतं।

अत्र उत्तरप्रकृतिस्थितिबंधनिराकरणं किमर्थं कृतम् ?

नैतत्, मूलप्रकृतिस्थितिबंधावगमात् तदवगमो भवतीति तन्निराकरणं कृतं।

अत्र 'पुव्वं' इति शब्दः कारणवाचकः क्रियाविशेषणभावेन गृहीतव्यः। न च पूर्वशब्दः कारणार्थ-भावेनाप्रसिद्धः 'मतिपूर्वं श्रुतम्' इत्यस्मिन् सूत्रे कारणे वर्तमानपूर्वशब्दोपलंभात्। त्रिभिरनुयोगद्वारैः पूर्वं प्ररूपितार्थविषयबोधस्य पूर्वं कारणं भूत्वा 'गमणिज्जे—गमनीये मूलप्रकृतिस्थितिबंधे इमानि अनुयोगद्वाराणि भवन्तीति भणितं भवति।

अथवा मूलप्रकृतिस्थितिबंधः कालविधाने पूर्वं—प्रथममेव ज्ञातव्यः, स्थित्यर्धच्छेदादिकेषु अनवगमेषु स्वामित्वादि-अनुयोगद्वाराणामवगमोपायाभावात्। तत्र इमान्यनुयोगद्वाराणि भवन्तीति भणितं भवति।

अनुत्कृष्टस्य अजघन्यस्थितिस्थानानि पूर्वं प्ररूपितानि। तेषु स्थानेषु कस्मिन् कस्मिन् जीवसमासे तत्र कियन्ति बंधस्थानानि कियन्ति वा सत्त्वस्थानानि कस्य जीवसमासस्य बंधस्थानेभ्यः कस्य वा बंधस्थानानि समानि अधिकानि न्यूनानि वा इति पृच्छायां तस्य निश्चयोत्पादनार्थं स्थितिबंधस्थानप्ररूपणा आगता।

बध्यमानकर्मप्रदेशविन्यासः किं प्रथमसमयप्रभृति अथवा अन्यथा भवतीति पृष्टे एवं भवति इति आबाधाप्रमाणप्ररूपणार्थं निसिच्यमानकर्मप्रदेशानां निषेकक्रमप्ररूपणार्थं च निषेकप्ररूपणा आगता।

की प्ररूपणा के किये जाने पर पूर्व में वर्णित पदार्थ के विषय में शिष्यों को निश्चय उत्पन्न हो उसे चूलिका कहते हैं, यह अभिप्राय है। इसके आगे ग्रंथ का अवतार सम्बद्ध है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

सूत्र में 'मूलप्रकृतिबंध' इस निर्देश से उत्तर प्रकृतियों के स्थितिबंध का निराकरण किया गया है।

शंका—यहां उत्तर प्रकृतियों के स्थितिबंध का प्रतिषेध किसलिये किया जाता है?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, चूँकि मूलप्रकृति-स्थितिबंध के ज्ञात हो जाने पर उसका ज्ञान हो जाता है, अतः उसका प्रतिषेध किया गया है।

यहाँ पूर्व इस शब्द को क्रिया विशेषण स्वरूप के कारण अर्थ का वाचक ग्रहण करना चाहिए। पूर्व शब्द कारण अर्थ का वाचक अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि "मतिपूर्वंश्रुतम्" इस सूत्र में कारण अर्थ में वर्तमान पूर्व शब्द देखा जाता है। तीन अनुयोगद्वारों से पूर्व में प्ररूपित अर्थ विषयक बोध का पूर्व अर्थात् कारण होने से अवगमनीय मूलप्रकृति-स्थितिबंध में ये अनुयोगद्वार होते हैं, यह उसका अभिप्राय है।

अथवा, मूलप्रकृति स्थितिबंध कालविधान में पूर्व में अर्थात् पहिले ही ज्ञातव्य है, क्योंकि स्थिति अर्धच्छेदादिकों के अज्ञात होने पर स्वामित्व आदि अनुयोगद्वारों के जानने का कोई उपाय नहीं रहता। उसमें ये अनुयोगद्वार हैं, यह उक्त कथन का निष्कर्ष निकलता है।।

अनुत्कृष्ट-अजघन्यस्थितिस्थान पूर्व में कहे जा चुके हैं। उन स्थानों में से किस-किस जीवसमास में वहाँ कितने बंध स्थान हैं व कितने सत्वस्थान है, किस जीवसमास के बंधस्थानों से किसके बंधस्थान समान, अधिक अथवा कम है, ऐसा पूछने पर उसका निश्चय उत्पन्न कराने के लिए स्थितिबंधस्थानप्ररूपणा कही गई है।

बध्यमान कर्मप्रदेशों का विन्यास क्या प्रथम समय से लेकर होता है, अथवा अन्य प्रकार से होता है, ऐसा पूछने पर वह इस प्रकार से होता है, इस प्रकार आबाधाप्रमाण की प्ररूपणा के लिये तथा निसिंचमान

एकामाबाधां कृत्वा किमेकं चैव स्थितिबंधस्थानं बध्यते, आहो अन्यथा बध्यते इति पृष्टे एकस्याः आबाधायाः इयन्ति स्थितिबंधस्थानानि बध्यन्ते, अपराणि न बध्यन्ते इति ज्ञापनार्थं आबाधाकाण्डकप्ररूपणा आगता। आबाधानां आबाधाकाण्डकानां च स्तोकबहुत्वज्ञापनार्थं अल्पबहुत्वप्ररूपणा आगता। एवमत्र चत्वार्येवानुयोगद्वाराणि भवन्ति अन्येषामत्रैवान्तर्भावात्।

एवं प्रथमस्थले चूलिकायां मूलप्रकृतिस्थितिबंधे चतुर्भेदप्रतिपादनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

अधुना एकेन्द्रियाणां अल्पबहुत्वप्रकारेण सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणदाए सव्वत्थोवा सुहुमे इंदिय अपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंध-ट्ठाणाणि।।३७।।

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।३८।।

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।३९।।

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।४०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतदल्पबहुत्वसूत्रं देशामर्शकं, सूचितस्थितिस्थानप्ररूपणा प्रमाणानुयोग-द्वारत्वात्। न चास्तित्वप्रमाणैरनवगतानां स्थितिबंधस्थानानामल्पबहुत्वं संभवति, विरोधात्। तस्मात् स्थितिबंधस्थान-प्ररूपणायां प्ररूपणा-प्रमाणाल्पबहुत्वं चेति त्रीण्यनुयोगद्वाराणि। तत्र प्ररूपणायां सन्ति**

कर्मप्रदेशों के निषेक क्रम की प्ररूपणा के लिये निषेकप्ररुपणा आई है। एक आबाधा को करके क्या एक ही स्थितिबंधस्थान बांधता है, अथवा अन्य प्रकार से बांधता है, ऐसा पूछने पर एक आबाधा में इतने स्थितिबंधस्थानों को बांधता है, इतर स्थानों को नहीं बांधता है, यह ज्ञात कराने के लिये आबाधाकाण्डकप्ररूपणा प्राप्त हुई है। आबाधाओं और आबाधाकाण्डकों के अल्पबहुत्व को बतलाने के लिये अल्पबहुत्वप्ररूपणा प्राप्त हुई है। इस प्रकार इसमें चार ही अनुयोगद्वार हैं, क्योंकि अन्य अनुयोगद्वारों का इन्हीं में अन्तर्भाव हो जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चूलिका में मूलप्रकृतिस्थितिबंध में चार भेद प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब एकेन्द्रिय जीवों के अल्पबहुत्व प्रकारों का वर्णन करने वाले चार सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

स्थितिबंधस्थानप्ररूपणा की अपेक्षा सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंध स्थान सबसे स्तोक हैं।।३७।।

उनसे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।३८।।

उनसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।३९।।

उनसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह अल्पबहुत्व सूत्र देशामर्शक है, क्योंकि वह स्थितिस्थानों के प्ररूपणानुयोगद्वार और प्रमाणानुयोगद्वार का सूचक है। इन अनुयोगद्वारों की आवश्यकता यहाँ इसलिये है कि इनके बिना अस्तित्व और प्रमाण से अज्ञात स्थितिस्थानों का अल्पबहुत्व सम्भव नहीं हैं, क्योंकि वैसा होने में

चतुर्दशानां जीवसमासानां पृथक् पृथक् स्थितिबंधस्थानानि।

अत्र 'ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि' इत्युक्ते केषां ग्रहणम् ?

उच्यते, बध्यत इति बंधः। स्थितिरेव बन्धः स्थितिबंधः। स्थितिबन्धस्य स्थानमवस्थाविशेष इति यावत्। एतेषां स्थितिबंधविशेषाणां ग्रहणं। जघन्यस्थितिं उत्कृष्टस्थितौ शोधयित्वा एकरूपे प्रक्षिप्ते स्थितिबंधस्थानानि भवन्ति, तेषां ग्रहणमित्युक्तं भवति।

प्ररूपणा गता।

अत्र विस्तरः धवलाटीकायां द्रष्टव्योऽस्ति।

संप्रति बंधस्थानानामल्पबहुत्वमुच्यते। तद्यथा—

सर्वस्तोकाः सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य स्थितिबंधस्थानानि, पल्योपमस्य असंख्यातभागप्रमाणत्वात्।

सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य स्थितिबंधस्थानेभ्यः बादरैकेन्द्रियापर्याप्तकेषु सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तकप्रथमचरम-स्थितिबंधस्थानादधः उपरि च संख्यातगुणवीचारस्थानानामुपलंभात्।

बादरैकेन्द्रियापर्याप्तकजघन्योत्कृष्ट स्थितिभ्योऽधः उपरि च बादरैकेन्द्रियापर्याप्तस्थितिबंधस्थानेभ्यः संख्यातगुणस्थितिबंधस्थानानां सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तेषु उपलंभात्।

संप्रति द्वीन्द्रियादारभ्य असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्यन्तानां स्थितिबंधस्थाननिरूपणार्थं सूत्राष्टकमवतार्यते —

बीइंदियअपज्जत्तयट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।४१।।

विरोध आता है। इस कारण स्थितिबंधस्थानप्ररूपणा में प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार हैं। उनमें से प्ररूपणा की अपेक्षा चौदह जीवसमासों के पृथक्-पृथक् स्थितिबंधस्थान हैं।

शंका—यहाँ स्थितिबंधस्थान ऐसा कहने पर किनका ग्रहण किया गया है?

समाधान—जो बांधा जाता है वह बंध कहा जाता है। स्थिति ही बंध स्थितिबंध है इस प्रकार यहाँ कर्मधारय समास है। स्थितिबंध का स्थान अर्थात् अवस्था विशेष लेना, इस प्रकार यहाँ तत्पुरुष समास है। इन स्थितिबंध विशेषों का ग्रहण किया गया है। अर्थात् जघन्य स्थिति को उत्कृष्ट स्थिति में से घटा देने पर जो शेष रहे उसमें एक अंक का प्रक्षेप करने पर स्थितिबंधस्थान होते हैं, उनका यहाँ ग्रहण किया है, ऐसा यहाँ अभिप्राय है।

प्ररूपणा समाप्त हुई।

यहाँ विस्तृत वर्णन धवलाटीका से द्रष्टव्य है।

अब बंधस्थानों का अल्पबहुत्व कहते हैं। जो इस प्रकार है—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव स्थितिबंधस्थान सबसे स्तोक हैं, वे पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थानों की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकों में सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के प्रथम व चरम स्थितिबंध स्थान के नीचे व ऊपर संख्यातगुणे वीचारस्थान पाये जाते हैं।

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक की जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति से नीचे व ऊपर बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थानों से सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकों में संख्यातगुणे स्थितिबंध स्थान पाये जाते हैं।

अब दो इंद्रिय से प्रारंभ करके असंज्ञीपंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के स्थितिबंध स्थानों का निरूपण करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान असंख्यातगुणे हैं।।४१।।

तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।४२।।

तीइंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।४३।।

तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।४४।।

चतुरिंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।४५।।

तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।४६।।

असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।४७।।

तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।४८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागस्य संख्यातभागो ज्ञातव्यः। कुतः ?**

द्वीन्द्रियापर्याप्तकस्य वीचारस्थानानि पल्योपमस्य संख्यातभागमात्राणि। एकेन्द्रियाणां पुनः आवलिकाया असंख्यातभागेन पल्योपमे खण्डिते तत्रैकखण्डमात्राणि। येनात्राधस्तनराशिना उपरिमराशौ अपवर्तितायां आवलिकाया असंख्यातभागस्य संख्यातभागः आगच्छति तेन सः गुणकारो भवतीति अवगम्यते।

द्वीन्द्रियपर्याप्तकस्य एतानि स्थितिबंधस्थानानि संख्यातगुणानि। कुतः ? विशुद्ध्या संक्लेशेण चाधः उपरिमध्यमस्थितिबंधस्थानेभ्यः संख्यातगुणितस्थितिविशेषेषु वीचारदर्शनात्।

यथा सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्त-बादरैकेन्द्रियापर्याप्तानां स्थितिबंधस्थानेभ्य सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तानां

उनसे उसी के पर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।४२।।

उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।४३।।

उनसे उनके ही पर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।४४।।

उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।४५।।

उनसे उसी के पर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।४६।।

उनसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।४७।।

उनसे उसी के पर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार आवली के असंख्यातवें भाग का संख्यातवां भाग जानना चाहिए। कैसे ?

क्योंकि दो इन्द्रिय अपर्याप्त के वीचारस्थान पल्योपम के संख्यातवें भागप्रमाण हैं। परन्तु एकेन्द्रिय के वीचारस्थान पल्योपम में आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर एक खण्डमात्र लब्ध होता है। चूँकि यहाँ नीचे की राशि का ऊपर की राशि में भाग देने पर आवली के असंख्यातवें भाग का संख्यातवां भाग आता है, अतः वह गुणकार होता है ऐसा प्रतीत होता है।

दो इंद्रिय पर्याप्तकजीव के ये स्थितिबंधस्थान संख्यात गुणे हैं। कैसे? इसका कारण है कि विशुद्धि और संक्लेश से नीचे, ऊपर और मध्य के स्थिति स्थानों से संख्यातगुणे स्थिति विशेषों में वीचार देखा जाता है।

शंका—जैसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकों तथा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकों के स्थितिबंध स्थानों से

स्थितिबंधस्थानानि संख्यातगुणानि, तथा सर्वविकलेन्द्रियापर्याप्तस्थितिबंधस्थानेभ्यो द्वीन्द्रियपर्याप्तस्थितिबंधस्थानानि किन्न संख्यातगुणानि इति चेत् ?

नैतद् वक्तव्यं, भिन्नजातित्वात् भिन्नस्थितित्वाच्च।

चतुरिन्द्रियापर्याप्तकस्य स्थितिबंधस्थानानि संख्यातगुणानि। मध्यमस्थितिविशेषेभ्योऽधः उपरि च संख्यातगुणानां वीचारस्थानानामत्रोपलंभात्।

असंज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्तस्य गुणकारः संख्याताः समयाः।

अधुना संज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्त-पर्याप्तानां स्थितिबंधस्थाननिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।४९।।

तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।५०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रासंज्ञिपंचेन्द्रियस्थितिबंधस्थानैः अन्तःकोटाकोटिमात्र संज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्तकस्य स्थितिबंधस्थानेषु भागे कृतेषु संख्यातरूपोपलंभात्।**

अधुना पर्याप्तकस्य कथ्यते—संप्रति येनासौ अव्वोगाढाल्पबहुत्वदण्डको देशामर्शकस्तेनात्रान्तर्भूतं चतुर्विधमल्पबहुत्वं भण्यते। तद्यथा—अत्राल्पबहुत्वं द्विविधं मूलप्रकृति-अल्पबहुत्वं अव्वोगाढाल्पबहुत्वं चेति। तत्राव्वोगाढाल्पबहुत्वं द्विविधं स्वस्थानपरस्थानभेदेन। तत्र स्वस्थानं वक्ष्यते—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकों के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं, वैसे ही सब विकलेन्द्रिय अपर्याप्तकों के स्थितिबंधस्थानों से द्वीन्द्रिय पर्याप्तकों के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे क्यों नहीं है?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उनकी जाति व स्थिति उनसे भिन्न है।

चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं, क्योंकि यहाँ मध्यम स्थिति विशेष से नीचे व ऊपर संख्यातगुणे वीचारस्थान पाये जाते हैं।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक का गुणकार संख्यात समय है।

अब संज्ञी पंचेन्द्रियअपर्याप्तक और पर्याप्तक जीवों का स्थितिबंध निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

उनसे संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।४९।।

उनसे उसी के पर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबंधस्थानों का अन्तः कोड़ाकोड़ी मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थानों में भाग देने पर संख्यातरूप प्राप्त होते हैं।

अब पर्याप्तक का कथन करते हैं—

अब चूँकि यह अव्वोगाढअल्पबहुत्वदण्डक देशामर्शक है, अतः इसमें अन्तर्भूत चार प्रकार के अल्पबहुत्व को कहते हैं। वह इस प्रकार है—यहाँ अल्पबहुत्व मूलप्रकृति अल्पबहुत्व और अव्वोगाढ अल्पबहुत्व के भेद से दो प्रकार का है। इनमें अव्वोगाढअल्पबहुत्व स्वस्थान और परस्थान के भेद से दो प्रकार का है। उनमें स्वस्थान को कहते हैं—

सर्वस्तोकः सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य स्थितिबंधस्थानविशेषः। स्थितिबंधस्थानानि एकरूपेण विशेषाधिकानि। जघन्यः स्थितिबंधः संख्यातगुणः। उत्कृष्टः स्थितिबंधो विशेषाधिकः। एवं सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्त-बादरैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तानां अपि वक्तव्यम्।

द्वीन्द्रियापर्याप्तकस्य सर्वस्तोकः स्थितिबंधस्थानविशेषः। स्थितिबंधस्थानानि एकरूपेण विशेषाधिकानि। जघन्यः स्थितिबंधः संख्यातगुणः। उत्कृष्टः स्थितिबंधो विशेषाधिकः।

एवं द्वीन्द्रियपर्याप्त-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तानां च वक्तव्यं।

संज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्तकस्य सर्वस्तोको जघन्यः स्थितिबंधः। स्थितिबंधस्थानविशेषः संख्यातगुणः। स्थिति-बंधस्थानानि एकरूपेण विशेषाधिकानि। उत्कृष्टः स्थितिबंधो विशेषाधिकः। एवं संज्ञिपर्याप्तकस्यापि वक्तव्यं।

एवं स्वस्थानाल्पबहुत्वं समाप्तं।

अत्र परस्थानाल्पबहुत्वादिकानि विस्तरेण धवलाटीकायां पठितव्यानि सन्ति।

अधुना सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य संक्लेशविशुद्धिस्थाननिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सव्वत्थोवा सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेसविसोहिट्ठाणाणि।।५१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**स्थितयो बध्यते एभिरिति करणे घञुत्पत्तेः कर्मस्थितिबंधकारणपरिणामानां स्थितिबंध इति व्यपदेशः। तेषां स्थानानि अवस्थाविशेषाः स्थितिबंधस्थानानि।**

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक का स्थितिबंधस्थान विशेष सबसे स्तोक है। उससे स्थितिबंधस्थान एक रूप से विशेष अधिक हैं। उनसे जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणे है। उससे उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इसी प्रकार सूक्ष्मएकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त व अपर्याप्त जीवों के भी कहना चाहिए।

द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक का स्थितिबंधस्थान विशेष सबसे स्तोक है। उससे स्थिति बंधस्थान एकरूप से विशेष अधिक हैं। उनसे जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेषरूप अधिक है।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय पर्याप्त तथा त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त व अपर्याप्त जीवों के भी कहना चाहिये।

संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध सबसे स्तोक है। उससे स्थितिबंधस्थानविशेष संख्यातगुणा है। उससे स्थितिबंधस्थान एक रूप से विशेष अधिक हैं। उनसे उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इसी प्रकार संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के भी कहना चाहिए।

इस प्रकार स्वस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

यहाँ परस्थान अल्पबहुत्व आदि को विस्तार से धवलाटीका में पढ़ना चाहिए।

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक का संक्लेशविशुद्धिस्थान निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान सबसे स्तोक हैं।।५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—'जिनके द्वारा स्थितियां बंधती हैं' इस विग्रह के अनुसार करण अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय होने से स्थितिबंध के कारणभूत परिणामों को स्थितिबंध कहा गया है। उनकी अवस्थाविशेषों के नाम स्थितिबंधस्थान हैं।

संप्रति तेषां स्थितिबंधकारणपरिणामानां प्ररूपणा क्रियते।

किमर्थमेतेषां प्ररूपणा क्रियते ?

कारणावगमद्वारेण कर्मस्थितिकार्यावगमनार्थं प्ररूपणा क्रियते।

न च कारणेऽनवगते कार्यावगमः सम्यक्रूपेण प्रतिपद्यते। अन्यत्र तथानुपलंभात्।

अत्र प्ररूपणा प्रमाणमल्पबहुत्वमिति त्रीण्यनुयोगद्वाराणि भवन्ति।

सूत्रेऽल्पबहुत्वानुयोगद्वारमेकमेव किमर्थं प्ररूपितम् ?

नैष दोषः, अल्पबहुत्वप्ररूपणायां तयोर्द्वयोरप्यन्तर्भावात्। अनवगतसत्त्वप्रमाणेषु परिणामेषु अल्पबहुत्वानुपपत्तेः।

तत्र तावदेकजीवसमासमाश्रित्य संक्लेशविशुद्धिस्थानयोः प्ररूपणा क्रियते। तद्यथा — जघन्यायां स्थितौ सन्ति संक्लेशस्थानानि। एवं नेतव्यं यावदुत्कृष्टस्थितिरिति। एवं विशुद्धिस्थानानामपि प्ररूपणा कर्तव्या। विशेषेण — उत्कृष्टस्थितिप्रभृति प्ररूपयितव्यं।

एवं प्ररूपणा गता।

जघन्यायाः स्थितेः संक्लेशस्थानानां प्रमाणमसंख्याताः लोकाः। द्वितीयायाः स्थितेरपि असंख्याताः लोकाः। एवं नेतव्यं यावदुत्कृष्टा स्थितिरिति। एवं विशुद्धिस्थानानामपि विपरीतेन प्रमाणप्ररूपणा कर्तव्या।

अत्र प्रमाणानुयोगद्वारेण सूचितानां श्रेणि-अवहार-भागाभागानां प्ररूपणा करिष्यते। तत्र श्रेणिप्ररूपणा द्विविधा — अनन्तरोपनिधा परंपरोनिधा च।

अब स्थितिबंध के कारणभूत उन परिणामों की प्ररूपणा करते हैं।

शंका — इनकी प्ररूपणा किसलिये की जाती है?

समाधान — कारणपरिज्ञानपूर्वक कर्मस्थितिरूप कार्य का परिज्ञान कराने के लिये उनकी प्ररूपणा की जा रही है। क्योंकि जब तक कार्योत्पादक हेतु का परिज्ञान नहीं हो जाता, तब तक कार्य का परिज्ञान यथार्थता को प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि दूसरी जगह वैसा पाया नहीं जाता है।

यहाँ प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं।

शंका — सूत्र में एक मात्र अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार की ही प्ररूपणा किसलिये की गई है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वे दोनों अल्पबहुत्व प्ररूपणा के अंतर्गत हैं। कारण यह है कि सत्व और प्रमाण के अज्ञात होने पर उक्त परिणामों के विषय में अल्पबहुत्व की प्ररूपणा सम्भव नहीं है।

उनमें पहिले एक जीवसमास का आश्रय लेकर संक्लेश-विशुद्धिस्थानों की प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है — जघन्य स्थिति में संक्लेशस्थान हैं। इस प्रकार द्वितीयादि स्थिति में भी संक्लेशस्थानों को उत्कृष्ट स्थिति तक ले जाना चाहिये। इसी प्रकार विशुद्धिस्थानों की भी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष इतना है कि उनकी प्ररूपणा उत्कृष्ट स्थिति से लेकर करना चाहिए।

इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई।

जघन्य स्थिति के संक्लेशस्थानों का प्रमाण असंख्यात लोक है। द्वितीय स्थिति के भी संक्लेशस्थानों का प्रमाण असंख्यात लोक ही है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक ले जाना चाहिये। उसी प्रकार विशुद्धिस्थानों के भी प्रमाण की प्ररूपणा विपरीत क्रम से करना चाहिए।

यहाँ प्रमाणानुयोगद्वार से सूचित श्रेणि, अवहार और भागाभाग की प्ररूपणा करते हैं। उनमें श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकार की है — अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा।

एतेषां विस्तरः धवलाटीकायां द्रष्टव्यं।

अधुना बादरैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य संक्लेशविशुद्धिस्थाननिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

बादरेइंदिय अपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।५२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य स्थितिबंधस्थानेभ्यो बादरैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य स्थितिबंधस्थानानि संख्यातगुणानि इति पूर्वसूत्रैः प्ररूपितानि सन्ति। अत्र-सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य संक्लेश-विशुद्धिस्थानेभ्यः बादरैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य संक्लेशविशुद्धिस्थानानि असंख्यातगुणानि इति प्ररूपितं सूत्रे।**

अधुना सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तादारभ्य संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तकपर्यंतं संक्लेशविशुद्धिस्थानप्ररूपणार्थं द्वादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।५३।।

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।५४।।

बीइंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।५५।।

इनका विस्तार धवला टीका में देखना चाहिए।

अब बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थानों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थानों से बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थानों की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं, ऐसा पूर्व सूत्रों में कहा जा चुका है। यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थानों से बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ऐसा सूत्र में प्ररूपित किया है।

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक से आरंभ करके संज्ञी पंचेन्द्रियपर्याप्तक पर्यन्त संक्लेशविशुद्धिस्थान को प्ररूपित करने हेतु बारह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उनसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।५३।।

उनसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।५४।।

उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।५५।।

बीइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।५६।।

तीइंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।५७।।

तीइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।५८।।

चउरिंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।५९।।

चउरिंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।६०।।

असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।६१।।

असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।६२।।

सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।६३।।

सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।६४।।

द्वीन्द्रिय पर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।५६।।
त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।५७।।
त्रीन्द्रिय पर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।५८।।
चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।५९।।
चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।६०।।
असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।६१।।
असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।६२।।
संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।६३।।
संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।६४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तकस्य संक्लेशविशुद्धिस्थानानि असंख्यातगुणानि। अत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागः। सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तो विशुद्ध्यमाणो बादरैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य सर्वस्थितिबंधस्थानेभ्यः संख्यातगुणानि स्थितिबंधस्थानानि अधोऽपसरति, संक्लिश्यमानोऽपि तेभ्यः संख्यातगुणानि स्थितिबंधस्थानानि उपरि चटति इति गुरूपदेशात्।**

अग्रेऽग्रे उत्तरोत्तरक्रमेण असंख्यातगुणानि संक्लेशविशुद्धिस्थानानि भवन्ति इति ज्ञातव्यं।

अत्र सर्वत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागो ज्ञातव्यः।

बध्यत इति बंधः, स्थितिश्चासौ बंधश्च स्थितिबंधः, तस्य स्थानमवस्थाविशेषः स्थितिबंधस्थानं। एवमर्थपदमाश्रित्य प्ररूपणार्थमुपरिमसूत्रकलाप आगतोऽस्ति।

अधुना संयतानां जघन्यस्थितिबंधनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सव्वत्थोवो संजदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो।।६५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**स्थितिबंधस्थानानि एतावन्ति भवन्तीति पूर्वं प्ररूपितानि। संप्रति तत्र एकैकस्थितिबंधस्थानमेतावतः समयान् गृहीत्वा भवतीति प्ररूपणार्थं जघन्योत्कृष्टस्थितिप्ररूपणात्रागता।**

अत्र जघन्योत्कृष्टस्थितिप्ररूपणायां सत्त्वप्रमाणानियोगद्वारे मुक्त्वाल्पबहुत्वं चैव किमर्थं प्ररूपितम्?

नैष दोषः, प्ररूपणा-प्रमाणाविनाभावि-अल्पबहुत्वमिति कृत्वा तदप्ररूपणात्। तस्मादत्र

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूक्ष्मएकेन्द्रिय पर्याप्तक के संक्लेशविशुद्धि स्थान असंख्यातगुणे हैं।

यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है। क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव विशुद्ध होता हुआ बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक से सब स्थितिबंधस्थानों की अपेक्षा संख्यातगुणा स्थितिबंधस्थान नीचे हटता है तथा वहीं संक्लेश को प्राप्त होता हुआ भी उक्त स्थानों की अपेक्षा संख्यातगुणे स्थितिबंध स्थान ऊपर चढ़ता है, ऐसा गुरु का उपदेश है।

आगे-आगे उत्तरोत्तर क्रम से असंख्यातगुणे संक्लेशविशुद्धिस्थान होते हैं ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ सर्वत्र गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग जानना चाहिए।

जो बांधा जाता है उसे बंध कहते हैं, स्थितिस्वरूप बंध को स्थितिबंध कहते हैं, उस स्थितिबंध का स्थान अर्थात् अवस्थाविशेष स्थितिबंधस्थान कहलाता है। इस प्रकार अर्थपद की अपेक्षा प्ररूपणा करने हेतु आगे के सूत्रों का समूह आया है।

अब संयतों का जघन्यस्थितिबंध निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

संयत जीव का जघन्य स्थितिबंध सबसे स्तोक हैं।।६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्थितिबंधस्थान इतने होते हैं यह पूर्व में प्ररूपण कर चुके हैं। अब उनमें एक-एक स्थितिबंध स्थान को इतने समय ग्रहण करके होता है ऐसा प्ररूपित करने हेतु जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति की प्ररूपणा यहाँ कही गई है।

शंका—इस जघन्य उत्कृष्टस्थिति प्ररूपणा में सत् प्ररूपणा प्रमाण अनुयोगद्वारों को छोड़कर एक मात्र अल्पबहुत्व की प्ररूपणा किसलिये की गई है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अल्पबहुत्व प्ररूपणा और प्रमाण का अविनाभावी है, इसी

अल्पबहुत्वान्तर्भूतप्ररूपणाप्रमाणे द्वे वक्ष्येते। तद्यथा—

चतुर्दशानां जीवसमासानां जघन्योत्कृष्टस्थिती स्तः।

इति प्ररूपणा गता।

चतुर्णामपि एकेन्द्रियाणां मोहजघन्यस्थितिः पल्योपमस्यासंख्यातभागेन ऊनं सागरोपमं भवति। ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय-अन्तरायाणां जघन्यस्थितिः सागरोपमस्य सप्तभागेषु त्रिभागप्रमाणा पल्योपमस्य असंख्यातभागेन ऊना भवति। नाम-गोत्रयोर्जघन्यस्थितिः पल्योपमस्यासंख्यातभागेन हीना सागरोपमस्य सप्तभागेषु द्विभागमात्रा। आयुषो जघन्यस्थितिः क्षुद्रभवग्रहणमात्रं भवति।

एतेषामुत्कृष्टस्थितिप्रमाणमुच्यते। तद्यथा—

चतुर्णामपि एकेन्द्रियाणां उत्कृष्टस्थितिः मोहनीयस्य एकं सागरोपमं। ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-वेदनीय-अन्तरायाणां सागरोपमस्य सप्तभागेषु परिपूर्णा त्रिभागप्रमाणा। नाम-गोत्रयोः सागरोपमस्य सप्तभागेषु परिपूर्णा द्विभागमात्रा। विशेषेण तु-सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्त-बादरैकेन्द्रियापर्याप्तानामुत्कृष्टस्थितिबंधः बादरैकेन्द्रिय-पर्याप्तकस्योत्कृष्टस्थिति बंधात् पल्योपमस्य असंख्यातभागेनोना भवति। आयुषः उत्कृष्टः स्थितिबंधः पूर्वकोटिप्रमाणा स्वक-स्वकोत्कृष्टाबाधायाः अधिका अस्ति।

द्वीन्द्रियादिभ्य आरभ्य असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्यंतमिति यथाक्रमेण मोहनीयस्य जघन्यः स्थितिबंधः पल्योपमस्य संख्यातभागेन ऊनं पंचविंशतिसागरोपमानि, पंचाशत्सागरोपमाणि, सागरोपमशतं, सागरोपमसहस्रं भवतीति

कारण अल्पबहुत्व के अंतर्गत होने से प्ररूपणा और प्रमाण दोनों अनुयोगद्वारों का कथन करते हैं। वह इस प्रकार है— चौदह जीवसमासों के जघन्य व उत्कृष्ट स्थितियाँ हैं।

इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई।

चारों ही एकेन्द्रिय जीवों के मोह की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन एक सागरोपम प्रमाण है। ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय और अंतराय की जघन्य स्थिति सागरोपम के सात भागों में से तीन भागप्रमाण पल्योपम के असंख्यात भाग से हीन होता है। नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन एक सागरोपम के सात भागों में दो भाग (२/७) प्रमाण है। आयु की जघन्य स्थिति क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण होती है।

इनकी उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण कहते हैं। जो इस प्रकार है—

चारों एकेन्द्रियों में मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण कहते हैं, जो इस प्रकार है—मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति एक (१) सागरोपम प्रमाण है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम के सात भागों में से परिपूर्ण तीन भाग (३/७) प्रमाण है।

नाम व गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सागरोपम के सात भागों में से परिपूर्ण दो भाग प्रमाण है। विशेष इतना है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त तथा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिबंध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिबंध की अपेक्षा पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन होता है। आयु का उत्कृष्ट स्थितिबंध अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधा से अधिक एक पूर्वकोटि प्रमाण है।

द्वीन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक यथाक्रम से मोहनीय का जघन्य स्थितिबंध पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन पच्चीस सागरोपम, पचास सागरोपम, सौ सागरोपम और हजार सागरोपम प्रमाण होता है। ज्ञानावरणीय आदि चार कर्मों की जघन्य स्थितिबंध का भी कथन इसी प्रकार से करना चाहिये।

ज्ञातव्यम्। ज्ञानावरणादिचतुर्णां कर्मणामेवं चैव वक्तव्यम्। विशेषेण—पंचविंशति-पंचाशत्-शत-सहस्त्रसागरोपमाणां सप्तभागेषु त्रिभागा पल्योपमस्य संख्यातभागेन ऊना भवति। एवं नामगोत्रयोः। नवरि सप्तभागेषु द्विभागा इति वक्तव्यं। आयुषो जघन्यस्थितिबंधः क्षुद्रभवग्रहणं जघन्याबाधाया अभ्यधिकं भवति।

उत्कृष्टस्थितिबंधो द्वीन्द्रियेषु मोहनीयस्य पंचविंशतिसागरोपमाणि। चतुर्णां कर्मणां पंचविंशति सागरोपमानानां सप्तभागेषु त्रिभागप्रमाणा। नाम-गोत्रयोः पंचविंशतिसागरोपमानानां सप्तभागेषु द्विभागमात्रा। आयुषः उत्कृष्टस्थितिः पूर्वकोटिप्रमाणा। त्रीन्द्रियस्य यथाक्रमेण पंचाशत्सागरोपमानानां सप्त-सप्तभागा त्रिसप्तभागा द्विसप्तभागा- उत्कृष्टस्थितिर्भवति। आयुषः पूर्वकोटिप्रमाणा।

चतुरिन्द्रियेषु सागरोपमशतस्य सप्त-सप्तभागा त्रिसप्तभागा द्विसप्तभागा परिपूर्णा भवति। आयुषः पूर्वकोटिप्रमाणा। असंज्ञिपंचेन्द्रियेषु सागरोपमसहस्त्रस्य सप्त-सप्त भागा त्रिसप्तभागा द्विसप्तभागा उत्कृष्टस्थितिबंधः। आयुषः उत्कृष्टस्थितिबंधः पल्योपमस्य असंख्यातभागः।

असंज्ञिपंचेन्द्रियेषु सागरोपमसहस्त्रस्य सप्त-सप्त भागा, त्रिसप्तभागा द्विसप्तभागा उत्कृष्टस्थितिबंधः। आयुषः उत्कृष्टस्थितिबंधः पल्योपमस्य असंख्यातभागः।

संज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्तकस्य सप्तानां कर्मणां जघन्यस्थितिबंधः उत्कृष्टस्थितिबंधश्च अन्तःकोटाकोटिप्रमाणं।

विशेष इतना है कि उनका जघन्यस्थितिबंध द्वीन्द्रियादिकों के क्रमश; पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन पच्चीस, पचास, सौ और हजार सागरोपमों के सात भागों में से तीन भाग (३/७) प्रमाण है अर्थात् (२५-३/७, ५०-३/७, १००-३/७, १०००-३/७ सा.) कहना चाहिये एवं नाम-गोत्र का भी इसी प्रकार है। अन्तर यह है कि सात भागों में से दो भाग है। अर्थात् २५-२/७, ५०-२/७, १००-२/७, १०००-२/७ सागरोपम (पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन) है। आयु का जघन्य स्थितिबंध जघन्य आबाधा से सहित क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण होता है।

द्वीन्द्रिय जीवों में मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थितिबंध पच्चीस सागरोपम प्रमाण होती है। चार कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध पच्चीस सागरोपमों के तीन बटे सात (३/७) भाग प्रमाण होता है। नाम गोत्र का उत्कृष्ट स्थितिबंध पच्चीस सागरोपमों के दो बटे सात (२/७) भाग प्रमाण होता है। आयु का उत्कृष्ट स्थितिबंध एक पूर्वकोटि प्रमाण होता है।

त्रीन्द्रिय जीव के यथाक्रम से—मोहनीय, ज्ञानावरणीय एवं नाम-गोत्र कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति क्रमशः पचास सागरोपमों में सात बटे सात भाग (७/७) तीन बटे सात भाग (३/७) और दो बटे सात भाग (२/७) प्रमाण है—आयु की उत्कृष्ट स्थिति एक पूर्वकोटि प्रमाण होती है।

चतुरिन्द्रिय जीवों में मोहनीय, ज्ञानावरणीय एवं नाम-गोत्र कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध सौ सागरोपम के सात बटे सात भाग, तीन बटे सात भाग और दो बटे सात भाग प्रमाण होती है। आयु का उत्कृष्ट स्थितिबंध पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग होता है।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में उपर्युक्त कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध क्रमशः एक हजार सागरोपम के सात बटे सात भाग (७/७), तीन बटे सात भाग (३/७) और दो बटे सात भाग (२/७)प्रमाण होता है। आयु का उत्कृष्ट स्थितिबंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है।

संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव के आयु के बिना सात कर्मों का जघन्य स्थितिबंध और उत्कृष्ट स्थिति-

आयुषो जघन्यस्थितिबंधः क्षुद्रभवग्रहणं, उत्कृष्टस्थितिबंधः पूर्वकोटिप्रमाणम्। संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तकस्य वेदनीयस्य जघन्यस्थितिबंधः द्वादश मुहूर्ताः। नामगोत्रयोरष्टमुहूर्ताः। शेषाणां कर्मणां भिन्नमुहूर्तं। उत्कृष्टस्थितिबंधः मोहनीयस्य सप्ततिकोटाकोटिसागरोपमं, चतुर्णां कर्मणां त्रिंशत्कोटाकोटिसागरोपमं, नाम-गोत्रयोः विंशतिकोटाकोटिसागरोपमं। आयुषः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि।

एवं प्रमाणप्ररूपणा गता।

संप्रत्येतेषां स्थितिबंधस्थानानामल्पबहुत्वमुच्यते। तद्यथा—सर्वस्तोकः संयतस्य जघन्यस्थितिबंधः। अत्र सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतस्य चरमस्थितिबंधो जघन्य इति गृहीतव्यः।

अतः उपरि स्थितिबंधो जघन्यरूपेण किन्न गृह्यते ?

न गृह्यते, उपरि कषायाभावेन स्थितिबंधाभावात्।

क्षीणकषायगुणस्थानेऽपि एकसमयिका स्थितिः अन्तर्मुहूर्तमात्रसूक्ष्मसांपरायिकचरमस्थितिबंधात् असंख्यातगुणहीना लभ्यते। सा किन्न गृह्यते ?

नैतत्, द्वितीयादि समयेषु अवस्थानस्य स्थितिरिति व्यपदेशात्। न चोत्पत्तिकाले स्थितिर्भवति, विरोधात्।

अधुना बादरैकेन्द्रियादारभ्य असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्यंतपर्याप्तापर्याप्तानां जघन्योत्कृष्टस्थितिबंधनिरूपणार्थं चतुर्विंशतिसूत्राणि अवतार्यन्ते —

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।।६६।।

बंध अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण होता है। आयु का जघन्य स्थितिबंध क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण तथा उत्कृष्ट स्थितिबंध पूर्वकोटि प्रमाण है। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के वेदनीय का जघन्य स्थितिबंध बारह मुहूर्त प्रमाण होता है। नाम एवं गोत्र का जघन्य स्थितिबंध उसके आठ मुहूर्त प्रमाण होता है। शेष कर्मों का अन्तर्मुहूर्त है। उक्त जीव के मोहनीय की उत्कृष्ट स्थितिबंध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम, ज्ञानावरणीय आदि चार कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम और नाम व गोत्र का उत्कृष्ट स्थितिबंध बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण होता है। आयु का उत्कृष्ट स्थितिबंध साधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण होता है।

इस प्रकार प्रमाणप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब इन स्थितिबंधस्थानों के अल्पबहुत्व को कहते हैं। वह इस प्रकार है—संयत का जघन्य स्थितिबंध सबसे स्तोक है। यहाँ सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत के अंतिम स्थितिबंध को जघन्य ग्रहण करना चाहिये।

शंका—इससे ऊपर के स्थितिबंध को जघन्य स्वरूप से क्यों नहीं ग्रहण किया गया है?

समाधान—नहीं ग्रहण किया है, क्योंकि ऊपर कषाय का अभाव होने से स्थितिबंध का अभाव पाया जाता है।

शंका—क्षीणकषाय गुणस्थान में भी एक समयवाली स्थिति सूक्ष्मसाम्परायिक के अन्तर्मुहूर्त मात्र अंतिम स्थितिबंध की अपेक्षा असंख्यातगुणी हीन पायी जाती है। उसका ग्रहण क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि द्वितीयादि समयों में अवस्थित रहने का नाम स्थिति है। उत्पत्ति समय में कहीं स्थिति नहीं होती, क्योंकि वैसा होने से विरोध आता है।

अब बादर एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त पर्याप्त-अपर्याप्त जीवों के जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति बंध निरूपण करने हेतु चौबीस सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध असंख्यातगुणा है।।६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र गुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातभागः। अन्तर्मुहूर्तमात्रसंयतस्थितिबंधेन पल्योपमस्य असंख्यात-भागेनोनसागरोपममात्रबादरैकेन्द्रिय पर्याप्तजघन्य स्थितिबंधे भागे हृते पल्योपमस्य असंख्यातभागोपलंभात्।**

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।६७।।

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।६८।।

अत्र विशेषः पल्योपमस्य असंख्यातभागप्रमाणवीचारस्थानमात्रः।

सुहुमेइंदिय अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।६९।।

अत्र विशेषः बादरैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य जघन्यस्थितिबंधात् सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य अधस्तनवीचार-स्थानमात्रोऽस्ति।

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।७०।।

विशेषः सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य वीचारस्थानमात्रः।

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।७१।।

कियन्मात्रो विशेषः? सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य उत्कृष्टस्थितिबंधादुपरिमबादरैकेन्द्रियापर्याप्तवीचार-स्थानमात्रोऽस्ति।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है, क्योंकि संयत के अंतर्मुहूर्त परिमित स्थितिबंध का बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक के पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन सागरोपम प्रमाण जघन्य स्थितिबंध में भाग देने पर पल्योपम का असंख्यातवां भाग पाया जाता है।

सूत्रार्थ—

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है।।६७।।

उससे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है।।६८।।

यहाँ विशेष पल्योपम का असंख्यातवां भागप्रमाण वीचारस्थान मात्र है।

सूत्रार्थ—

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है।।६९।।

यहाँ विशेष एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य स्थितिबंध से सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक संबंधी नीचे के वीचारस्थान के बराबर है।

सूत्रार्थ—

उसी अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।७०।।

यहाँ विशेष सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक का वीचार स्थान मात्र है।

सूत्रार्थ—

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।७१।।

विशेष कितना है? वह सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिबंध से ऊपर के बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के वीचारस्थान के बराबर है।

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।७२।।

बादरैकेन्द्रियापर्याप्त-उत्कृष्टस्थितिबंधादुपरिमेण बादरैकेन्द्रियापर्याप्तवीचारस्थानेभ्यः संख्यातगुणेन सूक्ष्मैकेन्द्रिय पर्याप्तकस्य वीचारस्थानेन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रेण।

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।७३।।

सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तकस्य उत्कृष्टस्थितिबंधादुपरिमैः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रबादरैकेन्द्रियपर्याप्त-वीचारस्थानैः विशेषाधिकोऽस्ति।

बीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।७४।।

अत्र गुणकारः किंचिदूनपंचविंशतिरूपाणि।

तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।७५।।

द्वीन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधात् अधः पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रवीचारस्थानानि अपसृत्य द्वीन्द्रिय-पर्याप्तकस्य जघन्यस्थितिबंधस्यावस्थानात्।

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।७६।।

स्वकजघन्यस्थितिबंधात् पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रवीचारस्थानानि उपरि चटित्वा स्वकोत्कृष्टस्थिति-बंध-समुत्पत्तेः।

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।७२।।

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिबंध के ऊपर बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक के वीचारस्थान से संख्यातवें व पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक के वीचारस्थान से अधिक है।

सूत्रार्थ—

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।७३।।

वह सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिबंध से ऊपर पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक के वीचार स्थानों से विशेष अधिक है।

सूत्रार्थ—

दो इन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।७४।।

यहाँ गुणकार कुछ कम पच्चीसरूप है।

सूत्रार्थ—

उसी अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है।।७५।।

इसका कारण यह है कि द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य स्थितिबंध से नीचे पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र वीचारस्थान हटकर द्वीन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध अवस्थित है।

सूत्रार्थ—

उसी अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।७६।।

क्योंकि अपने जघन्य स्थितिबंध से पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र वीचारस्थान ऊपर चढ़कर अपना

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।७७।।

द्वीन्द्रियपर्याप्तस्य उत्कृष्टस्थितिबंधात् पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रस्थितिबंधस्थानानि उपरि अभ्युत्सृत्य द्वीन्द्रियपर्याप्तस्य उत्कृष्टस्थितिबंधावस्थानात्।

तीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।७८।।

अत्र विशेषः पल्योपमस्य संख्यातभागेनोनपंचविंशतिसागरोपममात्रोऽस्ति।

तीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।७९।।

पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रेण विशेषाधिकोऽस्ति। त्रीन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधात् पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रस्थितिबंधस्थानानि अधोऽपसृत्य त्रीन्द्रियपर्याप्तकस्य जघन्यस्थितिबंधावस्थानात्।

तस्सेव उक्कस्सट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।८०।।

पल्योपमस्य संख्यातभागप्रमाणस्वकवीचारस्थानमात्रेण।

तीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।८१।।

त्रीन्द्रियापर्याप्तकस्य उत्कृष्टस्थितेः उपरिमत्रीन्द्रियपर्याप्तवीचारस्थानैः पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रैः विशेषाधिकोऽस्ति।

उत्कृष्ट स्थितिबंध उत्पन्न होता है।

सूत्रार्थ—

उसी पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।७७।।

क्योंकि द्वीन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिबंध से पल्योपम के संख्यातवें भागमात्र स्थितिबंधस्थान ऊपर जाकर द्वीन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध अवस्थित है।

सूत्रार्थ—

तीन इन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है।।७८।।

यहाँ विशेष पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन पच्चीस सागरोपम प्रमाण है।

सूत्रार्थ—

तीन इन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है।।७९।।

यहाँ पल्योपम के संख्यातवें भागमात्र से विशेष अधिक है, क्योंकि त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य स्थितिबंध से पल्योपम के संख्यातवें भागमात्र स्थितिबंधस्थान नीचे जाकर त्रीन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध अवस्थित है।

सूत्रार्थ—

उसी का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।८०।।

पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र अपने वीचारस्थानों के प्रमाण विशेष अधिक है।

सूत्रार्थ—

त्रीन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।८१।।

वह त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिबंध से ऊपर के पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र त्रीन्द्रिय के वीचारस्थानों से विशेष अधिक हैं।

चउरिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।८२।।

अत्र विशेषः पल्योपमस्य संख्यातभागेनोनपंचाशत्सागरोपममात्रः।

तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।८३।।

अत्र विशेषः पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रः। चतुरिन्द्रियापर्याप्तकजघन्यस्थितिबंधादधः पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रस्थितिबंधस्थानानि चतुरिन्द्रियापर्याप्तकस्थितिबंधस्थानेभ्यः संख्यातगुणानि अवतीर्य चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तजघन्यस्थितिबंधावस्थानात्।

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।८४।।

अत्र विशेषः पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रोऽस्ति।

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।८५।।

चतुरिन्द्रियापर्याप्तकस्थितिबंधस्थानेभ्यः संख्यातगुणेन चतुरिन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबंधात् उपरिमेण चतुरिन्द्रियपर्याप्तवीचारस्थानमात्रेण विशेषाधिकोऽस्ति।

असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।८६।।

सूत्रार्थ—

चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है।।८२।।

यहाँ विशेष पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन पचास सागरोपम मात्र है।

सूत्रार्थ—

उसी अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है।।८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ विशेष पल्योपम का संख्यातवां भागप्रमाण है, क्योंकि चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक के जघन्य स्थितिबंध से नीचे पल्योपम के संख्यातवें भागमात्र होकर चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थानों से संख्यातगुणे स्थितिबंधस्थान हटकर चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध अवस्थित है।

सूत्रार्थ—

उसी अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।८४।।

यहाँ विशेष का प्रमाण पल्योपम के संख्यातवें भागमात्र है।

सूत्रार्थ—

उसी पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वह चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक के स्थितिबंधस्थानों से संख्यातगुणे ऐसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थितिबंध से ऊपर के चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक के वीचारस्थानप्रमाण से विशेष अधिक है।

सूत्रार्थ—

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है।।८६।।

अत्र गुणकारः संख्याताः समयाः।

तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।८७।।

अत्र विशेषः पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रः।

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।८८।।

अत्र विशेषः स्वकवीचारस्थानमात्रोऽस्ति।

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।८९।।

अत्रापि विशेषः पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रो ज्ञातव्यः।

अधुना संयतस्योत्कृष्टस्थितिबंधनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

संजदस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।९०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र गुणकारः संख्याताः समयाः सागरोपमसहस्रेण अन्तःकोटाकोट्यां अपवर्तितायां संख्यातसमयोपलंभात्।**

संयतासंयतस्य जघन्योत्कृष्टस्थितिबंधप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते—

संजदासंजदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।९१।।

यहाँ गुणकार संख्यात समय हैं।

सूत्रार्थ—

उसी अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है।।८७।।

यहाँ विशेष पल्योपम का संख्यातवां भागमात्र है।

सूत्रार्थ—

उसी अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।८८।।

यहाँ विशेष अपने वीचारस्थान प्रमाण है।

सूत्रार्थ—

उसी पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।८९।।

यहाँ भी विशेष पल्योपम का संख्यातवां भागमात्र जानना चाहिए।

अब संयत के उत्कृष्ट स्थितिबंध का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

संयत का उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार संख्यात समय हैं, क्योंकि हजार सागरोपमों का अंतः-कोड़ाकोड़ी में भाग देने पर संख्यात समय प्राप्त होते हैं।

अब संयतासंयत के जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबंध का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

संयतासंयत का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।९१।।

तस्सेव उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।९२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—

अत्र कश्चिदाह—मिथ्यात्वाभिमुखचरमसमयप्रमत्तसंयतस्य उत्कृष्टस्थितिबंधादपि संयतासंयतस्य जघन्यस्थितिबंधः संख्यातगुणः कुतो भवतीति चेत् ?

आचार्यः प्राह—

नैतत्, देशघातिसंज्वलनोदयमपेक्ष्य सर्वघातिप्रत्याख्यानोदयस्य अनन्तगुणत्वात्। न च कारणे स्तोके सति कार्यस्य बहुत्वं संभवति, विरोधात्।

अस्यैव मिथ्यात्वाभिमुखचरमसमयवर्ति-संयतासंयतस्य उत्कृष्टस्थितिबंधो गृहीतव्यः।

असंयतसम्यग्दृष्टिपर्याप्तापर्याप्तस्य जघन्योत्कृष्टस्थितिबंधप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

असंजदसम्मादिट्ठि पज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।९३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**उदयगतप्रत्याख्यानात् तस्यैव अप्रत्याख्यानोदयस्य अनंतगुणत्वात्।**

तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।९४।।

अपर्याप्तकाले अतिविशुद्धयाः स्थितिबंधापसरणनिमित्तायाः अभावात्।

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।९५।।

उक्त जीव का ही उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ कोई शंका करता है—मिथ्यात्व के अभिमुख हुए अंतिम समयवर्ती प्रमत्तसंयत के उत्कृष्ट स्थितिबंध से भी संयतासंयत जीव का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा क्यों है?

आचार्य इसका समाधान देते हैं—ऐसा नहीं है, क्योंकि देशघाती संज्वलन कषाय के उदय की अपेक्षा सर्वघाती प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय अनन्तगुणा है और कारण के स्तोक होने पर कार्य की अधिकता सम्भव नहीं है, क्योंकि वैसा होने में विरोध आता है।

इन्हीं मिथ्यात्व के अभिमुख चरमसमयवर्ती संयतासंयत का उत्कृष्ट स्थितिबंध ग्रहण करना चाहिए।

अब असयंत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक और अपर्याप्तक की जघन्य-उत्कृष्ट स्थितिबंध का प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि उससे प्रत्याख्यानावरण के उदय की अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरण का उदय अनंतगुणा है।

सूत्रार्थ—

उसी के अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।९४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि अपर्याप्तकाल में स्थितिबंधापसरण में निमित्तभूत अतिशय विशुद्धि का अभाव है।

सूत्रार्थ—

उसी के अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।९५।।

अपर्याप्तकाले सर्वविशुद्धेन असंयतसम्यग्दृष्टिजीवेन बध्यमानस्थितिबंधादपर्याप्तकाले चैव असंयतसम्यग्दृष्टिजीवेन सर्वोत्कृष्टसंक्लेशेन बध्यमानस्थितेः संख्यातगुणत्वं प्रति विरोधाभावात्।

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।९६।।

कुतः? अपर्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिसर्वोत्कृष्टसंक्लेशात् पर्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिसर्वोत्कृष्टसंक्लेशस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तानां जघन्योत्कृष्टस्थितिबंधप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

सण्णिमिच्छाइट्ठिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **असंयतसम्यग्दृष्टिजीवस्य सर्वोत्कृष्टसंक्लेशात् संज्ञिमिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रियपर्याप्तसर्वजघन्यसंक्लेशस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्, संक्लेशवृद्ध्या स्थितिबंधवृद्धिनिमित्तत्वात्। मिथ्यात्वोदयनिमित्तेन वा असंयतसम्यग्दृष्टि-सर्वोत्कृष्टस्थितिबंधात् संयमाभिमुखचरमसमयमिथ्यादृष्टिजीवस्य जघन्यस्थितिबंधः संख्यातगुणोऽस्ति।**

तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।९८।।

संयमाभिमुखचरमसमयमिथ्यादृष्टिसंक्लेशात् अपर्याप्तमिथ्यादृष्टिसर्वजघन्यसंक्लेशस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्योंकि अपर्याप्तकाल में सर्वविशुद्ध असंयत सम्यग्दृष्टि जीव के द्वारा बांधे जाने वाले स्थितिबंध की अपेक्षा अपर्याप्तकाल में ही सर्वोत्कृष्ट संक्लेश से संयुक्त असंयत सम्यग्दृष्टि के द्वारा बांधे जाने वाले स्थितिबंध के संख्यातगुणे होने में कोई विरोध नहीं है।

सूत्रार्थ —

उसी के पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।९६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इसका क्या कारण है ? इसका कारण यह है कि अपर्याप्तक असंयत सम्यग्दृष्टि जीव के सर्वोत्कृष्ट संक्लेश की अपेक्षा पर्याप्त असंयत सम्यग्दृष्टि का सर्वोत्कृष्ट संक्लेश अनंतगुणा पाया जाता है।

अब संज्ञीपंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवों के जघन्य-उत्कृष्ट स्थितिबंध को बतलाने हेतु चार सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

संज्ञी मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — असंयत सम्यग्दृष्टि के सर्वोत्कृष्ट संक्लेश की अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का सर्वजघन्य संक्लेश अनंतगुणा पाया जाता है और संक्लेश की वृद्धि ही स्थितिबंध की वृद्धि में निमित्त है। अथवा मिथ्यात्व के उदयवश असंयत सम्यग्दृष्टि जीव के सर्वोत्कृष्ट स्थितिबंध की अपेक्षा संयम के अभिमुख हुए अंतिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है।

सूत्रार्थ —

उसी के अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।९८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — संयम के अभिमुख हुए अंतिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव के संक्लेश

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।९९।।

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।१००।।

अपर्याप्तकालसंक्लेशात् पर्याप्तकालीनसर्वोत्कृष्टसंक्लेशस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

तात्पर्यमत्र — सर्वमेतत्सूक्ष्मविषयं पठित्वा आज्ञासम्यक्त्वेन श्रद्धायापि पूर्णश्रुतज्ञानप्राप्त्यर्थं भावना भावयितव्या।

एवं द्वितीयस्थले स्थितिबंधप्ररूपणाकथनत्वेन चतुःषष्टिसूत्राणि गतानि।

एवं स्थितिबंधस्थानप्ररूपणा इति समाप्तमनुयोगद्वारम्।

अथ निषेकप्ररूपणायां त्रीणि अन्तरस्थलानि। तत्र भेदकथनार्थमेकं सूत्रं। पुनः अनंतरोपनिधा-परंपरोपनिधाभेदेन द्वौ भेदौ कथयित्वा प्रथमेऽन्तरस्थलेन नवसूत्राणि। ततश्च परंपरोनिधाकथनार्थं दश सूत्राणि इति लघुपातनिका कथिता।

अधुना निषेकप्ररूपणायां भेदनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

णिसेयपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अणुयोगद्दाराणि अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा।।१०१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **निषेचनं निषेकः, कर्मपरमाणुस्कंधनिक्षेपो निषेको नाम। तस्य प्ररूपणायां द्वे अनुयोगद्वारे स्तः — अनंतरपरंपराप्ररूपणं मुक्त्वा तृतीयप्ररूपणाया अभावात्।**

की अपेक्षा अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव का सर्वजघन्य संक्लेश अनंतगुणा पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

उसी के अपर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।९९।।

उसी के पर्याप्तक का उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।१००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्योंकि अपर्याप्तकालीन संक्लेश की अपेक्षा पर्याप्तकालीन सर्वोत्कृष्ट संक्लेश अनन्तगुणा पाया जाता है।

तात्पर्य यह है कि — यह सम्पूर्ण सूक्ष्म विषय पढ़कर आज्ञा सम्यक्त्व के द्वारा श्रद्धान करते हुए भी पूर्ण श्रुतज्ञान की प्राप्ति हेतु भावना भानी चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में स्थितिबंध की प्ररूपणा का कथन करने वाले चौंसठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार स्थितिबंधस्थानप्ररूपणा के साथ अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

अब निषेकप्ररूपणा में तीन अन्तरस्थल हैं। उनमें से भेद का कथन करने हेतु एक सूत्र है। पुनः अनंतरोपनिधा एवं परम्परोपनिधा के भेद से दो भेद बतलाकर प्रथम अन्तरस्थल में नौ सूत्र हैं। पश्चात् परम्परोपनिधा का कथन करने वाले दश सूत्र हैं, यह सूत्रों की लघु समुदायपातनिका कही गई है।

अब निषेकप्ररूपणा में भेदों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

निषेक प्ररूपणा में ये दो अनुयोगद्वार हैं — अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा।।१०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — "निषेचनं निषेकः" इस निरुक्ति के अनुसार कर्मपरमाणुओं के स्कंधों के निक्षेपण करने का नाम निषेक है। उसके दो अनुयोगद्वार हैं, क्योंकि अनन्तर प्ररूपणा और परम्परा प्ररूपणा को छोड़कर तीसरी कोई प्ररूपणा नहीं है।

एवं प्रथमेऽन्तरस्थले निषेकप्ररूपणाभेदकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति प्रथमानन्तरोपनिधानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अणंतरोवणिधाए पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तयाणं णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइयाणं तिण्णिवाससहस्साणि आबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण तीसं सागरोवमकोडीयो त्ति।।१०२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्मिन् सूत्रे विकलेन्द्रियप्रतिषेधार्थं पंचेन्द्रियनिर्देशः कृतः।**

विकलेन्द्रियप्रतिषेधः किमर्थं क्रियते ?

तत्रोत्कृष्टस्थितेः उत्कृष्टाबाधायाश्च अभावात्।

निषेकप्ररूपणायां क्रियमाणायां उत्कृष्टस्थिति-उत्कृष्टबाधयोश्च प्ररूपणायाः कोऽत्र संबंधः ?

न केवलं एषा निषेकप्ररूपणा चैव, किन्तु उत्कृष्टस्थिति-उत्कृष्टाबाधा-निषेकानां च प्ररूपणत्वात्।

इस प्रकार प्रथम अन्तरस्थल में निषेकप्ररूपणा के भेद का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब प्रथम अनन्तरोपनिधा का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अनन्तरोपनिधा की अपेक्षा पंचेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवों के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्म की तीन हजार वर्ष प्रमाण आबाधा को छोड़कर जो प्रदेशाग्र प्रथम समय में निक्षिप्त है, वह बहुत है, जो प्रदेशाग्र द्वितीय समय में निक्षिप्त है वह उससे विशेष हीन है, जो प्रदेशाग्र तृतीय समय में निषिक्त है, वह उससे विशेष हीन है, इस प्रकार वह उत्कर्ष से तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक उत्तरोत्तर विशेष हीन-विशेष हीन होता गया है।।१०२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र में विकलेन्द्रिय जीवों का प्रतिषेध करने हेतु "पञ्चेन्द्रिय" इस पद का निर्देश किया गया है।

शंका—विकलेन्द्रिय जीवों का प्रतिषेध किसलिए किया जाता है ?

समाधान—चूँकि उनमें उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट आबाधा का अभाव है, अतः उनका यहाँ प्रतिषेध किया गया है।

शंका—निषेकप्ररूपणा करते समय यहाँ उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट आबाधा की प्ररूपणा का क्या संबंध है ?

समाधान—यह केवल निषेकप्ररूपणा ही नहीं है, किन्तु उत्कृष्ट स्थिति, उत्कृष्ट आबाधा और निषेकों की भी यह प्ररूपणा है।

स्थितिबंधस्थानप्ररूपणायां उत्कृष्टः स्थितिबंध उत्कृष्टा आबाधा च प्ररूपिता। पूर्वं तेषां प्ररूपितानां पुनः प्ररूपणात्र किमर्थं क्रियते ?

नैष दोषः, स्थितिबंधस्थानप्ररूपणायां सूचितानां प्ररूपणायां क्रियमाणायां पुनरुक्तिदोषाभावात्।

यद्येवं तर्हि एतस्यानुयोगद्वारस्य निषेकप्ररूपणा इति व्यपदेशः कथं युज्यते ?

न, निषेकरचनायाः प्रधानभावेन तस्य तद्व्यपदेशसंभवात्।

अत्र सूत्रे असंज्ञिप्रतिषेधार्थं संज्ञिनामिति निर्देशः कृतः। सम्यग्दृष्टिषु उत्कृष्टस्थितिबंधप्रतिषेधार्थं मिथ्यादृष्टि-जीवानामिति निर्देशः कृतः। अपर्याप्तकाले उत्कृष्टस्थितिबंधो नास्तीति ज्ञापनार्थं 'पर्याप्तकमिति' निर्देशः कृतः। शेषकर्मप्रतिषेधार्थं ज्ञानावरणादिनिर्देशः कृतः। उत्कृष्टस्थितिं बध्यमानस्य त्रिषु वर्षसहस्रेषु प्रदेशनिक्षेपो नास्तीति ज्ञापनार्थं त्रिवर्षसहस्राणि आबाधां मुक्त्वा इति भणितम्।

अत्र एताभ्यां द्वाभ्यामनुयोगद्वाराभ्यां श्रेणिप्ररूपणासामान्येन एकत्वमापन्नाभ्यां शेषपंचानुयोगद्वाराणि येन कारणेन सूचितानि तेनात्र प्ररूपणा प्रमाणं श्रेणिः अवहारो भागाभागोऽल्पबहुत्वं चेति षडनुयोगद्वाराणि वक्तव्यानि भवन्ति।

अत्र तावत्प्ररूपणा प्रमाणं च वक्ष्येते। तद्यथा—

चतुर्णां कर्मणां त्रिवर्षसहस्राणि आबाधां मुक्त्वा य उपरिमसमयस्तत्र निषिक्तप्रदेशाग्रमस्ति। ततोऽनन्तरोपरिमसमये निषिक्तप्रदेशाग्रमप्यस्ति। तत उपरिमतृतीयसमये निषिक्तप्रदेशाग्रमप्यस्ति। एवं नेतव्यं यावत् त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटीनां चरमसमय इति।

प्ररूपणा गता।

शंका—स्थितिबंधस्थानप्ररूपणा में उत्कृष्ट स्थितिबंध और उत्कृष्ट आबाधा की भी प्ररूपणा की जा चुकी है। अतः पूर्व में प्ररूपित उन दोनों की प्ररूपणा यहाँ फिर से किसलिए की जा रही है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि स्थितिबंधस्थान प्ररूपणा में उन दोनों की सूचना मात्र की गई है। अतएव उनकी यहाँ प्ररूपणा करने में पुनरुक्ति दोष की संभावना नहीं है।

शंका—यदि ऐसा है तो फिर इस अनुयोगद्वार की 'निषेक-प्ररूपणा' यह संज्ञा कैसे उचित है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि निषेक रचना की प्रधानता होने से उसकी उक्त संज्ञा संभव ही है।

यहाँ सूत्र में असंज्ञियों का प्रतिषेध करने के लिए 'संज्ञिनां' पद का निर्देश किया गया है। सम्यग्दृष्टि जीवों में उत्कृष्ट स्थितिबंध का निषेध करने के लिए 'मिथ्यादृष्टि-जीवानां' पद का निर्देश किया है। अपर्याप्तकाल में उत्कृष्ट स्थितिबंध नहीं होता, इस बात के ज्ञापनार्थ 'पर्याप्तक' का ग्रहण किया है। शेष कर्मों का प्रतिषेध करने के लिए ज्ञानावरणादिक का निर्देश किया है। उत्कृष्ट स्थिति को बांधने वाले जीव के तीन हजार वर्षों में प्रदेशों का निक्षेप नहीं होता, इस बात को बतलाने के लिए 'तीन हजार वर्ष प्रमाण आबाधा को छोडकर' ऐसा कहा है।

यहाँ 'श्रेणिप्ररूपणा' सामान्य की अपेक्षा एकत्व को प्राप्त हुए इन दो (अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा) अनुयोगद्वारों के द्वारा चूँकि शेष पाँच अनुयोगद्वारों की सूचना की गई है अतः यहाँ प्ररूपणा, प्रमाण, श्रेणि, अवहार, भागाभाग और अल्पबहुत्व इन छह अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा करने योग्य है।

इनमें पहले प्ररूपणा और प्रमाण का कथन करते हैं। वह इस प्रकार है—

चार कर्मों की तीन हजार वर्ष प्रमाण आबाधा को छोड़कर जो अगला समय है, उसमें निषिक्त प्रदेशाग्र हैं। उससे अव्यवहित आगे के समय में निषिक्त प्रदेशाग्र भी हैं। उससे आगे के तीसरे समय में निषिक्त प्रदेशाग्र भी हैं। इस प्रकार तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों के अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए।

प्ररूपणा समाप्त हुई।

प्रथमायां स्थितौ निषिक्तपरमाणवः अभव्यसिद्धेभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागमात्राः। एवं नेतव्यं यावदुत्कृष्टस्थितिरिति।

प्रमाणप्ररूपणा गता।

श्रेणिप्ररूपणा द्विविधा—अनंतरोपनिधा परंपरोपनिधा चेति। तत्रानन्तरोपनिधा उच्यते—त्रिसहस्रवर्ष-प्रमाणामाबाधां मुक्त्वा यत् प्रथमसमये प्रदेशाग्रं निषिक्तं तद्बहुकं। यद् द्वितीयसमये प्रदेशाग्रं निषिक्तं तद् विशेषहीनं निषेकभागहारेण खण्डितैकखण्डमात्रेण। यत्तृतीयसमये प्रदेशाग्रं निषिक्तं तद्विशेषहीनं रूपोननिषेकभागहारेण खंडितैकखंडमात्रेण। यत् चतुर्थसमये प्रदेशाग्रं निषिक्तं तद् विशेषहीनं निषिक्तं तद् विशेषहीनं द्विरूपोननिषेकभागहारेण खण्डितैकखण्डमात्रेण। एवं नेतव्यं यावत्प्रथमनिषेकस्य अर्धं स्थितमिति।

पुनः द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकात् तत्रैव द्वितीयनिषेको विशेषहीनः।

कियन्मात्रेण विशेषहीन इति चेत्?

निषेकभागहारेण खण्डितैकखण्डमात्रेण। तत्रैव तृतीयसमये निषिक्तं प्रदेशाग्रं विशेषहीनं रूपोननिषेकभागहारेण खण्डितैकखण्डमात्रेण। एवं नेतव्यं यावदत्रतनप्रथमनिषेकस्यार्धं स्थितमिति। एवं नेतव्यं यावत् चरमगुणहानिरिति।

अत्र प्रकरणे संदृष्टिरचना धवलाटीकायां दृष्टव्या।

संप्रति प्ररूपणाप्रमाणानुयोगद्वारे अनंतरोपनिधायां निपततः इति ते द्वे अकथयित्वा मोहनीयस्य

प्रथम स्थिति में निषिक्त परमाणु अभव्यसिद्धों से अनन्तगुणे व सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक ले जाना चाहिए।

प्रमाण प्ररूपणा समाप्त हुई।

श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकार की है—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। इनमें अनन्तरोपनिधा को कहते हैं—

तीन हजार वर्ष प्रमाण आबाधा को छोड़कर जो प्रथम समय में निषिक्त प्रदेशाग्र (२५६) हैं वह बहुत हैं। जो द्वितीय समय में निषिक्त प्रदेशाग्र हैं, वह निषेकभागाहार का भाग देने पर जो एक भाग लब्ध हो उतने (२५६÷१६=१६) मात्र से विशेष हीन हैं। जो प्रदेशाग्र तृतीय समय में निषिक्त हैं वह एक अंक कम निषेक भागाहार का भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त हो उतने (२४०÷(१६-१)=१६) मात्र से विशेष हीन हैं। चतुर्थ समय में जो प्रदेशाग्र निषिक्त हैं, वह दो अंक कम निषेक भागहार का भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त हो उतने २२४÷(१६-२)=१६ मात्र से विशेष हीन हैं, इस प्रकार प्रथम निषेक के अर्ध भाग तक ले जाना चाहिए।

पुनः द्वितीय गुणहानि के प्रथम निषेक की अपेक्षा उसका ही द्वितीय निषेक विशेषहीन है।

कितने मात्र से वह विशेष हीन है ?

निषेक भागहार का भाग देने से जो प्राप्त हो उतने मात्र से वह विशेष हीन है। उसी द्वितीय गुणहानि के तृतीय समय में निषिक्त प्रदेशाग्र एक अंक कम निषेक भागहार का भाग देने पर जो प्राप्त हो उतने मात्र से विशेष हीन है। इस प्रकार यहाँ के प्रथम निषेक का अर्ध भाग स्थित होने तक ले जाना चाहिए। इस प्रकार अंतिम गुणहानि तक ले जाना चाहिए।

इस प्रकरण में संदृष्टि रचना धवलाटीका में देखना चाहिए।

अब प्ररूपणा और प्रमाण अनुयोगद्वार अनन्तरोपनिधा में गर्भित हैं अतः उनको न कहकर मोहनीय कर्म

अनंतरोपनिधां प्ररूपयन्त्याचार्यदेवाः।

अधुना मोहनीयकर्मानन्तरोपनिधानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तयाणं मोहणीयस्स सत्तवास-सहस्साणि आबाहं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुअं, जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडि त्ति।।१०३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पूर्वं ज्ञानावरणादीनां चतुर्णां कर्मणां त्रिवर्षसहस्राणि इति आबाधा प्ररूपिता। संप्रति अस्मिन् सूत्रे मोहनीयस्य सप्तवर्षसहस्राणि आबाधा प्ररूपितास्ति।**

एषा आबाधा किमर्थमुच्यते ?

नैतत् वक्तव्यं, किं च—स्वकस्थितिप्रतिभागेन आबाधा उत्पद्यते। तदेवोच्यते—दशसागरोपमकोटाकोटीनां वर्षसहस्रमाबाधा लभ्यते।

कथमेतज्ज्ञायते ?

परमगुरूपदेशादेव ज्ञायते।

यदि दशसागरोपमकोटाकोटीनां वर्षसहस्रमाबाधा तर्हि सप्ततित्रिंशत्-विंशतिसागरोपमकोटाकोटीनां

की अनन्तरोपनिधा को आचार्य देव कहते हैं—

अब मोहनीयकर्म की अनन्तरोपनिधा का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवों के मोहनीय कर्म की सात हजार वर्ष प्रमाण आबाधा को छोड़कर जो प्रदेशाग्र प्रथम समय में निषिक्त है वह बहुत है, जो प्रदेशाग्र द्वितीय समय में निषिक्त है, वह उससे विशेष हीन है, जो प्रदेशाग्र तृतीय समय में निषिक्त है, वह उससे विशेष हीन है, इस प्रकार उत्कर्ष से सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक विशेष हीन-विशेष हीन होता गया है।।१०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पूर्व में ज्ञानावरणादि चार कर्मों की आबाधा तीन हजार वर्ष प्रमाण बतलाई जा चुकी है। अब इस सूत्र में मोहनीय कर्म की आबाधा सात हजार वर्ष बताई गई है।

शंका—यह आबाधा किसलिए बतलाई जा रही है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि आबाधा की उत्पत्ति अपनी स्थिति के प्रतिभाग से होती है। जैसे—दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थिति की आबाधा एक हजार वर्ष प्रमाण पायी जाती है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह परम गुरु के उपदेश से जाना जाता है।

यदि दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थिति की एक हजार वर्ष प्रमाण आबाधा पाई जाती है, तो सत्तर,

किं लभ्यंते इति प्रश्ने सति प्रमाणेन फलगुणितेच्छा राशेः अपवर्तितायां यथाक्रमेण सप्त-त्रि-द्वि वर्षसहस्राणि आबाधा भवन्ति।

मोहनीयस्याबाधा एषा सप्तवर्षसहस्राणि ७०००। ज्ञानावरणादीनां चतुर्णां कर्मणामाबाधा एतावन्त्यो भवन्ति-त्रिसहस्त्रवर्षप्रमाणा इति। नामगोत्रयोराबाधा द्विसहस्त्रवर्षप्रमाणा इति। एतेनार्थपदेन शेषोत्तर-प्रकृतीनामपि आबाधाप्ररूपणा कर्तव्या।

एवं कृते षोडशानां कषायानां चतुःसहस्त्रवर्षप्रमाणा आबाधा भवति। शेषोत्तरप्रकृतीनां अपि आगमेन ज्ञात्वा वक्तव्यं। एवमेकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-असंज्ञिपंचेन्द्रियेष्वपि आबाधाप्ररूपणा स्वक-स्वककर्मस्थित्यानुसारेण कर्तव्या। विशेषेण-आयुषः आबाधानियमो नास्ति, पूर्वकोटित्रिभागामाबाधां कृत्वा क्षुद्रभवग्रहणमात्रस्थितेरपि बंधोपलंभात्। असंक्षेपाद्धामात्राबाधायामपि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रस्थिति-बंधोपलंभात्। शेषं ज्ञानावरणादिचतुर्णां कर्मणां यथा प्ररूपितं तथा निःशेषं प्ररूपयितव्यं, विशेषाभावात्।

अथ कश्चिदाशंकते —

अत्र मोहसर्वप्रकृतीनां प्रदेशपिंडं गृहीत्वा किमनंतरोपनिधा उच्यते, आहोस्वित् पृथक् पृथक् प्रकृतीनां निषेकस्य अनंतरोपनिधा उच्यते इति चेत् ?

न तावत्प्रथमविकल्प उच्यते, चत्वारिंशत् कोटाकोटिसागरोपमाणि अनंतरोपनिधाया विशेषहीनक्रमेण गत्वा तदनन्तरोपरिमसमये अनंतगुणहीनप्रदेशनिषेकप्रसंगात्, देशघातिप्रदेशपिंडोऽनंतगुणहीन इति कषायप्राभृते

तीस और बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थितियों की आबाधा कितनी होगी, इस प्रकार प्रमाण से फलगुणित इच्छा को अपवर्तित करने पर क्रमशः उनकी सात, तीन और दो हजार वर्ष प्रमाण आबाधा होती है।

मोहनीय कर्म की आबाधा ७००० वर्ष प्रमाण है। ज्ञानावरणादिक चार कर्मों की आबाधा इतनी होती है-३००० वर्ष। नाम व गोत्र की आबाधा इतनी होती है-२००० वर्ष। इस अर्थ पद से शेष उत्तर प्रकृतियों की भी आबाधा की प्ररूपणा करना चाहिए।

ऐसा कहने पर सोलह कषायों की चार हजार वर्ष प्रमाण आबाधा होती है। इसी प्रकार शेष उत्तर प्रकृतियों के विषय में भी आगम से जानकर प्ररूपणा करना चाहिए।

इस प्रकार एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में भी अपनी-अपनी कर्मस्थिति के अनुसार आबाधा की प्ररूपणा करना चाहिए।

विशेष इतना है कि आयु कर्म की आबाधा का ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि पूर्वकोटि के तृतीय भाग प्रमाण आबाधा करके क्षुद्रभवग्रहण मात्र स्थिति का भी बंध पाया जाता है तथा असंक्षेपाद्धा मात्र आबाधा में भी तेतीस सागरोपम प्रमाण स्थिति का बंध पाया जाता है। शेष जैसे ज्ञानावरणादिक चार कर्मों की प्ररूपणा की गई है, वैसे ही पूर्णरूप से प्ररूपणा करना चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं पाई जाती है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

यहाँ मोहनीय कर्म की समस्त प्रकृतियों के प्रदेशपिण्ड को ग्रहण करके क्या अनन्तरोपनिधा कही जाती है, अथवा उसकी पृथक्-पृथक् प्रकृतियों के निषेक की अनन्तरोपनिधा कही जाती है ?

इनमें प्रथम विकल्प तो योग्य नहीं है, क्योंकि अनन्तरोपनिधा की अपेक्षा विशेषहीन क्रम से चालीस कोड़ाकोड़ी सागर जाकर उससे अव्यवहित आगे के समय में अनन्तगुणे हीन प्रदेश वाले निषेक का प्रसंग आता है, क्योंकि (सर्वघाती की अपेक्षा) देशघाती प्रकृतियों का प्रदेशपिण्ड अनन्तगुणा हीन है, ऐसा

निर्दिष्टत्वात्। न चानंतगुणहीनत्वं कथयितुं युक्तं, ''विसेसहीणं सव्वत्थ णिसिंचदि'' इति सूत्रेण सह विरोधात्।

न द्वितीयपक्षोऽपि, सर्वप्रकृतीनां स्थितीः आश्रित्य पृथक् पृथक् निषेकप्ररूपणा प्रसंगात्। न चैवं, 'विशेषहीना विशेषहीना सप्ततिसागरोपमकोटाकोट्यः' इति सूत्रेण सह विरोधादिति ?

आचार्यदेवेन परिहार उच्यते। तद्यथा—

न तावद् द्वितीयपक्षे कथितदोषाणां संभवः तदभ्युपगमाभावात्। न प्रथमपक्षे प्रोक्तदोषसंभवोऽपि, मिथ्यात्वप्रदेशाग्रं चैव गृहीत्वा अनंतरोपनिधां प्ररूप्यमाणस्य तद्दोषसमागमाभावात्। न च सामान्ये विशेषो नास्ति, विशेषानुविद्धानां चैव सामान्यानामुपलंभात्। न च सामान्येऽर्पिते विशेषात्मना विरुध्यते, विशेषव्यतिरिक्त-सामान्याभावादिति।

पुनः कश्चिदाशंकते—

अधुना ''उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे'' अत्र सूत्रे व्याख्यायमाने उत्कृष्टायां स्थितौ बहुकं प्रदेशाग्रं ददाति, द्विचरमादिस्थितिषु विशेषहीनं ददातीति यद्भणितं तदेतेन सूत्रेण सह कथं न विरुध्यते ?

आचार्यः समाधत्ते—

नैतद्, गुणितकर्मांशिकमाश्रित्य सा प्ररूपणा कृता, एषा पुनः क्षपित-गुणितघोलमानजीवान् आश्रित्य कृता इति विरोधाभावात्।

कसायपाहुड़ में कहा गया है। परन्तु अनन्तगुणी हीनता का कथन उचित नहीं है, क्योंकि सर्वत्र विशेष हीन निषिक्त करता है, इस सूत्र के साथ विरोध आता है।

दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि समस्त प्रकृतियों की स्थितियों का आश्रय करके पृथक्-पृथक् निषेकों की प्ररूपणा का प्रसंग आता है। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक वे विशेष हीन-विशेष हीन हैं। इस सूत्र के साथ विरोध आता है ?

आचार्यदेव यहाँ उपर्युक्त शंका का परिहार करते हैं। वह इस प्रकार है—

दूसरे पक्ष में दिये गये दोषों की संभावना तो है ही नहीं, क्योंकि वैसा स्वीकार ही नहीं किया गया है। प्रथम पक्ष में कहे हुए दोषों की भी संभावना नहीं है, क्योंकि एक पक्ष मात्र मिथ्यात्व प्रकृति के प्रदेशपिण्ड को ग्रहण करके अनन्तरोपनिधा की प्ररूपणा करने पर उक्त दोषों का आना संभव नहीं है। सामान्य में विशेष न हो, ऐसा तो कुछ है नहीं, क्योंकि विशेषों से संबद्ध ही सामान्य पाये जाते हैं। सामान्य की मुख्यता होने पर विशेष की विवक्षा विरुद्ध हो, सो भी नहीं है, क्योंकि विशेषों से भिन्न सामान्य का अभाव पाया जाता है।

पुनः कोई शंका करता है—

अब 'उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे' इस सूत्र का व्याख्यान करते हुए उत्कृष्ट स्थिति में बहुत प्रदेशपिण्ड को देता है, द्विचरम आदिक स्थितियों में विशेष हीन देता है, ऐसा जो कहा है। वह इस सूत्र से विरोध को क्यों नहीं प्राप्त होगा ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं—

ऐसा नहीं है, क्योंकि वह प्ररूपणा गुणितकर्मांशिक का आश्रय लेकर की गई है किन्तु यह प्ररूपणा क्षपित घोलमान व गुणित घोलमान जीवों का आश्रय करके की गई है अतः उससे विरुद्ध नहीं है।

संप्रति स्वकान्तःक्षिप्तप्ररूपणा-प्रमाणानुयोगद्वारमनंतरोपनिधामायुषः प्ररूपणार्थं उत्तरसूत्रमवतार्यते—

पंचिंदियाणं सण्णीणं सम्मादिट्ठीणं वा मिच्छादिट्ठीणं वा पज्जत्तयाण-माउअस्स पुव्वकोडितिभागमाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण तेतीससागरोवमाणि त्ति।।१०४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सूत्रे 'पुव्वकोडितिभागमाबाधं'' इति यद् भणितं तेनान्ययोगव्यवच्छेदो न क्रियते, किन्तु अयोगव्यवच्छेदश्चैव, पूर्वकोटित्रिभागमादिं कृत्वा यावदसंक्षेपाद्धा इति तावत् सर्वाबाधाभिः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रस्थितिबंधसंभवात्।**

यद्येवं तर्हि उत्कृष्टाबाधायां चैव किमर्थं निषेकप्ररूपणा क्रियते ?

न, आयुषः उत्कृष्टाबाधा एतावन्ती एव भवति, उत्कृष्टाबाधया सह त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कृष्टा स्थितिश्च भवतीति ज्ञापनार्थं तत्प्ररूपणास्ति। अत्र देवायुः प्रतीत्य ''सम्मादिट्ठीणं वा'' इति भणितं, संयतेषु सम्यग्दृष्टिषु पूर्वकोटित्रिभागप्रथमसमयस्थितिषु देवायुषः केष्वपि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणस्य बंधोपलंभात्।

अब प्ररूपणा और प्रमाण अनुयोगद्वारों से गर्भित आयुकर्म की अनंतरोपनिधा को बताने हेतु उत्तरसूत्र कहते हैं—

सूत्रार्थ—

पञ्चेन्द्रिय संज्ञी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवों के आयु कर्म की एक पूर्वकोटि के तृतीय भाग प्रमाण आबाधा को छोड़कर प्रथम समय में जो प्रदेशपिण्ड दिया गया है। वह बहुत है, द्वितीय समय में जो प्रदेशपिण्ड दिया गया है, वह उससे विशेष हीन है, तृतीय समय में जो प्रदेशपिण्ड दिया गया है, वह विशेष हीन है, इस प्रकार उत्कर्ष से तेतीस सागरोपम तक वह विशेष हीन-विशेष हीन होता गया है।।१०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ इस सूत्र में ''पुव्वकोडितिभागमाबाधं'' यह जो कहा है, उससे अन्य योगव्यवच्छेद (अन्य आबाधाओं की व्यावृत्ति) नहीं किया जा रहा है, किन्तु अयोगव्यवच्छेद ही किया जा रहा है, क्योंकि पूर्वकोटि के त्रिभाग को आदि लेकर असंक्षेपाद्धा तक समस्त आबाधाओं के साथ तेतीस सागरोपम प्रमाण आयुकर्म का बंध संभव है।

शंका—यदि ऐसा है तो उत्कृष्ट आबाधा में ही किसलिए निषेक प्ररूपणा की जाती है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि आयु कर्म की उत्कृष्ट आबाधा इतनी ही होती है तथा उत्कृष्ट आबाधा के साथ तेतीस सागरोपम मात्र उत्कृष्ट स्थिति भी होती है, यह बतलाने के लिए उक्त प्ररूपणा की जा रही है।

देवायु की अपेक्षा करके 'सम्मादिट्ठीणं वा' ऐसा कहा गया है, क्योंकि पूर्वकोटि के त्रिभाग के प्रथम समय में स्थित किन्हीं सम्यग्दृष्टि संयत जीवों में तेतीस सागरोपम प्रमाण देवायु का बंध पाया जाता है।

नारकायुः प्रतीत्य ''मिच्छाइट्ठीणं वा'' इत्युक्तं, पूर्वकोटित्रिभागप्रथमसमये वर्तमानमिथ्यादृष्टिषु केष्वपि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रनारकायुषो बंधोपलंभात्। शेषं यथा ज्ञानावरणीयस्य प्ररूपितं तथा प्ररूपयितव्यं, विशेषाभावात्।

अधुना नामगोत्रयोः अन्तःक्षिप्तप्ररूपणाप्रमाणानन्तरोपनिधानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तयाणं णामागोदाणं बेवास-सहस्साणि आबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण वीसं सागरोवम-कोडाकोडीयो त्ति।।१०५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**निषेकभागहारः सर्वकर्मसु सदृशः, सर्वत्र गुणहानीनां सदृशत्वोपलंभात्। गोपुच्छविशेषा न सर्वगुणहानिषु सदृशाः, किन्तु आदिगुणहानिप्रभृति अर्द्धार्द्धगताः, गुणहानिषु अवस्थितासु गोपुच्छविशेषाणामवस्थानविरोधात्। शेषं यथा ज्ञानावरणीयस्य प्ररूपितं तथा प्ररूपयितव्यम्।**

संप्रति संज्ञिषु पर्याप्तेषु सर्वकर्मणां प्रदेशनिषेकस्य अनन्तरोपनिधा प्ररूपितास्ति।

अधुना संज्ञि-अपर्याप्तानां तत्प्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

नारकायु की अपेक्षा करके 'मिच्छाइट्ठीणं वा' ऐसा कहा गया है, क्योंकि पूर्वकोटि के त्रिभाग के प्रथम समय में वर्तमान किन्हीं मिथ्यादृष्टि जीवों में तेतीस सागरोपम प्रमाण नारकायु का बंध पाया जाता है। शेष प्ररूपणा जैसे ज्ञानावरणीय के विषय में की गई है, वैसे ही यहाँ करना चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब नाम और गोत्रकर्म के अन्दर गर्भित प्ररूपणा और प्रमाण की अनन्तरोपनिधा का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण हो रहा है —

सूत्रार्थ—

पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवों के नाम व गोत्र कर्म की दो हजार वर्ष प्रमाण आबाधा को छोड़कर जो प्रदेशपिण्ड प्रथम समय में निषिक्त है, वह बहुत है, जो प्रदेश पिण्ड द्वितीय समय में निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है, जो प्रदेशपिण्ड तृतीय समय में निषिक्त है, वह उससे विशेष हीन है, इस प्रकार उत्कर्ष से बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों तक विशेष हीन-विशेष हीन होता गया है।।१०५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—निषेक भागहार सब कर्मों में समान है, क्योंकि सर्वत्र गुणहानियों की सदृशता देखी जाती है। गोपुच्छविशेष सब गुणहानियों में सदृश नहीं है, किन्तु प्रथम गुणहानि से लेकर उत्तरोत्तर आधे-आधे होते गये हैं, क्योंकि गुणहानियों के अवस्थित होने पर गोपुच्छ विशेषों के अवस्थान का विरोध है। शेष प्ररूपणा जैसे ज्ञानावरणीय के संबंध में प्ररूपित की गई है। वैसे ही प्ररूपित करना चाहिए।

अब संज्ञी पर्याप्तक जीवों के प्रदेश निषेक की अनन्तरोपनिधा की प्ररूपणा प्रस्तुत है।

अब संज्ञी अपर्याप्त जीवों की उस अनंतरोपनिधा की प्ररूपणा करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणमपज्जत्तयाणं सत्तण्णं कम्माणमाउव-वज्जाणमंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण अंतोकोडाकोडीयो त्ति।।१०६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र एतैः सह आयुषः किमर्थं न भणितं ?**

नैष दोषः, एतेषां स्थितिबंधेन समानायुःस्थितिबंधाभावेन सह वक्तुमशक्तेः।

नामगोत्रयोरन्तःकोटाकोटिमात्रस्थितिबंधापेक्षया चतुर्णां कर्मणामन्तःकोटाकोटिप्रमाणं द्विभागाभ्यधिकं। मोहस्य अन्तःकोटाकोट्यः चतुर्णां कर्मणां अन्तःकोटाकोटिभ्यः एकतृतीयभागसहितद्विरूपगुणा इति। शेषकर्मस्थितिः विसदृशा इति। तेन शेषकर्मणां अपि एकयोगो माभवतु इति ?

नैतत्, अन्तःकोटाकोटित्वेन तासां स्थितीनां समानत्वोपलंभात्। ''अंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण'' इति भणिते प्रथमसमयप्रभृति संख्यातावलिकाः वर्जयित्वा उपरि निषेकरचनां करोतीति गृहीतव्यं। शेषं संज्ञिपंचेन्द्रिय-पर्याप्तज्ञानावरणीयस्य यथा प्रोक्तं तथा वक्तव्यं, अविशेषात्।

सूत्रार्थ—

पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तक जीवों की आयु को छोड़कर शेष सात कर्मों की अन्तर्मुहूर्त मात्र आबाधा को छोड़कर जो प्रदेशपिण्ड प्रथम समय में निषिक्त है वह बहुत है, जो प्रदेशपिण्ड द्वितीय समय में निषिक्त है वह विशेष हीन है, जो प्रदेशपिण्ड तृतीय समय में निषिक्त है वह विशेषहीन है, इस प्रकार उत्कर्ष से अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम तक विशेषहीन-विशेषहीन होता गया है।।१०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—

शंका—यहाँ इनके साथ आयु कर्म का कथन क्यों नहीं किया है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि इनके स्थितिबंध के समान आयु कर्म का स्थितिबंध नहीं होता है, अतएव उनके साथ आयु कर्म का कहना शक्य नहीं है।

शंका—नाम व गोत्र कर्म के अन्तःकोड़ाकोड़ी मात्र स्थितिबंध की अपेक्षा चार कर्मों का स्थितिबंध द्वितीय भाग से अधिक अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण होता है। मोहनीय कर्म की अन्तःकोड़ाकोड़ी चार कर्मों की अन्तःकोड़ाकोड़ी की अपेक्षा एक तृतीय भाग सहित दो रूपों २ (१/३) से गुणित है। शेष कर्मों की स्थिति विसदृश है। इसलिए शेष कर्मों का भी एक योग नहीं होना चाहिए।

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि अन्तःकोड़ाकोड़ी स्वरूप से उनकी स्थितियों के समानता पाई जाती है। 'अंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण' ऐसा कहने पर प्रथम समय से लेकर संख्यात आवलियों को छोड़कर इसके आगे निषेक रचना को करता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। शेष कथन जैसे-संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के ज्ञानावरणीय के विषय में किया है, वैसा ही इसके भी कहना चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नही है।

अधुना अपर्याप्तजीवसमासादीनां निषेकरचनाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणं चउरिंदिय-तीइंदिय-बीइंदियाणं बादरेइंदिय-अपज्जत्तयाणं सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणमाउअस्स अंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण जाव पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुअं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण पुव्वकोडीयो त्ति।।१०७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एते सप्तापर्याप्तजीवसमासस्वरूपेण परिणतजीवाः सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तजीवाश्चायुषः सर्वोत्कृष्टस्थितिं बध्यमानाः पूर्वकोटिं चैव येन बध्यन्ति तेन पूर्वकोटिमात्रा एव प्रदेशरचना प्ररूपिता। पूर्वकोटितः रूपोनादिक्रमेण परिहीना अपि प्रदेशरचनास्ति, अन्यथा उत्कृष्टेण यावत् पूर्वकोटिरिति निर्देशानुपपत्तेः।**

एते पूर्वकोटितोऽभ्यधिकं आयुः किन्न बध्नन्ति ?

स्वभावतोऽत्यन्ताभावेन निरुद्धशक्तित्वाद् वा।

एतेषां जीवानामाबाधा अन्तर्मुहूर्तमात्रा एवेति किमर्थमुच्यते ?

न, एतेषामन्तर्मुहूर्तायुष्काणां स्वकायुस्त्रिभागेऽन्तर्मुहूर्तभावस्यैवोपलंभात्। शेषं सुगमम्।

अब अपर्याप्त जीवसमास आदिकों की निषेक रचना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

संज्ञी व असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय व बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक व अपर्याप्तक जीवों के आयु कर्म की अन्तर्मुहूर्त मात्र आबाधा को छोड़कर प्रथम समय में जो प्रदेशाग्र निषिक्त है वह बहुत है। जो प्रदेशाग्र द्वितीय समय में निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है, जो प्रदेशाग्र तृतीय समय में निषिक्त है वह विशेष हीन है, इस प्रकार उत्कर्ष से पूर्वकोटि तक विशेषहीन-विशेषहीन होता गया है।।१०७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये सात अपर्याप्त जीवसमास स्वरूप से परिणत जीव तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति को बांधते हुए चूँकि पूर्वकोटि प्रमाण ही बांधते हैं, अतएव पूर्वकोटि मात्र ही प्रदेश रचना कही गई है। पूर्वकोटि में से एक अंक कम इत्यादि क्रम से हीन भी प्रदेश रचना होती है, अन्यथा उत्कृष्टरूप से पूर्वकोटि तक यह निर्देश घटित नहीं होता है।

शंका—ये जीव पूर्वकोटि से अधिक आयु को क्यों नहीं बांधते हैं ?

समाधान—उक्त जीव स्वभावतः उससे अधिक आयु को नहीं बांधते हैं, अथवा अत्यन्ताभाव से निरुद्धशक्ति होने से वे अधिक आयु का बंध नहीं करते हैं।

शंका—इन जीवों के उक्त कर्मों की आबाधा अन्तर्मुहूर्त मात्र ही किसलिए कही जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इन जीवों की आयु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही होती है, अतएव अपनी आयु के

अधुना असंज्ञिपंचेन्द्रियादिपर्याप्तानां सप्तकर्मणां निषेकरचनादि निरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

पंचिंदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं बादर-एइंदियपज्जत्तयाणं सत्तण्णं कम्माणं आउअवज्जाणं अंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुअं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण सागरोवमसहस्सस्स सागरोवम-सदस्स सागरोवमपण्णासाए सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमस्स तिण्णि-सत्तभागा सत्त-सत्तभागा बे-सत्तभागा पडिपुण्णा त्ति।।१०८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र पूर्वानुपूर्व्या येन निर्देशः कृतः तेन असंज्ञिपंचेन्द्रियाणां सागरोपमसहस्रस्य त्रि-सप्तभागा चतुर्णां कर्मणामुत्कृष्टस्थितिर्भवति, मोहनीयस्य सप्त-सप्त-भागा, नामगोत्रयोर्द्वि-सप्तभागा। चतुरिन्द्रियाणां सागरोपमशतस्य त्रि-सप्तभागा चतुर्णां कर्मणामुत्कृष्टस्थितिर्भवति, मोहनीयस्य सप्त-सप्तभागा, नामगोत्रयोर्द्वि-सप्तभागा। त्रीन्द्रियपर्याप्तकेषु पंचाशत्सागरोपमानां चतुर्णां कर्मणां उत्कृष्टस्थितिः त्रिसप्तभागा, मोहनीयस्य सप्त-सप्तभागा, नामगोत्रयोर्द्वि-सप्त भागा भवति। द्वीन्द्रियपर्याप्तेषु पंचविंशतिसागरोपमानां**

त्रिभाग में अन्तर्मुहूर्तता ही पाई जा सकती है। शेष कथन सुगम है।

अब असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय आदि पर्याप्त जीवों के सात कर्मों की निषेक रचना आदि का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय जीवों के आयु कर्म से रहित सात कर्मों की अन्तर्मुहूर्त मात्र आबाधा को छोड़कर प्रथम समय में जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है वह बहुत है। जो प्रदेशपिण्ड द्वितीय समय में निषिक्त है वह उससे विशेष हीन है, जो प्रदेशपिण्ड तृतीय समय में निषिक्त है, वह उससे विशेषहीन है, इस प्रकार विशेषहीन-विशेषहीन होकर उत्कर्ष हजार सागरोपमों के, सौ सागरोपमों के, पचास सागरोपमों के और पच्चीस सागरोपमों के चार कर्मों, मोहनीय एवं नाम-गोत्र कर्मों के क्रम से सात भागों में से परिपूर्ण तीन भाग (३/७), सात भाग (७/७) और दो भागों (२/७) तक चला गया है।।१०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र में चूंकि पूर्वानुपूर्वी के क्रम से निर्देश किया गया है, अतः असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के चार कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति हजार सागरोपमों के तीन बटे सात भाग (३/७) प्रमाण, मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति सात बटे सात भाग (७/७) प्रमाण और नाम-गोत्र की दो बटे सात भाग (२/७) प्रमाण है। चतुरिन्द्रिय जीवों के चार कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरोपमों के तीन बटे सात भाग प्रमाण, मोहनीय कर्म की सात बटे सात भाग प्रमाण और नाम-गोत्रकर्म की दो बटे सात भाग प्रमाण है। त्रीन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में चार कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति पचास सागरोपमों के तीन बटे सात भाग, मोहनीय

चतुर्णां कर्मणां उत्कृष्टस्थितिः त्रिसप्तभागा, मोहनीयस्य सप्त-सप्तभागा, नामगोत्रयोर्द्वि-सप्तभागा भवति। बादरैकेन्द्रियपर्याप्तेषु सागरोपमस्य चतुर्णां कर्मणां उत्कृष्टस्थितिः त्रिसप्तभागा, मोहनीयस्य सप्त-सप्तभागा, नामगोत्रयोर्द्वि-सप्तभागा भवति। अत्र एताः स्थितयः त्रैराशिकक्रमेण ज्ञात्वा आनेतव्याः। सप्ततिकोटाकोटिरूपैः सप्तसहस्त्रवर्षाणि अपवर्त्य लब्धे स्वक-स्वककर्मस्थितीनां सागरोपमशलाकाभिर्गुणिते इच्छितजीवसमास-कर्मस्थितीनामाबाधा भवन्ति। शेषं ज्ञात्वा वक्तव्यम्।

अधुना असंज्ञिपंचेन्द्रियादिजीवानां आयुःकर्माबाधाकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

पंचिंदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं बादर-एइंदियपज्जत्तयाणमाउअस्स पुव्वकोडित्तिभागं बेमासं सोलसरादिंदियाणि सादिरेयाणि चत्तारिवासाणि सत्तवाससहस्साणि सादिरेयाणि आबाहं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो पुव्वकोडि त्ति।।१०९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तानां पूर्वकोटित्रिभाग आबाधा भवति, तेषु भुज्यमानायुषः**

कर्म की सात बटे सात भाग और नाम-गोत्र कर्म की दो बटे सात भाग प्रमाण है। द्वीन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में चार कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरोपमों के तीन बटे सात भाग, मोहनीय की सात बटे सात भाग और नाम-गोत्र कर्म की दो बटे सात भाग प्रमाण है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में चार कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तक सागरोपम के तीन बटे सात भाग मोहनीय की सात बटे सात भाग और नाम-गोत्र कर्म की दो बटे सात भाग प्रमाण है। यहाँ इन स्थितियों को त्रैराशिक क्रम से जानकर निकालना चाहिए। सत्तर कोड़ाकोड़ी रूपों से सात हजार वर्षों को अपवर्तित करके जो लब्ध हो उसे अपनी-अपनी कर्मस्थितियों की सागरोपमशलाकाओं द्वारा गुणित करने पर अभीष्ट जीवसमास की कर्मस्थितियों की आबाधाएँ होती हैं। शेष कथन जानकर करना चाहिए।

अब असंज्ञी पंचेन्द्रियादि जीवों के आयुकर्म की आबाधा का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय ,चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के आयुकर्म की क्रमशः पूर्वकोटि के तृतीय भाग, दो मास अधिक सोलह दिवस, चार वर्ष और साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण आबाधा को छोड़कर जो प्रदेशपिण्ड प्रथम समय में निषिक्त है वह बहुत है, जो प्रदेशपिण्ड द्वितीय समय में निषिक्त है वह उससे विशेषहीन है, जो प्रदेशपिण्ड तृतीय समय में निषिक्त है वह उससे विशेषहीन है, इस प्रकार उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भाग व पूर्वकोटि तक विशेषहीन-विशेषहीन होता गया है।।१०९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के आयु कर्म की आबाधा पूर्वकोटि के

पूर्वकोटिप्रमाणस्य उपलंभात्। चतुरिन्द्रियेषु उत्कृष्टाबाधा द्विमासौ, तत्र सर्वोत्कृष्टभुज्यमानायुषः षण्मास-प्रमाणत्वोपलंभात्। त्रीन्द्रियेषु षोडशरात्रिंदिनानि सातिरेकाणि उत्कृष्टाबाधा भवति, तेषु एकोनपंचाशद्रात्रिंदिवस-मात्रपरमायुर्दर्शनात्। द्वीन्द्रियेषु चतुर्वर्षाणि उत्कृष्टाबाधा भवति, तत्र द्वादशवर्षमात्रपरमायुर्दर्शनात्। बादरैकेन्द्रिय-पर्याप्तेषु सप्तसहस्त्रत्रिशतत्रयस्त्रिंशद्वर्षाणि चतुर्मासाश्च उत्कृष्टाबाधा भवति, तत्र द्वाविंशतिसहस्त्रमात्र-परमायुर्दर्शनात्। एता आबाधा वर्जयित्वा प्रदेशरचना क्रियते इत्युक्तं भवति।

प्रदेशविन्यासस्यायामः पुनः असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तेषु आयुषः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रः, तत्र पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रनरकायुः स्थितेः बंधोपलंभात्।

चतुरिन्द्रियादीनामायुषः प्रदेशविन्यासायामः पूर्वकोटिमात्रश्चैव, तत्र एतस्मादधिकबंधाभावात्। शेषं सुगमम्।

अधुना असंज्ञिपंचेन्द्रियाद्यपर्याप्तानां सप्तकर्मणामनन्तरोपनिधाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

पंचिंदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं बादरे-इंदियअपज्जत्तयाणं सुहुमे-इंदियपज्जत्तअपज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणमा-उअवज्जाणमंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए

त्रिभाग प्रमाण होती है, क्योंकि उनमें भुज्यमान आयु पूर्वकोटि प्रमाण पाई जाती है। चतुरिन्द्रिय जीवों में उसकी उत्कृष्ट आबाधा दो मास प्रमाण होती है, क्योंकि उनमें सर्वोत्कृष्ट भुज्यमान आयु छह मास प्रमाण पाई जाती है। त्रीन्द्रिय जीवों में उत्कृष्ट आबाधा कुछ अधिक सोलह दिवस प्रमाण होती है, क्योंकि उनमें उनचास दिवस प्रमाण उत्कृष्ट आयु देखी जाती है। द्वीन्द्रिय जीवों में चार वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आबाधा होती है, क्योंकि उनमें बारह वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आयु देखी जाती है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में उत्कृष्ट आबाधा सात हजार तीन सौ तेतीस वर्ष व चार मास प्रमाण होती है, क्योंकि उनमें बाईस हजार वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आयु देखी जाती है। इन आबाधाओं को छोड़कर प्रदेश रचना की जाती है, यह उक्त कथन का अभिप्राय है।

पुनः असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में आयु कर्म के प्रदेशविन्यास का आयाम पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, क्योंकि उनमें पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण नारकायु का स्थितिबंध पाया जाता है।

चतुरिन्द्रिय आदिक जीवों के आयु कर्म के प्रदेशविन्यास का आयाम पूर्वकोटि प्रमाण ही है, क्योंकि उनमें इससे अधिक स्थितिबंध का अभाव है। शेष कथन सुगम है।

अब असंज्ञी पंचेन्द्रिय आदि अपर्याप्तक जीवों के सात कर्मों की अनन्तरोपनिधा का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक जीवों के आयु कर्म से रहित शेष सात कर्मों की अन्तर्मुहूर्त मात्र आबाधा को छोड़कर प्रथम समय में जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त

पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण सागरोवमसदस्स सागरोवमपण्णासाए सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमस्स तिण्णिसत्तभागा, सत्त-सत्तभागा, बे-सत्तभागा, पलिदोवमस्स संखेज्ज-दिभागेण ऊणया पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया त्ति।।११०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र अपर्याप्तशब्दः असंज्ञिपंचेन्द्रियादिषु प्रत्येकमभिसंबंधनीयो भवति, तत्संबंधेन विना पुनरुक्तिप्रसंगात्। असंज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्तप्रभृति यावद् द्वीन्द्रियापर्याप्त इति तावत् एतेषां स्थितयः पल्योपमस्य संख्यातभागेन ऊनाः। बादरैकेन्द्रियापर्याप्त-सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तानामुत्कृष्टायुः- स्थितयः पल्योपमस्य असंख्यातभागेनोनसागरोपममात्राः।**

शेषं सुगमं।

एवं द्वितीयेऽन्तरस्थले निषेकप्ररूपणान्तर्गतानन्तरोपनिधाकथनत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

एवमनन्तरोपनिधा समाप्ता।

अधुना परंपरोपनिधापेक्षया कर्मप्रदेशाग्रनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

परंपरोवणिधाए पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणं पज्जत्तयाणं अट्ठण्हं कम्माणं जं पढमसमए पदेसग्गं तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागं

है, वह बहुत है, द्वितीय समय में जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है, वह उससे विशेषहीन है, तृतीय समय में जो प्रदेशपिण्ड निषिक्त है, वह उससे विशेषहीन है, इस प्रकार उत्कर्ष से सौ सागरोपम, पचास सागरोपम, पच्चीस सागरोपम और एक सागरोपम के सात भागों में से पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन एवं पल्योपम के तीन, सात और दो भाग तक विशेषहीन-विशेषहीन होता चला गया है।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र में अपर्याप्तक शब्द का संबंध असंज्ञी पंचेन्द्रिय आदिक जीवों में से प्रत्येक के साथ करना चाहिए, क्योंकि उसका संबंध न करने से पुनरुक्ति दोष का प्रसंग आता है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक से लेकर द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक तक इन जीवों की स्थिति पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक व अपर्याप्तक जीवों की उत्कृष्ट स्थितियाँ पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन सागरोपम प्रमाण हैं। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार द्वितीय अन्तरस्थल में निषेकप्ररूपणा के अन्तर्गत अनन्तरोपनिधा का कथन करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार अनन्तरोपनिधा समाप्त हुई।

अब परम्परोपनिधा की अपेक्षा कर्म प्रदेशाग्र का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

परम्परोपनिधा की अपेक्षा संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के आठ कर्मों का जो प्रथम समय में प्रदेशाग्र है, उससे पल्योपम के असंख्यातवें भाग जाकर

गंतूण दुगुणहीणा, एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सिया ट्ठिदी त्ति।।१११।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**विशेषहीनक्रमेण गच्छतो निषेकाः किं कुत्रापि द्विगुणहीना जाता न वा इति पृच्छायां 'असंख्यातगोपुच्छविशेषे गत्वा द्विगुणहीना जाता' इति ज्ञापनार्थं परंपरोपनिधा आगता।**

प्रथमनिषेकात् प्रभृति ''पल्योपमस्य असंख्यातभागं गत्वा द्विगुणहीना'' इति वचनेन कर्मस्थित्यभ्यन्तरे असंख्याता द्विगुणहान्यः सन्तीति ज्ञायते। तद्यथा—

पल्योपमस्य असंख्यातभागं गत्वा यद्येका द्विगुणहानिशलाका लभ्यते तर्हि कर्मस्थित्यभ्यंतर—संख्यातपल्योपमेषु कियन्त्यो द्विगुणहानिशलाका लभ्यामहे इति पल्योपमस्य असंख्यातभागेन कर्मस्थितावपवर्तितायां पल्योपमस्य असंख्यातभाग उपलभ्यते इति आबाधाहीनकर्मस्थितौ एकगुणहान्या भागे हृते रूपोननानागुणशलाका एकस्या गुणहानिशलाकाया असंख्यातबहुभागाश्चागच्छन्ति।

कुतः ?

नानागुणहानिशलाकाभिः कर्मस्थितावपवर्तितायां एकगुणहानिरागच्छति इति गुरूपदेशाद् ज्ञायते।

विस्तरेण धवलाटीकायां द्रष्टव्यं।

अधुना नानागुणहानिशलाकानां गुणहान्याश्च प्रमाणप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

द्विगुणहीन है, इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक द्विगुणहीन-द्विगुणहीन होता चला गया है।।१११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—विशेष हीनता के क्रम से जाते हुए निषेक कहीं पर द्विगुण हीन भी हो जाते हैं, अथवा नहीं होते हैं, ऐसा पूछने पर उत्तर में कहते हैं कि असंख्यात गोपुच्छ विशेष जाकर वे द्विगुण हीन हो जाते हैं, इस बात की जानकारी के लिए परम्परोपनिधा का अवतार हुआ है।

प्रथम निषेक से लेकर पल्योपम के असंख्यातवें भाग जाकर द्विगुण हीन होते हैं, इस वचन से कर्मस्थिति के भीतर असंख्यात द्विगुणहानियाँ हैं, यह जाना जाता है। वह इस प्रकार है—

पल्योपम के असंख्यातवें भाग जाकर यदि एक द्विगुणहानि शलाका प्राप्त होती है, तो कर्मस्थिति के भीतर संख्यात पल्योपमों में कितनी द्विगुणहानि शलाकाएँ प्राप्त होंगी, इस प्रकार पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कर्मस्थिति को अपवर्तित करने पर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग प्राप्त होता है। अतएव आबाधा से हीन कर्मस्थिति में एक गुणहानि का भाग देने पर एक कम नानागुणहानिशलाकाओं और एक गुणहानि शलाका के असंख्यात बहुभाग आते हैं।

कैसे ?

ऐसा इसलिए है क्योंकि नानागुणहानि शलाकाओं का कर्मस्थिति में भाग देने पर एक गुणहानि लब्ध होती है, ऐसा गुरु का उपदेश प्राप्त है।

इसका विस्तृत वर्णन धवला टीका में देखना चाहिए।

अब नाना गुणहानि की शलाकाओं का एवं गुणहानि का प्रमाण प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण किया जाता है —

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि।।११२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र ''पलिदोवमवग्गमूलाणि'' इत्युक्ते पल्योपमप्रथमवर्गमूलस्यैव ग्रहणं कर्तव्यं न द्वितीयादीनां, पल्योपमस्य वर्गमूले गृहीते प्रथमवर्गमूलस्यैवोत्पत्तिदर्शनात्। तानि च प्रथमवर्गमूलानि असंख्यातानि, नानागुणहानिशलाकाभिः कर्मस्थितावपवर्तितायां गुणहानिप्रमाणोत्पत्तेः। एषा गुणहानिः सर्वकर्मणां सदृशी, कर्मस्थितिभागहारभूतनानागुणहानिशलाकानां कर्मस्थितिप्रतिभागेन प्रमाणत्वोपलंभात्।**

अधुना मोहनीयस्य नानागुणशलाकाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

णाणापदेसगुणट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदि-भागो।।११३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र मोहनीयस्य नानागुणहानिशलाकाः पल्योपमस्य किंचिदूनार्द्धच्छेदानां तुल्याः, चरमगुणहानिद्रव्यात् प्रथमनिषेकोऽसंख्यातगुण इति प्रदेशविरचिताल्पबहुत्वाद् ज्ञायते।**

ज्ञानावरणादीनां पुनः नानागुणहानिशलाकाः पल्योपमप्रथमवर्गमूलार्द्धच्छेदेभ्यः स्तोकाः सन्ति।

एतत्कुतो ज्ञायते ?

एता विरलय्य द्विगुणितं कृत्वान्योन्याभ्यस्ते कृतेऽसंख्यातपल्योपमद्वितीयवर्गमूलानि उत्पद्यन्ते।

सूत्रार्थ—

एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है।।११२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ 'पल्योपम का वर्गमूल' ऐसा कहने पर पल्योपम के प्रथम वर्गमूल का ग्रहण करना चाहिए, द्वितीयादि वर्गमूलों का नहीं, क्योंकि पल्योपम के प्रथम वर्गमूल को ग्रहण करने पर प्रथम वर्गमूल की ही उत्पत्ति देखी जाती है। वे वर्गमूल असंख्यात हैं, क्योंकि नानागुणहानि शलाकाओं का कर्मस्थिति में भाग देने पर गुणहानि का प्रमाण प्राप्त होता है। यह गुणहानि सब कर्मों की समान है, क्योंकि कर्मस्थिति के भागहारभूत नानागुणहानि शलाकाओं का प्रमाण कर्मस्थिति प्रतिभाग के प्रमाण पाया जाता है।

अब मोहनीय कर्म की नानागुणशलाकाओं का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

नाना प्रदेशगुणहानि स्थानान्तर पल्योपम के वर्गमूल के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।११३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ मोहनीय कर्म की नानागुणहानि शलाकाएँ पल्योपम के कुछ कम अर्धच्छेदों के बराबर हैं, क्योंकि वह अन्तिम गुणहानि के द्रव्य से प्रथम निषेक असंख्यातगुणा है, इस प्रदेशविरचित अल्पबहुत्व से जाना जाता है।

परन्तु ज्ञानावरणादिकों की नानागुणहानिशलाकाएँ पल्योपम संबंधी प्रथम वर्गमूल के अर्धच्छेदों से स्तोक हैं।

प्रश्न—ऐसा कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—क्योंकि इसका विरलन कर द्विगुणित करके परस्पर में गुणा करने पर पल्योपम के असंख्यात द्वितीय वर्गमूल उत्पन्न होते हैं।

एतदपि कुतो ज्ञायते ?

मोहनीयनानागुणहानिशलाकानां द्वि-त्रि-सप्तभागेषु विशेषाधिकद्वितीयवर्गमूलच्छेदा उपलभ्यन्ते, एतस्मादेव तावद् द्वितीयवर्गमूलानामुत्पत्तिर्ज्ञायते।

संप्रति नानाप्रदेशगुणहानि-एकप्रदेशगुणहानिप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि।।११४।।

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।।११५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र स्तोकोनपल्योपमार्द्धच्छेदप्रमाणत्वात् स्तोकोनपल्योपमप्रथमवर्गमूलच्छेदमात्राः सन्ति।**

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरमसंख्यातगुणमिति कथितेऽत्र गुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातप्रथमवर्गमूलं भवति।

संप्रति-संज्ञ्यादिजीवानां प्रदेशाग्रनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणमपज्जत्तयाणं चउरिंदिय-तीइंदिय-बीइंदिय-एइंदिय-बादर-सुहुमपज्जत्तापज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणमा-

---

शंका—यह भी कहाँ से जाना जाता है ?

समाधान—चूँकि मोहनीय की नानागुणहानि शलाकाओं के दो-तीन सात भागों में विशेष अधिक द्वितीय वर्गमूल के अर्धच्छेद पाये जाते हैं, अतः इसी से उतने द्वितीय वर्गमूलों की उत्पत्ति का ज्ञान होता है।

अब नाना प्रदेशों की गुणहानि एवं एकप्रदेश की गुणहानि का प्रमाण निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

नाना प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं।।११४।।

एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।।११५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ स्तोक का अर्थ पल्योपम के कुछ कम अर्धच्छेदों के बराबर होने से पल्योपम के प्रथमवर्गमूल के अर्धच्छेदों से कुछ कम है।

एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है, ऐसा कहने पर यहाँ गुणकार पल्योपम के असंख्यात प्रथमवर्गमूल होता है।

अब संज्ञी आदि जीवों के प्रदेशाग्र निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय बादर व सूक्ष्म इन पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों के आयु को छोड़कर शेष सात कर्मों का जो प्रदेशाग्र प्रथम समय में है, उससे पल्योपम के असंख्यातवें भाग जाकर व

उववज्जाणं जं पढमसमए पदेसग्गं तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागं गंतूण दुगुणहीणा, एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।।११६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र यथा संज्ञिपर्याप्तज्ञानावरणादीनां प्ररूपणा कृता तथा कर्तव्या। विशेषेणात्रात्मनः स्थितीनां प्रमाणं ज्ञात्वा वक्तव्यम्।**

तात्पर्यमत्र—ममात्मा अनाद्यनिधनोऽस्ति, अतएव स्वात्मतत्त्वशुद्ध्यर्थं सिद्ध्यर्थमेव च एवं ग्रंथाध्ययन-लेखनादिप्रयासो ममास्ति।

अधुना एकप्रदेश-नानागुणहानिस्थानान्तरप्रमाणप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

एयपदेस गुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि।।११७।।

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदि भागो।।११८।।

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि।।११९।।

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।।१२०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूत्रद्वयस्यार्थः सुगमोऽस्ति। नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तराणि स्तोकानि सन्ति, गुणहानिना कर्मस्थितावपवर्तितायां तेषामुत्पत्तिर्दर्शनात्। एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरमसंख्यातगुणं।**

द्विगुणहीन हो जाता है, इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक वह द्विगुणहीन-द्विगुणहीन होता जाता है।।११६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ जैसे संज्ञी पर्याप्तक के ज्ञानावरणादिकों की प्ररूपणा की गई है, वैसे ही करना चाहिए। विशेषता इतनी है कि यहाँ अपनी स्थितियों का प्रमाण जानकर कहना चाहिए।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—मेरी आत्मा अनादि अनिधन-शाश्वत है, अतएव निज आत्मतत्त्व की सिद्धि एवं शुद्धि हेतु ही इस प्रकार के ग्रंथों के अध्ययन-लेखन आदि का मेरा प्रयास है।

अब एक प्रदेश-नानागुणहानिस्थानान्तर के प्रमाण का प्रतिपादन करने के लिए चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपम के असंख्यात वर्गमूलों के बराबर है।।११७।।

नाना प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपम के वर्गमूल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।।११८।।

नाना प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं।।११९।।

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।।१२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। नाना प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं, क्योंकि गुणहानि के द्वारा कर्मस्थिति को अपवर्तित करने पर उनकी उत्पत्ति देखी जाती है। एक

अत्र को गुणकारः ?

असंख्यातानि पल्योपमवर्गमूलानि।

एवं परंपरोपनिधा समाप्ता।

संप्रति श्रेणिप्ररूपणया सूचितानामवहार-भागाभाग-अल्पबहुत्वानुयोगद्वाराणां प्ररूपणां करिष्यन्ति आचार्यदेवाः। तद्यथा—

सर्वासु स्थितिषु प्रदेशाग्रं प्रथमस्याः स्थितेः प्रदेशप्रमाणेन कियच्चिरेण कालेन अवह्रियते ?

द्व्यर्द्धगुणहानिस्थानान्तरेण कालेन अवह्रियते। एतस्य कारणं कथ्यते। तद्यथा—द्वितीयादिगुणहानिद्रव्ये प्रथमगुणहानिद्रव्यप्रमाणेन कृते चरमगुणहानिद्रव्येण न्यूनप्रथमगुणहानिद्रव्यं भवति। तस्य प्रमाणमिदं ज्ञातव्यं—
२४०।२२५।२१०।१९५।१८०।१६५।१५०।१३५।

चरमगुणहानिद्रव्यप्रमाणमिदं ज्ञातव्यं—

१६।१५।१४।१३।१२।११।१०।९।

एतस्मिन् द्रव्ये पूर्वद्रव्ये प्रक्षिप्ते प्रथमगुणहानिप्रमाणं भवति।

२५६।२४०।२२४।२०८।१९२।१७६।१६०।१४४।

एतद् निषेकप्ररूपणाया विस्तरो धवलाटीकायां द्रष्टव्यं भवति।

प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।

यहाँ गुणकार क्या है ?

पल्योपम के असंख्यात वर्गमूल गुणकार है।

इस प्रकार परम्परोपनिधा समाप्त हुई।

अब आचार्यदेव श्रेणी की प्ररूपणा से सूचित अवहार-भागाभाग और अल्पबहुत्व अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—

शंका—सब स्थितियों का प्रदेशपिण्ड प्रथमस्थिति के प्रदेशपिण्ड के प्रमाण द्वारा कितने काल से अपहृत होता है ?

समाधान—उक्त प्रमाण के द्वारा वह डेढ़ गुणहानिस्थानान्तर काल से अपहृत होता है। इसका कारण कहते हैं। वह इस प्रकार है—

द्वितीयादिक गुणहानियों के द्रव्य को प्रथम गुणहानि के द्रव्यप्रमाण से करने पर व अन्तिम गुणहानि के द्रव्य से रहित प्रथम गुणहानि का द्रव्य होता है। उसका प्रमाण इस प्रकार जानना चाहिए—

२४०।२२५।२१०।१९५।१८०।१६५।१५०।१३५।

अन्तिम गुणहानि का द्रव्यप्रमाण यह जानना चाहिए—

१६।१५।१४।१३।१२।११।१०।९।

इस द्रव्य को पूर्व द्रव्य में मिला देने पर प्रथम गुणहानि के द्रव्य का प्रमाण होता है—

२५६।२४०।२२४।२०८।१९२।१७६।१६०।१४४

इस निषेकप्ररूपणा का विस्तार धवलाटीका में देखना चाहिए।

एवं तृतीयेऽन्तरस्थले निषेकप्ररूपणान्तर्गतपरंपरोपनिधाकथनत्वेन दश सूत्राणि गतानि।

इत्थं तृतीयस्थले निषेकप्ररूपणाकथनत्वेन विंशतिसूत्राणि गतानि।

एवं निषेकप्ररूपणा समाप्ता।

अधुना आबाधाकाण्डकप्ररूपणाधिकारं निरूपयता सूत्रमवतार्यते —

आबाधाकंडयपरूवणदाए।।१२१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्राबाधाकाण्डकप्ररूपणाधिकारो वर्तते।**

किमर्थमाबाधाकाण्डकप्ररूपणा आगता ?

किं सर्वस्थितिबंधस्थानेषु एका चैवाबाधा भवति, आहोस्वित् अन्यान्या भवतीति पृच्छायां 'एवं भवतीति' ज्ञापनार्थं आबाधाकाण्डकप्ररूपणा आगता। अत्र त्रीण्यनुयोगद्वाराणि—प्ररूपणा प्रमाणमल्पबहुत्वं चैव।

अत्र कश्चिदाशंकते—

प्रमाणाल्पबहुत्वयोः संभवो भवतु नाम, सूत्रसिद्धत्वात्, परन्तु सूत्रे असति प्ररूपणायाः कथमत्र संभवः ?

आचार्यः प्राह—

नैष दोषः, प्ररूपणाया विना प्रमाणाल्पबहुत्वयोरनुपपत्तेः। तत्र तावत्सूत्रेण सूचितप्ररूपणा कथ्यते। तद्यथा—चतुर्दशानां जीवसमासानां आबाधाकाण्डकानि आबाधास्थानानि च सन्ति।

कश्चिदाह—

इस प्रकार तृतीय अन्तरस्थल में निषेक प्ररूपणा के अन्तर्गत परम्परोपनिधा का कथन करने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में निषेकप्ररूपणा का कथन करने वाले बीस सूत्र पूर्ण हुए।

यहाँ तक निषेकप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब आबाधाकाण्डक प्ररूपणा अधिकार का निरूपण करते हुए आचार्यदेव सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

यहाँ आबाधाकाण्डक प्ररूपणा का अधिकार है।।१२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ आबाधाकाण्डकप्ररूपणा का अधिकार है।

शंका—आबाधाकाण्डक प्ररूपणा का अवतार किसलिए हुआ है ?

समाधान—सब स्थितिबंधस्थानों में क्या एक ही आबाधा है, अथवा अन्य-अन्य हैं, ऐसा पूछने पर 'इस प्रकार की आबाधा व्यवस्था है' यह बतलाने के लिए आबाधाकाण्डक प्ररूपणा का अवतार हुआ है।

इस आबाधाकाण्डकप्ररूपणा में तीन अनुयोगद्वार हैं—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

प्रमाण और अल्पबहुत्व अनुयोगद्वारों की संभावना भले ही हो, क्योंकि वे सूत्र से सिद्ध हैं। परन्तु सूत्र में न पाये जाने वाले प्ररूपणा अनुयोगद्वारों की संभावना यहाँ कैसे हो सकती है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि प्ररूपणा के बिना प्रमाण और अल्पबहुत्व का कथन बन ही नहीं सकता है।

उनमें पहले सूत्र से सूचित प्ररूपणा अनुयोगद्वार का कथन करते हैं। वह इस प्रकार है—

चौदह जीवसमासों के आबाधाकाण्डक और आबाधास्थान होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

आबाधाकाण्डकप्ररूपणायां कथमाबाधास्थानान्युच्यन्ते ?

आचार्यः प्राह—

नैतत् कथयितव्यं, आबाधाकाण्डकप्ररूपणाया आबाधास्थानाविनाभावेन देशामर्शकत्वमापन्नायां आबाधास्थानप्ररूपणां प्रति विरोधाभावात्।

संप्रति संज्ञ्यादिजीवानां आबाधाकाण्डकं निरूपयताचार्येण सूत्रमवतार्यते —

पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं एइंदियबादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणमाउववज्जाण-मुक्कस्सियादो ट्ठिदीदो समए समए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-मोसरिदूण एयमाबाधाकंडयं करेदि। एस कमो जाव जहण्णिया ट्ठिदि त्ति।।१२२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सूत्रे 'समए समए' इति कथिते आबाधाया एकैकसमये इत्युक्तं भवति। उत्कृष्टाबाधायाः चरमसमये विवक्षिते उत्कृष्टस्थितेः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रमधोऽवतीर्य एकमाबाधाकाण्डकं करोति। आबाधाचरमसमयस्य विवक्षां कृत्वा उत्कृष्टां स्थितिं बध्नाति। तस्मात् समयोनं अपि बध्नाति। एवं द्विसमयोनादिक्रमेण नेतव्यं यावत्पल्योपमस्य असंख्यातभागेनोनस्थितिरिति। एवमेतेन आबाधाचरमसमयेन बंधप्रायोग्यस्थितिविशेषाणामेकमाबाधाकाण्डकमिति संज्ञा इत्युक्तं भवति। आबाधायाः द्विचरमसमयस्य विवक्षां कृत्वा एवमेव द्वितीयमाबाधाकाण्डकं प्ररूपयितव्यं। आबाधायाः त्रिचरमसमयविवक्षां**

आबाधाकाण्डकप्ररूपणा में आबाधास्थानों का कथन कयों किया जा रहा है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि आबाधाकाण्डक प्ररूपणा का आबाधास्थानप्ररूपणा के साथ अविनाभाव संबंध है, अतः आबाधास्थान प्ररूपणा के प्रति देशामर्शक भाव को प्राप्त हुई आबाधाकाण्डकप्ररूपणा में आबाधास्थानों का करना विरुद्ध नहीं है।

अब संज्ञी आदि जीवों के आबाधाकाण्डक को निरूपित करने हेतु आचार्य सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बादर व सूक्ष्म एकेन्द्रिय इन पर्याप्त व अपर्याप्त जीवों के आयु को छोड़ शेष सात कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति से समय-समय में पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र नीचे उतर कर एक आबाधाकाण्डक को करता है। यह क्रम जघन्य स्थिति तक है।।१२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र में 'समए समए' ऐसा कहने पर आबाधा के एक-एक समय में ऐसा अभिप्राय है। उत्कृष्ट आबाधा के चरम समय—अन्तिम समय की विवक्षा होने पर उत्कृष्ट स्थिति से पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र नीचे उतरकर एक आबाधाकाण्डक को करता है। आबाधा के अन्तिम समय को विवक्षित करके उत्कृष्ट स्थिति को बांधता है। उससे एक समय कम भी स्थिति को बांधता है। इस प्रकार दो समय कम इत्यादि क्रम से पल्योपम के असंख्यातवें भाग से रहित स्थिति तक ले जाना चाहिए। इस प्रकार आबाधा के इस अन्तिम समय में बंध के योग्य स्थितिविशेषों की एक आबाधाकाण्डक संज्ञा है, यह अभिप्राय है। आबाधा के द्विचरम समय की विवक्षा करके इसी प्रकार से द्वितीय आबाधा काण्डक की प्ररूपणा

कृत्वा पूर्वमिव तृतीय आबाधाकाण्डकः प्ररूपयितव्यः। एवं नेतव्यं यावद् जघन्या स्थितिरिति। एतेन सूत्रेण एकाबाधाकाण्डकस्य प्रमाणप्ररूपणा कृता।

संप्रति देशामर्शकत्वमापन्नेन एतेन सूत्रेण सूचितानामाबाधास्थानानामाबाधाशलाकानां च प्रमाणप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तानामाबाधास्थानानि आबाधाकाण्डकानि च द्वे अपि संख्यातवर्षमात्राणि सन्ति। संज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्तानामाबाधास्थानानि आबाधाकाण्डकानि च द्वे अपि अन्तर्मुहूर्तमात्राणि। असंज्ञिपंचेन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-द्वीन्द्रियाणामष्टानां पर्याप्तापर्याप्तानां जीवसमासानामाबाधास्थानानि आबाधाकाण्डकशलाका-श्चावलिकायाः संख्यातभागमात्राणि। चतुर्णामेकेन्द्रियाणामाबाधास्थानानि आबाधाकाण्डकानि च आवलिकाया असंख्यातभागमात्राणि सन्ति।

आयुषः आबाधाकाण्डकप्ररूपणा किमर्थं न कृता ?

नैष दोषः, आयुषः इयं स्थितिरेतस्यामेवाबाधायां बध्यते इति नियमाभावात्। पूर्वकोटित्रिभागमाबाधां कृत्वा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमायुर्बध्नाति, समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममपि बध्नाति, एवं द्विसमयोन-त्रिसमयोनादिक्रमेण पूर्वकोटित्रिभागाबाधां ध्रुवं कृत्वा नेतव्यं यावद् बंधक्षुद्रभवग्रहणमिति।

पुनः एते चैव आयुर्बंधविकल्पाः पूर्वकोटित्रिभागे समयोने आबाधात्वेन विवक्षितेऽपि भवन्ति। एवं द्विसमयोनादिक्रमेण नेतव्यं यावत् असंख्येयाद्धा इति। येनैवमनियमस्तेनायुष आबाधाकाण्डकप्ररूपणा न कृता। न चाबाधाकाण्डकानि न सन्तीति आबाधास्थानानामसंभवः, तदभावे लिंगाभावात्। ततः आयुषो न सन्ति आबाधाकाण्डकानीति सिद्धम्।

करना चाहिए। आबाधा के त्रिचरम समय की विवक्षा करके पहले के ही समान तृतीय आबाधाकाण्डक की प्ररूपणा करना चाहिए। इस प्रकार जघन्य स्थिति तक यही क्रम जानना चाहिए। इस सूत्र के द्वारा एक आबाधाकाण्डक के प्रमाण की प्ररूपणा की गई है।

अब देशामर्शक भाव को प्राप्त हुए इस सूत्र के द्वारा सूचित आबाधास्थानों और आबाधाकाण्डकशलाकाओं के प्रमाण की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक दोनों ही संख्यात वर्ष प्रमाण हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों के आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक दोनों ही अन्तर्मुहूर्त प्रमाण हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और द्वीन्द्रिय (पर्याप्तक-अपर्याप्तक) इन आठ जीवसमासों के आबाधास्थान और आबाधाकाण्डकशलाकाएँ आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। चार एकेन्द्रिय जीवों के आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

शंका—यहाँ आयुकर्म के आबाधाकाण्डकों की प्ररूपणा किसलिए नहीं की गई ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, कारण कि आयु की यह स्थिति इसी आबाधा में बंधती है, ऐसा कोई नियम नही है। पूर्वकोटि के त्रिभाग को आबाधा करके तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु को बांधता है, एक समय कम तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु को भी बांधता है, इस प्रकार पूर्वकोटि के त्रिभागरूप आबाधा को ध्रुव करके दो समय कम, तीन समय कम इत्यादि क्रम से बंध क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण स्थिति तक ले जाना चाहिए।

पूर्वकोटि के एक समय कम त्रिभाग को आबाधारूप से विवक्षित करने पर भी ये ही आयुबंध के विकल्प होते हैं। इसी प्रकार दो समय कम, तीन समय कम इत्यादि क्रम से असंख्येयाद्धा काल प्रमाण आबाधा तक ले जाना चाहिए। चूँकि यहाँ कोई ऐसा नियम नहीं है, इसीलिए आयु के आबाधाकाण्डकों की प्ररूपणा नहीं की गई। आबाधाकाण्डक चूँकि नहीं है, इसलिए आबाधास्थान असंभव हैं ऐसी कोई बात नहीं है, क्योंकि उनके अभाव

अत्राल्पबहुत्वप्ररूपणा किं क्रियते ?

नैष दोषः, उपरि वक्ष्यमाणाल्पबहुत्वानुयोगद्वारेण तदवगमात्।

एवं चतुर्थस्थले आबाधाकाण्डकनामतृतीयभेदकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

एवमाबाधाकाण्डकप्ररूपणा समाप्ता।

अधुना पंचेन्द्रियसंज्ञिनां सप्तकर्मसु अल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रदशकमवतार्यते —

अप्पाबहुए त्ति।।१२३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यत्तत् चतुर्थमनुयोगद्वारमल्पबहुत्वमिति तद् वक्ष्यन्त्याचार्यदेवाः इत्यत्र भणितं भवति।**

पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्तण्हं कम्माण-माउव-वज्जाणं सव्वत्थोवा जहण्णिया आबाधा।।१२४।।

कुत एतत् ? संख्यातावलिमात्रा भूत्वान्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात्।

आबाहाट्ठाणाणि आबाहाकंडयाणि च दो वि तुल्लाणि संखेज्ज-गुणाणि।।१२५।।

में कोई हेतु नहीं है। इस कारण आयु के आबाधाकाण्डक नहीं है, यह सिद्ध है।

शंका—अल्पबहुत्व प्ररूपणा क्यों नहीं की जाती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उसका ज्ञान आगे कहे जाने वाले अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार से हो जाता है।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में आबाधाकाण्डक नाम के तृतीय भेद का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार आबाधाकाण्डक प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीवों के सात कर्मों में अल्पबहुत्व को निरूपित करने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार का अधिकार है।।१२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जो वह चौथा अल्पबहुत्व नामक अनुयोगद्वार है उसको आचार्यदेव कहेंगे, ऐसा सूत्र का अभिप्राय है।

सूत्रार्थ—

संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक व अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों के आयु को छोड़कर शेष सात कर्मों की जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है।।१२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ऐसा क्यों है ? क्योंकि उक्त आबाधा संख्यात आवली प्रमाण हो करके अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

सूत्रार्थ—

आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक दोनों ही तुल्य संख्यातगुणे हैं।।१२५।।

कुतः? जघन्याबाधातः उत्कृष्टाबाधा संख्यातगुणा, तेनाबाधास्थानान्यपि संख्यातगुणानि चैव।

कथं ? समयोनजघन्याबाधाया उत्कृष्टाबाधातः शोधितायां आबाधास्थानोत्पत्तेः।

कथमाबाधास्थानैः आबाधाकाण्डकानां सदृशत्वम् ?

नैष दोषः, एकैकाबाधास्थानस्य पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रस्थितिबंधस्थानानामाबाधाकाण्डक-संज्ञितानामुपलंभेन समानत्वं भवति।

उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया।।१२६।।

कियन्मात्रेण अधिका इति पृष्टे समयोनजघन्याबाधामात्रेणाधिका विशेषाधिका ज्ञातव्या।

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि।।१२७।।

कुतः ?

उत्कृष्टाबाधाः संख्यातावलिमात्रा भूत्वा संज्ञिषु पर्याप्तकेषु संख्यातवर्षाणि अपर्याप्तकेषु अन्तर्मुहूर्तं भवन्ति। नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तराणि पुनः असंख्यातवर्षाणि भूत्वा पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राणि। तेनोत्कृष्टाबाधातः नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तराणि असंख्यातगुणानीति युज्यते।

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।।१२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ऐसा कैसे है ? चूँकि जघन्य आबाधा की अपेक्षा उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है, इसीलिए आबाधास्थान भी उससे संख्यातगुणे ही हैं।

शंका—कैसे ?

समाधान—क्योंकि उत्कृष्ट आबाधा में से एक समय कम जघन्य आबाधा को घटा देने पर आबाधास्थानों की उत्पत्ति होती है।

शंका—आबाधास्थानों से आबाधाकाण्डकशलाकाएँ समान कैसे हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि एक-एक आबाधास्थान संबंधी जो पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध स्थान हैं, उनकी आबाधाकाण्डक संज्ञा है, अतएव उनके समानता ही होती है।

सूत्रार्थ—

उनसे उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है।।१२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वह कितने प्रमाण अधिक है, ऐसा पूछने पर वह एक समय कम जघन्य आबाधा के प्रमाण से अधिक है, ऐसा जानना चाहिए।

सूत्रार्थ—

नाना प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं।।१२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कैसे ? कारण कि उत्कृष्ट आबाधाएँ संख्यात आवली प्रमाण हो करके संज्ञी पर्याप्तक जीवों में संख्यात वर्ष और अपर्याप्तकों में अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती हैं। परन्तु नाना प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यात वर्ष प्रमाण हो करके पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र हैं। अतएव उत्कृष्ट आबाधा की अपेक्षा नाना प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरों का असंख्यातगुणा होना उचित है।

सूत्रार्थ—

एक प्रदेश गुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।।१२८।।

कुतः ? असंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणत्वात्।

एयमाबाहाकंडयमसंखेज्जगुणं।।१२९।।

नानाप्रदेशगुणहानिशलाकाभिः असंख्यातवर्षप्रमाणाभिः कर्मस्थितौ अपवर्तितायां एकप्रदेशगुण-हानिस्थानान्तरमागच्छति। संख्यातवर्षमात्राया अन्तर्मुहूर्तमात्रायाश्च उत्कृष्टाबाधायाः स्वक-स्वकोत्कृष्ट-स्थितौ अपवर्तितायां येन एकमाबाधाकाण्डकप्रमाणं भवति, तेनैकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरात् एकमाबाधाकाण्डकम-संख्यातगुणमिति गृहीतव्यं।

जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।।१३०।।

एकमाबाधाकाण्डकं नाम पल्योपमस्य असंख्यातभागः, जघन्यस्थितिबंधः पुनः अन्तःकोटाकोटिमात्र-सागरोपमानि। तेन एकाबाधाकाण्डकात् जघन्यः स्थितिबंधोऽसंख्यातगुणो जातः।

ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।१३१।।

जघन्यस्थितिबंधादुत्कृष्टस्थितिबंधो येन संख्यातगुणस्तेन स्थितिबंधस्थानानि अपि संख्यातगुणानि चैव, समयोनजघन्य स्थितिबंधेनोनोत्कृष्टस्थितिबंधस्यैव स्थितिबंधस्थानव्यपदेशात्।

उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।१३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कैसे ? क्योंकि वे पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूलों के बराबर है।

सूत्रार्थ—

एक आबाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है।।१२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंख्यात वर्ष प्रमाण नानाप्रदेशगुणहानि शलाकाओं का कर्मस्थिति में भाग देने पर एक गुणहानिस्थानान्तर लब्ध होता है। संख्यात वर्ष मात्र व अन्तर्मुहूर्त मात्र उत्कृष्ट आबाधा का अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति में भाग देने पर चूँकि एक आबाधाकाण्डक का प्रमाण होता है, अतएव एक प्रदेश गुणहानिस्थानान्तर की अपेक्षा एक आबाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

सूत्रार्थ—

जघन्य स्थितिबंध असंख्यातगुणा है।।१३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चूँकि एक आबाधाकाण्डक पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, परन्तु जघन्य स्थितिबंध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमों प्रमाण है, अतएव एक आबाधाकाण्डक की अपेक्षा जघन्य स्थितिबंध असंख्यातगुणा हो जाता है।

सूत्रार्थ—

स्थितिबंध स्थान संख्यातगुणे हैं।।१३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चूँकि जघन्य स्थितिबंध की अपेक्षा उत्कृष्ट संख्यातगुणा है, अतः उससे स्थितिबंधस्थान भी संख्यातगुणे ही होने चाहिए, क्योंकि एक समय कम जघन्य स्थिति बंध से रहित उत्कृष्ट स्थितिबंध की ही स्थितिबंध स्थान संज्ञा है।

सूत्रार्थ—

उत्कृष्ट स्थितिबंध उससे विशेष अधिक है।।१३२।।

कियन्मात्रेण विशेषाधिक इति पृष्टे समयोनजघन्यस्थितिबन्धमात्रेण विशेषाधिको भवति इति ज्ञातव्यं।

अधुना पंचेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिनामाबाधानिरूपणार्थं सूत्राष्टकमवतार्यते —

पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणं पज्जत्तयाणमाउअस्स सव्वत्थोवा जहण्णिया आबाहा।।१३३।।

कुतः ? आयुर्बंधयित्वा समयाधिकसर्वजघन्यविश्रमणकालग्रहणात्।

जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।१३४।।

कुतः ? क्षुद्रभवग्रहणप्रमाणत्वात्।

आबाधाट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।१३५।।

जघन्यः स्थितिबंधो नामान्तर्मुहूर्तमात्रः, आबाधास्थानानि पुनः संख्यातप्रमाणपूर्वकोटित्रिभागमात्राणि, तेन जघन्यस्थितिबंधात् आबाधास्थानानां संख्यातगुणत्वं ज्ञायते।

उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया।।१३६।।

अत्र समयोनजघन्याबाधामात्रप्रमाणेन अधिका ज्ञातव्या।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कितने मात्र विशेष अधिक है, ऐसा पूछने पर एक समय कम जघन्य स्थितिबंध मात्र से विशेष अधिक होता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब पञ्चेन्द्रिय संज्ञी-असंज्ञी जीवों की आबाधा का निरूपण करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के आयु की जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है।।१३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कैसे ? क्योंकि यहाँ आयु का एक समय अधिक सर्वजघन्य विश्रमणकाल का ग्रहण है।

सूत्रार्थ—

उससे जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।१३४।।

कैसे ? क्योंकि वह क्षुद्रभवग्रहणमात्र है।

सूत्रार्थ—

उससे आबाधास्थान संख्यातगुणे हैं।।१३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जघन्य स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, परन्तु आबाधास्थान संख्यात प्रमाण (जघन्य आबाधा से रहित) पूर्वकोटित्रिभाग मात्र है, इसी से जाना जाता है कि जघन्य स्थितिबंध की अपेक्षा आबाधास्थान संख्यातगुणे हैं।

सूत्रार्थ—

उनसे उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है।।१३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ एक समय कम जघन्य आबाधा के प्रमाण से वह विशेष अधिक है।

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि।।१३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पूर्वकोटित्रिभागं अपेक्ष्य पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रनानागुणहानिशलाका-नामसंख्यातगुणत्वोपलंभात्।**

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।।१३८।।

कुतः? पल्योपमप्रथमवर्गमूलस्य असंख्यातभागमात्रनानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरशलाकाभिः असंख्यातपल्योपमवर्गमूलमात्रैकप्रदेशगुणहान्यामपवर्तितायां असंख्यातरूपोपलंभात्।

ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।१३९।।

कुतः ? एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरं नाम पल्योपमस्य असंख्यातभागः, स्थितिबंधस्थानानि पुनः संख्यातसागरोपममात्राणि पल्योपमस्यासंख्यातभागश्च, तेन एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरात् स्थितिबंधस्थानानि असंख्यातगुणानीति गृहीतव्यं।

उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।१४०।।

कियन्मात्रेण विशेषाधिकः ?

समयोनजघन्यस्थितिबंधमात्रेण विशेषाधिक इति ज्ञातव्यं भवति।

सूत्रार्थ—

नाना प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं।।१३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि पूर्वकोटित्रिभाग की अपेक्षा पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण नानागुणहानिशलाकाओं के असंख्यातगुणत्व पाया जाता है।

सूत्रार्थ—

एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।।१३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कैसे ? क्योंकि पल्योपम संबंधी प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग मात्र नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरशलाकाओं का पल्योपम के असंख्यात वर्गमूलों के बराबर एकप्रदेश गुणहानि में भाग देने पर असंख्यात अंक पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ—

स्थितिबंधस्थान असंख्यातगुणे हैं।।१३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कैसे ? क्योंकि एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, परन्तु स्थितिबंध स्थान संख्यात सागरोपम मात्र व पल्योपम के असंख्यातवें भाग है, इस कारण एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर की अपेक्षा स्थितिबंधस्थान असंख्यातगुणे हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

सूत्रार्थ—

उत्कृष्टस्थितिबंध विशेष अधिक है।।१४०।।

प्रश्न—वह कितने मात्र से विशेष अधिक है ?

उत्तर—एक समय कम जघन्य स्थितिबंध के प्रमाण से वह विशेष अधिक है।

संप्रति पंचेन्द्रियादिजीवानामायुःकर्माबाधानिरूपणार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणपज्जयाणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं एइंदियबादर-सुहुमपज्जत्तापज्जत्तयाणमाउअस्स सव्वत्थोवा जहण्णिया आबाहा।।१४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अत्र आयुर्बंधयित्वा समयाधिकसर्वजघन्यविश्रमणकालग्रहणात्।**

जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।१४२।।

कुतः ? अत्र बंधक्षुद्रभवग्रहणमस्ति।

आबाहाट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।१४३।।

स्वक-स्वकोत्कृष्टायुषां त्रिभागस्य समयोनजघन्याबाधायाः परिहीनस्य ग्रहणात्।

उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया।।१४४।।

कियन्मात्रेण ? समयोनजघन्याबाधामात्रेण विशेषाधिका ज्ञातव्या।

अब पञ्चेन्द्रिय आदि जीवों के आयुकर्म की आबाधा का निरूपण करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकों तथा चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बादर एवं सूक्ष्म एकेन्द्रिय, इन पर्याप्त-अपर्याप्तों के आयु की जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है।।१४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ आयु को बांधकर एक समय से अधिक सर्वजघन्य विश्रमणकाल का ग्रहण है।

सूत्रार्थ —

जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।१४२।।

कैसे ? क्योंकि यहाँ क्षुद्रभव का ग्रहण है।

सूत्रार्थ —

आबाधास्थान संख्यातगुणे हैं।।१४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्योंकि एक समय कम जघन्य आबाधा से हीन अपनी-अपनी उत्कृष्ट आयुओं के त्रिभाग का यहाँ ग्रहण है।

सूत्रार्थ —

उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है।।१४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — वह कितने मात्र अधिक है ? वह एक समय कम जघन्य आबाधा मात्र से विशेष अधिक जानना चाहिए।

ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।१४५।।

कुतः ? समयोनजघन्यस्थितिबंधेनोनपूर्वकोटिग्रहणात्।

उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।१४६।।

कियन्मात्रेण ? समयोनजघन्यस्थितिबंधमात्रेण विशेषाधिको ज्ञातव्यः।

संप्रति पंचेन्द्रियादीनां सप्तकर्मणामाबाधाज्ञापनार्थं सूत्रनवकमवतार्यते —

पंचिंदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं पज्जत्त-अपज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणं आउववज्जाणमाबाहाट्ठाणाणि आबाहाकंड-याणि च दो वि तुल्लाणि थोवाणि।।१४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**कुतः ? आवलिकायाः असंख्यातभागप्रमाणत्वात्।**

जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा।।१४८।।

संख्यातावलिमात्रजघन्याबाधायां आवलिकायां संख्यातभागमात्राबाधास्थानैः भागे कृते संख्यातरूपाणि उपलभ्यन्ते।

सूत्रार्थ—

स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।१४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कैसे ? क्योंकि एक समय कम जघन्य स्थितिबंध से हीन पूर्वकोटि का ग्रहण है।

सूत्रार्थ—

उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।१४६।।

प्रश्न—वह कितने मात्र से अधिक है ?

उत्तर—वह एक समय कम जघन्य स्थितिबंध के प्रमाण से विशेष अधिक है।

अब पञ्चेन्द्रिय आदि जीवों के सात कर्मों की आबाधा बतलाने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और द्वीन्द्रिय पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों के आयु को छोड़कर शेष सात कर्मों के आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक दोनों ही तुल्य व स्तोक हैं।।१४७।।

कैसे ? क्योंकि वे आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

सूत्रार्थ—

जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है।।१४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि संख्यात आवलियों प्रमाण जघन्य आबाधा में आवली के संख्यातवें भाग मात्र आबाधास्थानों का भाग देने पर संख्यात अंक प्राप्त होते हैं।

उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया।।१४९।।

अत्र आवलिकायाः संख्यातभागमात्रेण विशेषाधिका अस्ति।

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि।।१५०।।

संख्यातावलिमात्रोत्कृष्टाबाधायाः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रनानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरेषु अपहृतेषु असंख्यातरूपाण्युपलभ्यन्ते।

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।।१५१।।

पल्योपमस्य अर्द्धच्छेदानां संख्यातभागमात्रनानाप्रदेशगुणहानिशलाकाभिः असंख्यातपल्योपमप्रथम-वर्गमूलमात्रैकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरे भागे कृते असंख्यातरूपाण्युपलभ्यन्ते।

एयमाबाहाकंडयमसंखेज्जगुणं।।१५२।।

अत्र को गुणकारः ? पल्योपमस्य असंख्यातभागः उत्कृष्टाबाधाया अपवर्तितनानागुणहानिशलाका वा ज्ञातव्याः।

ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।१५३।।

अत्र को गुणकारः ?

सूत्रार्थ—

उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है।।१४९।।

यहाँ आवली के संख्यातवें भाग मात्र से विशेष अधिक है।

सूत्रार्थ—

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं।।१५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि संख्यात आवली प्रमाण उत्कृष्ट आबाधा का पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरों में भाग देने पर असंख्यात अंक उपलब्ध होते हैं।

सूत्रार्थ—

एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।।१५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि पल्योपम के अर्धच्छेदों के संख्यातवें भाग प्रमाण नानाप्रदेशगुण-हानिशलाकाओं का पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर में भाग देने पर असंख्यात अंक लब्ध होते हैं।

सूत्रार्थ—

एक आबाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है।।१५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार क्या है ? गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग अथवा उत्कृष्ट आबाधा से अपवर्तित नानागुणहानि शलाकाएँ हैं, ऐसा जानना चाहिए।

सूत्रार्थ—

स्थितिबंधस्थान असंख्यातगुणे हैं।।१५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार क्या है ?

संख्यातरूपेणापवर्तितस्वकोत्कृष्टाबाधास्ति।

जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।१५४।।

उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।१५५।।

अत्र पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रेण विशेषाधिकोऽस्ति। एतस्य सूक्ष्मविषयस्याध्ययनं कृत्वा श्रुतज्ञानक्षयोपशमवृद्ध्यर्थं प्रयासो विधेयः इत्यभिप्रायार्थः।

संप्रति एकेन्द्रियाणां सप्तकर्मणामाबाधानिरूपणार्थं नवसूत्राण्यवतार्यन्ते —

एइंदियबादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणं आउव-वज्जाण-माबाहाट्ठाणाणि आबाहाकंडयाणि च दो वि तुल्लाणि थोवाणि।।१५६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — **इमौ द्वौ च तुल्यौ भवतः स्तोकावपि। आवलिकाया असंख्यात-भागप्रमाणत्वात्।**

जहण्णिया आबाहा असंखेज्जगुणा।।१५७।।

को गुणकार इति चेत् ? आवलिकाया असंख्यातभागः। कुतः? आवलिकाया असंख्यातभाग-मात्राबाधास्थानैः संख्यातावलिमात्रजघन्याबाधायामपवर्तितायां आवलिकाया असंख्यातभागोपलंभात्।

उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया।।१५८।।

संख्यात अंकों से अपवर्तित अपनी उत्कृष्ट आबाधा यहाँ गुणकार है।

सूत्रार्थ —

जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।१५४।।

उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।१५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ पल्योपम के संख्यातवें भागमात्र से विशेष अधिक है। इस सूक्ष्म विषय का अध्ययन करके श्रुतज्ञान के क्षयोपशम की वृद्धि के लिए प्रयास करना चाहिए, ऐसा अभिप्राय है।

अब एकेन्द्रिय जीवों के सातों कर्मों की आबाधा का निरूपण करने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवों के आयु को छोड़कर शेष सात कर्मों के आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक दोनों ही तुल्य व स्तोक हैं।।१५६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ये दोनों ही स्तोक होते हुए भी तुल्य हैं, क्योंकि वे आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण है।

सूत्रार्थ —

जघन्य आबाधा असंख्यातगुणी है।।१५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — गुणकार क्या है ? गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है, कैसे ? क्योंकि आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण आबाधास्थानों का संख्यात आवली मात्र जघन्य आबाधा में भाग देने पर आवली का असंख्यातवाँ भाग पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है।।१५८।।

कियन्मात्रो विशेषः ? आवलिकाया असंख्यातभागमात्रोऽस्ति।

णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि।।१५९।।

को गुणकारः ? पल्योपमस्य असंख्यातभागः, उत्कृष्टाबाधापवर्तितनानागुणहानिशलाका वा।

एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।।१६०।।

एयमाबाहाकंडयमसंखेज्जगुणं।।१६१।।

ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।१६२।।

जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।।१६३।।

उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।१६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रेण विशेषाधिको ज्ञातव्यः।**

संप्रति एतेन अल्पबहुत्वसूत्रेण सूचितानां स्वस्थान-परस्थानाल्पबहुत्वानां प्ररूपणां करिष्यन्त्याचार्यदेवाः। अत्र स्वस्थानमल्पबहुत्वं प्रकृतमस्ति—

पंचेन्द्रियाणां पर्याप्तकानां संज्ञिनां आयुषो जघन्या आबाधा सर्वस्तोका। जघन्यः स्थितिबंधः संख्यातगुणः। नामगोत्रयोः जघन्या आबाधा संख्यातगुणा। चतुर्णां कर्मणां जघन्या आबाधा विशेषाधिका। मोहनीयस्य जघन्या आबाधा संख्यातगुणा। नामगोत्रयोराबाधास्थानानि आबाधाकांडकानि च द्वावपि तुल्याणि

विशेष कितना है ? वह आवली के असंख्यातवें भाग मात्र है।

सूत्रार्थ—

नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं।।१५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—गुणकार क्या है ? पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है अथवा उत्कृष्ट आबाधा से अपवर्तित नानागुणहानिशलाकाएँ हैं।

सूत्रार्थ—

एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।।१६०।।

एक आबाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है।।१६१।।

स्थितिबन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं।।१६२।।

जघन्य स्थितिबंध असंख्यातगुणा है।।१६३।।

उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।१६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र से विशेष अधिक जानना चाहिए।

अब इस अल्पबहुत्वसूत्र से सूचित स्वस्थान और परस्थान अल्पबहुत्व की प्ररूपणा आचार्यदेव करेंगे। इनमें स्वस्थान अल्पबहुत्व प्रकृत है—

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के आयु की जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है। जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है। नाम व गोत्र की जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है। चार कर्मों की जघन्य आबाधा विशेष अधिक है। मोहनीयकर्म की जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है। नाम व गोत्रकर्म के आबाधास्थान व

संख्यातगुणानि। उत्कृष्टा आबाधा विशेषाधिका। चतुर्णां कर्मणां आबाधास्थानानि आबाधाकाण्डकानि च द्वावपि तुल्यानि विशेषाधिकानि। उत्कृष्टा आबाधा विशेषाधिका। मोहनीयस्य आबाधास्थानानि आबाधाकाण्डकानि च द्वावपि तुल्यानि संख्यातगुणानि। उत्कृष्टा आबाधा विशेषाधिका। आयुष आबाधास्थानानि संख्यातगुणानि। उत्कृष्टा आबाधा विशेषाधिका। आयुषो नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तराणि असंख्यातगुणानि। नामगोत्रयोर्नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तराणि संख्यातगुणानि। चतुर्णां कर्मणां नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तराणि विशेषाधिकानि। मोहनीयस्य नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तराणि संख्यातगुणानि। अष्टानां कर्मणामेकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरमसंख्यातगुणं। सप्तानां कर्मणामेकाबाधाकाण्ड-कमसंख्यातगुणं। आयुषः स्थितिबंधस्थानानि असंख्यातगुणानि। उत्कृष्टः स्थितिबंधो विशेषाधिकः। नामगोत्रयोर्जघन्यः स्थितिबंधः संख्यातगुणः। चतुर्णां कर्मणां जघन्यः स्थितिबंधो विशेषाधिकः। मोहनीयस्य जघन्यः स्थितिबंधः संख्यातगुणः। नामगोत्रयोः स्थितिबंधस्थानविशेषः संख्यातगुणः। उत्कृष्टः स्थितिबंधो विशेषाधिकः। चतुर्णां कर्मणां स्थितिबंधस्थानविशेषो विशेषाधिकः। उत्कृष्टः स्थितिबंधो विशेषाधिकः। मोहनीयस्य स्थितिबंधस्थानविशेषः संख्यातगुणः। उत्कृष्टः स्थितिबंधः विशेषाधिकः।

एवं पंचेन्द्रियसंज्ञि-अपर्याप्तकानां इत्याद्येकेन्द्रियपर्यंतानां च सर्वेषां स्वस्थान-परस्थानाल्पबहुत्वं ज्ञातव्यम्। विस्तरेण धवलाटीकायां।

एवं पंचमस्थले अल्पबहुत्वकथनपरत्वेन द्विचत्वारिंशत्सूत्राणि गतानि।

एवमल्पबहुत्वं समाप्तम्।

आबाधाकाण्डक दोनों ही तुल्य व संख्यातगुणे हैं। उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है। चार कर्मों के आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक दोनों ही तुल्य व विशेष अधिक है। उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है। मोहनीय के आबाधास्थान व आबाधाकाण्डक दोनों ही तुल्य संख्यातगुणे हैं। उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है। आयु के आबाधास्थान संख्यातगुणे हैं। उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है। आयु कर्म के नाना प्रदेशगुणहानि स्थान असंख्यातगुणे हैं। नाम-गोत्र के नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर संख्यातगुणे हैं। चार कर्मों के नानाप्रदेशगुणहानि-स्थानान्तर विशेष अधिक हैं। मोहनीय के नाना प्रदेश गुणहानि स्थानान्तर संख्यातगुणे हैं। आठ कर्मों का एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है। सात कर्मों का एक आबाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है। आयु के स्थितिबंधस्थान असंख्यातगुणे हैं। उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। नामगोत्र का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है। चार कर्मों का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है। मोहनीय का जघन्यस्थितिबंध संख्यातगुणा है। नाम-गोत्र का स्थितिबंधस्थान-विशेष संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। चार कर्मों का स्थितिबंधस्थान विशेष-विशेष अधिक है। उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। मोहनीय का स्थितिबंधस्थान विशेष संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।

इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्तक इत्यादि और एकेन्द्रिय पर्यन्त सभी जीवों का स्वस्थान-परस्थान अल्पबहुत्व जानना चाहिए। इसका विस्तृत वर्णन धवला टीका में देखना चाहिए।

इस प्रकार पाँचवें स्थल में अल्पबहुत्व का कथन करने वाले बयालिस सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

जिना ये प्रसूता भविष्यन्ति ये च, तथा सन्ति काले च संप्रत्यनन्ताः।
त्रिकालोद्भवांस्तान् सदा नौमि भक्त्या, त्रिकालस्य दोषस्य शुद्ध्यै त्रिशुद्ध्या।।१।।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखंडे एकादशे ग्रन्थे वेदनाकालविधाननाम्नि षष्ठेऽनुयोगद्वारे द्वितीये महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां प्रथमचूलिकानामायं प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

श्लोकार्थ—जो भूतकाल में अनन्त तीर्थंकर भगवान जन्म ले चुके हैं जो तीर्थंकर जिनेश्वर भगवान भविष्यकाल में जन्म धारण करेंगे तथा वर्तमान में जो जिनेन्द्र भगवान हैं उन सभी त्रिकालवर्ती अनन्त जिनेन्द्र भगवन्तों को मैं अपने तीनों कालों के दोषों की शुद्धि हेतु त्रिकरण शुद्धिपूर्वक भक्तिभाव से सदा नमस्कार करता हूँ।।१।।

विशेषार्थ—आज वीर निर्वाण संवत् २५३७वें वर्ष के श्रावण शुक्ला एकादशी (९ अगस्त २०११) के पावन दिवस षट्खण्डागम ग्रंथ के चतुर्थ खण्ड-वेदनाखण्ड में वेदनाकाल विधान नामक छठे अनुयोगद्वार के द्वितीय महाधिकार में प्रथम चूलिका नाम के प्रथम अधिकार का समापन करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष की अनुभूति हो रही है कि आज मेरे दीक्षा के २२ वर्ष पूर्ण हुए हैं और २३वें वर्ष में प्रवेश हुआ है। भगवान शांतिनाथ-भगवान कुंथुनाथ एवं भगवान अरहनाथ के ४-४ कल्याणक से पवित्र इसी हस्तिनापुर की पावन वसुन्धरा पर पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने मुझे सन् १९८९ में १३ अगस्त-रविवार को श्रावण शुक्ला एकादशी के दिन संसार समुद्र से पार करने वाली आर्यिका दीक्षा प्रदान कर "चन्दनामती" नाम से अलंकृत किया था। स्त्रीलिंग का छेदन करने एवं कर्मों के चक्र से मुक्ति पाने हेतु स्त्रीपर्याय में आर्यिका दीक्षा सर्वोत्तम साधन है। कर्मों की वेदना का अनादिकाल से अनुभव करते हुए इस पंचमकाल में गुरुकृपा से रत्नत्रय की प्राप्ति हुई है अतः अब अनन्तकाल तक संसार में भ्रमण न होवे और शीघ्र ही कर्मों की वेदना समाप्त हो, यही भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना है।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ के वेदना नामके चतुर्थ खण्ड में ग्यारहवें ग्रंथ में वेदनाकालविधान नामक छठे अनुयोगद्वार में द्वितीय महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में प्रथम चूलिका नाम का यह प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ द्वितीयाचूलिका

(वेदनाकालविधानानुयोगद्वारान्तर्गता)

द्वितीयोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

ये सिद्धाः सिद्धिकर्तारः राजन्तां मे हृदि त्वमीः।
दद्युः स्वात्मप्रबोधाय, सत्यां बुद्धिं च सद्गिरम्।।१।।

अंतिमं तीर्थकर्तारं, महावीरं नमाम्यहम्।
कुण्डलपुरविख्यातां, जन्मभूमिं च संस्तुवे।।२।।

जन्मकल्याणसंपूत-जन्मभूमेः स्तुते सति।
पुनर्जन्म न मे भूयात्, नृजन्म पावनं भवेत्।।३।।

दीक्षाभूमिं नमस्कृत्य, याचे रत्नत्रयीं निधिम्।
दीक्षा मे सफलीभूयात्, प्राप्नुयां स्वात्मजं सुखम्।।४।।

पावापुरी जगद्वंद्या, मोक्षभूमिः प्रणौमि ताम्।
यस्या भक्ति प्रसादेन, लप्स्ये मृत्युंजयं पदम्।।५।।

द्वितीय चूलिका

(वेदनाकालविधान अनुयोगद्वार के अन्तर्गत)

द्वितीय-अधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—सिद्धि को प्रदान करने वाले सिद्ध भगवान मेरे हृदय में विराजमान होवें और मुझे आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सम्यक्बुद्धि प्रदान करें।।१।।

कृतयुग के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर को मेरा नमस्कार है एवं कुण्डलपुर नाम से विख्यात उनकी जन्मभूमि का मैं संस्तवन करती हूँ।।२।।

जन्मकल्याणक से पवित्र जन्मभूमि की स्तुति करने से मेरा पुनर्जन्म न होवे और मनुष्य जन्म पावन-सफल होवे, ऐसी भावना है।।३।।

उन भगवान महावीर की दीक्षाभूमि (कुण्डलपुर) को नमस्कार करके पूर्ण रत्नत्रय निधि की प्राप्ति हेतु मैं याचना करती हूँ। मेरी दीक्षा (आर्यिका दीक्षा) सफल होवे एवं मुझे स्वात्म सुख की प्राप्ति होवे।।४।।

उन्हीं भगवान की निर्वाणभूमि जगद्वंद्य पावापुरी तीर्थ को मैं नमन करती हूँ जिसकी भक्ति के प्रसाद से मुझे मृत्युंजय पद-मोक्षपद की प्राप्ति होगी।।५।।

इन्द्रवज्राछंदः- **षट्खण्डनाम्नागमश्रेष्ठग्रन्थे, यो वेदनानामचतुर्थखण्डः ।**
तस्यात्र टीका सुविरच्यतेऽसौ, ''सिद्धान्तचिंतामणि''-नामधेया।।६।।

अथ वेदनाखंडे द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-षष्ठवेदनाकालविधानानुयोगद्वारस्य द्वितीयमहाधिकारे द्वितीयचूलिकानाम द्वितीयेऽधिकारे चतुर्भिःस्थलै पंचदशाधिकशतसूत्राणि कथ्यन्ते। तत्र प्रथमस्थले स्थितिबंधाध्यवसान-प्ररूपणायां त्रिभेदकथनत्वेन ''ठिदिबंधज्झवसाण-'' इत्यादिना एकं सूत्रं। पुनश्च द्वितीयस्थले 'जीवसमुदाहार' नाम प्रथमभेदकथनार्थं' ''जीवसमुदाहारे त्ति'' इत्यादिना त्रिसप्तति-सूत्राणि कथयिष्यन्ते।

ततश्च तृतीयस्थले द्वितीयभेदप्रकृतिसमुदाहारकथनार्थं ''पयडिसमुदाहारे त्ति'' इत्यादिना सप्तसूत्राणि निगदिष्यन्ते। ततः परं चतुर्थस्थले त्रिभिरन्तरस्थलैःसमन्वित-स्थितिसमुदाहारकथनार्थं ''ठिदिसमुदाहारे त्ति'' इत्यादिना चतुस्त्रिंशत्सूत्राणि इति द्वितीयाधिकारस्य समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना द्वितीयचूलिकाप्ररूपणायां त्रिभेदप्रदर्शनार्थं सूत्रमवतार्यते —

ठिदिबंधज्झवसाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि तिण्णि अणुओगद्दाराणि जीवसमुदाहारो पयडिसमुदाहारो ट्ठिदिसमुदाहारो त्ति।।१६५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**संप्रति कालविधानप्रतिपादनाय इयं द्वितीया चूलिका प्ररूप्यते।**

कालविधानस्य द्वितीया चूलिका किमर्थमागता ?

षट्खण्डागम नाम के श्रेष्ठ आगम ग्रंथ में जो वेदना नाम का चतुर्थ खण्ड है, उसकी ''सिद्धान्त-चिंतामणिटीका'' नाम की टीका यहाँ मेरे द्वारा रची जा रही है।।६।।

अब वेदनाखण्ड में द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत छठे वेदनाकालविधान अनुयोगद्वार के द्वितीय महाधिकार में द्वितीय चूलिका नाम के द्वितीय अधिकार में चार स्थलों के द्वारा एक सौ पन्द्रह सूत्र कहे जा रहे हैं। उनमें से प्रथम स्थल में स्थितिबंध अध्यवसान की प्ररूपणा में तीन भेदों का कथन करने हेतु ''ठिदिबंधज्झवसाण-'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में ''जीवसमुदाहार'' नामक प्रथम भेद का कथन करने के लिए ''जीवसमुदाहारेत्ति'' इत्यादि तिहत्तर सूत्र कहेंगे।

आगे तृतीय स्थल में द्वितीय भेद प्रकृतिसमुदाहार को बतलाने हेतु ''पयडिसमुदाहारेत्ति'' इत्यादि सात सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् चतुर्थस्थल में तीन अन्तरस्थलों के द्वारा स्थितिसमुदाहार को बतलाने वाले ''ठिदिसमुदाहारेत्ति'' इत्यादि चौंतिस सूत्र कहेंगे। यह द्वितीय अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब द्वितीय चूलिका की प्ररूपणा में तीन भेदों को प्रदर्शित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

स्थितिबंधअध्यवसानस्थानप्ररूपणा अधिकृत है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं— जीवसमुदाहार, प्रकृतिसमुदाहार और स्थितिसमुदाहार।।१६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अब कालविधान का प्रतिपादन करने हेतु यह द्वितीय चूलिका प्ररूपित की जा रही है।

शंका—कालविधान की द्वितीय चूलिका किसलिए आती है ?

स्थितिबंधस्थानानां कारणभूताध्यवसानस्थानप्ररूपणार्थमियमागतास्ति।

कश्चिदाशंकते—

स्थितिबंधस्थानबंधकारणसंक्लेश-विशुद्धिस्थानानां प्ररूपणा प्रथमायां चूलिकायां कृता चैव, पुनस्तत्र प्ररूपितानां संक्लेशविशुद्धिस्थानानां प्ररूपणा न कर्तव्या, पुनरुक्तदोषप्रसंगात्। न च कषायोदयस्थानानि मुक्त्वा स्थितिबंधस्यान्यत्कारणमस्ति, ''ठिदिअणुभागे कसायदो कुणदि'' इति वचनेन विरोधप्रसंगादिति ?

अत्राचार्यदेवेन परिहार उच्यते—

तद्यथा—असाताबंधप्रायोग्यकषायोदयस्थानानि संक्लेशो नाम। तानि च जघन्यस्थितौ स्तोकानि भूत्वा द्वितीयस्थितिप्रभृति विशेषाधिकक्रमेण तावद् गच्छन्ति यावदुत्कृष्टस्थितिरिति। एतानि च सर्वमूलप्रकृतीनां समानानि, कषायेन विना बध्यमानमूलप्रकृतेः अनुपलंभात्।

साताबंधप्रायोग्यानि कषायोदयस्थानानि विशुद्धिस्थानानि। एतानि च उत्कृष्टस्थितौ स्तोकानि भूत्वा द्विचरमस्थितिप्रभृतिप्रगणनातः विशेषाधिकक्रमेण तावद् गच्छन्ति यावद् जघन्यस्थितिरिति।

अत्र कश्चिदाह—

संक्लेशस्थानेभ्यः किमर्थं विशुद्धिस्थानानि ऊनत्वमुपगतानि ?

आचार्यः प्राह—

नैतद् वक्तव्यं, स्वाभाविकत्वात्। एतानि संक्लेशविशुद्धिस्थानानि नाम स्थितिबंधमूलकारणभूतानि।

समाधान—वह स्थितिबंध स्थानों के कारणभूत अध्यवसानस्थानों की प्ररूपणा करने के लिए प्राप्त हुई है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

स्थितिबंधस्थान स्वरूप बंध के कारणभूत संक्लेश और विशुद्धिस्थानों की प्ररूपणा प्रथम चूलिका में की ही जा चुकी है, अतः वहाँ वर्णित संक्लेश-विशुद्धिस्थानों की प्ररूपणा फिर से नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर पुनरुक्त दोष का प्रसंग आता है। कषायोदयस्थानों को छोड़कर स्थितिबंध का और कोई दूसरा कारण संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर ''स्थिति व अनुभाग को कषाय से करता है'' इस आगम वाक्य के साथ विरोध का प्रसंग आता है ?

आचार्यदेव इस शंका का उत्तर कहते हैं—

वह इस प्रकार है—असाता वेदनीय के बंध योग्य कषायोदयस्थानों को संक्लेश कहा जाता है। वे जघन्य स्थिति में स्तोक होकर आगे द्वितीय स्थिति से लेकर उत्कृष्ट स्थिति तक विशेषाधिकता के क्रम से होते हैं। ये सब मूल प्रकृतियों के समान हैं, क्योंकि कषाय के बिना बंध को प्राप्त होने वाली कोई मूल प्रकृति पाई नहीं जाती। सातावेदनीय के बंध योग्य कषायोदय स्थानों को विशुद्धिस्थान कहते हैं। ये उत्कृष्ट स्थिति में स्तोक होकर आगे द्विचरम स्थिति से लेकर जघन्य स्थिति तक गणना की अपेक्षा विशेष अधिकता के क्रम से होते जाते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

विशुद्धिस्थान संक्लेशस्थानों की अपेक्षा हीनता को क्यों प्राप्त हैं ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वे स्वभाव से ही हीनता को प्राप्त हैं।

एतेषां स्थितिबंधस्थानप्ररूपणायां वर्णना कृता। न चात्र एतेषां पूर्वं प्ररूपितानां प्ररूपणा अस्ति येन पुनरुक्तदोषो भवेत्, किन्तु अत्र स्थितिबंधस्थानं विशेषप्रत्ययस्य स्थितिबंधाध्यवसानसंज्ञितस्य प्ररूपणा क्रियते। न पुनरुक्तदोषोऽपि संभवति, पूर्वमप्ररूपितस्थितिबंधाध्यवसानस्थानप्ररूपणत्वात्।

स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि कषायोदयस्थानानि न भवन्तीति कथं ज्ञायते ?

नामगोत्रयोः स्थितिबंधाध्यवसानस्थानेभ्यः चतुर्णां कर्मणां स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि असंख्यात-गुणानीति अल्पबहुत्वसूत्राद् ज्ञायते। यदि पुनः कषायोदयस्थानानि चैव स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि भवन्ति, तर्हि नेदमल्पबहुत्वं घटते, कषायोदयस्थानेन विना मूलप्रकृतिबंधाभावेन सर्वप्रकृतिस्थितिबंधाध्यव-सानस्थानानां समानत्वप्रसंगात्।

तस्मात् सर्वमूलप्रकृतीनां स्वक-स्वकोदयात् समुत्पन्नपरिणामानां स्वक-स्वक स्थितिबंधकारणत्वेन स्थितिबंधाध्यवसानस्थानसंज्ञितानां अत्र ग्रहणं कर्तव्यं, अन्यथा उक्तदोषप्रसंगात्। एतेषां स्थितिबंधाध्यवसान-स्थानानां प्ररूपणार्थं इयं द्वितीया चूलिका आगता।

अत्र त्रीण्यनुयोगद्वाराणि — जीवसमुदाहार-प्रकृतिसमुदाहार-स्थितिसमुदाहारभेदेन।

तत्र जीवसमुदाहारः किमर्थं आगतः?

सातासातयोः एकैकस्यां स्थितौ इयन्तो जीवा भवन्ति इयन्तो न भवन्तीति ज्ञापनार्थमयं जीवसमुदाहार आगतोऽस्ति।

ये संक्लेश-विशुद्धिस्थान स्थितिबंध के मूल कारणभूत हैं। इनका वर्णन स्थितिबंध स्थानप्ररूपणा में किया गया है। यहाँ पूर्व में वर्णित इनकी पुनः प्ररूपणा नहीं की जा रही है जिससे कि पुनरुक्त दोष होने की संभावना हो। किन्तु यहाँ स्थितिबंधाध्यवसान नाम से प्रसिद्ध स्थितिबंधस्थानों के विशेष प्रत्यय (कारण) की प्ररूपणा की जा रही है। अतः पुनरुक्त दोष भी संभव नहीं है, क्योंकि यहाँ पूर्व में जिनकी प्ररूपणा नहीं की गई है, उन बंधाध्यवसानस्थानों की प्ररूपणा की गई है।

शंका — स्थितिबंधाध्यवसानस्थान कषायोदयस्थान नहीं है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — नाम व गोत्र के स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों की अपेक्षा चार कर्मों के स्थितिबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं, इस अल्पबहुत्व सूत्र से वह जाना जाता है। यदि कषायोदयस्थान ही स्थितिबंधाध्यवसानस्थान हों, तो यह अल्पबहुत्व घटित नहीं हो सकता है, क्योंकि कषायोदयस्थान के बिना मूल प्रकृतियों का बंध न हो सकने से सभी मूल प्रकृतियों के स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों की समानता का प्रसंग आता है।

अतएव सब मूल प्रकृतियों के अपने-अपने उदय से जो परिणाम उत्पन्न होते हैं उनकी ही अपनी अपनी स्थिति के बंध में, कारण होने से स्थिति बन्धाध्यवसानस्थान संज्ञा है। उनका ही ग्रहण यहाँ करना चाहिये, अन्यथा पुनरुक्त दोष का प्रसंग आता है। इन स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों की प्ररूपणा के लिये द्वितीय चूलिका का अवतार हुआ है।

यहाँ उसमें तीन अनुयोगद्वार हैं — जीवसमुदाहार, प्रकृतिसमुदाहार और स्थितिसमुदाहार।

शंका — इनमें जीवसमुदाहार किसलिये आया है ?

समाधान — साता व असाता की एक-एक स्थिति में इतने जीव हैं व इतने नहीं हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ जीवसमुदाहार प्राप्त हुआ है।

प्रकृतिसमुदाहारः किमर्थमागतः ?

एतस्याः प्रकृतेः स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि एतावन्ति भवन्ति एतावन्ति न भवन्तीति ज्ञापनार्थमयं प्रकृतिसमुदाहार आगतः।

स्थितिसमुदाहारः किमर्थमागतः ?

एतस्याः स्थितेः एतावन्ति स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि भवन्ति, एतावन्ति न भवन्तीति ज्ञापनार्थं एषः समुदाहारोऽभवत्।

न च त्रीण्यनुयोगद्वाराणि मुक्त्वात्र चतुर्थमनुयोगद्वारं संभवति, अनुपलंभात्।

कश्चिदाशंकते — स्थितिबंधाध्यवसानस्थानप्ररूपणार्थं प्रकृति-स्थितिसमुदाहारयोः प्ररूपणा भवतु नाम, प्रकृतिस्थिती आश्रित्य तत्र स्थितिबंधाध्यवसानस्थानप्ररूपणोपलंभात्। न जीवसमुदाहारस्य, तत्र तदनुपलंभात् इति ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैष दोषः, स्थितीनां कार्ये कारणोपचारेण स्थितिबंधाध्यवसानस्थानव्यपदेशोपलंभात्। न च जीवसमुदाहारः उपचारेण स्थितिबंधाध्यवसानस्थानसंज्ञितस्थितयो न प्ररूपयति, तत्र जीवविशेषितस्थिति-प्ररूपणोपलंभात्। अथवा, स्थितिबंधाध्यवसानमास्रवः, इति जीवानां तत्र तद्व्यपदेश इति नैष दोषः।

एवं प्रथमस्थले द्वितीय चूलिकान्तर्गतस्थितिबंधाध्यवसानभेदकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

शंका — प्रकृतिसमुदाहार किसलिये आया है ?

समाधान — इस प्रकृति के स्थिति बंधाध्यवसानस्थान इतने होते हैं और इतने नहीं होते हैं, इस बात का परिज्ञान कराने के लिये प्रकृतिसमुदाहार का अवतार हुआ है।

स्थितिसमुदाहार किसलिये आया है ?

इस स्थिति के इतने स्थिति बंधाध्यवसानस्थान होते हैं और इतने नहीं होते हैं, इसका परिज्ञान कराने के लिये स्थितिसमुदाहार प्राप्त हुआ है।

इन तीन अनुयोगद्वारों को छोड़कर यहाँ किसी चौथे अनुयोगद्वार की सम्भावना नहीं है, क्योंकि वह पाया नहीं जाता।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

स्थिति बन्धाध्यवसानस्थानों की प्ररूपणा कराने के लिये प्रकृतिसमुदाहार व स्थितिसमुदाहार की प्ररूपणा भले ही हो, प्रकृति व स्थिति का आश्रय करके वहाँ स्थिति बंधाध्यवसानस्थानों की प्ररूपणा पायी जाती है। किन्तु जीवसमुदाहार की सम्भावना नहीं है, वहाँ उनकी प्ररूपणा पायी नहीं जाती है?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि कार्य में कारण का उपचार करने से स्थितियों की स्थितिबन्धाध्यवसान संज्ञा पायी जाती है। और जीवसमुदाहार उपचार से स्थितिबंधाध्यवसानस्थान संज्ञा को प्राप्त हुई स्थितियों की प्ररूपणा न करता हो, ऐसा नहीं है, क्योंकि उसमें जीव से विशेषता को प्राप्त हुई स्थितियों की प्ररूपणा पायी जाती है। अथवा चूँकि स्थितिबंधाध्यवसानस्थान आस्रव है, अतः वहाँ जीवों की उक्त संज्ञा में कोई दोष नहीं है।

इस प्रकार प्रथमस्थल में द्वितीय चूलिका के अंतर्गत स्थितिबंध अध्यवसान के भेदों का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अधुना प्रथमसमुदाहारे ज्ञानावरणीयबंधकारकजीवप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

जीवसमुदाहारे त्ति जे ते णाणावरणीयस्स बंधा जीवा ते दुविहा-सादबंधा चेव असादबंधा चेव।।१६६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पूर्वोद्दिष्टाधिकारस्मारणार्थं जीवसमुदाहारः प्रकृतमिति अध्याहारः कर्तव्यः, अन्यथार्थप्रतिपत्तेरभावात्।**

'सादबंधा' इत्युक्ते सातबंधका इति गृहीतव्यं, कर्तुर्निर्देशात्। ज्ञानावरणीयस्य कर्मणो बंधका जीवा द्विविधा एव सातबंधका असातबंधकाश्चेति। न च सातासातयोर्बंधेन विना ज्ञानावरणीयस्य बंधका जीवा सन्ति, अनुपलंभात्। अत्र ज्ञानावरणीयकर्मग्रहणेन ज्ञानावरणादीनां ध्रुवबंधिनां प्रकृतीनां बंधका जीवा द्विविधा इति वक्तव्यं।

'सादबंधका' इत्युक्ते साता-स्थिर-शुभ-सुस्वर-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-उच्चगोत्राणामष्टानां शुभप्रकृतीनां परिवर्तमानानां ग्रहणं कर्तव्यं, अन्योन्याविनाभाविबंधात्।

'असादबंधया' इत्युक्ते असाता-अस्थिर-अशुभ-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-अयशःकीर्ति-नीचगोत्रबंधकानां ग्रहणं कर्तव्यं, बंधेन अन्योन्याविनाभावित्वदर्शनात्।

सातासातादीनामक्रमेण एकजीवे बंधः किन्न जायते ?

न, अत्यन्ताभावेन प्रतिषिद्धाक्रमप्रवृत्तेः। अत्र सातासातादीनामक्रमबंधे जीवानां शक्तिर्नास्तीति भणितं भवति।

अब प्रथम समुदाहार में ज्ञानावरणीय का बंध करने वाले जीव की प्ररूपणा करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

जीवसमुदाहार प्रकृत है। जो ज्ञानावरणीय के बंधक जीव हैं वे दो प्रकार के हैं— साताबंधक और असाताबंधक।।१६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पूर्व में उद्दिष्ट—कहे गये अधिकार का स्मरण कराने हेतु "जीवसमुदाहार प्रकृत है" ऐसा अध्याहार करना चाहिए, क्योंकि अन्यथा अर्थ की प्रतिपत्ति नहीं हो सकती है। "सादबंधा" ऐसा कहने पर सातबंधका अर्थात् सातावेदनीय कर्म के बंधक हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यहाँ कर्ता का निर्देश है। ज्ञानावरणीय कर्म के बंधक जीव दो प्रकार के ही हैं—साताबंधक और असाताबंधक। साता व असाता वेदनीय के बंध से रहित ज्ञानावरणीय के बंधक जीव नहीं हैं, क्योंकि वे पाये नहीं जाते। सूत्र में जो ज्ञानावरणीय पद का ग्रहण किया है उससे ज्ञानावरणादिक ध्रुव प्रकृतियों के बंधक जीव दो प्रकार के हैं ऐसा कहना चाहिये।

'सादबंधका' कहने पर साता, स्थिर, शुभ, सुस्वर, सुभग, आदेय, यशकीर्ति और उच्चगोत्र इन आठ परिवर्तमान प्रकृतियों का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि इनके बंध का परस्पर में अविनाभाव संबंध है। 'असादबंधया' कहने से असाता, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति और नीचगोत्र के बंधकों का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि बंध की अपेक्षा उनमें अविनाभाव संबंध देखा जाता है।

शंका—एक जीव में एक साथ साता व असातादिकों का बंध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं होता है, क्योंकि उनकी युगपत् प्रवृत्ति अत्यन्ताभाव से प्रतिषिद्ध है, अर्थात् साता व

तात्पर्यमत्र—सातासातावेदनीयस्य आस्त्रवकारणानि ज्ञात्वा असातायाः आस्त्रवकारणाणि परित्यज्य सातायाः आस्त्रवकारणान्याश्रयणीयानि भवन्ति, शुद्धोपयोगात् प्रागिति ज्ञातव्यम्।

अधुना साताबंधकजीवानां भेदप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

तत्थ जे ते सादबंधा जीवा ते तिविहा—चउट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा बिट्ठाणबंधा।।१६७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सूत्रे 'सादबंधा जीवा' इति निर्देशेन असाताबंधकजीवानां प्रतिषेधः कृतः। 'तिविहा' इति वचनेन चतुर्विधादिप्रतिषेधः कृतः। चतुःस्थान-त्रिस्थान-द्विस्थानमिति त्रिविधः सातानुभागो भवति। सातावेदनीये एकस्थानानुभागो नास्ति, तथानुपलंभात्।**

कश्चिदाह—बंधं प्रति एकस्थानानुभागस्य संभवो यद्यपि नास्ति तर्ह्यपि सत्त्वं प्रतीत्यास्तीति एकस्थानानुभागोऽत्र किन्न प्ररूपितः?

आचार्यः प्राह—नैतद् वक्तव्यं, किंच बन्धाधिकारे सत्त्वप्ररूपणानुपपत्तेः। अत्र सातानुभागो जघन्यस्पर्द्धकप्रभृति यावदुत्कृष्टस्पर्द्धक इति तावत् रचयितव्यः श्रेण्याकारेण। तत्र प्रथमो भागो गुडसमानः एकस्थानं, द्वितीयो भागः खण्डसमानो द्वितीयं स्थानं, तृतीयो भागः शर्करातुल्यस्तृतीयं स्थानं, चतुर्थो भागोऽमृतसमश्चतुर्थं स्थानं। एतानि चत्वारि स्थानानि यस्मिन् सातानुभागबंधे सन्ति सोऽनुभागबंधश्चतुर्थस्थानः

असाता आदिकों को एक साथ बांधने में जीवों की शक्ति नहीं है, यह अभिप्राय है।

तात्पर्य यह है कि—साता और असाता वेदनीय के आश्रव कारणों को जानकर शुद्धोपयोग से पहले के आस्रव के कारणों का त्याग करके साता कर्म के आश्रव के कारणों का आश्रय लेना चाहिए।

अब सातावेदनीय कर्म का बंध करने वाले जीवों के भेदों को बतलाने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

उनमें जो साताबंधक जीव हैं वे तीन प्रकार के हैं—चतुःस्थानबंधक, त्रिस्थानबंधक और द्विस्थानबंधक।।१६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र में 'सादबंधा जीवा' इस निर्देश से असाताबंधक जीवों का निषेध किया गया है। 'तिविहा' इस वचन से चतुर्विध आदि का प्रतिषेध किया है। चतुःस्थान, त्रिस्थान और द्विस्थान इस प्रकार से साता वेदनीय का अनुभाग तीन प्रकार का है। सातावेदनीय में एक स्थान अनुभाग नहीं है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

यद्यपि बंध की अपेक्षा एकस्थान अनुभाग की सम्भावना नहीं है, तथापि सत्व की अपेक्षा तो उनकी सम्भावना है ही। फिर एक स्थानानुभाग की प्ररूपणा यहाँ क्यों नहीं की गई ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि बंध के अधिकार में सत्व की प्ररूपणा संगत नहीं है।

यहाँ जघन्य स्पर्धक से लेकर उत्कृष्ट स्पर्धक तक श्रेणि के आकार से साता के अनुभाग की रचना करना चाहिये। उसमें प्रथम भाग गुड़ के समान एक स्थान, द्वितीय भाग खांड के समान दूसरा स्थान, तृतीय भाग शक्कर के समान तीसरा स्थान और चतुर्थ भाग अमृत के समान चौथा स्थान है। इस प्रकार जिस साता

कथ्यते। तस्य बंधका जीवाः चतुःस्थानबंधका नाम। एवं त्रिस्थानद्विस्थानबंधानामपि प्ररूपणं कर्तव्यं। एवं प्रकारेण साताबंधका अनुभागबंधभेदेन त्रिविधा एव भवन्ति।

अधुना असातावेदनीयबंधकर्तृणां भेदनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

असादबंधा जीवा तिविहा—बिट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा चउट्ठाणबंधा त्ति।।१६८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्रासातानुभागः पूर्वमिव श्रेण्याकारेण स्थापयित्वा चतुर्भागेषु कृतेषु तत्र प्रथमभागो निम्बसमः एकस्थानं, द्वितीयभागः कांजीरसमो द्वितीयस्थानं, तृतीयभागः विषसमस्तृतीयस्थानं, चतुर्थो भागो हालाहलतुल्यश्चतुर्थस्थानं। तत्र द्वे स्थाने यस्मिन् अनुभागबंधे सः द्विस्थानो नाम। तस्य बंधका जीवा द्विस्थानबंधाः। एवं त्रिस्थानबंधानां चतुःस्थानबंधानां च प्ररूपणा कर्तव्या। इत्थमनुभाग-बंधमाश्रित्यासाताबंधकाः त्रिविधा भवन्ति।**

साताप्रकृतिबंधकानां भावविशेषप्रतिपादनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

सव्वविसुद्धा सादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा।।१६९।।

तिट्ठाणबंधा जीवा संकिलिट्ठदरा।।१७०।।

बिट्ठाणबंधा जीवा संकिलिट्ठदरा।।१७१।।

के अनुभाग में ये चार स्थान हों वह अनुभागबंध चतुर्थस्थान कहा जाता है। उसको बांधने वाले जीव चतुःस्थानबंधक कहलाते हैं। उसी प्रकार त्रिस्थान और द्विस्थानबंधकों की भी प्ररूपणा करना चाहिये। इस प्रकार से अनुभाग के भेद से साताबंधक तीन प्रकार के ही होते हैं।

अब असातावेदनीय कर्म का बंध करने वालों के भेदनिरूपण हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

असाताबंधक जीव तीन प्रकार के हैं—द्विस्थानबंधक, त्रिस्थानबंधक और चतुःस्थानबंधक।।१६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ असाता वेदनीय कर्म के अनुभाग को पहिले के ही स्थान श्रेणि के आकार से स्थापित करके चार भाग करने पर उनमें से प्रथम भाग नीम के समान एक स्थान है, द्वितीय भाग कांजीर के समान दूसरा स्थान है, तृतीय भाग विष के समान तीसरा स्थान है और चतुर्थ भाग हालाहल विष के समान चौथा स्थान रूप है। उनमें से जिस अनुभागबंध में दो स्थान हैं वह द्विस्थान अनुभागबंध कहलाता है। उसको बांधने वाले जीव द्विस्थानबंधक कहे जाते हैं। इसी प्रकार त्रिस्थानबंधक और चतुःस्थानबंधक जीवों की प्ररूपणा करना चाहिये। इस प्रकार अनुभागबंध का आश्रय करके असाताबंधक तीन प्रकार के होते हैं।

अब साता प्रकृति को बांधने वाले जीवों के भावविशेष प्रतिपादित करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

सातावेदनीय के चतुःस्थानबंधक जीव सबसे विशुद्ध हैं।।१६९।।

त्रिस्थानबंधक जीव संक्लिष्टतर हैं।।१७०।।

द्विस्थानबंधक जीव संक्लिष्टतर हैं।।१७१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सर्वेभ्यो विशुद्धाः सर्वविशुद्धाः। साताद्विस्थान-त्रिस्थानबंधेभ्यः चतुःस्थानबंधा जीवाः सुष्ठु विशुद्धा इत्युक्तं भवति।**

अत्र का विशुद्धता इति चेत् ?

उच्यते, अतितीव्रकषायाभावो मंदकषायो विशुद्धता इति गृहीतव्या। तत्र सातावेदनीयस्य ''चतुःस्थानबंधा जीवा सर्वविशुद्धाः'' इति भणिते सुष्ठुमंदसंक्लेशा इति गृहीतव्यं।

अथवा जघन्यस्थितिबंधकारणजीवपरिणामो विशुद्धता इत्युच्यते।

सातावेदनीयस्य चतुःस्थानबंधकेभ्यः सातावेदनीयस्यैव त्रिस्थानानुभागबंधका जीवाः संक्लिष्टतराः कषायोत्कटा इति भणितं भवति।

सातात्रिस्थानानुभागबंधकेभ्यः साताया एव द्विस्थानानुभागबंधका जीवाः संक्लिष्टतराः संक्लेशेन अधिका इत्युक्तं भवति।

अधुना असातावेदनीयस्य बंधकानां परिणामप्रतिपादनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

सव्वविसुद्धा असादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा।।१७२।।

तिट्ठाणबंधा जीवा संकिलिट्ठदरा।।१७३।।

चउट्ठाणबंधा जीवा संकिलिट्ठदरा।।१७४।।

सिद्धान्तचितामणिटीका—सभी से विशुद्ध सर्वविशुद्ध कहलाते हैं। यहाँ पंचमी तत्पुरुष समास है। साता वेदनीय कर्म के द्विस्थानबंधकों और त्रिस्थानबंधकों की अपेक्षा उनके चतुःस्थानबंधक जीव अतिशय विशुद्ध हैं, यह उसका अभिप्राय है।

शंका—यहाँ विशुद्धता से क्या अभिप्राय है ?

समाधान—उसे कहते हैं—अत्यन्त तीव्र कषाय के अभाव में जो मंद कषाय होती है उसे विशुद्धता पद से ग्रहण करना चाहिए।

उसमें सातावेदनीय के चतुःस्थानबंधक जीव सर्वविशुद्ध हैं, ऐसा कहने पर वे अतिशय मंद संक्लेश से सहित हैं यह ग्रहण करना चाहिये। अथवा जघन्य स्थितिबंध का कारण स्वरूप जो जीव का परिणाम है उसे विशुद्धता समझना चाहिये।

साता वेदनीय कर्म के चतुःस्थानबंधकों की अपेक्षा साता वेदनीय के ही त्रिस्थानानुभागबंधक जीव संक्लिष्टतर हैं, अर्थात् वे उनकी अपेक्षा उत्कृष्ट कषाय वाले हैं, यह अभिप्राय है।

साता वेदनीय के त्रिस्थानानुभागबंधकों की अपेक्षा साता वेदनीय के ही द्विस्थानबंधक जीव संक्लिष्टतर हैं, अर्थात् वे अधिक संक्लेशवाले हैं ऐसा अभिप्राय है।

अब असातावेदनीय कर्म के बंधकों के परिणामों का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

असातावेदनीय के द्विस्थानबंधक जीव सर्वविशुद्ध हैं।।१७२।।

त्रिस्थानबंधक जीव संक्लिष्टतर हैं।।१७३।।

चतुःस्थानबंधक जीव संक्लिष्टतर हैं।।१७४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**असातावेदनीयस्य त्रिस्थानानुभागबंधकेभ्यस्तस्यैव द्विस्थानानुभागबंधकाः मंदकषाया इति भणितं भवति।**

असातावेदनीयस्य द्विस्थानानुभागबंधकेभ्यस्त्रिस्थानानुभागबंधका जीवाः सुष्ठुतया उत्कटसंक्लेशा भवन्ति।

कुतः एतत् ?

स्वाभाविकत्वात्।

असातात्रिस्थानानुभागबंधकेभ्यस्तस्यैव चतुःस्थानानुभागबंधकानां कषायोऽतिबहुलो भवति, स्वाभाविकत्वात्।

संक्लेशे वर्द्धमाने सातादीनां शुभप्रकृतीनामनुभागबंधो हीयते, असातादीनामशुभप्रकृतीनामनुभागबंधो वर्द्धते। संक्लेशे हीयमाने सातादीनां शुभप्रकृतीनां अनुभागबंधो वर्धते, अशुभप्रकृतीनामनुभागबंधो हीयते इत्युक्तं भवति।

सातावेदनीयस्य चतुःस्थानादिबंधकानां ज्ञानावरणीय प्रकृतिबंधभेदप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

सादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णियं ट्ठिदिं बंधंति।।१७५।।

सादस्स तिट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स अजहण्णअणुक्कस्सियं ठिदिं बंधंति।।१७६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्मिन् ज्ञानावरणग्रहणं येन देशामर्शकं तेन ज्ञानावरणादीनां ध्रुवबंधिनां**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असातावेदनीय कर्म के त्रिस्थानानुभागबंधकों की अपेक्षा उसके ही द्विस्थानानुभाग बंधक जीव मन्दकषाय वाले हैं, यह सूत्र का अभिप्राय है।

असाता के द्विस्थानानुभागबंधकों की अपेक्षा उसके ही त्रिस्थानानुभागबंधक जीव अति उत्कट संक्लेश से संयुक्त होते हैं। ऐसा कैसे है? क्योंकि ऐसा ही स्वभाव है।

असाता वेदनीय के त्रिस्थानानुभागबंधकों की अपेक्षा उसके ही चतुःस्थानानुभागबंधकों की कषाय अतिशय बहुल होती है, क्योंकि ऐसा ही स्वभाव है।

संक्लेश की वृद्धि होने पर साता आदिक शुभ प्रकृतियों का अनुभागबंध हीन होता है और असाता आदिक अशुभ प्रकृतियों का अनुभागबंध बढ़ता है। संक्लेश की हानि होने पर साता आदिक शुभप्रकृतियों का अनुभागबंध बढ़ता है और असाता आदिक अशुभ प्रकृतियों का अनुभागबंध हीन होता है, यह अभिप्राय है।

अब सातावेदनीय के चतुःस्थानादिबंधकों के ज्ञानावरणीय प्रकृतिबंध के भेदों का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

सातावेदनीय के चतुस्थानबंधक जीव ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति को बांधते हैं।।१७५।।

साता के त्रिस्थानबंधक जीव ज्ञानावरणीय की अजघन्य और अनुत्कृष्ट स्थिति को बांधते हैं।।१७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ इस प्रथम सूत्र में चूँकि ज्ञानावरण का ग्रहण देशामर्शक है, अतः

अशुभप्रकृतीनां सर्वासां जघन्यां स्थितिं बध्नन्ति इति गृहीतव्यं। ये ये सातावेदनीयस्य चतुःस्थानानुभाग-बंधका जीवास्ते ते ज्ञानावरणादीनां जघन्यामेव स्थितिं बध्नन्ति इति अवधारणं न क्रियते, चतुःस्थानबंधकेषु ज्ञानावरणादीनामजघन्यस्थितीनामपि बंधदर्शनात्।

येन कषायः स्थितिबंधस्य कारणं तेन मंदकषायिणः सातावेदनीयस्य चतुःस्थानबंधका जीवा ज्ञानावरणीयस्य जघन्यां स्थितिं बध्नन्ति 'इति भणितं भवति।

सातावेदनीयस्य त्रिस्थानबंधकर्तारो जीवा न तावदुत्कृष्टस्थितिं बध्नन्ति, असातायोग्योत्कृष्टसंक्लेश-परिणामैर्विना ज्ञानावरणीयस्य उत्कृष्टस्थितिबंधासंभवात्। इमे न जघन्यामपि बध्नन्ति, उत्कृष्ट-विशुद्धेरभावात्। तस्मात् सातावेदनीयस्य त्रिस्थानबंधा जीवा ज्ञानावरणादीनामजघन्यामनुत्कृष्टां स्थितिं बध्नन्तीति कथितं भवति।

अधुना साताया उत्कृष्टस्थितिबंधकानां प्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा सादस्स चेव उक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधंति।।१७७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सातावेदनीयस्य द्विस्थानबंधका जीवा येनोत्कृष्टसंक्लेशपरिणामसहितास्तेन सातावेदनीयस्य उत्कृष्टां स्थितिं बध्नन्ति, न ज्ञानावरणीयस्य, ओघोत्कृष्टसंक्लेशाभावात्। न च साताबंध-प्रायोग्योत्कृष्टसंक्लेशेन ज्ञानावरणीयस्य उत्कृष्टस्थितिं बध्नन्ति, विरोधात्। न च सातावेदनीयस्य द्विस्थानबंधकाः**

उससे ज्ञानावरणादिक ध्रुवबंधी सब अशुभ प्रकृतियों की जघन्य स्थिति को बांधते हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। जो जो साता वेदनीय के चतुस्थानानुभागबंधक जीव हैं वे वे ज्ञानावरणादिक की जघन्य ही स्थिति को बांधते हैं ऐसा अवधारण नहीं किया जा रहा है, क्योंकि चतुःस्थानबंधकों में ज्ञानावरणादिकों की अजघन्य स्थितियों का भी बंध देखा जाता है।

चूँकि स्थितिबंध का कारण कषाय है, अतः सातावदेनीय के चतुःस्थानबंधक मंदकषायी जीव ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति को बांधते हैं, ऐसा कहा गया है।

सातावेदनीय के त्रिस्थानबंध को करने वाले जीव ज्ञानावरण कर्म की उत्कृष्ट स्थिति को नहीं बांधते हैं, क्योंकि असाता के योग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम के बिना ज्ञानावरणीय के उत्कृष्ट स्थितिबंध की संभावना नहीं पाई जाती है। उसकी जघन्य स्थिति को भी ये नहीं बांधते हैं, क्योंकि उनके उत्कृष्ट विशुद्धि का अभाव है। अतएव साता वेदनीय के त्रिस्थानबंधक जीव ज्ञानावरणादिकों की अजघन्य और अनुत्कृष्ट स्थिति को बांधते हैं, ऐसा कहा गया है।

अब साता की उत्कृष्टस्थिति के बंधक जीवों का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

साता वेदनीय के द्विस्थानबंधक जीव सातावेदनीय की ही उत्कृष्ट स्थिति को बांधते हैं।।१७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सातावेदनीय कर्म के द्विस्थानबंधक जीव चूँकि उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से संयुक्त होते हैं अतः वे साता वेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति को बांधते हैं, न कि ज्ञानावरणीय की उत्कृष्ट स्थिति को, क्योंकि यहाँ सामान्य उत्कृष्ट संक्लेश का अभाव है। साता वेदनीय के बंध योग्य उत्कृष्ट संक्लेश के ज्ञानावरणीय की उत्कृष्ट स्थिति का बंध नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें विरोध है। दूसरे, साता वेदनीय के द्विस्थानबंधक सभी जीव सातावेदनीय की पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति को नहीं बांधते

सर्वेऽपि सातोत्कृष्टस्थितिं पंचदशसागरोपमकोटाकोटिमात्रां बध्नन्ति, तत्रानुत्कृष्टस्थितिबंधस्यापि उपलंभात्। तस्मादयोगव्यवच्छेदोऽत्र कर्तव्यः। अत्र उपयोगिनौ श्लोकौ स्तः—

विशेषणविशेषाभ्यां क्रियया च सहोदितः।
पार्थो धनुर्धरो नीलं सरोजमिति वा यथा।।१।।
अयोगमपरैर्योगमत्यन्तायोगमेव च।
व्यवच्छिनत्ति धर्मस्य निपातो व्यतिरेचकः[1]।।२।।

अधुना असाताया द्विस्थानबंधकर्तृणां ज्ञानावरणीयस्थितिप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

असादस्स बेट्ठाणबंधा जीवा सत्थाणेण णाणावरणीयस्स जहण्णियं ट्ठिदिं बंधंति।।१७८।।

असादस्स तिट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स अजहण्ण-अणुक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधंति।।१७९।।

हैं, क्योंकि उनमें उसका अनुत्कृष्ट स्थितिबंध भी पाया जाता है। इस कारण यहाँ अयोग व्यवच्छेद करना चाहिये। यहाँ उपयोगी दो श्लोक प्रस्तुत हैं—

श्लोकार्थ—निपात अर्थात् एवकार व्यतिरेचक अर्थात् निवर्तक या नियामक होता है। विशेषण और विशेष क्रिया के साथ कहा गया निपात क्रम से अयोग, अपरयोग (अन्ययोग) और अत्यन्तायोग का व्यवच्छेद करता है। जैसे-पार्थो धनुर्धरः और नीलं सरोजम्' इन वाक्यों के साथ प्रयुक्त एवकार है।।१-२।।

यहाँ प्रसंगोपात्त न्यायकुमुदचन्द्र[2] के आधार से उपर्युक्त श्लोकों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत है—

विशेषार्थ—विशेषण के साथ प्रयुक्त एवकार अयोगव्यच्छेद का बोधक होता है। जैसे 'पार्थो धनुर्धरः एव' अर्थात् पार्थ धनुषधारी ही है, इस वाक्य में प्रयुक्त एवकार पार्थ में अधनुर्धरत्व की आशंका को दूर कर धनुर्धरत्व का विधान करता है। अतः वह अयोगव्यवच्छेद का बोधक है। विशेष्य के साथ प्रयुक्त एवकार अन्ययोगव्यवच्छेद का बोधक होता है। जैसे—'पार्थ एव धनुर्धरः' अर्थात् अर्जुन ही एक मात्र धनुर्धर है, इस वाक्य में प्रयुक्त एवकार अर्जुन में जो अन्य धनुर्धरों की अपेक्षा सातिशय धनुर्धरत्व विद्यमान है। उसका अन्य पुरुषों में निषेध करता है। अतएव वह अन्ययोगव्यवच्छेद का बोधक है। क्रिया पद के साथ प्रयुक्त एवकार अत्यन्तायोगव्यवच्छेद का बोधक होता है। जैसे—नीलं सरोजं भवत्येव' अर्थात् सरोज नील होता ही है, इस वाक्य में प्रयुक्त एवकार सरोज में नीलत्व के अत्यन्ताभाव का व्यवच्छेदक होने से अत्यन्तायोगव्यवच्छेद का बोधक है।

अब असाता वेदनीय के द्विस्थान बंध करने वाले जीवों के ज्ञानावरणीय कर्म की स्थिति का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

असाता वेदनीय के द्विस्थानबंधक जीव स्वस्थान से ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति को बांधते हैं।।१७८।।

असाता वेदनीय के त्रिस्थानबंधक जीव ज्ञानावरणीय की अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थिति को बांधते हैं।।१७९।।

---

१. षट्खंडागम (धवला टीका), पु. ११, पृ. ३१७। २. न्यायकुमुदचन्द्र, भाग-२, पृ. ६९३।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**असाताबंधकेषु द्विस्थानबंधका जीवा अतिविशुद्धा मंदकषायित्वात् जघन्यस्थितिकारणपरिणामैः संयुक्ताः, तेन ज्ञानावरणीयस्य जघन्यां स्थितिं बध्नन्ति। जघन्यां स्थितिं बध्नन्तोऽपि ओघजघन्यां स्थितिं न बध्नन्ति इति ज्ञापनार्थं स्वस्थानेन ज्ञानावरणीयस्य जघन्यां स्थितिं बध्नन्तीति भणितं।**

स्वस्थानेन ज्ञानावरणीयस्य का जघन्यस्थितिर्नाम ?

असातावेदनीयेन सह बंधप्रायोग्या ज्ञानावरणीयस्य सर्वजघन्यस्थितिः सा स्वस्थानजघन्या नाम। तस्या बंधका इति कथितं भवति।

असातावेदनीयस्य त्रिस्थानबंधका जीवा न तावदुत्कृष्टस्थितिं बध्नन्ति, उत्कृष्टसंक्लेशाभावात्। न जघन्यामपि, अतिविशुद्धपरिणामाभावात्। तस्माद् ज्ञानावरणीयस्य अजघन्यानुत्कृष्टां चैव स्थितिं बध्नन्ति इति सिद्धं भवति।

असातावेदनीयस्य उत्कृष्टां स्थितिं बध्नतः स्वामिनः प्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

असादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा असादस्स चेव उक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधंति।।१८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**येन असातावेदनीयस्य चतुःस्थानबंधका जीवास्तीव्रसंक्लेशपरिणाम-स्तेनासाताकर्मणः उत्कृष्टां स्थितिं बध्नन्ति। अत्र सूत्रे 'चेव' शब्दः अपि शब्दार्थे वर्तते। तेन ज्ञानावरणादीनामपि**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असातावेदनीय कर्म के बंधकों में द्विस्थानबंधक जीव अतिशय विशुद्ध होते हुए, मन्दकषायी होने से चूँकि जघन्य स्थिति के कारणभूत परिणामों से संयुक्त हैं इसीलिये वे ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति को बांधते हैं। जघन्य स्थिति को बांधते हुए भी वे ओघ की जघन्य स्थिति को नहीं बांधते हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ स्वस्थान से ज्ञानावणीय की जघन्य स्थिति को बांधते हैं ऐसा कहा गया है।

शंका—स्वस्थान से ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति किसे कहते हैं?

समाधान—असाता वेदनीय के साथ बंध के योग्य जो ज्ञानावरणीय की सबसे जघन्य स्थिति है वह स्वस्थान जघन्य स्थिति कही जाती है।

उक्त जीव उसी स्थिति के बंधक हैं, यह अभिप्राय है।

असाता वेदनीय के त्रिस्थानबंधक जीव उत्कृष्ट स्थिति को नहीं बांधते हैं, क्योंकि उनके उत्कृष्ट संक्लेश का अभाव होता है। वे जघन्य स्थिति को भी नहीं बांधते हैं, क्योंकि उनके अत्यंत विशुद्ध परिणामों का अभाव है। इस कारण असाता के त्रिस्थानबंधक जीव ज्ञानावरणीय की जघन्य और अनुत्कृष्ट स्थिति को ही बांधते हैं, यह सिद्ध होता है।

अब असाता वेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति को बांधने वाले स्वामी का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

असाता वेदनीय के चतुःस्थानबंधक जीव असातावेदनीय की ही उत्कृष्ट स्थिति को बांधते हैं।।१८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चूँकि असातावेदनीय कर्म के चतुःस्थानबंधक जीव तीव्र संक्लेश से

उत्कृष्टां स्थितिं बध्नन्ति इति गृहीतव्यं, अन्यथा तदुत्कृष्टस्थितीनां बंधकारणाभावप्रसंगात्। एवं साता-सातयोश्चतुःस्थान-त्रिस्थान-द्विस्थानानुभागबंधेषु स्थितीनां संक्लेशविशुद्धयोश्च प्रमाणं प्ररूप्य संप्रति स्थितीः आधारं कृत्वा तत्र स्थितजीवानां श्रेणिप्ररूपणां करिष्यन्ति।

अधुना श्रेणिप्ररूपणा भेदनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तेसिं दुविहा सेडिपरूवणा अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा।।१८१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**इदं सूत्रं देशामर्शकमस्ति, अतः श्रेणिप्ररूपणां भणित्वा प्ररूपणा-प्रमाण-अवहार-भागाभाग-अल्पबहुत्वानां सूचकत्वात्। तेन तावत्प्ररूपणादीनां प्रज्ञापना क्रियते। तद्यथा—**

सातावेदनीयस्य चतुःस्थानबंधकास्त्रिस्थानबंधका द्विस्थानबंधका असातावेदनीयस्य द्विस्थानबंधका-स्त्रिस्थानबंधकाश्चतुःस्थानबंधका ज्ञानावरणीयस्य स्वक-स्वकजघन्यायां स्थितौ सन्ति जीवा द्वितीयायां स्थितौ सन्ति जीवाः एवं नेतव्यं यावत् स्वस्वात्मनः उत्कृष्टस्थितिरिति।

प्ररूपणा गता।

सातावेदनीयस्य चतुःस्थान-त्रिस्थान-द्विस्थानबंधका असातावेदनीयस्य द्विस्थान-त्रिस्थान-चतुःस्थानबंधका ज्ञानावरणीयस्य स्वक-स्वकजघन्यायां स्थितौ जीवाः प्रतरस्य असंख्यातभागमात्राः, द्वितीयस्यां स्थितौ प्रतरस्य असंख्यातभागमात्राः, एवं नेतव्यं यावत् स्व-स्वात्मनः उत्कृष्टस्थितिरिति।

संयुक्त होते हैं, अतएव वे असाता वेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति को बांधते हैं। यहाँ सूत्र में प्रयुक्त 'चेव' शब्द 'अपि' शब्द के अर्थ में वर्तमान है। इसीलिये वे ज्ञानावरणादिकों की भी उत्कृष्ट स्थिति को बांधते हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि इसके विना उनके उत्कृष्ट स्थिति के बंध के कारणों के अभाव का प्रसंग आवेगा। इस प्रकार साता व असाता वेदनीय के चतुःस्थान, त्रिस्थान और द्विस्थानरूप अनुभागबंधों में स्थितियों के संक्लेश व विशुद्धि के प्रमाण की प्ररूपणा करके अब स्थितियों का आश्रय करके उनमें स्थित जीवों की श्रेणिप्ररूपणा करेंगे।

अब श्रेणिप्ररूपणा के भेदों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उनकी श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकार की है—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा।।१८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह सूत्र देशामर्शक है, अतः श्रेणिप्ररूपणा का वर्णन करके प्ररूपणा, प्रमाण, अवहार, भागाभाग और अल्पबहुत्व अनुयोगद्वारों की सूचना प्रदान करता है। अतएव पहले प्ररूपणा आदि की प्रज्ञापना की जा रही है। वह इस प्रकार है—

सातावेदनीय के चतुःस्थानबंधक, त्रिस्थानबंधक और द्विस्थानबंधक तथा असातावेदनीय के द्विस्थानबंधक, त्रिस्थानबंधक और चतुःस्थानबंधक ज्ञानावरणीय की अपनी-अपनी जघन्य स्थिति में जीव हैं। द्वितीय स्थिति में जीव हैं। इस प्रकार अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति तक ले जाना चाहिये।

प्ररूपणा समाप्त हुई।

सातावेदनीय के चतुःस्थानबंधक, त्रिस्थानबंधक और द्विस्थानबंधक तथा असातावेदनीय के द्विस्थानबंधक, त्रिस्थानबंधक और चतुःस्थानबंधक जीव ज्ञानावरणीय की अपनी-अपनी जघन्य स्थिति में जगत्प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। द्वितीय स्थिति में जीव जगत् प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इस प्रकार अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति तक ले जाना चाहिये।

साताद्विस्थानिकयवमध्यात् असाताचतुःस्थानिकयवमध्याच्च उत्कृष्टस्थितिषु कुत्रापि श्रेण्याः असंख्यातभागमात्रा जीवाः किन्न भवन्तीति चेत् ?

न भवन्ति, किं च—स्व-स्वात्मनो जघन्यस्थितेः जीवैः समानयवमध्योपरिमस्थितजीवाः प्रतरस्य असंख्यातभागमात्राः, त्रसराशौ त्रिगुणहानिगुणितपल्योपमस्य असंख्यातभागेन भागे कृते श्रेण्या असंख्यातभागमात्रश्रेणीनामुपलंभात्। न च एतेषु प्रतरस्य असंख्यातभागमात्रजीवेषु पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राध्वानं गत्वा अर्धार्धभागेन हीयमानेषु अवसाने श्रेण्या असंख्यातभागमात्रं भवति, उपरिमान्योन्याभ्यस्तराशिना पल्योपमस्य असंख्यातभागेन प्रतरस्यासंख्यातभागे भागे कृते असंख्यात-श्रेणिमात्रजीवोपलंभात्। उपरिमनानागुणहानिशलाकाः श्रेणिछेदनेभ्यो बहुका इति केऽपि आचार्या भणन्ति। तेषामाचार्याणामभिप्रायेण श्रेण्या असंख्यातभागमात्रा जीवा उपरि तत्प्रायोग्यसंख्यातगुणहानीः गत्वा भवन्ति। न चैवं, व्याख्यानेऽन्योन्याभ्यस्तराशेः पल्योपमस्य असंख्यातभागत्वोपलंभात्।

प्रमाणप्ररूपणा गता।

संप्रति अनंतरोपनिधापेक्षया सातासाताबंधकादिप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अणंतरोवणिधाए सादस्स चउट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा जीवा असादस्स बिट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवा थोवा।।१८२।।

शंका—सातावेदनीय के द्विस्थानिक यवमध्य से तथा असातावेदनीय के चतुःस्थानिक यवमध्य से ऊपर की स्थितियों में कहीं पर भी जगश्रेणि के असंख्यातवें भाग प्रमाण जीव क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—वे श्रेणि के असंख्यातवें भागप्रमाण नहीं होते हैं, कारण यह है कि अपनी-अपनी जघन्य स्थिति के जीवों के समान यवमध्य से उपरिम स्थितियों के जीव जगत् प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, क्योंकि त्रस राशि में तीन गुणहानियों से गुणित पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण जगश्रेणियाँ लब्ध होती हैं। परन्तु जगत् प्रतर के असंख्यातवें भाग मात्र इन जीवों के पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र अध्वान जाकर अर्ध-अर्ध भाग से हीन होने पर अन्त में उनका प्रमाण श्रेणि के असंख्यातवें भाग मात्र नहीं रहता है, क्योंकि पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण उपरिम अन्योन्याभ्यस्त राशि का जगत् प्रतर के असंख्यातवें भाग में भाग देने पर असंख्यात श्रेणी प्रमाण जीव उपलब्ध होते हैं।

ऊपर की नानागुणहानिशलाकायें श्रेणि के अर्धच्छेदों से बहुत हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। उन आचार्यों के अभिप्राय से श्रेणि के असंख्यातवें भाग प्रमाण जीव आगे तत्प्रायोग्य असंख्यात गुणहानियाँ जाकर हैं। परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि इस व्याख्यान में अन्योन्याभ्यस्त राशि पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण पायी जाती हैं।

प्रमाण प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब अनंतरोपनिधा की अपेक्षा साता-असाता के बंधकादि का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अनन्तरोपनिधा की अपेक्षा साता वेदनीय के चतुःस्थानबंधक व त्रिस्थानबंधक जीव, असातावेदनीय के द्विस्थानबंधक व त्रिस्थानबंधक जीव तथा ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति के जीव स्तोक हैं।।१८२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सातावेदनीयस्य चतुःस्थानानुभागबंधप्रायोग्यस्थितयः सागरोपमशत-पृथक्त्वमात्राः। ताः बुद्ध्या पृथक् स्थापयित्वा, त्रिस्थानानुभागबंधप्रायोग्याः सागरोपमशतपृथक्त्वमात्राः, एता अपि पृथक् स्थापयित्वा, एवं असातावेदनीयस्य द्विस्थान-त्रिस्थानानुभागबंधप्रायोग्यसागरोपमशत-पृथक्त्वमात्र-स्थितयश्च पृथक् स्थापयित्वा, तत्र एतेषां चतुर्णां अपि पंक्तीनां ज्ञानावरणीयस्य जघन्यायाः स्थितेः जीवाः स्तोकाः सन्ति, त्रसराशेः संख्यातभागमेकैकस्थितिपंक्त्यभ्यन्तरे स्थितजीवराशौ त्रयगुणहानिगुणितपल्योपमस्य असंख्यातभागेन भागे कृते जघन्यस्थितिजीवानां प्रमाणमुपलभ्यते—**

अधुना विशेषाधिकप्रमाणज्ञापनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते—

बिदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाहिया।।१८३।।

तदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाहिया।।१८४।।

एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव सागरोवमसदपुधत्तं।।१८५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एकगुणहान्यध्वानमसंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलमात्रं विरलय्य जघन्यस्थितिमद्-जीवान् समखंडं कृत्वा विरलनरूपं प्रति दत्वा तत्रैकखण्डमात्रेणाधिकत्वोपलंभात्।**

एकगुणहान्यध्वानं चैव भागहारो भवतीति कथं ज्ञायते ?

प्रक्षेपाणां द्विगुणत्वोपलंभादेव ज्ञायते।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सातावेदनीय कर्म की चतुःस्थानअनुभाग बंध के योग्य शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण स्थितियाँ हैं। उनको बुद्धि से पृथक् स्थापित करके उसी की त्रिस्थानानुभागबंध के योग्य जो शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण स्थितियाँ हैं इनको भी पृथक् स्थापित करके उसी प्रकार आसाता वेदनीय की द्विस्थान व त्रिस्थानरूप अनुभागबंध के योग्य शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण स्थितियों को पृथक् स्थापित करके, उनमें इन चारों ही कर्मों की पंक्तियों के ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति के जीव स्तोक हैं, क्योंकि त्रस राशि के संख्यातवें भाग एक-एक स्थिति पंक्ति के भीतर स्थित जीवराशि में तीन गुणहानिगुणित पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जघन्य स्थिति के जीवों का प्रमाण उपलब्ध होता है।

अब विशेष अधिक का प्रमाण बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

द्वितीय स्थिति के जीव विशेष अधिक हैं।।१८३।।

तृतीय स्थिति में जीव विशेष अधिक हैं।।१८४।।

इस प्रकार शतपृथक्त्व सागरोपमों तक विशेष अधिक-विशेष अधिक ही हैं।।१८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण यह है कि पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण एक गुणहानि अध्वान का विरलन करके जघन्य स्थिति के जीवों को समखण्ड करके प्रत्येक को विरलन रूप से ऊपर देकर उनमें से एक खण्ड के प्रमाण से उनमें अधिकता पायी जाती है।

शंका—एकगुणहानि अध्वान ही भागहार होता है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—प्रक्षेपों में दुगुणता की उपलब्धि होने से जाना जाता है कि एक गुणहानि अध्वान ही भागहार होता है।

एतदपि कुतो ज्ञायते ?

अन्यथा यवमध्यभावानुपपत्तेः, अतस्तेषां द्विगुणत्वं निश्चीयते।

तृतीयस्यां स्थितौ जीवा एकविशेषमात्रेणाधिकाः सन्ति। एवमुपर्यपि एकैकजीवविशेषमधिकं कृत्वा नेतव्यम्।

अत्र सूत्रे 'सागरोपमसदपुधत्तं' इति वचनेन चतुर्णामपि यवमध्यानामधस्तनाध्वानप्रमाणं ज्ञापितं। अत्र विशेषोऽनवस्थितो द्रष्टव्यः, गुणहानिं प्रति द्विगुणक्रमेण विशेषाणां वृद्धिदर्शनात्।

अधुना विशेषहीनप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

तेण परं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव सागरोवमसदपुधत्तं।।१८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतेन 'सागरोवमसदपुधत्तं' इति वचनेन चतुर्णां यवमध्यानां उपरिमाध्वानप्रमाणं ज्ञापितं। यवमध्योपरिमगुणहान्योऽपि अधस्तनगुणहानिभिः अध्वानप्रमाणेन समानाः। जीवविशेषाः पुनः अनवस्थिताः, अर्धार्धक्रमेण गुणहानिं प्रति तेषां गमनोपलंभात्।**

संप्रति सातासातानां द्विस्थानादिबंधप्रतिपादनार्थं सूत्रपंचकमवतार्यते —

सादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा असादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा णाणा-वरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवा थोवा।।१८७।।

शंका—वह भी कहाँ से जाना जाता है?

समाधान—इसके बिना यवमध्यपना बनता नहीं है, इसलिये उनका द्विगुणत्व निश्चित होता है।

तृतीय स्थिति में जीव एक विशेष प्रमाण से अधिक हैं। इसी प्रकार आगे भी एक-एक जीवविशेष को अधिक करके ले जाना चाहिये।

यहाँ सूत्र में "शतपृथक्त्व सागरोपम" के कहने से चारों ही यवमध्यों के अधस्तन अध्वान का प्रमाण बतलाया गया है। यहाँ विशेष को अनवस्थित समझना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक गुणहानि के प्रति द्विगुणे क्रम से विशेषों की वृद्धि देखी जाती है।

अब विशेष हीन का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उसके आगे शतपृथक्त्व सागरोपमों तक विशेष हीन-विशेष हीन हैं।।१८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस 'सागरोपमशतपृथक्त्व' इस कथन के कहने से चारों यवमध्यों के उपरिम अध्वान का प्रमाण बतलाया गया है। यवमध्य के ऊपर की गुणहानियाँ भी अध्वानप्रमाण की अपेक्षा नीचे की गुणहानियों के समान हैं। परन्तु जीवविशेष अनवस्थित हैं, क्योंकि प्रत्येक गुणहानि के प्रति उनकी आधे-आधे क्रम से प्रवृत्ति देखी जाती है।

अब साता और असाता वेदनीय कर्म प्राप्त जीवों के द्विस्थानादिबंध का प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

साता वेदनीय के द्विस्थानबंधक जीव और असाता वेदनीय के चतुःस्थानबंधक जीव ज्ञानावरणीय कर्म की जघन्य स्थिति में स्तोक हैं।।१८७।।

बिदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाहिया।।१८८।।

तदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाहिया।।१८९।।

एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव सागरोवमसदपुधत्तं।।१९०।।

तेण परं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव सादस्स असादस्स उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।।१९१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सातावेदनीयस्य द्विस्थानबंधकर्तारः असातावेदनीयस्य चतुःस्थानबंधकर्तारो जीवा ज्ञानावरणस्य जघन्यस्थितौ स्तोकाः सन्ति। जघन्यस्थानजीवेभ्यो विशेषाधिकक्रमेण उपरिमस्थितिजीवानां वृद्धिदर्शनात्।**

द्वितीयस्थितौ एकजीवविशेषमात्रेण विशेषाधिकाः। अत्र प्रतिभागः एकद्विगुणवृद्ध्यध्वानं भवति।

तृतीयस्थितौ रूपाधिकगुणहान्या खण्डितैकखण्डमात्रेण विशेषाधिकाः।

एवं सागरोपमशतपृथक्त्वपर्यंतं जीवानां प्रमाणं विशेषाधिका विशेषाधिकाः सन्ति। अत्र 'सागरोवम-सदपुधत्तं। इति निर्देशेन यवमध्यानामधस्तनाध्वानं ज्ञापितं।

एतत् गुणहानि-अध्वानां प्रमाणमवस्थितमस्ति। जीवविशेषाः पुनः अनवस्थिताः, गुणहानिं प्रति द्विगुण-द्विगुणक्रमेण तेषां वृद्धिदर्शनात्।

तेन परं सातासातयोः उत्कृष्टस्थितिपर्यंतं विशेषहीना विशेषहीनाः सन्ति।

द्वितीय स्थिति में जीव विशेष अधिक हैं।।१८८।।

तृतीय स्थिति में जीव विशेष अधिक हैं।।१८९।।

इस प्रकार शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण स्थिति तक जीवों का प्रमाण विशेष अधिक-विशेष अधिक होता गया है।।१९०।।

इसके आगे साता व असाता वेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति तक वे विशेष हीन-विशेष हीन होते गये हैं।।१९१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सातावेदनीय कर्म के द्विस्थानबंध को करने वाले जीव और असाता वेदनीय कर्म के चतुःस्थानबंधक जीव ज्ञानावरण कर्म की जघन्य स्थिति में स्तोक हैं। इसका कारण यह है कि जघन्य स्थिति के जीवों की अपेक्षा उपरिम स्थितियों के जीवों के विशेष अधिक क्रम से वृद्धि देखी जाती है।

द्वितीय स्थिति में एकजीव विशेष प्रमाण से विशेष अधिक हैं। यहाँ प्रतिभाग एक-द्विगुण वृद्धि अध्वान होता है।

तृतीयस्थिति में रूपाधिक गुणहानि से खण्डित एक खण्ड मात्र से विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार सागरोपमशतपृथक्त्व पर्यन्त जीवों के प्रमाण विशेष अधिक-विशेष अधिक हैं। यहाँ "सागरोपमशतपृथक्त्व" इस निर्देश से यवमध्यों के अधस्तन अध्वान को ज्ञापित किया गया है।

यह गुणहानि अध्वानों का प्रमाण अवस्थित है। परन्तु जीवविशेष अनवस्थित हैं, क्योंकि प्रत्येक गुणहानि के अनुसार उनके द्विगुण-द्विगुण वृद्धि देखी जाती है।

उसके आगे साता-असाता की उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त विशेष हीन-विशेष हीन हैं।

एतयोर्द्वयोर्यवमध्ययोः पृथक् प्ररूपणा किमर्थं कृता ?

पूर्वोक्तचतुर्णां यवमध्यानां यवमध्यादधस्तनो-परिमाध्वानानि सागरोपमशतपृथक्त्वमात्राणि चैव। परन्तु एतयोर्द्वयोर्यवमध्ययोरधस्तनाध्वानानि सागरोपमशत-पृथक्त्वमात्राणि, उपरिमाध्वानानि पुनः पंचदश-त्रिंशत्सागरोपम कोटाकोटिमात्राणि इति ज्ञापनार्थं पृथक् प्ररूपणा कृतास्ति। अत्र षण्णामपि यवमध्यानां एकैकगुणहान्यध्वानं समानं।

कुतः?

गुरूपदेशादेव ज्ञायते।

नानागुणहानिशलाकाः पुनः असमानाः, यवमध्ये अधस्तनोपरिमाध्वानानां अन्योन्यसमानत्वाभावात्।

अत्र संदृष्टिरेषा—

१६।२०।२४।२८।३२।४०।४८।५६।६४।५६।४८।४०।३२।२८।२४।२०।१६।१४।१२।१०।८।७।६।५

एवमनंतरोपनिधा समाप्ता।

अधुना परंपरोपनिधापेक्षया सातासातयोः चतुःस्थानादिबंधप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

परंपरोवणिधाए सादस्स चउट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा जीवा असादस्स बिट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा।।१९२।।

शंका—इन दो यवमध्यों की पृथक् प्ररूपणा किसलिए की गई है ?

समाधान—पूर्व में कथित चार यवमध्यों संबंधी यवमध्य से नीचे ऊपर के अध्वान शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण ही हैं, परन्तु इन दो यवमध्यों के नीचे के अध्वान शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण और उपरिम अध्वान पन्द्रह व तीस कोड़ाकोड़ि सागरोपम प्रमाण है, इस बात को बतलाने के लिये उनकी पृथक् प्ररूपणा की गई है।

यहाँ छहों यवमध्यों की एक-एक गुणहानि का अध्वान समान है।

कैसे ?

क्योंकि ऐसा गुरु का उपदेश से ही जाना जाता है।

परन्तु नानागुणहानिशलाकायें असमान हैं, क्योंकि यवमध्य में नीचे व ऊपर के अध्वानों के परस्पर समानता नहीं है।

यहाँ संदृष्टि इस प्रकार है—

१६।२०।२४।२८।३२।४०।४८।५६।६४।५६।४८।४०।३२।२८।२४।२०।१६।१४।१२।१०।८।७।६।५

इस प्रकार अनंतरोपनिधा समाप्त हुई।

अब परंपरोपनिधा की अपेक्षा साता और असाता के चतुःस्थानादिबंध की प्ररूपणा करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

परम्परोपनिधा की अपेक्षा साता वेदनीय के चतुःस्थानबंधक व त्रिस्थानबंधक जीव तथा असाता के द्विस्थानबंधक व त्रिस्थानबंधक जीव ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति के जीवों की अपेक्षा उनसे पल्योपम के असंख्यातवें भाग जाकर दुगुणी वृद्धि को प्राप्त होते हैं।।१९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**'तदो' शब्देन 'जहण्णट्ठाणजीवेहिंतो' इत्युक्तं भवत्यत्र। जघन्यस्थानजीवेभ्यो द्विगुणत्वं प्रतिपद्यमाना भवन्ति।**

कं अपेक्ष्य द्विगुणत्वं इति चेत् ?

जघन्यस्थितेः जीवेभ्यो द्विगुणत्वमितिभणितमस्ति। एतेषां यवमध्यानां नानागुणहानिशलाकाभिः स्व-स्वात्मनोऽध्वाने भागे कृते एकगुणहान्यध्वानं भवतीति गृहीतव्यं, यवमध्यस्याधः एका चैव गुणहानिर्न भवति, अनेका भवन्ति इति ज्ञातव्यं।

अग्रे द्विगुणवृद्धिप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव जवमज्झं।।१९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अवस्थितमध्वानं गत्वा द्विगुणवृद्धिर्भवति इति ज्ञापनार्थं 'एवं' शब्दस्य निर्देशः कृतः। यवमध्यस्याधो गुणहान्यो बहुका भवन्तीति ज्ञापनार्थं वीप्सा—द्विवारं निर्देशः कृतः।**

पुनः हीनत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

तेण परं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणा।।१९४।।

एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव सागरोवमसदपुधत्तं।।१९५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—'तदो' इस शब्द से 'जघन्यस्थिति के जीवों की अपेक्षा' यह अर्थ निकलता है। अर्थात् वे जघन्य स्थिति के जीवों की अपेक्षा द्विगुणी-द्विगुणी वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

शंका—किसकी अपेक्षा करके उन्हें द्विगुणपना प्राप्त है?

समाधान—जघन्य स्थिति के जीवों की अपेक्षा वे दुगुणे हैं, यह अभिप्राय निकलता है। इन यवमध्यों की नानागुणहानिशलाकाओं का अपने-अपने अध्वान में भाग देने पर एक गुणहानि अध्वान प्राप्त होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। यवमध्य के नीचे एक ही गुणहानि नहीं होती, किन्तु वे अनेक होती हैं ऐसा जानना चाहिए।

आगे द्विगुणवृद्धि का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इस प्रकार यवमध्य तक वे दुगुणी-दुगुणी वृद्धि को प्राप्त हुए हैं।।१९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अवस्थित अध्वान तक जाकर दुगुणी वृद्धि होती है, इस बात का परिज्ञान कराने के लिये 'एवं' पद का निर्देश किया गया है। यवमध्य के नीचे गुणहानियाँ बहुत होती हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ वीप्सा अर्थात् द्विबार का निर्देश किया है।

पुनः हीनपने का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

इसके आगे पल्योपम के असंख्यातवें भाग जाकर वे दुगुणी हानि को प्राप्त होते हैं।।१९४।।

इस प्रकार शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण स्थिति दुगुणी-दुगुणी हानि को प्राप्त होती गई है।।१९५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **यवमध्यादुपरिमगुणहान्यः आयामेन अधस्तनगुणहानिभिः समानाः। एतेषां चतुर्णां यवमध्यानां अधस्तनभाग इव उपरिमभागः सागरोपमशतपृथक्त्वमात्रश्चैव भवतीति ज्ञापनार्थं सागरोपमशतपृथक्त्वग्रहणं कृतं। शेषं सुगममस्ति।**

अधुना सातावेदनीयस्य द्विस्थानबंधादिजीवानां बंधस्थितिनिरूपणार्थं सूत्राष्टकमवतार्यते —

सादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा असादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्य जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा।।१९६।।

एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव सागरोवमसदपुधत्तं।।१९७।।

तेण परं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणा।।१९८।।

एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव सादस्स असादस्स उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।।१९९।।

एकजीवदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि।।२००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यवमध्य से ऊपर की गुणहानियाँ आयाम की अपेक्षा अधस्तनगुणहानियों से समान हैं। इन चार यवमध्यों के अधस्तन भाग के समान उपरिम भाग की शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण ही है, इस बात का परिज्ञान कराने के लिए सूत्र में 'सागरोपमशतपृथक्त्व' का ग्रहण किया है। शेष कथन सुगम है।

अब सातावेदनीय के द्विस्थान बंधादि जीवों की बंधस्थिति का निरूपण करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

सातावेदनीय के द्विस्थानबंधक जीव व असाता वेदनीय के चतुःस्थानबंधक जीव ज्ञानावरणीय की जघन्यस्थिति के जीवों की अपेक्षा उससे पल्योपम के असंख्यातवें भाग जाकर दुगुणी वृद्धि को प्राप्त होते गये हैं।।१९६।।

इस प्रकार शतप्रथक्त्व सागरोपमों तक दुगुणी-दुगुणी वृद्धि को प्राप्त होते गये हैं।।१९७।।

इसके आगे पल्योपम का असंख्यातवां भाग जाकर वे दुगुणी हानि को प्राप्त होते गये हैं।।१९८।।

इस प्रकार साता व असाता वेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति तक दुगुणे-दुगुणे हीन होते गये हैं।।१९९।।

एक जीवदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर पल्योपम के असंख्यात वर्गमूल प्रमाण है।।२००।।

णाणाजीव-दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो।।२०१।।

णाणाजीव-दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि।।२०२।।

एगजीव-दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।।२०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्रचतुष्टयानामर्थः सुगमोऽस्ति। एकजीवद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तरं पल्योपमस्य असंख्यातवर्गमूलप्रमाणानि।**

पूर्वं गुणहान्या आयामः सामान्येन प्ररूपितः, विशेषेण विना पल्यस्य असंख्यातभाग इति उपदिष्टत्वात्। संप्रति तस्य अध्वानस्य विशेषः एतेन सूत्रेण प्ररूपितः। ''असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि'' इत्युक्ते पल्योपमस्य असंख्यातप्रथमवर्गमूलानि गृहीतव्यानि, किंच-द्वितीयादिवर्गमूलेषु वर्गितेषु पल्योपमानुपपत्तेः।

नानाजीव-द्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तराणि पल्योपमवर्गमूलस्य असंख्यातभागः।

पल्योपमवर्गमूलस्य असंख्यातभागमात्राः नानागुणहानिशलाकाः भवन्ति इति यद्यपि सामान्येनोक्तं तर्ह्यपि पल्योपमार्धच्छेदनेभ्यः स्तोका इति गृहीतव्यं।

एतेषामन्योन्याभ्यस्तराशिः पल्योपमस्यासंख्यातभाग इति गुरूपदेशात्।

नानाजीव-द्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तराणि स्तोकानि सन्ति।

कुतः? पल्योपमात् असंख्यातानि वर्गस्थानानि अधोऽपसृत्य उत्पन्नत्वात्।

नानाजीवदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर पल्योपम के वर्गमूल के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।२०१।।

नानाजीवदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं।।२०२।।

एकजीवदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।।२०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त प्रथम चार सूत्रों का अर्थ सुगम है। एक जीव दो गुणी वृद्धिहानिस्थानान्तर पल्योपम के असंख्यातवर्गमूल प्रमाण है।

अर्थात् पहले सामान्यरूप से गुणहानि के आयाम की प्ररूपणा की गई है, क्योंकि वह विशेष के बिना पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है ऐसा उपदिष्ट है। इस समय इस सूत्र के द्वारा उस अध्वान का विशेष बतलाया गया है। 'असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि' ऐसा कहने पर पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूलों को ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि द्वितीयादि वर्गमूलों का वर्ग करने पर पल्योपम उत्पन्न नहीं होता है।

नानाजीव द्विगुणवृद्धि-हानि स्थानान्तर पल्योपम के वर्गमूल के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

पल्योपम के वर्गमूल के असंख्यातवें भाग प्रमाण नानागुणहानिशलाकायें होती हैं, ऐसा सामान्य रूप से कहा गया है, तो भी वे पल्योपम के अर्धच्छेदों से स्तोक हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि इनकी अन्योन्याभ्यस्त राशि पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, ऐसा गुरु का उपदेश है।

नाना जीवदुगुणवृद्धि-हानि स्थानान्तर स्तोक हैं।

कैसे ? क्योंकि वे पल्योपम से असंख्यात वर्गस्थान नीचे हटकर उत्पन्न हुए हैं।

एकजीव-द्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तरमसंख्यातगुणम्।

कुतः?

असंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणत्वात्।

अत्र कश्चिदाह—

कर्मप्रदेशगुणहान्याः एषा जीवगुणहानिः किं सदृशी किमसदृशी इति चेत्?

अस्योत्तरं न ज्ञायते।

कुतः?

सूत्राभावात्।

अत्र विस्तरो धवलाटीकायां द्रष्टव्योऽस्ति।

एवं श्रेणिप्ररूपणा समाप्ता।

अधुना सातासाताद्विस्थानिकबंधकानां अनाकारोपयोगस्थाननिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सादस्स असादस्स य बिट्ठाणियम्मि णियमा अणागारपाओग्गट्ठाणाणि।।२०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अनाकारोपयोगप्रायोग्यस्थितिबंधस्थानानि नियमात्—निश्चयेन सातासातयोर्द्विस्थानिकेऽनुभागे बध्यमाने भवन्ति नान्यत्र, दर्शनोपयोगकाले अतिसंक्लेशातिविशुद्ध्योरभावात्।**

आगे कहा है कि—एक जीवदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।

कैसे ?

क्योंकि वह पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूलों के बराबर है।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि—

कर्म प्रदेशों की गुणहानि की अपेक्षा यह जीवगुणहानि क्या सदृश है या विसदृश है ?

समाधान—इसका उत्तर ज्ञात नहीं है, ऐसा श्री वीरसेनाचार्य ने स्वयं कहा है।

क्यों ? क्योंकि उसकी प्ररूपणा करने वाला सूत्र नहीं प्राप्त होता है।

आगे का विस्तृत वर्णन धवला टीका में देखने योग्य है।

इस प्रकार श्रेणिप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब साता-असाता के द्विस्थानिक बंधकों का अनाकारोपयोगस्थान निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

साता व असाता वेदनीय के द्विस्थानिक अनुभाग में निश्चय से अनाकार उपयोग योग्य स्थान होते हैं।।२०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनाकार उपयोग के योग्य स्थितिबंध स्थान नियम से—निश्चय से साता व असाता दोनों वेदनीय कर्मों के द्विस्थानिक अनुभाग का बंध होने पर होते हैं, अन्यत्र नहीं होते हैं, क्योंकि दर्शनोपयोग के काल में अति संक्लेश और अतिविशुद्धि दोनों का अभाव पाया जाता है।

को दर्शनोपयोगो नाम ?

अन्तरंगोपयोगो दर्शनोपयोगः कथ्यते।

कुतः?

आकारो नाम कर्मकर्तृत्वभावः, तेन विना या उपलब्धिः सोऽनाकारोपयोगः। अन्तरोपयोगेऽपि कर्मकर्तृत्वभावोऽस्ति इति नाशंकनीयं, तत्र कर्तृत्वात् द्रव्यक्षेत्राभ्यां स्पष्टकर्माभावात्।

अत्र कश्चिदाह—

एवं सति श्रुतज्ञानमनःपर्ययज्ञानयोरपि दर्शनोपयोगपूर्वकत्वं प्रसज्यते?

आचार्यः प्राह—

नैतत्, ते द्वे अपि ज्ञाने मतिज्ञानपूर्वके भवतः, अतस्तयोः दर्शनोपयोगपूर्वकत्वविरोधोऽस्ति। ततो बाह्यार्थ- ग्रहणशक्तिविशिष्टस्वकस्वरूपसंवेदनं दर्शनमिति सिद्धं।

उक्तं श्रीवीरसेनाचार्येण—

''बज्झत्थगहणसत्तिविसिट्ठसगसरूवसंवेदणं दंसणमिदि सिद्धं।''[1]

न च बाह्यार्थग्रहणोन्मुखावस्था चैव दर्शनं, किन्तु बाह्यार्थग्रहणोपसंहरणप्रथमसमयप्रभृति यावद् बाह्यार्थग्रहणचरमसमय इति दर्शनोपयोग इति गृहीतव्यं, अन्यथा दर्शनज्ञानोपयोगव्यतिरिक्तस्यापि जीवस्यास्ति-त्वप्रसंगात्।

अधुना साकारोपयोगयोग्यस्थानप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सागारपाओग्गट्ठाणाणि सव्वत्थ।।२०५।।

शंका—दर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

समाधान—अंतरंग उपयोग को दर्शनोपयोग कहते हैं। कारण यह है कि आकार का अर्थ कर्मकर्तृत्व है, उसके बिना जो अर्थोपलब्धि होती है उसे अनाकार उपयोग कहा जाता है।

अंतरंग उपयोग में भी कर्मकर्तृत्व होता है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसमें कर्ता की अपेक्षा द्रव्य व क्षेत्र से स्पष्ट कर्म का अभाव है।

शंका—ऐसा होने पर श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान के भी दर्शनोपयोगपूर्वक होने का प्रसंग आवेगा ?

समाधान—नहीं आवेगा, क्योंकि वे दोनों ज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होते हैं, अतः उनके दर्शनोपयोगपूर्वक होने में विरोध है। इस कारण बाह्य अर्थ के ग्रहण (ज्ञान) शक्ति विशिष्ट जो अपने स्वरूप का संवेदन है वह दर्शन है, यह सिद्ध होता है।

श्रीवीरसेनाचार्य ने कहा है—

''बज्झत्थगहणसत्तिविसिट्ठसगसरूवसंवेदणं दंसणमिदि सिद्धं।''

अर्थात् बाह्य अर्थ के ग्रहण के उन्मुख होने रूप जो अवस्था होती है वह दर्शन हो, ऐसी बात भी नहीं है, किन्तु बाह्यार्थग्रहण के उपसंहार के प्रथम समय से लेकर बाह्यार्थ के अग्रहण के अंतिम समय तक दर्शनोपयोग होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि इसके बिना दर्शन व ज्ञानोपयोग से भिन्न भी जीव के अस्तित्व का प्रसंग आता है।

अब साकारोपयोग के योग्य स्थान का प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

साकार उपयोग के योग्य स्थान सर्वत्र बंधते हैं।।२०५।।

---

१. धवला पुस्तक ११, पृ. ३३३।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**साकारो ज्ञानोपयोगः तत्र कर्मकर्तृत्वभावसंभवात्। तस्य साकारस्य प्रायोग्यानि स्थितिबंधस्थानानि सर्वत्र सन्ति।**

अत्र भावार्थो ज्ञातव्यः—यानि स्थितिबंधस्थानानि दर्शनोपयोगेन सह बध्यन्ते तानि ज्ञानोपयोगेनापि बध्यन्ते। यानि दर्शनोपयोगेन सह न बध्यन्ते स्थितिबंधस्थानानि तान्यपि ज्ञानोपयोगेन बध्यन्ते इत्युक्तं भवति।

एतेषां षण्णां यवानां अधस्तनोपरिमभागानां स्तोकबहुत्वज्ञापनार्थमनाकारप्रायोग्यस्थानानां ज्ञापनार्थं चाग्रेऽल्पबहुत्वप्रतिपादकसूत्रं कथयिष्यन्त्याचार्यदेवाः।

अधुना सातायाः चतुःस्थानिकबंधकाल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

सादस्स चउट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि थोवाणि।।२०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाणत्वात्।**

उवरि संखेज्जगुणाणि।।२०७।।

यवमध्यात् उपरिमस्थितिबंधस्थानानि संख्यातगुणानि।

किं कारणम्।

अतिविशुद्धस्थितिभ्यो मंदविशुद्धस्थितीनां बहुत्वाविरोधात्।

सातायाः त्रिस्थानिकयवमध्याल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—साकार-आकार सहित ज्ञानोपयोग होता है, क्योंकि उसमें कर्म और कर्तृत्व की संभावना है। उस साकार उपयोग के योग्य स्थितिबंधस्थान सर्वत्र होते हैं।

यहाँ यह भावार्थ जानना चाहिए—जो स्थितिबंधस्थान दर्शनोपयोग के साथ बंधते हैं वे ज्ञानोपयोग के साथ भी बंधते हैं। जो स्थितिबंधस्थान दर्शनोपयोग के साथ नहीं बंधते हैं वे भी ज्ञानोपयोग के साथ बंधते हैं, यह उसका अभिप्राय है।

इन छह यवों के अधस्तन और उपरिम भागों के अल्पबहुत्व को बतलाने के लिये तथा अनाकार उपयोग के योग्य स्थानों के प्रमाण को भी बतलाने के लिये आगे का अल्पबहुत्व सूत्र आचार्यदेव कहते हैं।

अब सातावेदनीय कर्म के चतुःस्थानिकबंधकों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

साता वेदनीय चतुःस्थानबंधक यवमध्य के नीचे के स्थान स्तोक हैं।।२०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वे शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण है।

सूत्रार्थ—

उपरिम स्थान उनसे संख्यातगुणे हैं।।२०७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यवमध्य के ऊपर के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।

प्रश्न—क्या कारण है ?

उत्तर—क्योंकि, अति विशुद्ध स्थितियों की अपेक्षा मन्द विशुद्ध स्थितियों के बहुत होने में कोई विरोध नहीं है।

सातावेदनीय कर्म के त्रिस्थानिक यवमध्य के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सादस्स तिट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।२०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**चतुःस्थानिकानुभागबंधप्रायोग्याध्यवसानेभ्यः सातावेदनीयत्रिस्थानिक-यवमध्य-अधस्तनानुभागबंधप्रायोग्याध्यवसानानामशुभत्वदर्शनात्।**

उवरि संखेज्जगुणाणि।।२०९।।

सातावेदनीयत्रिस्थानिक-यवमध्य-अधस्तनाध्यवसानेभ्यः उपरिममाध्यवसानानामशुभत्वदर्शनात्।

किंच—मन्दविशुद्धिभिः परिणममाना जीवा बहवो भवन्ति, तेषां प्रायोग्यस्थितयोऽपि बहुका इत्युक्तं भवति।

कुतः ?

यतस्तेनापि मन्दविशुद्धीनामुत्पत्तेः।

संप्रति साताया द्विस्थानिकबंधकाल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

सादस्स बिट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।२१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सातावेदनीयत्रिस्थानिकयवमध्यस्य उपरिमस्थितिसंक्लेशात् साताद्विस्थानिकयवमध्यस्य अधस्तनस्थितिबंधस्थानानां साकारोपयोगेनैव बध्यमानानां संक्लेशस्याशुभत्वदर्शनात्। दृश्यते च शुभवज्रादिप्रायोग्यस्थानेभ्यः अशुभपाषाणादिप्रायोग्यस्थानानामतिबहुत्वम्।**

सूत्रार्थ—

सातावेदनीय के त्रिस्थानिक यवमध्य के नीचे स्थान उनसे संख्यातगुणे हैं।।२०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कारण यह है कि चतुःस्थानिक अनुभागबंध के योग्य परिणामों की अपेक्षा साता वेदनीय के त्रिस्थानिक यवमध्य के नीचे के अनुभाग बंध के योग्य परिणाम अशुभ देखे जाते हैं।

सूत्रार्थ—

यवमध्य के ऊपर के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।२०९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि सातावेदनीय के त्रिस्थानिक यवमध्य के अधस्तन परिणामों की अपेक्षा उपरिम परिणाम अशुभ देखे जाते हैं। मन्द विशुद्धियों रूप परिणमन करने वाले जीव बहुत हैं तथा उनके योग्य स्थितियाँ भी बहुत हैं, यह अभिप्राय है।

कैसे ?

इसका कारण यह है कि उससे भी मंद विशुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं।

अब सातावेदनीय के द्विस्थानिकबंधकों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

सातावेदनीय के द्विस्थानिक यवमध्य के नीचे के एकांततः साकार उपयोग के योग्य स्थान संख्यातगुणे हैं।।२१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सातावेदनीय के त्रिस्थानिक यवमध्य के ऊपर के स्थितिबंध स्थानों के संक्लेश की अपेक्षा साता वेदनीय के द्विस्थानिक यवमध्य के नीचे से साकार उपयोग से बंधने वाले स्थितिबंध स्थानों का संक्लेश अशुभ देखा जाता है। वज्र—हीरा आदि के योग्य शुभस्थानों की अपेक्षा अशुभ पत्थर

मिस्सयाणि संखेज्जगुणाणि।।२११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**साकारानाकारोपयोगयोः यानि प्रायोग्यानि साताद्विस्थानिकयवमध्यात् अधस्तनानि स्थितिबंधस्थानानि तानि संख्यातगुणानि।**

कुतः?

अधस्तनाध्यवसानेभ्यः एतेषामध्यवसानानां अशुभत्वोपलंभात्। मोक्षकारणात् संसारकारणेन बहुकेन भवितव्यं, अन्यथा देवमनुष्येभ्यस्तिरश्चामनन्तगुणत्वानुपपत्तेः।

सादस्स चेव बिट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि मिस्सयाणि संखेज्ज-गुणाणि।।२१२।।

कारणं अधस्तनाध्यवसानेभ्यः उपरिमाध्यवसानानां सुष्ठु अशुभत्वम्।

अधुना असातावेदनीयस्य द्विस्थानिकादिस्थाननिरूपणार्थं सप्तसूत्राण्यवतार्यन्ते —

असादस्स बिट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो एयंतसायारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।२१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**साताद्विस्थानिकयवमध्यस्य उपरिमसाकारानाकारोपयोगयोग्यस्थिति-**

आदि के योग्य स्थान बहुत अधिक देखे भी जाते हैं।

सूत्रार्थ—

मिश्र स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।२११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—साकार व अनाकार उपयोग के योग्य जो साता वेदनीय के द्विस्थानिक यवमध्य के नीचे के स्थितिबंधस्थान हैं वे संख्यातगुणे हैं।

कैसे ?

क्योंकि नीचे के अध्यवसानों की अपेक्षा ये अध्यवसान अुशभ देखे जाते हैं। मोक्ष के कारण की अपेक्षा संसार का कारण बहुत होना चाहिए, अन्यथा देव और मनुष्य की अपेक्षा तिर्यंचों का अनन्तगुणत्व बन नहीं सकता है।

सूत्रार्थ—

साता के ही द्विस्थानिक यवमध्य के ऊपर मिश्र स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।२१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण अधस्तन अध्यवसानों की अपेक्षा उपरिम अध्यवसानों का अत्यन्त अशुभ होना है।

अब असातावेदनीय के द्विस्थानिक आदि स्थानों का निरूपण करने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

असाता के द्विस्थानिक यवमध्य के नीचे एकान्ततः साकार उपयोग के योग्य स्थान संख्यातगुणे हैं।।२१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण यह है कि साता वेदनीय के द्विस्थानिक यवमध्य के ऊपर

बंधाध्यवसानस्थानेभ्योऽसाताद्विस्थानिकयवमध्यस्य अधस्तनैकान्तसाकारोपयोगयोग्यस्थितिबंधाध्यवसान-स्थानानामशुभत्वोपलंभात्।

मिस्सयाणि संखेज्जगुणाणि।।२१४।।

असादस्स चेव बिट्ठाणियजवमज्झस्सुवरि मिस्सयाणि संखेज्ज-गुणाणि।।२१५।।

एतेषां स्थितिबंधस्थानानां संख्यातगुणत्वस्य कारणं पूर्वं प्ररूपितमिति नेह प्ररूप्यते। सातायाः साकाराना-कारोपयोगयोग्यस्थितिबंधस्थानप्रभृतिद्विस्थान-त्रिस्थान-चतुःस्थानयोग्यादि-अधस्तनाशेषस्थितिभ्यः संख्यात-गुणमध्वानमुपरि गत्वा असाताया द्विस्थानयवमध्यस्य साकारानाकारोपयोगयोग्यस्थानानि भवन्ति।

कुतः ?

प्रकृतिविशेषेण ततः संख्यातगुणं गत्वा तदुत्पत्ति विरोधाभावात्।

एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।२१६।।

कारणं सुगममस्त्यत्र।

असादस्स तिट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।२१७।।

अधस्तनसंक्लेशेभ्य एतेषां संक्लेशानामशुभत्वदर्शनात्।

से साकार व अनाकार उपयोग के योग्य स्थितिबंधाध्यवसानों की अपेक्षा असाता के द्विस्थानिक यवमध्य के नीचे के सर्वथा साकार उपयोग के योग्य स्थिति बंधाध्यवसानस्थान अशुभ पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ—

मिश्र स्थितिबंध स्थान संख्यातगुणे हैं।।२१४।।

असाता के ही द्विस्थानिक यवमध्य के ऊपर मिश्र स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।२१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन स्थितिबंधस्थानों के संख्यातगुणे होने का जो कारण है उसकी प्ररूपणा पहिले की जा चुकी है, अतः वह यहाँ फिर से नहीं की जा रही है। साता वेदनीय के साकार और अनाकार उपयोग के योग्य स्थितिबंधस्थानों को लेकर द्विस्थान, त्रिस्थान एवं चतुःस्थान योग्य इत्यादि नीचे की समस्त स्थितियों से संख्यातगुणे अध्वान आगे जाकर असातावेदनीय के द्विस्थान यवमध्य के साकार व अनाकार उपयोग योग्य स्थान होते हैं।

कैसे ?

क्योंकि प्रकृतिविशेष के कारण उनसे संख्यातगुणे स्थान आगे जाकर उनके उत्पन्न होने में कोई विरोध नहीं है।

सूत्रार्थ—

एकान्ततः साकार उपयोग के योग्य स्थान संख्यातगुणे हैं।।२१६।।

यहाँ इसका कारण सुगम है।

सूत्रार्थ—

असाता वेदनीय के त्रिस्थानिक यवमध्य के नीचे के स्थान संख्यातगुणे हैं।।२१७।।

कारण यह है कि नीचे के संक्लेश परिणामों की अपेक्षा ये संक्लेश परिणाम अशुभ देखे जाते हैं।

उवरि संखेज्जगुणाणि।।२१८।।

कारणं सुगममस्ति।

असादस्स चउट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।२१९।।

अत्रापि कारणं सुगममस्ति।

संप्रति सातावेदनीयजघन्यस्थितिप्रमाणप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

सादस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।।२२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **असातावेदनीयस्य चतुःस्थानिकयवमध्यस्याधस्तनस्थितिबंधस्थानानि सागरोपमशतपृथक्त्वमात्राणि। सातावेदनीयस्य जघन्यः स्थितिबंधः पुनः अन्तःकोटाकोटीप्रमाणा-बाधोनः। तेनासातावेदनीयस्य चतुःस्थानिकयवमध्याधस्तनस्थानेभ्यः सातावेदनीयस्य जघन्यः स्थितिबंधः संख्यातगुणो जातः।**

जट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।२२१।।

जस्थितिबंधो नाम आबाधया सहितजघन्यस्थितिबंधः, प्रधानीकृतकालत्वात्। जघन्यस्थितिबंधो नाम आबाधोनजघन्यबंधः, प्रधानीकृतनिषेकस्थितित्वात्। तेन जघन्यस्थितिबंधाद् जस्थितिबंधो विशेषाधिकः।

सूत्रार्थ —

उसके ऊपर के स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।।२१८।।

इसका कारण सुगम है।

सूत्रार्थ —

असाता वेदनीय के चतुःस्थानिक यवमध्य के नीचे के स्थान संख्यातगुणे हैं।।२१९।।

यहाँ भी कारण सुगम है।

अब सातावेदनीय की जघन्यस्थिति का प्रमाण प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

साता वेदनीय का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है।।२२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — असातावेदनीय के चतुःस्थानिक यवमध्य के नीचे के स्थितिबंध स्थान शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण हैं। परन्तु सातावेदनीय का जघन्य स्थितिबंध आबाधा से हीन अंतः कोड़ाकोड़ि सागरोपम प्रमाण है। इसीलिये असाता के चतुःस्थानिक यवमध्य के नीचे के स्थानों की अपेक्षा साता वेदनीय का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा हो जाता है।

सूत्रार्थ —

जस्थितिबंध उससे विशेष अधिक है।।२२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — आबाधा से सहित जघन्य स्थितिबंध को जस्थितिबंध कहा जाता है, क्योंकि वहाँ काल की प्रधानता है। आबाधा से हीन जघन्य बन्ध जघन्यस्थिति बंध कहलाता है, क्योंकि उसमें निषेक स्थिति की प्रधानता है। इसीलिये जघन्य स्थितिबंध से जस्थितिबंध विशेष अधिक है।

कियन्मात्रेण विशेषाधिकः ?

स्वकान्तर्मुहूर्तजघन्याबाधामात्रेण विशेषाधिकोऽस्ति।

अधुना असातावेदनीयस्य जघन्यस्थितिबंधनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

असादस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।२२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र संख्यातसागरोपममात्रेण विशेषाधिको ज्ञातव्यः।**

जट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।२२३।।

अत्र विशेषाधिको जघन्याबाधामात्रेण गृहीतव्यः।

जत्तो उक्कस्सयं दाहं गच्छदि सा ट्ठिदी संखेज्जगुणा।।२२४।।

दाहो नाम संक्लेशः।

कुतः?

इहभव-परभवसंतापकारणत्वात्। उत्कृष्टदाहो नाम उत्कृष्टस्थितिबंधकारणोत्कृष्टसंक्लेशः। यस्यां स्थितौ स्थित्वा उत्कृष्टसंक्लेशं गत्वा उत्कृष्टस्थितिं बध्नाति सा स्थितिः संख्यातगुणा इत्युक्तं भवति।

अंतोकोडाकोडी संखेज्जगुणा।।२२५।।

कितने मात्र से वह विशेष अधिक है ?

वह अपनी अन्तर्मुहूर्त मात्र जघन्य आबाधा के प्रमाण से अधिक है।

अब असातावेदनीय की जघन्यस्थितिबंध का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

असाता वेदनीय का जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है।।२२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ संख्यात सागरोपम मात्र से विशेष अधिक जानना चाहिए।

सूत्रार्थ—

जस्थितिबंध विशेष अधिक है।।२२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ विशेष अधिक जघन्य आबाधा मात्र से ग्रहण करना चाहिए।

सूत्रार्थ—

जिसके कारण प्राणी उत्कृष्ट दाह को प्राप्त होता है वह स्थिति संख्यातगुणी है।।२२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दाह का अर्थ संक्लेश है।

कैसे ?

क्योंकि वह इस भव और परभव में संताप का कारण है। उत्कृष्ट दाह का अर्थ उत्कृष्ट स्थितिबंध का कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेश है। जिस स्थिति में स्थित होकर उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त होकर जीव उत्कृष्ट स्थिति को बांधता है वह स्थिति संख्यातगुणी है, यह अभिप्राय है।

सूत्रार्थ—

अन्तःकोड़ाकोड़ि का प्रमाण संख्यातगुणा है।।२२५।।

पूर्वोक्तस्थितिरन्तःकोटाकोटिमात्रा, एषा अपि स्थितिरन्तःकोटाकोटिमात्रा चैव। किन्तु एषा निर्विकल्पा, तेन संख्यातगुणा इति भणिता।

अधुना सातावेदनीयस्य द्विस्थानिकयवमध्यस्थानप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

सादस्स बिट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।२२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अन्तःकोटाकोटिप्रमाणेन हीनपञ्चदशसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणत्वात्।**

सादस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।२२७।।

कियन्मात्रेण ? सातानाकारोपयोगयोग्यस्थानप्रभृति अधस्तनाबाधोनान्तःकोटाकोटिनिषेकस्थितिमात्रेण ज्ञातव्यः।

जट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।२२८।।

कियन्मात्रेण ? स्वकाबाधामात्रेण विशेषाधिको ज्ञातव्यः।

दाहट्ठिदी विसेसाहिआ।।२२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पूर्वोक्त स्थिति का प्रमाण अन्तः कोड़ाकोडि मात्र है, यह स्थिति भी अन्तः कोड़ाकोड़ि प्रमाण ही है। किन्तु यह स्थिति निर्विकल्प है, इसीलिये संख्यातगुणी कही गई है।

अब सातावेदनीय के द्विस्थानिक यवमध्यस्थान का प्रमाण निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

साता वेदनीय के द्विस्थानिक यवमध्य के ऊपर के एकान्ततः साकार उपयोग के योग्यस्थान संख्यातगुणे हैं।।२२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्योंकि वे अन्तःकोड़ाकोड़ि प्रमाण से हीन पन्द्रह कोड़ाकोड़ि सागरोपम प्रमाण हैं।

सूत्रार्थ —

साता वेदनीय का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।२२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — वह कितने मात्र से अधिक है ? साता के अनाकार उपयोग के योग्य स्थानों को लेकर नीचे आबाधा से रहित अन्तःकोड़ाकोड़ि सागरोपम निषेक स्थितियों के प्रमाण से वह अधिक है, यह जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

जस्थितिबंध विशेष अधिक है।।२२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — कितने मात्र से वह अधिक है ? वह अपनी आबाधा के प्रमाण से अधिक है, ऐसा जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

दाहस्थिति विशेष अधिक है।।२२९।।

दाहः उत्कृष्टस्थितियोग्यसंक्लेशस्तस्य दाहस्य कारणभूतस्थितिर्दाह स्थितिर्नाम, कारणे कार्योपचारात्। तत्र जघन्यदाहस्थितिप्रभृति यावदुत्कृष्टदाहस्थितिरिति एतासां सर्वासां जातिद्वारेण एकत्वमापन्नानां दाहस्थितिरिति संज्ञा। सा पंचदशसागरोपमकोटाकोटीः दृष्ट्वा विशेषाधिका, किंचिदूनत्रिंशत्सागरोपम-कोटाकोटिप्रमाणत्वात्।

अधुना असातावेदनीयस्य चतुःस्थानप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

असादस्स चउट्ठाणिय-जवमज्झस्स उवरिमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि।।२३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **असातावेदनीयस्य चतुःस्थानिकयवमध्यात् उपरिमजघन्यदाहस्थितेः अधस्तनान्तःकोटाकोटिसागरोपममात्रेण विशेषाधिकोऽस्ति।**

असादस्स उक्कस्सट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।२३१।।

अत्रान्तःकोटाकोटिमात्रेण विशेषाधिको वर्तते।

जट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।।२३२।।

अत्र विशेषाधिकस्त्रिसहस्रवर्षमात्रेण ज्ञातव्यः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — दाह का अर्थ उत्कृष्ट स्थिति के योग्य संक्लेश है। उस दाह की कारणभूत स्थिति कारण में कार्य का उपचार करने से दाहस्थिति कही जाती है। उसमें जघन्य दाहस्थिति से लेकर उत्कृष्ट दाहस्थितिपर्यंत जाति के द्वारा एकता को प्राप्त हुई इन सब स्थितियों की दाहस्थिति संज्ञा है। वह पन्द्रह कोड़ाकोड़ि सागरोपमों की अपेक्षा विशेष अधिक है, क्योंकि वह कुछ कम तीस कोड़ाकोड़ि सागरोपम प्रमाण है।

अब असाता वेदनीय का चतुःस्थानप्रमाण निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

असाता वेदनीय के चतुःस्थानिक यवमध्य के ऊपर के स्थान विशेष अधिक हैं।।२३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — असातावेदनीय के चतुःस्थानिक यवमध्य ऊपर की जघन्य दाहस्थिति से नीचे अन्तः कोड़ाकोड़ि सागरोपम मात्र से अधिक हैं।

सूत्रार्थ —

असाता वेदनीय का उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है।।२३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ अन्तःकोड़ाकोड़ि मात्र से विशेष अधिक जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

ज-स्थितिबंध विशेष अधिक है।।२३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ विशेष अधिक तीन हजार वर्ष मात्र से है ऐसा जानना चाहिए।

संप्रति अल्पबहुत्वप्रकारेण वेदनीयस्य चतुःस्थानिकादिप्रतिपादनार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

एदेण अट्ठपदेण सव्वत्थोवा सादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा।।२३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **एतदर्थमाधारं कृत्वा षण्णां यवानां जीवानामल्पबहुत्वं भण्यते। तस्मिन् भण्यमाने सातावेदनीयस्य चतुःस्थानबंधा जीवाः स्तोकाः सन्ति।**

कुतः ?

स्तोकाध्वानत्वात्।

तिट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा।।२३४।।

सातावेदनीयस्य चतुःस्थानानुभागबंधयोग्यस्थितिभ्यः त्रिस्थानानुभागबंधयोग्यस्थितिविशेषाणां संख्यातगुणत्वोपलंभात्।

विट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा।।२३५।।

सातावेदनीयत्रिस्थानानुभागबंधयोग्यस्थितिविशेषेभ्यस्तस्यैव द्विस्थानानुभागबंधयोग्यस्थितिविशेषाणां संख्यातगुणत्वोपलंभात्।

असादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा।।२३६।।

अत्र कश्चिदाह —

अब अल्पबहुत्व प्रकार से वेदनीय कर्म के चतुःस्थानिक का प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

इस अर्थपद से सातावेदनीय के चतुःस्थानबंधक जीव सबसे स्तोक हैं।।२३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इस अर्थ को आधार करके छह यवों के जीवों के अल्पबहुत्व को कहते हैं। उसका कथन करने से साता वेदनीय के चतुःस्थानबंधक जीव स्तोक हैं।

कैसे ?

क्योंकि उनका अध्वान स्तोक है।

सूत्रार्थ —

त्रिस्थानबंधक जीव उनसे संख्यातगुणे हैं।।२३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्योंकि सातावेदनीय के चतुःस्थान अनुभागबंध के योग्य स्थितियों की अपेक्षा त्रिस्थान अनुभागबंध के योग्य स्थिति विशेष संख्यातगुणी पाई जाती है।

सूत्रार्थ —

द्विस्थानबंधक जीव संख्यातगुणे हैं।।२३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — कारण यह है कि सातावेदनीय के त्रिस्थान अनुभाग बंध के योग्य स्थितिविशेषों की अपेक्षा उसके ही द्विस्थान अनुभागबंध के योग्य स्थिति विशेष संख्यातगुणी पाई जाती हैं।

सूत्रार्थ —

असाता वेदनीय के द्विस्थानबंधक जीव संख्यातगुणे हैं।।२३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ कोई आशंका करता है कि —

सातावेदनीयस्य द्विस्थानानुभागबंधयोग्य स्थितिविशेषेभ्योऽसातावेदनीयद्विस्थानानुभागबंधयोग्यस्थिति-विशेषाः संख्यातगुणहीनाः। अन्तःकोटाकोटिन्यून पंचदशसागरोपमकोटाकोटिमात्रसाताद्विस्थानानुभाग-बंधप्रायोग्यस्थितिभ्यः सागरोपमशतपृथक्त्वमात्रस्थितिविशेषाणां संख्यातगुणहीनत्वोपलंभात्। ततः असातावेदनीयस्य द्विस्थानबंधा जीवाः संख्यातगुणा इति न युज्यते ?

आचार्यः प्राह—

नैतद् वक्तव्यं, सातावेदनीयबंधककालापेक्षया संख्यातगुणे असातावेदनीयबंधककाले संचितानां जीवानां संख्यातगुणत्वेन विरोधाभावात् संख्यातगुणत्वं युज्यते।

चउट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा।।२३७।।

असातावेदनीयद्विस्थानानुभागबंधयोग्यस्थितिविशेषेभ्यस्तस्यैव चतुःस्थानानुभागबंधयोग्यस्थिति-विशेषाणां संख्यातगुणत्वमुपलभ्यते।

तिट्ठाणबंधा जीवा विसेसाहिया।।२३८।।

अत्र कश्चिदाशंकते—

असातावेदनीयस्य चतुःस्थानानुभागबंधप्रायोग्यस्थितिविशेषेभ्यस्तस्यैव त्रिस्थानानुभागबंधप्रायोग्यस्थिति-विशेषाः संख्यातगुणहीनाः। ततस्त्रिस्थानबंधजीवानां विशेषाधिकत्वं कथं युज्यते इति चेत् ?

सातावेदनीय के द्विस्थान अनुभागबंध के योग्य स्थिति विशेषों से असातावेदनीय के द्विस्थान अनुभागबंध के योग्य स्थिति विशेष संख्यातगुणे हीन हैं, क्योंकि अन्तः कोड़ाकोड़ि से हीन पन्द्रह कोड़ाकोड़ि सागरोपम प्रमाण साता वेदनीय के द्विस्थान अनुभागबंध के योग्य स्थितियों की अपेक्षा शतपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण स्थितिविशेष संख्यातगुणी हीन पाई जाती है। अतएव असाता के द्विस्थान बंधक जीव संख्यातगुणे हैं यह कहना उचित नहीं है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सातावेदनीय के बंधककाल की अपेक्षा संख्यातगुणे असातावेदनीय के बंधक काल में संचित जीवों के संख्यातगुणत्व से कोई विरोध न होने के कारण उनको संख्यातगुणा कहना उचित ही है।

सूत्रार्थ—

चतुःस्थानबंधक जीव संख्यातगुणे हैं।।२३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असातावेदनीय के द्विस्थान अनुभागबंध के योग्य स्थिति विशेषों की अपेक्षा उस जीव के ही चतुःस्थान अनुभागबंध के योग्य स्थिति विशेष संख्यातगुणी पाई जाती है।

सूत्रार्थ—

त्रिस्थानबंधक जीव विशेष अधिक हैं।।२३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ कोई शंका करता है कि—

असाता वेदनीय के चतुःस्थान अनुभागबंध के योग्य स्थितिविशेषों की अपेक्षा उसके ही त्रिस्थान अनुभागबंध के योग्य स्थितिविशेष संख्यातगुणे हीन हैं। इस कारण त्रिस्थान बंधक जीवों को उनसे विशेष अधिक कहना कैसे उचित है ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैष दोषः, शुक्ललेश्योत्कृष्टपरिणामेषु बहुस्थितिविशेषेषु वर्तमानजीवेभ्यः स्तोकस्थितिविशेषेषु मध्यमपरिणामेषु च वर्तमानजीवानां बहुत्वं प्रति विरोधाभावात्। न च बहुसंक्लेशविशुद्धिषु खल्वविल्वसंयोग इव त्रुटेः समुत्पद्यमानासु जीवबहुत्वं संभवति, तथानुपलंभात्।

पुनरप्याशंकां करोति—

ते संख्यातगुणा न भवन्ति, विशेषाधिकाश्चैव भवन्तीति कथं ज्ञायते ?

आचार्यदेवः समादधाति—

एतस्मात्, चैव सूत्राद् ज्ञायते।

पुनः पृच्छति—

विसंवादिसूत्रमेतत् किन्न जायते ?

आचार्यदेवः उत्तरयति—

न जायते। उक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण—"विसंवादकारणसयलदोसुम्मुक्कभूदबलिवयण-विणिग्गयस्स सुत्तस्स विसंवादित्तविरोहादो।[१]"

अस्यायमभिप्रायः—श्रीभूतबलिसूरिवर्यो विसंवादस्य कारणभूतसंपूर्णदोषैः रागद्वेषपक्षपातादिभिर्विरहित आसीत् अतस्तस्य मुखारविंदविनिर्गतसूत्रवचनस्य विसंवादित्वं न संभवति, किंच एते पूर्वाचार्याः सत्यमहाव्रतिनः सन्ति।

आचार्यदेव इसका समाधान करते हुए कहते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट परिणामों में बहुत स्थितिविशेषों में वर्तमान जीवों की अपेक्षा स्तोक स्थितिविशेषों और मध्यम परिणामों में वर्तमान जीवों के बहुत होने में कोई विरोध नहीं है। खल्व-विल्वसंयोग (खल्वाट और विल्व फल के संयोग) के समान त्रुटि से अर्थात् यदा कदाचित् उत्पन्न होने वाले बहुत संक्लेश व बहुत विशुद्धि में जीवों की अधिकता सम्भव नहीं है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है।

पुनः कोई शंका करता है—

वे संख्यातगुणा नहीं हैं, विशेष अधिक ही हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

आचार्यदेव इसका भी समाधान करते हैं—

यह इसी सूत्र से ही जाना जाता है

पुनश्च कोई पूछता है—

यह सूत्र विसंवाद सहित क्यों नहीं है ?

तब आचार्यदेव उत्तर देते हैं—

यह सूत्र विसंवाद उत्पन्न नहीं करता है। जैसा कि श्रीवीरेसनाचार्य ने कहा है—"क्योंकि जो भूतबलि भट्टारक विसंवाद के कारणभूत समस्त दोषों से रहित हैं उनके मुख से निकले हुए सूत्र के विसंवाद होने में विरोध आता है।।"

इसका अभिप्राय यह है कि श्रीभूतबली आचार्यवर्य विसंवाद के कारभूत सम्पूर्ण दोषों से एवं राग-द्वेष-पक्षपात आदि से रहित थे, अतः उनके मुखकमल से निकले हुए सूत्र वचनों का विसंवादी होना संभव नहीं है, क्योंकि ये पूर्वाचार्य सत्यमहाव्रत का पालन करने वाले थे।

---

१. षट्खंडागम, धवलाटीका, पु. ११ पृ. ३४४।

वर्तमानकाले केचिद् विद्वान्सः पूर्वाचार्यग्रन्थग्रथितवचनमपि सामान्यजनलिखितवचनसदृशमिव मन्यन्ते, तत्तु न शोभते, किंच सर्वेऽपि पूर्वाचार्याः सर्वज्ञदेवकथित-गणधरदेवग्रथितवचनमेवाधारीकृत्य प्रोचुः इति ज्ञात्वा जिनागमवचनेषु शंका न कर्तव्या।

एषो जीवसमुदाहारो द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तेषु संज्ञिजीवापर्याप्तकेषु च योजयितव्यः। विशेषेण तु पूर्वोक्तजीवेषु स्थितिविशेषो ज्ञातव्यः। बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तेष्वपि एवं चैव वक्तव्यः। नवरि एतेषु सर्वेष्वपि सातासातयोर्द्विस्थानयवमध्यमेव, तत्र त्रिस्थान-चतुःस्थानानुभागानां बंधाभावात्। विशेषेण तु बादर-सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तकेषु एकैकस्यां स्थितौ अनन्ता जीवाः सन्ति।

प्रथमस्थितिबंधजीवप्रभृति क्रमेण विशेषाधिकाः।

कियन्मात्रेण विशेषाधिकाः ?

पल्योपमस्य असंख्यातभागेन खण्डितमात्रेण विशेषाधिकाः सन्ति। पल्योपमस्य असंख्यातभागं गत्वा द्विगुणवर्द्धिता द्विगुणवर्द्धिता यावज्जवमध्यम्। तेन परं विशेषहीना भवन्ति। शेषं ज्ञात्वा वक्तव्यम्। एषो जीवसमुदाहारो बहुभेदोऽपि सन् संक्षेपेणात्र प्ररूपितोऽस्ति। अत्र विशेषसंदृष्ट्यो धवलाटीकायां दृष्टव्योऽस्ति।

एवं द्वितीयस्थले द्वितीयचूलिकायां भेद-प्रभेदसमन्वितजीवसमुदाहारकथनत्वेन त्रिसप्ततिसूत्राणि गतानि।

एवं जीवसमुदाहारः समाप्तः।

वर्तमान समय में कुछ विद्वान् पूर्वाचार्यों के द्वारा लिखे गये ग्रंथों के वचनों को सामान्य लोगों के द्वारा लिखित वचन के समान ही मानने लगते हैं, जो कि शोभास्पद नहीं है, क्योंकि सभी पूर्ववर्ती आचार्य सर्वज्ञ भगवान के द्वारा कहे गये—उनकी दिव्यध्वनि के अनुसार गणधरदेव के द्वारा ग्रथित—द्वादशांगरूप में गूंथे गये वचनों का आधार लेकर बोलते थे ऐसा जानकर—श्रद्धान करके जिनागम के वचनों में शंका नहीं करना चाहिए।

इस जीव समुदाहार को द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक-अपर्याप्तक तथा संज्ञी अपर्याप्तक जीवों में जोड़ना चाहिये। विशेष इतना है कि उक्त जीवों के स्थितिभेद को जानना चाहिए। बादर व सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में भी इसी प्रकार कहना चाहिये। विशेष इतना है कि इन सभी जीवों में साता व असाता का द्विस्थानिक अनुभागरूप यवमध्य ही होता है, क्योंकि उनमें त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक अनुभागों के बंध का अभाव है। विशेषता यह है कि बादर व सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों में एक-एक स्थिति में अनन्त जीव होते हैं। वे क्रमशः प्रथम स्थितिबंध के जीवों से लेकर विशेष अधिक हैं।

प्रश्न—कितने मात्र से वे अधिक हैं ?

उत्तर—उनको पल्योपम के असंख्यातवें भाग से भाजित करने पर जो एक भाग लब्ध हो उतने मात्र से भी अधिक हैं। पल्योपम के असंख्यातवें भाग जाकर यवमध्य तक दुगुणी-दुगुणी वृद्धि से वृद्धिंगत होते गये हैं। आगे वे विशेष हीन हैं। शेष कथन जानकर करना चाहिये। बहुत भेदों से संयुक्त होने पर भी इस जीव समुदाहार की यहाँ संक्षेप से प्ररूपणा की गई है।

यहाँ विशेष संदृष्टियाँ धवला टीका में दृष्टव्य[1] हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल के द्वितीय चूलिका के भेद-प्रभेदों से समन्वित जीवसमुदाहार का कथन करने वाले तिहत्तर सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार समुदाहार समाप्त हुआ

---

१. षट्खंडागम (धवला टीका समन्वित), पु. ११, पृ. ३४५।

अधुना प्रकृतिसमुदाहारस्य भेदनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

पयडिसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि दुबे अणुओगद्दाराणि पमाणाणुगमो अप्पाबहुए त्ति।।२३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अत्र प्रकृतिसमुदाहारस्याधिकारोऽस्ति, तत्र द्वे अनुयोगद्वारे स्तः — प्रमाणानुगमोऽल्पबहुत्वं च।**

अत्र कश्चिदाह —

प्ररूपणया सह त्र्यनुयोगद्वाराणि किन्न प्ररूपितान्यत्र ?

आचार्यः प्राह — न प्ररूपितानि, एतयोरेव प्ररूपणाया अन्तर्भूतत्वात्। न च प्ररूपणाया विना प्रमाणादीनां संभवोऽस्ति, विरोधात्। तेनात्र तावत्प्ररूपणां वक्ष्यते। तद्यथा —

सन्ति ज्ञानावरणादीनां प्रकृतीनां स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि।

प्ररूपणा गता।

संप्रति प्रमाणानुगमप्ररूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

पमाणाणुगमेण णाणावरणीयस्स असंखेज्जा लोगा ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि।।२४०।।

अब प्रकृति समुदाहार के भेदों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

अब प्रकृतिसमुदाहार का अधिकार है। उसमें दो अनुयोगद्वार है — प्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व।।२३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ प्रकृतिसमुदाहार का अधिकार है। उसमें दो अनुयोगद्वार हैं — प्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व।

यहाँ कोई प्रश्न करता है —

प्ररूपणा के साथ यहाँ तीन अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है?

आचार्य देव इसका समाधान देते हुए कहते हैं कि —

नहीं प्ररूपित किये हैं, क्योंकि इनमें ही प्ररूपणा का अन्तर्भाव हो जाता है। कारण कि प्ररूपणा के बिना प्रमाणादिकों की सम्भावना ही नहीं है, क्योंकि उसमें विरोध आता है।

इसी कारण यहाँ पहिले प्ररूपणा को कहते हैं। वह इस प्रकार है —

ज्ञानावरणादिक प्रकृतियों के स्थितिबंधाध्यवसानस्थान हैं।

प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब प्रमाणानुगम को प्ररूपित करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

प्रमाणानुगम के अनुसार ज्ञानावरणीय के असंख्यात लोक प्रमाण स्थितिबंधाध्यवसानस्थान हैं।।२४०।।

एवं सत्तण्हं कम्माणं।।२४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**ज्ञानावरणीयस्य स्थितिबंधकारणाध्यवसानस्थानानि एकत्रीकृत्य एषा प्ररूपणा प्ररूपिता। स्थितिं प्रति अध्यवसानस्थानानामेषा प्रमाणप्ररूपणा न भवति, उपरि स्थितिसमुदाहारे स्थितिं प्रति अध्यवसानप्रमाणस्य प्ररूपयिष्यमाणत्वात्।**

यथा ज्ञानावरणीयस्य स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानामव्वोगाढस्वरूपेण प्रमाणप्ररूपणा कृता तथा शेषसप्तानां कर्मणां प्रमाणप्ररूपणा कर्तव्यास्ति।

एवं प्रमाणानुगमनाम अनुयोगद्वारं समाप्तम्।

अधुना कर्मणां स्थितिबंधाध्यवसानानामल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

अप्पाबहुए त्ति सव्वत्थोवा आउअस्स ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि।।२४२।।

णामागोदाणं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।२४३।।

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधज्झ-वसाणट्ठाणाणि चत्तारि वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि।।२४४।।

मोहणीयस्य ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२४५।।

इसी प्रकार शेष सात कर्मों की प्रमाणप्ररूपणा है।।२४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ज्ञानावरणीय कर्म के स्थितिबंध के कारणभूत सब अध्यवसानस्थानों को इकट्ठा करके यह प्रमाण प्ररूपणा कही गई है। प्रत्येक स्थिति के अध्यवसानस्थानों की यह प्रमाणप्ररूपणा नहीं है, क्योंकि आगे स्थितिसमुदाहार में प्रत्येक स्थिति के आश्रय से अध्यवसानस्थानों के प्रमाण की प्ररूपणा की जाएगी।

जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों की अव्वोगाढ स्वरूप से प्रमाणप्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मों की प्रमाणप्ररूपणा भी करना चाहिये।

इस प्रकार प्रमाणानुगम नामका अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

अब कर्मों के स्थिति बंध अध्यवसान के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार के अनुसार आयुकर्म के स्थितिबंधाध्यवसान सबसे स्तोक हैं।।२४२।।

नाम व गोत्र के स्थितिबंधाध्यवसानस्थान दोनों ही तुल्य असंख्यातगुणे हैं।।२४३।।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय इन चारों ही कर्मों के स्थितिबंधस्थान तुल्य असंख्यातगुणे हैं।।२४४।।

मोहनीय के स्थितिबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**आयुःकर्मणः स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि सर्वस्तोकानि भवन्ति, चतुर्णामायुषां सर्वोदयविकल्पग्रहणात्।**

अत्र कश्चिदाह—

कषायोदयस्थानेषु उच्चित्य गृहीताध्यवसानस्थानानामायुर्बंधप्रायोग्यानां प्ररूपणा किन्न क्रियते ?

आचार्यदेवः प्राह—

नैतद् वक्तव्यं, स्वकस्थितिबंधस्थानहेतुभूतसोदयस्थानानां प्ररूपणायाः अन्यप्रकृति-उदयस्थानैः प्रयोजनाभावात्।

नाम-गोत्रयोः स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि द्वौ अपि तुल्यौ असंख्यातगुणौ स्तः।

कुत एतत् ? स्वाभाविकत्वात्।

नामगोत्रयोरुदयस्येव आयुःकर्मोदयस्य संसारावस्थायां सर्वत्र संभवे सति स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानां स्तोकत्वं कुतो ज्ञायते ?

स्थितिबंधस्थानानां स्तोकत्वात्। स्थितिबंधस्थानानां प्रधानत्वे इष्यमाणे गुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातभागो भवति।

कश्चिदाह—

भवतु नाम, असंख्यातलोकमात्रश्चैवेति गुणकारे अस्माकं प्रमाणनियमाभावात्। नाम-गोत्राध्यवसान-

---

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—आयुकर्म के स्थितिबंध अध्यवसायस्थान सबसे कम होते हैं, क्योंकि चारों आयुकर्मों के सभी उदयविकल्पों का यहाँ ग्रहण किया गया है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

कषायोदय स्थानों में से चुनकर ग्रहण किये गये आयुबंध के योग्य अध्यवसानस्थानों की प्ररूपणा यहाँ क्यों नहीं की जाती है ?

आचार्यदेव समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि अपने स्थितिबंधस्थानों के हेतुभूत अपने उदयस्थानों की प्ररूपणा में दूसरी प्रकृतियों के उदयस्थानों से कोई प्रयोजन नहीं है।

नाम व गोत्र के स्थितिबंध अध्यवसानस्थान दोनों ही एक सदृश असंख्यातगुणे हैं।

ऐसा कैसे है ? क्योंकि ऐसा स्वभाव से है।

शंका—जिस प्रकार संसार अवस्था में नाम व गोत्र का उदय सर्वत्र सम्भव है, उसी प्रकार आयु के उदय की भी सर्वत्र सम्भावना होने पर उसके स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों की स्तोकता—अल्पता कहाँ से जानी जाती है ?

समाधान—चूँकि उसके स्थितिबंधस्थान स्तोक हैं, अतः इसी से उसके स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों की स्तोकता का भी परिज्ञान हो जाता है।

स्थितिबंधस्थानों की प्रधानता के अभीष्ट होने पर गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

यदि पल्योपम का असंख्यातवां भाग गुणकार है, तो होवे, क्योंकि असंख्यात लोक मात्र ही गुणकार

स्थानानां कथं तुल्यत्वम् ?

आचार्यः प्राह—

नैतत्, स्थितिबंधस्थानानां समानत्वेन तत्तुल्यत्वावगमात्।

ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीयान्तरायाणां स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि चत्वार्यपि तुल्यानि असंख्यातगुणानि सन्ति।

कश्चिदाह—

चत्वार्यपि इमानि कर्माणि मिथ्यात्वासंयमकषायप्रत्ययैः नामगोत्राभ्यां सदृशानि। तेन नामगोत्रयोरध्यवसानेभ्यश्चतुर्णां कर्मणामध्यवसानस्थानानि असंख्यातगुणानीति न घटते।

नामगोत्रयोः स्थितिबंधस्थानेभ्यश्चतुर्णां कर्मणां स्थितिबंधस्थानानि विशेषाधिकानि इति असंख्यातगुणत्वं न युज्यते। अधस्तनद्वित्रिभागस्थितिबंधस्थानप्रायोग्यकषायेभ्यः उपरिमत्रिभागस्थितिबंधस्थानप्रायोग्यकषायोदयस्थानानां असमानानामनुपलंभेन असंख्यातगुणत्वानुपपत्तेः ?

आचार्यदेवः प्राह—

नैष दोषः, नामगोत्रयोरुदयस्थानेभ्यश्चतुर्णां कर्मणामुदयस्थानबहुत्वेन असंख्यातगुणत्वाविरोधात्।

पुनः कश्चिदाशंकते—

होता है, ऐसा हमारे पास उसके प्रमाण का कोई नियम नहीं है। किन्तु नाम व गोत्र के स्थितिबंधस्थानों की परस्पर समानता कैसी है?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं है, क्योंकि स्थितिबंधस्थानों की समानता से उसकी समानता भी निश्चित है।

ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय और अंतराय इन चारों ही कर्मों के स्थितिबंध अध्यवसानस्थान तुल्य व असंख्यातगुणे हैं।

यहाँ कोई प्रश्न करता है—

चारों ही कर्म मिथ्यात्व, असंयम और कषायरूप प्रत्ययों की अपेक्षा चूँकि नाम और गोत्र के समान हैं इसी कारण नाम और गोत्र के अध्यवसानस्थानों की अपेक्षा चारों कर्मों के अध्यवसानस्थानों को असंख्यातगुणा बतलाना संगत नहीं है ।

नाम गोत्र के स्थितिबंधस्थानों की अपेक्षा चार कर्मों के स्थितिबंधस्थान चूँकि विशेष अधिक हैं, इसलिये भी उनके स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों को असंख्यातगुणा बतलाना उचित नहीं।

इसके अतिरिक्त चूँकि नीचे के दो त्रिभाग मात्र स्थितिबंधस्थानों के योग्य कषायोदयस्थानों की अपेक्षा ऊपर के एक त्रिभाग मात्र स्थितिबंधस्थानों के योग्य कषायोदयस्थानों के असमान न पाये जाने से भी उनका असंख्यातगुणत्व घटित नहीं होता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि नाम और गोत्र के उदयस्थानों की अपेक्षा चार कर्मों के उदयस्थानों के बहुत होने से उसके असंख्यातगुणे होने से कोई विरोध नहीं है।

पुनः कोई शंका करता है कि—

कथं चतुर्णां कर्मणां प्रकृति-अध्यवसानानां अन्योन्यं समानत्वमिति चेत् ?

आचार्यः समाधत्ते —

नैतत्, स्वोदयादिविकल्पैस्तेषां भेदाभावात्।

मोहनीयस्य स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि असंख्यातगुणानि।

अत्र को गुणकारः ?

पल्योपमस्यासंख्यातभागः।

कुतः ?

चतुर्णां कर्मणां उदयस्थानेभ्यो मोहनीयस्य उदयस्थानानामसंख्यातगुणत्वात्।

तात्पर्यमत्र — कर्मणां प्रकृति — स्वभावं ज्ञात्वा स्वस्वभावप्राप्त्यर्थं कर्मप्रकृतिभ्यो भिन्नं स्वात्मानं एवं अनुभविष्याम इति प्रतिज्ञा कर्तव्या।

एवं तृतीयस्थले प्रकृतिसमुदाहारप्रतिपादनत्वेन सप्तसूत्राणि गतानि।

एवं प्रकृतिसमुदाहारः समाप्तः।

अथ स्थितिसमुदाहारे त्रीणि अन्तरस्थलानि कथितानि। प्रथमेऽन्तरस्थले भेदकथनपूर्वकप्रगणनाकथनार्थं त्रयोविंशतिसूत्राणि। ततो द्वितीयेऽन्तरस्थले अनुकृष्टिप्रतिपादनार्थं त्रीणि सूत्राणि। पुनश्च तृतीयेऽन्तरस्थले तीव्रमन्दताकथनार्थं अष्टौ सूत्राणि, इति लघुसमुदायपातनिका कथिता।

अधुना स्थितिसमुदाहारभेदनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

चार कर्मों के प्रकृतिअध्यवसानस्थानों की परस्पर समानता कैसी है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं कि —

ऐसा नहीं है, क्योंकि स्वोदयादिक विकल्पों की अपेक्षा उनमें कोई भेद नहीं है।

मोहनीयकर्म के स्थितिबंध अध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।

यहाँ गुणकार क्या है ?

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

कैसे ?

क्योंकि चार कर्मों के उदयस्थानों की अपेक्षा मोहनीय के उदयस्थान असंख्यातगुणे हैं।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — कर्मों की प्रकृति — उनका स्वभाव जानकर अपने आत्मस्वभाव को प्राप्त करने हेतु मैं अपने आत्मा को कर्म प्रकृतियों से भिन्न अनुभव करूँ ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में प्रकृतिसमुदाहार का प्रतिपादन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार प्रकृति समुदाहार समाप्त हुआ।

अब यहाँ स्थिति समुदाहार में तीन अंतरस्थल कहे हैं। प्रथम अन्तरस्थल में भेद कथनपूर्वक प्रगणना का कथन करने हेतु तेईस सूत्र हैं। आगे द्वितीय अंतरस्थल में अनुकृष्टि का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र कहे हैं। पुनश्च तृतीय अन्तरस्थल में तीव्रता और मन्दता का कथन करने वाले आठ सूत्र हैं, यह सूत्रों की लघु समुदायपातनिका हुई है।

अब स्थिति समुदाहार के भेदों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

ट्ठिदिसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुओगद्दाराणि पगणणा अणुकट्ठी तिव्व-मंददा त्ति।।२४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र प्रगणना नाम इदमनुयोगद्वारं अस्या अस्याः स्थितेः बंधकारणभूतानि स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि एतावन्ति एतावन्ति भवन्तीति स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानां प्रमाणं प्ररूपयति। अत्र पुनः अनुकृष्टिर्नामानुयोगद्वारं स्थितिं प्रति स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानां समानत्वमसमानत्वं च प्ररूपयति। तीव्र-मंदता नामानुयोगद्वारं तेषां जघन्योत्कृष्टपरिणामानामविभागप्रतिच्छेदानामल्पबहुत्वं प्ररूपयति।**

अत्र त्रीण्येवानुयोगद्वाराणि किमर्थं प्ररूपितानि इति चेत् ?

नैतद् वक्तव्यं, किं च चतुर्थाद्यनुयोगद्वाराणां संभवाभावात्।

अत्र तावत्प्रगणनानुयोगद्वारे ज्ञानावरणस्य जघन्यद्वितीयतृतीयस्थितीनां अध्यवसायस्थाननिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

पगणणाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।।२४७।।

बिदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।।२४८।।

तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।।२४९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**जघन्यस्थितिर्नाम ध्रुवस्थितिरस्ति, तस्या अधस्तने स्थितिबंधाभावात्। तत्र**

सूत्रार्थ—

अब स्थितिसमुदाहार का अधिकार है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं—प्रगणना, अनुकृष्टि और तीव्रमन्दता।।२४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इनमें प्रगणना नामक अनुयोगद्वार अमुक-अमुक स्थिति के बंध के कारणभूत स्थिति बंधाध्यवसानस्थान इतने-इतने होते हैं, इस प्रकार स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों के प्रमाण की प्ररूपणा करता है। अनुकृष्टि अनुयोगद्वार प्रत्येक स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों की समानता व असमानता को बतलाता है। तीव्रमन्दता अनुयोगद्वार उनके जघन्य व उत्कृष्ट परिणामों के अविभाग प्रतिच्छेदों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करता है।

शंका—यहाँ तीन ही अनुयोगद्वार किसलिये कहे गये हैं?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि चतुर्थादिक अन्य अनुयोगद्वारों की सम्भावना का अभाव है।

अब उस प्रगणनानुयोगद्वार में ज्ञानावरण की जघन्य द्वितीय-तृतीय स्थितियों के अध्यवसानस्थानों का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

प्रगणना अनुयोगद्वार का अधिकार है। ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं।।२४७।।

द्वितीय स्थिति में स्थितिबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं।।२४८।।

तृतीय स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं।।२४९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जघन्य स्थिति का अर्थ ध्रुवस्थिति है, क्योंकि उसके नीचे स्थितिबंध का

स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि अनंतभागवृद्धि-असंख्यातभागवृद्धि-संख्यातभागवृद्धि-संख्यातगुणवृद्धि-असंख्यातगुणवृद्धि-अनंतगुणवृद्धिभिर्निष्पन्नासंख्यातलोकमात्र-षट्स्थानानि भवन्ति।

अत्र कश्चिदाह —

एकस्मिन् जघन्यस्थितिबंधाध्यवसानस्थानेऽनन्तस्य सर्वराशेर्भागहारः कथं क्रियते ?

अत्र आचार्यः ब्रवीति —

नैतद् वक्तव्यं, जघन्यस्थितिबंधाध्यवसानेऽपि अनंतसर्वजीवराशिमात्राविभागप्रतिच्छेदोपलंभात्।

'बिदियाए ट्ठिदीए' इत्युक्ते एकसमयाधिक ध्रुवस्थितिर्गृहीतव्या।

अत्र कश्चिदाशंकते —

कथं तस्या द्वितीयत्वं ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद्, किंच, ध्रुवस्थितेः एकसमयोत्तरस्थितेः पृथक्त्वोपलंभात्। तस्याः स्थितेः बंधप्रायोग्याध्यवसानस्थानानि असंख्यलोकमात्रषट्स्थानानि भवन्तीति भणितं भवति।

तृतीयस्थितेः स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्यातलोकप्रमाणाणि भवंति।

अनन्तभागवृद्धेः अंगुलस्य असंख्यातभागमात्राध्वानं गत्वा सकृत् असंख्यातभागवृद्धिर्भवति। पुनरपि तावन्मात्रमेव अनंतभागवृद्धेरध्वानं गत्वा द्वितीयासंख्यातभागवृद्धिर्भवति।

अभाव है उसमें स्थितिबंधाध्यवसानस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं। वे अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि, इन छह वृद्धियों से उत्पन्न असंख्यात लोक मात्र छह स्थानों से संयुक्त होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

अनन्त सर्व जीवराशि को एक जघन्य स्थितिबंधाध्यवसानस्थान का भागहार कैसे किया जा रहा है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि एक जघन्य स्थितिबंधाध्यवसान में भी अनन्त सर्व जीवराशि प्रमाण अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं।

"द्वितीयस्थिति में" ऐसा कहने पर एक समय अधिक अवस्थिति का ग्रहण करना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

इसको द्वितीय स्थिति कहना कैसे उचित है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

ऐसा नहीं है, क्योंकि ध्रुवस्थिति से एक समय अधिक स्थिति पृथक् पायी जाती है।

उक्त स्थिति के बंध के योग्य अध्यवसानस्थान असंख्यात लोकमात्र छह स्थानों से संयुक्त होते हैं, यह अभिप्राय है।

तृतीय स्थिति के स्थितिबंध अध्यवसायस्थान असंख्यातलोक प्रमाण होते हैं।

अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र अनन्तभागवृद्धि के स्थानों के बीतने पर एक बार असंख्यात भागवृद्धि होती है। फिर से भी उतना ही अनन्तभागवृद्धि का अध्वान जाकर द्वितीय असंख्यातभागवृद्धि होती है।

एवं कांडकमात्रासंख्यातभागवृद्धीः काण्डकवर्ग-काण्डकमात्रानन्तभागवृद्धीश्च गत्वा सकृत् संख्यातभागवृद्धिर्भवति। पुनरप्येतावन्मात्रमेवाध्वानं पूर्वविधानेन गत्वा द्वितीया संख्यातभागवृद्धिर्भवति। एवमेतेन विधानेन काण्डकमात्रसंख्यातभागवृद्धिषु गतासु समयाविरोधेन सकृत् संख्यातगुणवृद्धिर्भवति। एतेन क्रमेण काण्डकमात्रसंख्यातगुणवृद्धिषु गतासु सकृत् असंख्यातगुणवृद्धिर्भवति।

पुनः समयाविरोधेन काण्डकमात्रासंख्यातगुणवृद्धिषु गतासु सकृत् अनन्तगुणवृद्धिर्भवति। एतत्सर्वमपि एकं षट्स्थानमिति भण्यते। एतादृशानि असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानानि गृहीत्वा तृतीयायाः स्थितेः स्थिति-बंधाध्यवसानस्थानानि भवन्ति।

अधुना उत्कृष्टस्थितिपर्यन्तव्यवस्थां व्यवस्थापयता सूरिवर्येण सूत्रमवतार्यते —

एवमसंखेज्जा लोगा असंखेज्जा लोगा जाव उक्कस्सट्ठिदि त्ति।।२५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यथा पूर्वोक्तानां तिसृणां स्थितीनां अध्यवसानस्थानानि प्रमाणेन असंख्यातलोक-मात्राणि तथा उपरिमसर्वस्थितीनामपि स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानां प्रमाणं भवति इति ज्ञापनार्थं 'एवं' इति निर्देशः कृतः।**

एवं शेषकर्मणामध्यवसाननिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं सत्तण्हं कम्माणं।।२५१।।

इस प्रकार से काण्डक प्रमाण असंख्यातभागवृद्धियों , काण्डक वर्ग और काण्डक प्रमाण अनन्तभागवृद्धियों के बीतने पर एक बार संख्यातभागवृद्धि होती है। फिर से भी पूर्वोक्त रीति से इतने मात्र स्थान जाकर द्वितीय संख्यातभागवृद्धि होती है। इस प्रकार इस रीति से काण्डक प्रमाण संख्यातभागवृद्धियों के बीतने पर आगम से अविरुद्ध एक बार संख्यातगुणवृद्धि होती है। इस क्रम के काण्डक प्रमाण संख्यातगुणवृद्धियों के बीत जाने पर एक बार असंख्यातगुणवृद्धि होती है।

पश्चात् आगम के अविरोध से काण्डक प्रमाण असंख्यातगुणवृद्धियों के बीतने पर एक बार अनन्तगुणवृद्धि होती है। यह सभी एक षट्स्थान कहा जाता है। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण षट्स्थान ग्रहण करके तृतीय स्थितिबंध अध्यवसानस्थान होते हैं।

अब उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त व्यवस्था को व्यवस्थापित करते हुए आचार्यवर्य सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक असंख्यातलोक-असंख्यातलोकप्रमाण स्थितिबंधाध्यवसानस्थान होते हैं।।२५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार पूर्वोक्त तीन स्थितियों के अध्यवसानस्थान प्रमाण से असंख्यात लोक मात्र हैं, उसी प्रकार आगे की सब स्थितियों के भी स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों का प्रमाण होता है, यह बतलाने के लिए सूत्र में 'एवं' पद का निर्देश किया गया है।

अब शेष कर्मों के अध्यवसान का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार सात कर्मों के स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों की प्ररूपणा करना चाहिये।।२५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यथा ज्ञानावरणीयस्य स्थितिं प्रति स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानां प्ररूपणा कृता तथा शेषसप्तानामपि कर्मणां प्ररूपयितव्यं, असंख्यातलोकप्रमाणत्वं प्रति भेदाभावात्।**

एवं प्रमाणप्ररूपणा कृता।

अत्र कश्चिदाशंकते—

अस्मिन् प्रकरणे सत्प्ररूपणा किन्न प्ररूपिता ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

न प्ररूपिता, तस्याः प्रमाणान्तर्भावात्।

कुत एतत् ?

प्रमाणेन विना सत्त्वानुपपत्तेः।

संप्रति पूर्वोक्तस्थानानां श्रेणिप्ररूपणाभेदप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तेसिं दुविधा सेडिपरूवणा अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा।।२५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यत्र निरंतरं स्तोकबहुत्वपरीक्षा क्रियते सा अनन्तरोपनिधा। यत्र द्विगुण-चतुर्गुणादिपरीक्षा क्रियते सा परम्परोपनिधा कथ्यते। एवं श्रेणिप्ररूपणा द्विविधा एव, तृतीयादिप्रकारासंभवात्।**

अत्र संदृष्टिः बालजनबुद्धि विकसितार्थं स्थापयितव्या—

१६।२०।२४।२८।३२।४०।४८।५६।६४।८०।९६।११२।१२८।१६०।१९२।२२४।२५६।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म की प्रत्येक स्थितिसंबंधी स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों के प्रमाण की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार शेष सात कर्मों की भी स्थितियों के स्थितिबंध अध्यवसानस्थानों की प्ररूपणा करना चाहिए क्योंकि उनमें असंख्यातलोकप्रमाण की अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

इस प्रकार प्रमाण प्ररूपणा की गई है।

यहाँ कोई शंका करता है—

इस प्रकरण में सत्प्ररूपणा को क्यों नहीं प्ररूपित किया है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं—

नहीं प्ररूपित किया है, क्योंकि उसका प्रमाण अनुयोगद्वार में अन्तर्भाव हो जाता है। ऐसा क्यों है ? कारण कि प्रमाण के बिना सत्व घटित ही नहीं होता है।

अब पूर्वोक्त स्थानों की श्रेणीप्ररूपणा के भेद बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उक्त स्थानों की श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकार की है—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा।।२५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जहाँ पर निरन्तर अल्पबहुत्व की परीक्षा की जाती है वह अनन्तरोपनिधा कही जाती है। जहाँ पर दुगुणत्व और चतुर्गुणत्व आदि की परीक्षा की जाती है वह परम्परोपनिधा कहलाती है। इस प्रकार श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकार की ही है, क्योंकि और तृतीयादि प्रकारों की सम्भावना नहीं है। यहाँ पर अज्ञानीजनों की बुद्धि को विकसित करने के लिये संदृष्टि की स्थापना करना चाहिए।

१६।२०।२४।२८।३२।४०।४८।५६।६४।८०।९६।११२।१२८।१६०।१९२।२२४।२५६।

संप्रति ज्ञानावरणादिकर्मणामल्पबहुत्वनिरूपणार्थं नवसूत्राण्यवतार्यन्ते —

अणंतरोवणिधाए णाणावरणीयस्य जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झव-साणट्ठाणाणि थोवाणि।।२५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**केभ्यः स्तोकानीति पृष्टे सति उपरिमस्थितिबंधाध्यवसानस्थानेभ्य इति ज्ञातव्यम्। कथमेतज्ज्ञायते ?**

अधस्तने स्थितिबंधस्थानाभावेन स्थितिबंधाध्यवसानस्थानाभावात्।

बिदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि।।२५४।।

कियन्मात्रेणाधिकानि इति पृष्टे असंख्यातलोकमात्रेणेति ज्ञातव्यं भवति।

जघन्यस्थिति-अध्यवसानस्थानानां विशेषागमनार्थं को भागहारः?

पल्योपमस्य असंख्यातभागः, एकगुणहान्यध्वानमिति उक्तं भवति। सदृष्ट्यां अत्र गुणहानिप्रमाणं चत्वारि (४)। एतानि विरलय्य जघन्यस्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि षोडश समखण्डं कृत्वा दत्ते विरलनरूपं प्रति एकैकप्रक्षेपप्रमाणं प्राप्नोति। अत्रैकप्रक्षेपं गृहीत्वा जघन्यस्थितिबंधाध्यवसानस्थानेषु प्रक्षिप्ते द्वितीयस्थिति-बंधाध्यवसानस्थानानि भवन्तीति गृहीतव्यम्।

अब ज्ञानावरणादि कर्मों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु नौ सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

अनन्तरोपनिधा की अपेक्षा ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति के स्थितिबंधाध्य-वसानस्थान स्तोक हैं।।२५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—किनसे स्तोक हैं ? ऐसा पूछने पर वे उपरिम स्थिति वाले अध्यवसान से स्तोक हैं ऐसा जानना चाहिए।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—चूँकि नीचे स्थितिबंधस्थानों के न होने से स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों का अभाव है।

सूत्रार्थ—

द्वितीय स्थिति के स्थितिबंधाध्यावसानस्थान विशेष अधिक हैं।।२५४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कितने मात्र से अधिक हैं ? ऐसा पूछने पर असंख्यात लोक मात्र से अधिक हैं यह जानना चाहिए।

शंका—जघन्य स्थिति के अध्यवसानस्थानों के विशेष को लाने के लिए भागहार क्या है ?

समाधान—भागहार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है। अभिप्राय यह है कि एकगुणहानिअध्वान भागहार है।

यहाँ संदृष्टि में गुणहानि का प्रमाण चार (४) है। इसका विरलन करके जघन्य स्थिति के स्थिति-बन्धाध्यवसानस्थानों के प्रमाण सोलह को समखण्ड करके देने पर एक-एक विरलन रूप के ऊपर एक प्रक्षेप का प्रमाण प्राप्त होता है। यहाँ एक प्रक्षेप को ग्रहण करके जघन्य स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों में मिलाने पर द्वितीय स्थिति के स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानों का प्रमाण होता है, ऐसा जानना चाहिए।

तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि।।२५५।।

अत्रापि एकप्रक्षेपमात्रेण विशेषाधिकानि। अत्र यावत्प्रथमगुणहानिचरमसमय इति अवस्थितः प्रक्षेपः। वर्द्धितैकैकप्रक्षेपानां स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानामेकैकरूपाधिकगुणहानिभागहारोपलंभात्।

एवं विसेसाहियाणि विसेसाहियाणि जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।।२५६।।

एवं सर्वस्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि अनन्तरानन्तरेण विशेषाधिकक्रमेण गच्छन्ति यावदुत्कृष्टस्थिति-बंधाध्यवसानमिति। नवरि गुणहानिं प्रति प्रक्षेपो द्विगुण-द्विगुणो भवति, द्विगुण-द्विगुणक्रमेण स्थितिगुणहानि-चरमस्थितिबंधाध्यवसानस्थानानामवस्थितैकगुणहानिभागहारदर्शनात्।

एवं छण्णं कम्माणं।।२५७।।

यथा ज्ञानावरणीयस्य अनन्तरोपनिधा प्ररूपिता तथा षण्णां कर्मणां आयुर्वर्जितानां प्ररूपयितव्या, विशेषाधिकत्वं प्रति भेदाभावात्।

आउअस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि थोवाणि।।२५८।।

आयुषोऽसंख्यातलोकमात्रस्थितिबंधाध्यवसानस्थानानामसंख्यातभागमात्राणां चैव जघन्य-स्थितिप्रायोग्यत्वात्।

सूत्रार्थ—

तृतीय स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानस्थान विशेष अधिक हैं।।२५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ भी एक प्रक्षेपमात्र से वे विशेष अधिक हैं। यहाँ प्रथम गुणहानि के अंतिम समय तक अवस्थित प्रक्षेप हैं, क्योंकि एक प्रक्षेप से वृद्धि को प्राप्त हुए स्थितबंधाध्यवसानस्थानों का उत्तरोत्तर एक-एक अंक से अधिक गुणहानि भागहार पाया जाता है।

सूत्रार्थ—

इस प्रकार वे उत्कृष्ट स्थिति तक विशेष अधिक-विशेष अधिक हैं।।२५६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस प्रकार सब स्थितियों के अध्यवसानस्थान अनन्तर-अनन्तर क्रम से उत्कृष्ट स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों तक उत्तरोत्तर विशेष अधिक होते गये हैं। विशेष इतना है कि प्रक्षेप प्रत्येक गुणहानि के अनुसार दूना-दूना होता गया है। कारण कि दूने-दूने से स्थित गुणहानियों में अंतिम स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानों का अवस्थित एक गुणहानि भागहार देखा जाता है।

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार छह कर्मों की अनन्तरोपनिधा की प्ररूपणा करना चाहिए।।२५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जैसे ज्ञानावरणीय कर्म की अनन्तरोपनिधा की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार आयु को छोड़कर शेष छह कर्मों की अनन्तरोपनिधा की प्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि उसमें विशेष अधिकता की अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

सूत्रार्थ—

आयु कर्म की जघन्य स्थिति में स्थिति बंधाध्यवसानस्थान स्तोक हैं।।२५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि आयुकर्म के असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों

बिदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाण ट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।२५९।।

अत्र गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागः। जघन्यस्थितिबंधकारणात् समयोत्तरस्थितिबंधकारणानां बहुत्वोपलंभात्।

तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२६०।।

अत्र गुणकार आवलिकाया असंख्यातभागः। कारणं पूर्वमेव वक्तव्यं।

एवमसंखेज्जगुणाणि असंखेज्जगुणाणि जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।।२६१।।

एवं स्थितिं प्रति स्थितिं प्रति आवलिकाया असंख्यातभागगुणकारेण सर्वस्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि नेतव्यानि यावदुत्कृष्टस्थितिरिति।

एवमनन्तरोपनिधा समाप्ता।

अधुना परंपरोपनिधापेक्षया ज्ञानावरणीयकर्मणां बंधाध्यवसानस्थानानां वृद्धिनिरूपणार्थं सूत्रषट्कम-वतार्यते —

में उनके असंख्यातवें भाग मात्र ही जघन्य स्थिति के योग्य हैं।

सूत्रार्थ—

द्वितीय स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवां भाग है, क्योंकि जघन्य स्थितिबंध के कारणों की अपेक्षा एक-एक समय अधिक स्थितिबंध के कारण बहुत पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ—

तृतीय स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२६०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवां भाग है। इसके कारण का कथन पहिले के ही समान करना चाहिए।

सूत्रार्थ—

इस प्रकार वे उत्कृष्ट स्थिति तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे होते गये हैं।।२६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक एक-एक स्थिति के प्रति सब स्थिति-बंधाध्यवसानस्थानों की आवलि के असंख्यातवें भाग गुणकार से ले जाना चाहिये।

इस प्रकार अनन्तरोपनिधा समाप्त हुई।

अब परंपरोपनिधा की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्मों के बंध अध्यवसानस्थानों की वृद्धि का निरूपण करने हेतु छह सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

पंरपरोवणिधाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झव-साणट्ठाणेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागं गंतूण दुगुण-वड्ढिदा।।२६२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **विरलनमात्रप्रक्षेपेषु जघन्यस्थितिबंधाध्यवसानस्थानेषु वर्द्धितेषु द्विगुणाध्य-वसानस्थानसमुत्पत्तेः।**

एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।।२६३।।

एवमवस्थितमियन्तमध्वानं गत्वा सर्वाः द्विगुणवृद्धीः उत्पद्यन्ते इति वक्तव्यं।

एवं ट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्ज-दिभागो।।२६४।।

नानागुणहानिशलाकाभिः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राभिः संख्यातपल्योपमेषु भागे हृते असंख्यात-पल्योपमप्रथमवर्गमूलोपलंभात्। एवमेतेन सूत्रेण एकगुणहानि-अध्वान प्रमाणं प्ररूपितं।

नानागुणहानिशलाकानां प्रमाणप्ररूपणार्थमुत्तरसूत्रं भण्यते —

णाणाट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि अंगुलवग्गमूल-छेदणाणामसंखेज्जदिभागो।।२६५।।

सूत्रार्थ —

परम्परोपनिधा की अपेक्षा ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों की अपेक्षा उनसे पल्योपम के असंख्यातवें भाग जाकर के दुगुणी वृद्धि को प्राप्त हैं।।२६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इसका कारण यह है कि जघन्य स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों में विरलन राशि के बराबर प्रक्षेपों की वृद्धि के होने पर दुगुणे अध्यवसानस्थानों की उत्पत्ति होती है।

सूत्रार्थ —

इस प्रकार के उत्कृष्ट स्थिति तक दुगुणी-दुगुणी वृद्धि को प्राप्त हुए हैं।।२६३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इस प्रकार इतना मात्र अध्वान जाकर सब दुगुणवृद्धियां उत्पन्न होती हैं, ऐसा कहना चाहिये।

सूत्रार्थ —

एक स्थितिसम्बन्धी अध्यवसानों के दुगुण-दुगुणवृद्धि-हानिस्थानों के अन्तर पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।२६४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र नानागुणहानिशलाकाओं का संख्यात पल्योपमों में भाग देने पर पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूल लब्ध होते हैं। इस प्रकार इस सूत्र के द्वारा एक गुणहानि अध्वान के प्रमाण की प्ररूपणा की गई है।

नानागुणहानिशलाकाओं के प्रमाण की प्ररूपणा के लिए आगे का सूत्र कहते हैं।

सूत्रार्थ —

नानास्थितिबंधाध्यवसानों सम्बन्धी दुगुण-दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर अंगुलसम्बन्धी वर्गमूल के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।२६५।।

अंगुलवग्गमूलमिति कथिते सूच्यंगुलप्रथमवर्गमूलं गृहीतव्यं। तस्यार्द्धच्छेदनानां असंख्यातभागमात्रा नानागुणहानिशलाका भवन्ति। भवन्त्योऽपि मोहनीयस्थितिप्रदेशनानागुणहानिशलाकाभ्यः स्तोकाः, ताः पल्योपमवर्गमूलस्य असंख्यातभागमात्राः इति प्रमाणमभणित्वा अंगुलवर्गमूलार्द्धच्छेदानां असंख्यातभाग इति प्ररूपितत्वात्। भवन्त्योऽपि असंख्यातगुणहीनाः पूर्वं विभज्यमानराशेः संप्रति विभज्यमानराशेः असंख्यातगुणहीनत्वात्।

णाणाट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि।।२६६।।

पल्योपमप्रथमवर्गमूलस्य असंख्यातभागप्रमाणत्वात्।

एयट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।।२६७।।

असंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमाणत्वात्।

कथमेतज्ज्ञायते ?

नानागुणहानिशलाकाभिः कर्मस्थितौ अपवर्तितायां एकगुणहानिप्रमाणोपलंभात्।

अधुना षट्कर्मणां परम्परोपनिधानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं छण्णं कम्माणमाउववज्जाणं।।२६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—"अंगुलवर्गमूल" ऐसा कहने पर सूची अंगुल के प्रथम वर्गमूल को ग्रहण करना चाहिए। उसके अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण नानागुणहानिशलाकायें होती हैं। इतनी होकर के भी मोहनीय कर्म के स्थितिप्रदेशों की नानागुणहानिशलाकाओं से स्तोक हैं, क्योंकि 'वे पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं' ऐसा उनका प्रमाण न बताकर 'वे अंगुल के वर्गमूलसंबंधी अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग हैं' ऐसी प्ररूपणा की गई है। क्योंकि असंख्यातगुणी हीन यानी स्तोक होती हुई भी पूर्व में विभज्यमान राशि से इस समय की विभज्यमान राशि असंख्यातगुणी हीन है।

सूत्रार्थ—

नानास्थितिबंधाध्यवसान दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं।।२६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वे पल्योपम संबंधी प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

सूत्रार्थ—

एक स्थितिबंधाध्यवसान दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।।२६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वह पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूलों के बराबर है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—चूंकि कर्मस्थिति में नानागुणहानिशलाकाओं का भाग देने पर एक गुणहानि का प्रमाण लब्ध होता है।

अब छह कर्मों की परम्परोपनिधा का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार आयु को छोड़कर छह कर्मों की प्ररूपणा करना चाहिये।।२६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यथा ज्ञानावरणीयस्य परम्परोपनिधा प्ररूपिता तथा षण्णां कर्मणां प्ररूपयितव्यं, विशेषाभावात्। आयुषः एषा प्ररूपणा नास्ति, स्थितिं प्रति असंख्यातगुणक्रमेण स्थितिबंधाध्य-वसानस्थानानां वृद्धिदर्शनात्।**

संप्रति श्रेणिप्ररूपणया सूचितानामवहार-भागाभाग-अल्पबहुत्वानां प्ररूपणा क्रियते। तद्यथा-

जघन्यायाः स्थितेः स्थितिबंधाध्यवसानस्थानप्रमाणेन सर्वस्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि कियता कालेन अपह्रियन्ते ?

असंख्यातद्वयर्धगुणहानिस्थानान्तरेण कालेन अपह्रियन्ते।

तद्यथा—उत्कृष्टस्थितिबंधाध्यवसानस्थानप्रमाणेन सर्वस्थितिबंधाध्यवसानेषु कृतेषु किञ्चिद्द्वयर्ध गुणहानिमात्रं भवति तत्र संदृष्ट्यां सर्वाध्यवसानस्थानप्रमाणमेतत् १५६०।

विशेषेण संदृष्टिव्यवस्था धवलाटीकायां द्रष्टव्यास्ति।

एवं षण्णां कर्मणां भागहारप्ररूपणा प्ररूपयितव्या। तथा आयुषोऽपि वक्तव्यं। विशेषेण जघन्यस्थित्य-ध्यवसानप्रमाणेन सर्वाध्यवसानस्थानानि असंख्यातलोकमात्रकालेन अवह्रियन्ते। तद्यथा—

आयुषोऽध्यवसानगुणकारोऽवस्थित इति केऽपि आचार्या भणन्ति। तेषामभिप्रायेण भागहार उच्यते-अन्तर्मुहूर्तोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि गच्छं कृत्वा ''अर्द्धे शून्यं रूपेषु गुणम्'' इति गणितन्यायेन यल्लब्धं तत्स्थापयित्वा ''रूपोनमादिसंगुणमेकोणगुणोन्मथितमिच्छा'' एतेन सूत्रेण रूपोनं कृत्वा असंख्यात-

---

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस तरह से ज्ञानावरणीयकर्म की परम्परोपनिधा की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार छह कर्मों की परम्परोपनिधा की भी प्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है। आयु कर्म के संबंध में यह प्ररूपणा लागू नहीं होती, क्योंकि उसके स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों के प्रत्येक स्थिति के अनुसार असंख्यातगुणित क्रम से वृद्धि देखी जाती है।

अब श्रेणिप्ररूपणा के द्वारा सूचित अवहार, भागाभाग और अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करते हैं।

वह इस प्रकार है—

प्रश्न—जघन्य स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों के प्रमाण से सब स्थितिबंधाध्यवसानस्थान कितने काल के द्वारा अपहृत होते हैं ?

उत्तर—उक्त प्रमाण से वे असंख्यात डेढ़ गुणहानिस्थानान्तर काल के द्वारा अपहृत होते हैं।

वह इस प्रकार है—

सब स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों को उत्कृष्ट स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों के प्रमाण से करने पर वे कुछ कम डेढ़ गुणहानि प्रमाण होते हैं। वहां संदृष्टि में सब अध्यवसानस्थानों का प्रमाण यह है-१५६०।

विशेषरूप से संदृष्टि व्यवस्था धवला टीका में देखना चाहिए।

इस प्रकार छह कर्मों के भागहार की प्ररूपणा करना चाहिये। इसी प्रकार आयुकर्म के भी भागहार की प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष इतना है कि सब अध्यवसानस्थान जघन्य स्थितिसंबंधी अध्यवसानस्थानों के प्रमाण के असंख्यात लोक मात्र काल के द्वारा अपहृत होते हैं। वह इस प्रकार है—

आयु कर्म के अध्यवसानों का गुणकार अवस्थित है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। उनके अभिप्राय से भागहार का कथन करते हैं—अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपमों को गच्छ करके ''अर्द्धे शून्यं रूपेषु गुणम्'' इस गणितन्यास से जो लब्ध हो उसको स्थापित करके '**रूपोनमादिसंगुणमेकोनगुणोन्मथितमिच्छा**'

लोकमात्रादिना गुणयित्वा रूपोनगुणकारेण आवलिकाया असंख्यातभागेन भागे हृते सर्वाध्यवसानप्रमाणं भवति। एतस्मिन् जघन्यस्थित्यध्यवसानप्रमाणेनापवर्तिते असंख्याता लोका लभ्यन्ते। तेन जघन्यस्थित्यध्यवसानप्रमाणेन अपह्रियमाणे सर्वाध्यवसानस्थानानि असंख्यातलोकमात्रकालेन अपह्रियन्ते। एवं उपरिमस्थित्यध्यवसानमपि असंख्यातलोकभागहारो वक्तव्यः। णवरि सर्वत्र एष एव भवतीति नियमो नास्ति, कुत्रापि घनलोक-जगत्प्रतर-श्रेणि-सागर-पल्य-आवलिका-तदसंख्यात-भागहारोपलंभात्। उत्कृष्टस्थित्यध्यवसानप्रमाणेन सर्वाध्यवसानानि सातिरेकैकरूपप्रमाणेन अपह्रियन्ते। अत्र कारणं ज्ञात्वा वक्तव्यं।

एवं भागहारप्ररूपणा समाप्ता।

जघन्यायाः स्थितेः अध्यवसानस्थानानि सर्वस्थित्यध्यवसानस्थानानां कियान् भागः ?

असंख्यातभागः।

कः प्रतिभागः ?

असंख्यातानि गुणहानिस्थानान्तराणि। एवं नेतव्यं यावदुत्कृष्टस्थित्यध्यवसानस्थानमिति।

एवं षण्णां कर्मणां ज्ञातव्यं। आयुषोऽपि वक्तव्यं एवमेव। नवरि उत्कृष्टस्थित्यध्यवसानस्थानानि सर्वाध्यवसानस्थानानामसंख्याता भागा भवन्ति।

एवं भागाभागप्ररूपणा समाप्ता।

इस सूत्र के अनुसार एक रूप कम करके असंख्यात लोक मात्र आदि से गुणित करके एक अंक से रहित आवलि के असंख्यातवें भाग मात्र गुणकार का भाग देने पर सब अध्यवसानों का प्रमाण होता है। इसमें जघन्य स्थिति के अध्यवसानों का जो प्रमाण हो उसका भाग देने पर असंख्यात लोक लब्ध होते हैं। इसी कारण जघन्य स्थिति के अध्यवसानों का जो प्रमाण है उससे सब अध्यवसानस्थानों को अपहृत करने पर वे असंख्यात लोक मात्र काल से अपहृत होते हैं। इसी प्रकार आगे की स्थितियों के भी अध्यवसानस्थानों का भागहार असंख्यात लोकमात्र कहना चाहिए। विशेष इतना है कि सभी जगह यही भागहार हो, ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि कहीं पर घनलोक, जगत्प्रतर, श्रेणि, सागर, पल्य, आवलि और उनके असंख्यातवें भाग मात्र भागहार पाया जाता है। उत्कृष्ट स्थिति के अध्यवसानस्थानों के प्रमाण से सब अध्यवसान साधिक एक रूप के प्रमाण से अपहृत होते हैं। यहाँ कारण जानकर कहना चाहिये।

इस प्रकार भागहार प्ररूपणा समाप्त हुई।

जघन्य स्थिति के अध्यवसानस्थान सब स्थितियों पर अध्यवसानस्थानों के कितनेवें भाग प्रमाण हैं ?

वे उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

प्रतिभाग क्या है ?

प्रतिभाग असंख्यात गुणहानि स्थानान्तर है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति के अध्यवसानस्थानों तक ले जाना चाहिये।

ऐसे ही छह कर्मों के संबंध में भागाभाग की प्ररूपणा जानना चाहिये।

आयु के विषय में भी इसी प्रकार ही कथन करना चाहिए। विशेष इतना है कि आयुकर्म के उत्कृष्ट स्थिति संबंधी अध्यवसान समस्त अध्यवसानस्थानों के असंख्यात बहुभाग प्रमाण होते हैं।

इस प्रकार भागाभागप्ररूपणा समाप्त हुई।

सर्वस्तोकानि ज्ञानावरणीयस्य जघन्यायाः स्थितेः स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि १६। उत्कृष्टस्थितेः स्थितिबंधाध्यवसानानि असंख्यातगुणानि।

को गुणकारः ?

अन्योन्याभ्यस्तराशिः१६।

अजघन्य-अनुत्कृष्टस्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि असंख्यातगुणानि।

को गुणकारः ?

किंचिन्न्यूनद्वयर्धगुणहानिप्रमाणम्।

एतेषामंकसंदृष्टिर्धवलाटीकायां द्रष्टव्यमस्ति।

आयुर्वर्जितानां षण्णां अपि कर्मणां एवं चैव वक्तव्यं। आयुषो जघन्यायाः स्थितेः स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि स्तोकानि।

अजघन्यानुत्कृष्टासु स्थितिषु स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि असंख्यातगुणानि।

को गुणकारः ?

असंख्याता लोकाः सन्ति। अनुत्कृष्टासु स्थितिषु स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि विशेषाधिकानि।

कियन्मात्रेण ?

जघन्यस्थिति-अध्यवसानमात्रेण। उत्कृष्टायाः स्थितेः स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि असंख्यातगुणानि।

को गुणकारः ?

आवलिकाया असंख्यातभागः। अजघन्यासु स्थितिषु स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि विशेषाधिकानि।

ज्ञानावरणीय की जघन्यस्थिति संबंधी स्थितिबंधाध्यवसानस्थान सबसे स्तोक हैं (१६)। उत्कृष्ट स्थितिसंबंधी स्थिति बंधाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।

प्रश्न—गुणकार क्या है?

उत्तर—गुणकार अन्योन्याभ्यस्त राशि है।। (१६)।।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थितिबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

उत्तर—गुणकार कुछ कम डेढ़ गुण हानियाँ हैं।

इनकी अंकसंदृष्टि धवला टीका में देखना चाहिए।

आयुकर्म को छोड़कर छह कर्मों के स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा इसी प्रकार से करना चाहिये। आयुकर्म की जघन्य स्थिति में स्थितिबंधाध्यवसानस्थान स्तोक हैं।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थितियों में स्थितिबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

उत्तर—गुणकार असंख्यात लोक हैं। अनुत्कृष्ट स्थितियों में स्थितिबंधाध्यवसानस्थान विशेष अधिक हैं।

प्रश्न—कितने मात्र से अधिक हैं ?

उत्तर—जघन्य स्थितिसंबंधी अध्यवसानस्थानों के प्रमाण से अधिक हैं। उत्कृष्ट स्थिति में स्थितिबंधाध्य-वसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

उत्तर—गुणकार आवलि का असंख्यातवां भाग है। अजघन्य स्थितियों में स्थितिबंधाध्यवसानस्थान

कियन्मात्रेण ?

अजघन्य-अनुत्कृष्टस्थितिबंधाध्यवसानस्थानमात्रेण।

सर्वासु स्थितिषु स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि विशेषाधिकानि।

कियन्मात्रेण ?

जघन्यस्थित्यध्यवसानस्थानमात्रेण विशेषाधिकानि सन्ति।

तात्पर्यमत्र—एतां प्रगणनां ज्ञात्वा स्वात्मगुणाः अनन्ताः इति निश्चित्य स्वसर्वगुणप्राप्त्यर्थं प्रयासो विधातव्यः।

एवं प्रथमेऽन्तरस्थले स्थितिसमुदाहारस्य प्रथमभेदप्रगणनाकथनत्वेन त्रयोविंशतिसूत्राणि गतानि।

एवं प्रगणना इति समाप्तमनियोगद्वारम्।

अनुकृष्ट्यापेक्षया स्थितिबंधाध्यवसायस्थाननिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अणुकट्ठीए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जाणि ट्ठिदि-बंधज्झवसाणट्ठाणाणि ताणि बिदियाए ट्ठिदीए बंधज्झवसाणट्ठाणाणि अपुव्वाणि।।२६९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतस्य सूत्रस्यार्थे भण्यमाणे संदृष्टिरूच्यते। तद्यथा—**

जघन्यस्थित्या विना उत्कृष्टस्थितिप्रमाणं सप्त ७। ध्रुवस्थितिप्रमाणं पंच ५। ध्रुवस्थित्या सह उत्कृष्टस्थिति-

---

विशेष अधिक हैं।

प्रश्न—कितने मात्र से अधिक है ?

उत्तर—अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितियों के अध्यवसानस्थानों के प्रमाण से वे अधिक हैं। सब स्थितियों के अध्यवसानस्थान विशेष अधिक हैं।

प्रश्न—कितने मात्र से अधिक हैं ?

उत्तर—जघन्य स्थितियों के अध्यवसानस्थानों के प्रमाण से वे अधिक हैं।

तात्पर्य यह है कि—इस प्रगणना को जानकर अपनी आत्मा के अनन्तगुण हैं ऐसा निश्चय करके निज के सर्व गुणों की प्राप्ति हेतु प्रयास करना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम अन्तरस्थल में स्थितिसमुदाहार के प्रथम भेदरूप प्रगणना का कथन करने वाले तेईस सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार प्रगणना अनियोगद्वार समाप्त हुआ।

अब अनुकृष्टि की अपेक्षा स्थितिबंध अध्यवसायस्थानों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अनुकृष्टि की अपेक्षा ज्ञानावरणीय की जघन्य स्थिति में जो स्थितिबंधाध्यवसानस्थान हैं, द्वितीय स्थिति में वे स्थितिबंधाध्यवसानस्थान हैं और अपूर्व स्थितिबंधाध्यवसानस्थान भी हैं।।२६९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र का अर्थ बतलाते समय संदृष्टि कही जाती है। वह इस प्रकार है—

जघन्य स्थिति के बिना उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण (७) है। ध्रुवस्थिति का प्रमाण पाँच (५) है।

प्रमाणं द्वादश१२।

पुनः एतस्याः समयरचनां कृत्वा ध्रुवस्थितिप्रभृति उपरिमसर्वस्थितिविशेषेषु सर्वाध्यवसानानामसंख्यातलोकमात्राणां तिर्यग्रचना कर्तव्या। एवं रचनां कृत्वा सर्वस्थितिविशेषस्थित्यध्यवसानस्थानानां निर्वर्गणाकाण्डकमात्रखण्डानि कर्तव्यानि।

किं प्रमाणं निर्वर्गणाकाण्डकम् ?

पल्योपमस्य असंख्यातभागः। संदृष्ट्यां तस्य प्रमाणं चत्वारि (४)।

एतानि खण्डानि किं समानि किं विषमानि ?

न भवन्ति समानि, किंतु विषमानि चैव।

कथमेतज्ज्ञायते ?

परमाचार्योपदेशात्। तद्यथा—प्रथमखण्डात् द्वितीयखंडं असंख्यातलोकमात्रेण विषेषाधिकं। द्वितीयखण्डात् तृतीयखंडं असंख्यातलोकमात्रेण विशेषाधिकं। तृतीयखण्डात् चतुर्थखण्डं विशेषाधिकम-संख्यातलोकमात्रेण। एवं नेतव्यं यावच्चरमखंडमिति। विशेषेण तु—प्रथमखण्डादपि चरमखण्डं विशेषाधिकं चैव।

कुतः ?

परमाचार्योपदेशाद् बाधानुपलंभाच्च।

अत्र संदृष्टिः धवलाटीकायां दृष्टव्योऽस्ति।

एवं स्थापयित्वा एतस्य सूत्रस्यार्थो निगद्यते—

ध्रुवस्थिति के साथ उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण बारह (१२) है।

इसके समय की रचना करके ध्रुवस्थिति को आदि लेकर आगे के सब स्थितिविशेषों में रहने वाले असंख्यात लोक प्रमाण सब अध्यवसानस्थानों की तिरछे रूप से रचना करना चाहिये। इस प्रकार रचना करके सब स्थितिविशेषों में स्थिति अध्यवसानस्थानों के निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण खण्ड करना चाहिये।

शंका—निर्वर्गणाकाण्डक का प्रमाण कितना है ?

समाधान—वह पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

संदृष्टि में उसका प्रमाण चार (४) है।

शंका—ये खण्ड क्या सम हैं, अथवा विषम हैं ?

समाधान—वे सम नहीं होते, विषम ही होते हैं।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह श्रेष्ठ आचार्यों के उपदेश से जाना जाता है। वह इस प्रकार है—

प्रथम खण्ड की अपेक्षा द्वितीय खण्ड असंख्यात लोक मात्र से विशेष अधिक है। द्वितीय खण्ड की अपेक्षा तृतीय खण्ड असंख्यात लोक मात्र से विशेष अधिक है। तृतीय खण्ड की अपेक्षा चतुर्थ खण्ड असंख्यात लोक प्रमाण से विशेष अधिक है। इस प्रकार अंतिम खण्ड तक ले जाना चाहिये। विशेष इतना है कि प्रथम खण्ड की अपेक्षा अंतिम भी विशेष अधिक ही हैं।

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—क्योंकि ऐसा ही उत्कृष्ट आचार्यों का उपदेश है, तथा उसमें कोई बाधा भी नहीं पायी जाती है।

यहाँ संदृष्टि धवला टीका से देखना चाहिए।

इस प्रकार स्थापित करके इस सूत्र का अर्थ कहते हैं—

ज्ञानावरणीयस्य जघन्यायां स्थितौ यानि स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि तानि च द्वितीयायां स्थितौ स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि भवन्ति, अपूर्वाणि च।

कथं अपूर्वाणां संभवः ?

न, द्वितीयस्थितेः स्थितिबंधाध्यवसानस्थानचरमखण्डाध्यवसान-स्थानानां ध्रुवस्थित्यध्यवसानेषु अभावात्। न च जघन्यस्थितिसर्वाध्यवसानानि द्वितीयस्थित्यध्यवसानस्थानेषु सन्ति, जघन्यस्थितिप्रथम-खण्डाध्यवसानस्थानानां द्वितीयस्थित्यध्यवसानस्थानेषु अनुपलंभात्। तृतीयायाः स्थितेः स्थितिबंधाध्य-वसानस्थानानि अपूर्वाणि, अत्रापि यानि द्वितीयायाः स्थितेः स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि तानि तृतीयायाः स्थितेः स्थितिबंधाध्यवसानस्थानेषु भवन्तीति न गृहीतव्यं, प्रथमखण्डाध्यवसानस्थानानां तृतीयस्थित्यध्य-वसानस्थानेषु अनुपलंभात्।

कथमेतज्ज्ञायते ?

तानि सर्वाणि भवन्तीति निर्देशाभावात्। अपूर्वाणीति कथिते ''अपूर्वाणि चैव'' वक्तव्यं, च शब्देन विना समुच्चयावगमाभावात्।

यद्येवं तर्हि सूत्रे च शब्दः किन्न प्ररूपितः ?

नैतत्, चशब्दनिर्देशेन विनापि तदर्थावगमात्।

अधुना अपूर्वस्थितिबंधाध्यवसानस्थानकालनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवमपुव्वाणि अपुव्वाणि जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।।२७०।।

ज्ञानावरणीय कर्म की जघन्य स्थिति में जो स्थितिबंधअध्यवसानस्थान हैं वे भी स्थितिबंधअध्यवसानस्थान द्वितीय स्थिति में हैं तथा अपूर्व भी स्थितिबंधाध्यवसानस्थान हैं।

शंका — अपूर्व स्थिति बंधाध्यवसानस्थानों की सम्भावना कैसे है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि द्वितीय स्थिति के स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों के अंतिम खण्ड सम्बन्धी अध्यवसानस्थान ध्रुवस्थिति के अध्यवसानस्थानों में नहीं हैं, तथा जघन्य स्थितिसंबंधी प्रथम खण्ड के अध्यवसानस्थान द्वितीय स्थिति के अध्यवसानस्थानों में नहीं पाये जाते हैं। तृतीय स्थिति के अध्यवसानस्थान अपूर्व हैं। यहाँ पर भी जो स्थितिबंधाध्यवसानस्थान द्वितीय स्थिति में हैं वे तृतीय स्थिति के अध्यवसानों में होते हैं, ऐसा नहीं ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि तृतीय स्थिति के प्रथम खण्ड संबंधी अध्यवसानस्थानों में नहीं पाये जाते हैं।

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — क्योंकि वे सभी होते हैं, ऐसा सूत्र में निर्देश नहीं किया गया है, इसी से उसका ज्ञान हो जाता है।

सूत्र में जो ''अपूर्व हैं'' ऐसा निर्देश किया है उससे 'अपूर्वाणि चैव' अर्थात् ''अपूर्व भी होते हैं'' ऐसा कथन करना चाहिए, क्योंकि च शब्द के बिना समुच्चय का ज्ञान नहीं होता है।

शंका — यदि ऐसा है तो सूत्र में च शब्द का निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि च शब्द के निर्देश के बिना भी उक्त अर्थ का ज्ञान हो जाता है।

अब अपूर्व स्थितिबंधअध्यवसानस्थान का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक अपूर्व-अपूर्व स्थितिबंधाध्यवसानस्थान होते हैं।।२७०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एवमुक्तविधानेन अपूर्वाणि अपूर्वाणि चैव स्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि सर्वस्थितिविशेषेषु भूत्वा गच्छन्ति यावदुत्कृष्टस्थितिरिति।**

कश्चिदाशंकते—

सर्वस्थितिविशेषेषु पूर्वस्थितिबंधाध्यवसानस्थानान्यपि सन्ति, तानि चाकथयित्वा अपूर्वाणि चैव सन्तीति किमर्थमुच्यते ?

आचार्यः समाधत्ते—

नैतत्, 'एवं' इति वचनात् चैव पूर्वाणामस्तित्वसिद्धेः।

पुनरप्याशंकते—

'एवं' वचनात् चैव पूर्वाणामिव अस्तित्वसिद्धौ सत्यां अपूर्वाणामपि निर्देशः किमर्थं कृतः ?

आचार्यदेवः समाधानं करोति—

नैतत्, अपूर्वपरिणामास्तित्वप्रयोजनत्वेन तत्प्रतिपादने दोषाभावात्।

जघन्यस्थितेः प्रथमखण्डमुपरि केनापि सदृशं न भवति। द्वितीयखण्डं समयोत्तरजघन्यस्थितेः प्रथमाध्यवसानखण्डेन सदृशं। तृतीयखण्डं द्विसमयोत्तरजघन्यस्थितेः प्रथमखण्डेन सदृशं। चतुर्थखण्डं त्रिसमयोत्तरजघन्यस्थितेः प्रथमखण्डेन सदृशं।

एवं नेतव्यं यावन्निर्वर्गणाकाण्डकचरमसमय इति। ततः उपरिमसमये जघन्यस्थित्यध्यवसानानामनुकृष्टि-

---

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस तरह उक्त विधान से अपूर्व-अपूर्व ही स्थितिबंधाध्यवसानस्थान सब स्थिति विशेषों में होकर उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होने तक होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है—

सब स्थिति विशेषों में जब पूर्व स्थितिबंधअध्यवसानस्थान भी हैं, तब उन्हें न कहकर 'अपूर्व ही हैं" ऐसे क्यों कहा जाता है ?

आचार्य देव इसका समाधान करते हैं—

ऐसा नहीं है, क्योंकि "एवं" अर्थात् "इसी प्रकार" ऐसा कहने से ही पूर्व स्थितिबंध अध्यवसानस्थानों का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

पुनः कोई शंका करता है—

यदि 'एवं' पद का निर्देश करने से ही पूर्व स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है, तो फिर अपूर्व स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों का निर्देश किसलिए किया गया है ?

आचार्य इसका भी समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं है, क्योंकि यहाँ अपूर्व परिणामों के अस्तित्व का प्रयोजन होने से उनके कहने में कोई दोष नहीं है।

जधन्य स्थिति का प्रथम खण्ड आगे किसी के भी सदृश नहीं है। उसका द्वितीय खण्ड एक समय अधिक जघन्य स्थिति के प्रथम अध्यवसानखण्ड के सदृश होता है। जघन्य स्थिति के अध्यवसानों का तृतीय खण्ड दो समय अधिक जघन्य स्थिति के प्रथम अध्यवसानखण्ड के सदृश होते हैं। चर्तुथ खण्ड तीन समय अधिक जघन्य स्थिति के प्रथम अध्यवसानखण्ड के सदृश होता है।

इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डक के अंतिम समय तक ले जाना चाहिये। उससे आगे के समय में जघन्य

व्युच्छिद्यते, तत्र एतैः सदृशपरिणामाभावात्। एवं सर्वस्थितिविशेषसर्वाध्य-वसानानां प्रत्येकमनुकृष्टिव्युच्छेदः प्ररूपयितव्य इति भावार्थः।

अधुना अपुनरुक्ताध्यवसानप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—जघन्यस्थितिमादिं कृत्वा यावद् द्विचरम-स्थितिरिति तावत्सर्वस्थितिविशेषसर्वाध्यवसानानां सर्वप्रथमखण्डानि अपुनरुक्तानि। उत्कृष्टस्थितेः सर्वखण्डानि अपुनरुक्तान्येव। शेषद्विचरमादिस्थितीनां द्वितीयादिखण्डानि पुनरुक्तानि, एतैः समान-परिणामानाम पुनरुक्तपरिणामेषु उपलंभात्।

संप्रति सप्तकर्मणां अनुकृष्टिकथनार्थं सूत्रमवतार्यते—

एवं सत्तण्णं कम्माणं।।२७१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा ज्ञानावरणीयस्य अनुकृष्टिः प्ररूपिता तथा सप्तानां कर्मणां प्ररूपयितव्यं। विशेषेण—आयुषो जघन्यस्थितेः निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाणाध्यवसानखण्डानि पूर्वमिव प्रथमखण्डप्रभृति विशेषाधिकानि भवन्ति। समयोत्तरजघन्यस्थितिप्रभृति-सर्वाध्यवसानखण्डानि अन्योऽन्यं अपेक्ष्य यथाक्रमेण विशेषाधिकानि चैव। किन्तु तत्र समयाधिकजघन्यस्थितेः द्विचरमखण्डात् चरमखण्डमायामेनासंख्यातगुणं। तदुपरिमस्थितेः पुनः त्रिचरमखण्डात् द्विचरमखण्डमसंख्यातगुणं। ततः चरमखण्डमसंख्यातगुणं। एवं नेतव्यं यावन्निर्वर्गणाकाण्डकद्विचरमसमय इति। पुनः तदुपरिमस्थितिप्रभृति यावदुत्कृष्टस्थितिरिति**

स्थिति के अध्यवसानस्थानों के अनुकृष्टि का व्युच्छेद हो जाता है, क्योंकि वहाँ इनके सदृश परिणामों का अभाव है। इस प्रकार से सब स्थिति विशेषों के सब अध्यवसानों में से प्रत्येक में अनुकृष्टि के व्युच्छेद की प्ररूपणा करना चाहिये। यह उक्त कथन का भावार्थ है।

अब अपुनरुक्त अध्यवसानों की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—

जघन्य स्थिति को आदि लेकर द्विचरम स्थिति तक सब स्थितिविशेषों के सभी अध्यवसानस्थान संबंधी सब प्रथम खण्ड अपुनरुक्त हैं। उत्कृष्ट स्थिति के सब खण्ड अपुनरुक्त ही हैं। शेष द्विचरम आदि स्थितियों के द्वितीयादिक खण्ड पुनरुक्त हैं, क्योंकि इनके समान परिणाम अपुनरुक्त परिणामों में पाये जाते हैं।

अब सात कर्मों की अनुकृष्टि का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के विषय में अनुकृष्टि का कथन करना चाहिये।।२७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म की अनुकृष्टि प्ररूपित की गई है, उसी प्रकार से अन्य सात कर्मों की अनुकृष्टि को भी बतलाना चाहिए।

विशेष यह है कि—आयु की जघन्य स्थिति के निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण अध्यवसानखण्ड पूर्व के ही समान प्रथम खण्ड को आदि लेकर उत्तरोत्तर विशेष अधिक होते हैं। एक समय अधिक जघन्य स्थिति को आदि लेकर सब अध्यवसानखण्ड परस्पर की अपेक्षा यथाक्रम से विशेष अधिक ही हैं। परन्तु उनमें एक समय अधिक जघन्य स्थिति के द्विचरम खण्ड से अंतिम खण्ड आयाम की अपेक्षा असंख्यातगुणा है। उससे आगे की स्थिति के त्रिचरम खण्ड की अपेक्षा द्विचरम खण्ड असंख्यातगुणा है। उससे अंतिम खण्ड असंख्यातगुणा है। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डक के द्विचरम समय तक ले जाना चाहिये। फिर उससे आगे की स्थिति से लेकर उत्कृष्ट स्थिति तक सब खण्ड एक दूसरे की अपेक्षा आयाम से असंख्यातगुणे होते हैं, ऐसा

तावत्सर्वखण्डानि अन्योन्यमपेक्ष्य आयामेन असंख्यातगुणानि भवन्तीति गृहीतव्यं। अत्रापि अनुकृष्टव्युच्छेदः पूर्वमिव प्ररूपयितव्यः।

एवं द्वितीयऽन्तरस्थले अनुकृष्टिप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

एवमनुकृष्टिः समाप्ता।

अधुना तीव्रमंदतापेक्षया ज्ञानावरणस्य जघन्यस्थिति-अध्यवसायनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तिव्व-मंददाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जहण्णयं ट्ठिदिबंध-ज्झवसाणट्ठाणं सव्वमंदाणुभागं।।२७२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सर्वस्थितिषु पुनरुक्तस्थितिबंधाध्यवसानस्थानानि अपनीय अपुनरुक्तानि गृहीत्वा एतदल्पबहुत्वमुच्यते। ''सव्वमंदाणुभागं'' इति कथिते सर्वजघन्यशक्तिसंयुक्तमिति गृहीतव्यम् शेषं सुगमम्।**

उत्कृष्टस्थितिबंधाध्यवसायस्थानप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तिस्से चेव उक्कस्समणंतगुणं।।२७३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**तस्याश्चैव जघन्यस्थितेः प्रथमखण्डस्य अपुनरुक्तस्य उत्कृष्टपरिणामोऽनन्तगुणोऽस्ति, असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानान्युपरि चटित्वा स्थितत्वात्।**

अत्र कश्चिदाह—

चरमखण्डोत्कृष्टपरिणामो न गृहीत इति कथं ज्ञायते ?

समझना चाहिये। यहाँ भी अनुकृष्टि के व्युच्छेद की पूर्व के ही समान प्ररूपणा करना चाहिये।

इस प्रकार द्वितीय अन्तरस्थल में अनुकृष्टि का प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार अनुकृष्टि समाप्त हुई।

अब तीव्र और मंदता की अपेक्षा ज्ञानावरणकर्म के जघन्य स्थिति अध्यवसान का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

तीव्र-मंदता की अपेक्षा ज्ञानावरणीय की जघन्यस्थिति संबंधी जघन्य स्थितिबंधाध्यवसानस्थान सबसे मंद अनुभागवाला है।।२७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—समस्त स्थितियों में पुनरुक्त स्थितिबंधाध्यवसानस्थानों को छोड़कर और अपुनरुक्तों को ग्रहण करके यह अल्पबहुत्व कहा जा रहा है। 'सव्वमंदाणुभाग' ऐसा कहने पर सबसे जघन्य शक्ति से संयुक्त है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

अब उत्कृष्ट स्थितिबंध अध्यवसानस्थान का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

उसी का उत्कृष्ट स्थितिबंधाध्यवसानस्थान अनन्तगुणा है।।२७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उसी जघन्य स्थिति के अपुनरुक्त प्रथम खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है, क्योंकि वह असंख्यात लोक मात्र छह स्थान आगे जाकर स्थित है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

अंतिम खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम नहीं ग्रहण किया गया है, यह कैसे जाना जाता है ?

आचार्यः प्राह—

जघन्यस्थित्युत्कृष्टपरिणामात्समयाधिकजघन्यस्थितेः जघन्यपरिणामोऽनन्तगुण इति सूत्रनिर्देशाद् ज्ञायते।

संप्रति द्वितीयस्थितिसंबंधि-अध्यवसानप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

बिदियाए ट्ठिदीए जहण्णयं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणमणंतगुणं।।२७४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पूर्वोक्तोत्कृष्टपरिणाम ऊर्वंकः, एषो जघन्यपरिणामोऽष्टांक इति कृत्वाधस्तनोत्कृष्टपरिणामं सर्वजीवराशिना गुणिते उपरिमस्थितिजघन्यपरिणामो भवति, तेनानन्तगुणत्वं न विरुध्यते। उपर्यपि उत्कृष्टपरिणामात् यत्र जघन्यपरिणामोऽनन्तगुण इत्युच्यते तत्र एतच्चैव कारणं वक्तव्यम्।**

संप्रति उत्कृष्टपरिणामनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तिस्से चेव उक्कस्समणंतगुणं।।२७५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानानि उपरि चटयित्वा स्थितत्वात्।**

अधुना तृतीयस्थितिजघन्याध्यवसाननिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तदियाए ट्ठिदीए जहण्णयं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणमणंतगुणं।।२७६।।

आचार्य इसका समाधान करते हैं कि—

जघन्य स्थिति के उत्कृष्ट परिणाम के एक समय अधिक जघन्यस्थिति का जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है, ऐसा सूत्र में निर्देश किया जाने से उसका परिज्ञान होता है।

अब द्वितीय स्थितिसंबंधी अध्यवसान का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

द्वितीय स्थिति का जघन्य स्थितिबंधाध्यवसानस्थान अनन्तगुणा है।।२७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पूर्व का उत्कृष्ट परिणाम ऊर्वंक और यह जघन्य परिणाम अष्टांक है, ऐसा करके अधस्तन उत्कृष्ट परिणाम को सर्व जीवराशि से गुणित करने पर आगे की स्थिति का जघन्य परिणाम होता है, इसी कारण उसके अनन्तगुणे होने में कोई विरोध नहीं है। आगे भी जहाँ पर उत्कृष्ट परिणाम की अपेक्षा जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है, ऐसा कहा जाता है। वहाँ पर भी यही कारण बतलाना चाहिये।

अब उत्कृष्ट परिणामों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उसी स्थिति का उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है।।२७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वह जघन्य परिणाम से असंख्यात लोक प्रमाण छह स्थान आगे जाकर स्थित है।

अब तृतीयस्थिति के जघन्य अध्यवसान का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे तृतीय स्थिति का जघन्य स्थितिबंधाध्यवसानस्थान अनन्तगुणा है।।२७६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**कारणं सुगमं वर्तते, पूर्वं प्ररूपितत्वात्।**

संप्रति उत्कृष्टपरिणामप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

तिस्से चेव उक्कस्सयमणंतगुणं।।२७७।।

एवमणंतगुणा जाव उक्कस्सट्ठिदि त्ति।।२७८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एवं पूर्वोक्तक्रमेण अनन्तगुणायाः श्रेण्या नेतव्यं यावदुत्कृष्टस्थितिरिति। विशेषेण—उत्कृष्टायाः स्थितेर्जघन्यादुत्कृष्टमनन्तगुणमित्युक्ते चरमखण्डोत्कृष्टपरिणामोऽनन्तगुणं इति गृहीतव्यम्।**

अधुना सप्तकर्मणामपि प्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं सत्तण्णं कम्माणं।।२७९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा ज्ञानावरणीयस्य तीव्र-मंदताया अल्पबहुत्वं प्ररूपितं तथा सप्तानां कर्मणां प्ररूपयितव्यं, विशेषाभावात्।**

एवं तीव्र-मंदता इति समाप्तमनुयोगद्वारम्।

एवं तृतीयेऽन्तरस्थले तीव्रमन्दताप्रतिपादनत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण सुगम है, क्योंकि उसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

अब उत्कृष्ट परिणाम का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उसी स्थिति का उत्कृष्ट परिणाम उससे अनन्तगुणा है।।२७७।।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक वे अनन्तगुणे हैं।।२७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस प्रकार अर्थात् पूर्वोक्त क्रम से उत्कृष्ट स्थिति तक अनन्तगुणित श्रेणि से ले जाना चाहिये। विशेष इतना है कि उत्कृष्ट स्थिति के जघन्य परिणाम की अपेक्षा उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है, ऐसा कहने पर अंतिम खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

अब सात कर्मों का भी प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के विषय में तीव्र-मंदता के अल्पबहुत्व को कहना चाहिये।।२७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के विषय में तीव्र-मंदता के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार शेष सात कर्मों के विषय में कहना चाहिये, क्योंकि वहाँ उसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार तीव्र-मंदता अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

यहाँ तृतीय अंतरस्थल में तीव्रता और मंदता का प्रतिपादन करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में तीन अंतरस्थलों से समन्वित स्थितिसमुदाहार का प्ररूपण करने वाले चौंतीस सूत्र पूर्ण हुए।

इत्थं चतुर्थस्थले त्रिभिरन्तरस्थलैः समन्वितस्थितिसमुदाहारप्ररूपणकरणत्वेन चतुस्त्रिंशत्सूत्राणि गतानि।

अत्र स्थितिसमुदाहारः समाप्तः।

एवं स्थितिबंधाध्यवसानस्थानप्ररूपणा समाप्ता।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखंडे एकादशे ग्रन्थे वेदनाकाल-विधाननाम्नि षष्ठेऽनुयोगद्वारे द्वितीयमहाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां द्वितीयचूलिकानामायं द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार यहाँ स्थितिसमुदाहार समाप्त हुआ।

इस प्रकार स्थितिबंध अध्यवसानस्थान प्ररूपणा समाप्त हुई।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ के वेदनानामक चतुर्थ खण्ड में ग्यारहवें ग्रंथ में वेदनाकाल विधान नामके छठे अनुयोगद्वार में द्वितीय महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांतचिन्तामणि टीका के द्वितीय चूलिका नामका यह द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

प्रयागतीर्थवंदना

अनुष्टुप्छंदः —

श्रीमान् ऋषभदेवो यो, युगादौ प्रथमो जिनः।
तमाद्यतीर्थकर्तारं, वंदे सर्वार्थसिद्धये।।१।।

अयोध्यानगरी पूता, पुरुदेवस्य जन्मना।
मरुदेवी प्रसूः ख्याता, नाभिराजः पितापि च।।२।।

यत्र प्रथमतो नाथो, मोक्षमार्गः प्रदर्शितः।
दीक्षां दैगम्बरीं धृत्वा, प्रथमं केशलुंचनम्।।३।।

कृतः प्रथमतस्त्यागः, "प्रयाग" स्तेन कीर्तितः।
चकार प्रथमं ध्यानं, षण्मासावधि तं नुमः।।४।।

हस्तिनागपुरे साधु-राहारमाद्यमाददौ।
तृतीयाप्यक्षया सिद्धा, तं तीर्थमपि संस्तुवे।।५।।

सहस्त्रवर्षपर्यन्तं, यत्र तप्त्वा तपः प्रभुः।
कैवल्यं प्रथमं लेभे, तं तीर्थं प्रणमाम्यहम्।।६।।

वटवृक्षतले दीक्षां, जग्राह ऋषभेश्वरः।
तस्य वृक्षस्य नीचैश्च, केवलज्ञानमाप्तवान्।।७।।

प्रयागतीर्थ की वंदना

श्लोकार्थ — युग की आदि में प्रथम जिनेन्द्र के रूप में जो श्रीमान् भगवान् ऋषभदेव के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं, उन आद्य-प्रथम तीर्थकर्ता-तीर्थंकर भगवान् की मैं सर्वार्थसिद्धि की प्राप्ति — सम्पूर्ण प्रयोजन की सिद्धि हेतु वंदना करता हूँ।।१।।

उन पुरुदेव के जन्म से अयोध्या नगरी पवित्र हो गई, उनको जन्म देने वाली माता मरुदेवी और पिता नाभिराजा भी इस धरती पर प्रसिद्ध हुए हैं।।२।।

जहाँ सर्वप्रथम भगवान् ने दिगम्बर जैनेश्वरी दीक्षा धारण करके प्रथम केशलुंचन करके मोक्षमार्ग को प्रदर्शित किया था। प्रथम त्याग किये जाने के कारण जिस स्थान का नाम "प्रयाग" यह प्रसिद्ध हुआ है। जहाँ प्रथमबार छह मास तक भगवान ने वटवृक्ष ने नीचे ध्यान किया था उस प्रयाग तीर्थ को हम नमन करते हैं।।३-४।।

जिस हस्तिनापुर तीर्थ-नगरी में महामुनि तीर्थंकर ऋषभदेव को युवराज श्रेयांसकुमार ने प्रथम आहार दिया था, जहाँ से अक्षयतृतीया नामक तिथि (वैशाख शुक्ला तीज को इक्षुरस का प्रथम आहार दिया था) प्रसिद्ध हुई है उस हस्तिनापुर तीर्थ को मेरा नमस्कार है।।५।।

जहाँ भगवान ऋषभदेव ने एक हजार वर्ष तक तपस्या करके प्रथम केवलज्ञान प्राप्त किया था उस (पुरिमतालपुर उद्यान, वर्तमान में प्रयाग के नाम से प्रसिद्ध) तीर्थ को मैं नमन करता हूँ।।६।।

वृषभेश्वर भगवान् ने वटवृक्ष के नीचे दीक्षा ग्रहण की थी और उसी वटवृक्ष के नीचे ही केवलज्ञान को प्राप्त किया था।।७।।

अक्षयो वटवृक्षोऽयं, ततः प्रभृति संप्रति।
जगत्यां पूज्यतां गच्छन्, अद्यापि तत्र सुस्थितः।।८।।

रत्नत्रयी त्रिवेणीनां, बभूव संगमस्तदा।
नदीनां च त्रिवेणीनां, संगमोऽपीह दृश्यते।।९।।

कैलाशपर्वते सर्व-कर्म हत्वा प्रभुः स्वयम्।
परमानन्दधामाप, तं नौमि ऋषभेश्वरम्।।१०।।

षट्खण्डागमग्रन्थेऽस्मिन्, वेदनानामतुर्यके।
सिद्धान्तादिचिंतामणि-नाम्ना गीर्वाणभाषया।।११।।

अष्टद्विपंचद्वयंकेऽस्मिन्, वीराब्दे पूर्णिमातिथौ।
आश्विनेऽद्य शरन्मासे, टीकेयं पूर्यते मया।।१२।।

प्रथमाचार्यचारित्र-चक्री श्रीशांतिसागरः।
तस्य पट्टाधिपः सूरि-र्गुरुः श्रीवीरसागरः।।१३।।

अस्य ज्ञानमती शिष्या-प्यार्यिका गणिनी मता।
साहं टीकां व्यधां सेयं, मे ज्ञानद्धर्यै श्रियै भवेत्।।१४।।

प्रभो ऋषभदेवस्य, महाकुंभाभिषेचनम्।
कुर्वन्ति भाक्तिका अत्र, शारदी पूर्णिमातिथौ।।१५।।

तब से लेकर आज तक वह वटवृक्ष 'अक्षयवटवृक्ष' के नाम से जगत् में पूज्यता को प्राप्त होता हुआ आज भी वहाँ-प्रयाग में (मिलिट्री परिसर में) स्थित है।।८।।

वहाँ उस समय भगवान के द्वारा धारण किये गये रत्नत्रय का संगम हुआ था आज भी वहाँ तीन नदियों (गंगा-यमुना-सरस्वती) का त्रिवेणी संगम दिखाई देता है वह उसी का प्रतीक समझना चाहिए।।९।।

भगवान् ऋषभदेव ने कैलाशपर्वत पर स्थित होकर समस्त कर्मों को नष्ट करके परमानंदधाम मोक्ष को प्राप्त किया था, उस कैलाशपर्वत तीर्थ को एवं सिद्धपरमेष्ठी प्रभु ऋषभेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।।१०।।

इस षट्खण्डागम ग्रंथ में वेदना नामके चतुर्थ खण्ड में वेदनाकाल विधान अनुयोगद्वार की सिद्धान्तचिन्तामणि नामक संस्कृत टीका को वीर निर्वाण संवत् २५२८ में शरदपूर्णिमा-आश्विनमास की शरदपूर्णिमा को मैंने पूर्ण किया है।।११-१२।।

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज हुए हैं उनके प्रथम पट्टाचार्य पद पर श्री वीरसागर आचार्य गुरुदेव अभिषिक्त होकर प्रथमपट्टाचार्य कहलाए। उनकी शिष्या मैं गणिनीज्ञानमती आर्यिका हूँ, मेरे द्वारा रचित यह सिद्धांतचिन्तामणि टीका मेरे ज्ञान की वृद्धि के लिए होवे।।१३-१४।।

आज शरदपूर्णिमा तिथि के दिन यहाँ प्रयाग तीर्थ पर श्रद्धालु भक्तों ने भगवान् ऋषभदेव का महाकुंभ अभिषेक आयोजित किया है। अर्थात् सन् २००२ में वहाँ शरदपूर्णिमा के दिन तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ पर ५० फुट उत्तुंग कैलाश पर्वत पर विराजमान मूंगावर्णी भगवान ऋषभदेव की पद्मासन प्रतिमा का बड़े-बड़े कुंभों से अभिषेक करके भक्तजन अत्यंत प्रसन्न हुए।।१५।।

यावत्प्रयागतीर्थेऽत्र, नदीनां संगमो भवेत्।
तावत् श्रीजैनतीर्थोऽयं, नन्द्यात् 'ऋषभ' नामतः।।१६।।

यावत् श्री जैनधर्मोऽयं, यावन्मेरु कुलाचलाः।
तावद् ग्रंथोऽप्ययं स्थेयात्, भव्यानां मंगलं क्रियात्।।१७।।[१]

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्त-भूतबलिसूरिप्रणीतषट्खण्डागमग्रंथस्य चतुर्थखण्डे श्रीभूतबल्याचार्य-कृत वेदनाखण्डे वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-वेदनाकालविधानानुयोगद्वारे चूलिकानामप्रकरणे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाप्रमुख नानाग्रंथाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यश्चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागराचार्यस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागरा-चार्यस्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीपरचनातीर्थंकरऋषभदेवतपस्थलीप्रयागतीर्थ-अन्तिमतीर्थंकर-भगवन्महावीरजन्मभूमिकुंडलपुरविकासप्रेरिकागणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणि-टीकायां अयं प्रथमद्वितीय-चूलिकासमन्वितो षष्ठवेदनाकाल-विधानानुयोग-द्वारनामायं द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः।

इस प्रयाग तीर्थ पर जब तक तीनों नदियों का संगम रहे, तब तक भगवान ऋषभदेव के नामका यह जैन तीर्थ सभी को सुख प्रदान करे।।१६।।

जब तक इस भूमण्डल पर जैनधर्म का वास रहे, जब तक मेरुपर्वत एवं कुलाचल पर्वत स्थित रहें, तब तक यह षट्खण्डागम ग्रंथ जग में स्थित रहे एवं भव्यों के लिए मंगलकारी होवे यही भगवान् जिनेन्द्र से मंगल कामना है।।१७।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के चतुर्थ-खण्ड में श्री भूतबली आचार्य रचित वेदनाखण्ड में वेदनानुयोगद्वार के अंतर्गत वेदनाकाल विधान नामके अनुयोगद्वार में चूलिका नामक प्रकरण में श्रीवीरसेनाचार्य विरचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमा-चार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज उनके प्रथम पट्टाधीश श्रीवीरसागर आचार्य हुए, उनकी शिष्या जम्बूद्वीप-रचना-तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ-अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर विकास की सम्प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांतचिन्तामणि टीका में यह प्रथम-द्वितीय चूलिका समन्वित छठा वेदनाकाल विधान अनुयोगद्वार नामका द्वितीय महाधिकार समाप्त हुआ।

---

१. आश्विनशुक्लापूर्णिमायां वीराब्दे अष्टाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे श्रीतीर्थंकरऋषभदेवतपस्थली-प्रयागतीर्थे अयं द्वितीयो महाधिकारः पूर्णीकृतः।
यह अधिकार प्रयागजैनतीर्थ पर आश्विन शु. १५ (दिनाँक-२१-१०-२००२) के दिन पूर्ण किया है।

अथ वेदनाभावविधानानुयोगद्वारम्

(द्वितीयवेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-सप्तमवेदनाभावविधानानुयोगद्वारम्)

तृतीयो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

सिद्धाः सर्वे प्रणूयन्ते, येषां वंदनया जनैः।
कर्मभावविनिर्मुक्ता, वेद्यन्ते स्वात्मवेदनाः।।१।।
वेद्यते कर्मभावोऽसौ, वेदनाभाव उच्यते।
तस्य प्ररूपणा चैव, ग्रंथेऽस्मिन् कथयिष्यते।।२।।
सरस्वतीं नमस्कृत्य, टीकामस्य लिखाम्यहम्।
श्रुतभक्तिः फलेन्मह्यं, लप्स्ये ज्ञानफलं ध्रुवम्।।३।।

पुनश्च—

वाराणस्यां धनदविमुक्तैः, रत्नैः पृथ्वी भवति सुतृप्ता।
पृथ्वीषेणा विकसितचेताः, धन्या मान्या नरसुरवृन्दैः।।४।।
गणाधिपैः साधुनरामराद्यैः रराज यो दिव्यसभासु मध्ये।
भव्याब्जसूर्यो गतरागमोहः वन्दे सुपार्श्वं तं देवदेवम्।।५।।

अथ वेदनाभावविधान अनुयोगद्वार

(द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के अंतर्गत-सप्तम वेदनाभावविधान अनुयोगद्वार)

तृतीय महाधिकार

-मंगलाचरण-

श्लोकार्थ—जिनकी वंदना करके भव्य प्राणी कर्म भाव से मुक्त होकर निज आत्मवेदना का वेदन-अनुभव करते हैं उन सभी सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तों को मेरा बारम्बार नमस्कार है।।१।।

कर्म भाव का जो वेदन किया जाता है उसे वेदनाभाव कहते हैं, इस ग्रंथ में मेरे द्वारा उसी वेदनाभाव की प्ररूपणा का कथन किया जाएगा।।२।।

सरस्वती माता को नमस्कार करके इस प्रकरण की टीका का लेखन मेरे द्वारा प्रारंभ किया जा रहा है, मेरे लिए श्रुत की भक्ति फलदायी होवे तथा मुझे शाश्वत ज्ञान का फल प्राप्त होवे यही प्रार्थना है।।३।।

पुनश्च—

श्लोकार्थ—वाराणसी नगरी में धनकुबेर के द्वारा की गई रत्नवृष्टि से धरती तृप्त हो गई तथा मनुष्य एवं देवसमूह से मान्य महारानी पृथ्वीषेणा माता अतिप्रसन्नतापूर्वक धन्य-धन्य हो गईं थीं।।४।।

गणधरों से, मुनियों से, मनुष्यों एवं देव-इन्द्र आदिकों से समन्वित समवसरण की दिव्य सभा के मध्य जो विराजमान हुए थे। भव्यात्माओं के हृदय कमल को विकसित करने वाले सूर्य, सम्पूर्ण राग-द्वेष-मोह से रहित तीर्थंकर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान के श्री चरणों में मेरा बारम्बार वन्दन है।।५।।

पृथ्वीछंदः —

श्री पार्श्वनाथाय नमोऽस्तु तुभ्यं, दुःखार्तिनाशाय नमोऽस्तु तुभ्यम्।
अभीप्सितार्थाय नमोऽस्तु तुभ्यं, त्रैलोक्यनाथाय नमोऽस्तु तुभ्यम्।।६।।

संप्रति तीर्थकरपंरपरायां सप्तमतीर्थंकरश्रीसुपार्श्वनाथस्य त्रयोविंशतितमतीर्थंकरश्रीपार्श्वनाथस्य च जन्मभूमौ वाराणस्यां[१] स्थित्वा अपुनर्भवहेतवे जन्मभूमिं वन्दमानया मयाद्य षट्खण्डागमग्रन्थस्य वेदनानम्नि चतुर्थखण्डे सप्तमवेदनाभाव-विधानानुयोगद्वारस्य टीका प्रारभ्यते।

अस्मिन् वेदनाभावविधाने द्वौ महाधिकारौ स्तः। इमौ महाधिकारौ तृतीयचतुर्थौ स्तः। तृतीये महाधिकारे चतुःसप्तत्यधिकशतसूत्राणि। चतुर्थे महाधिकारे चत्वारिंशदधिकशतसूत्राणि सन्ति। अस्मिन् चतुर्थे महाधिकारे तिसृः चूलिकाः सन्ति, इमास्त्रयोधिकारा विभक्तीकृताः सन्ति। प्रथमचूलिकायां द्वाविंशतिसूत्राणि। द्वितीयचूलिकायां एकसप्ततिसूत्राणि। तृतीयचूलिकायां सप्तचत्वारिंशत्सूत्राणि सन्ति।

तत्र तावद् द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-सप्तमे वेदनाभावविधानानुयोगद्वारनाम्नि तृतीये महाधिकारे एकादशस्थलानि विभक्तीकृतानि वर्तन्ते। तत्रापि प्रथमस्थले त्रिभेदतन्नामप्ररूपणार्थं ''वेयणाभावविहाणे'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले पदमीमांसानाम प्रथमभेदप्रतिपादनार्थं ''पदमीमांसाए'' इत्यादिना सूत्रत्रयमस्ति। ततः परं तृतीयस्थले स्वामिभेदस्य द्विविधप्रभेदं कृत्वा उत्कृष्टपदे भावापेक्षया वेदना कथनार्थं ''सामित्तं दुविहं'' इत्यादिना पंचदशसूत्राणि कथ्यन्ते। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले स्वामित्वाधिकारे जघन्यपदे

श्री पार्श्वनाथ भगवान्! आपको मेरा नमस्कार होवे, हे दुःख-कष्ट निवारक प्रभो! आपको मेरा नमन है। अपने मनवाञ्छित फल की प्राप्ति हेतु मेरा आपके चरणों में नमस्कार होवे तथा हे तीनों लोकों के नाथ— स्वामी! आपको मेरा पुनःपुनः नमस्कार है।।६।।

वर्तमानकालीन तीर्थंकर परम्परा में सातवें तीर्थंकर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान एवं तेइसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान की जन्मभूमि वाराणसी नगरी में बैठकर अपुनर्भव हेतु जन्मभूमि की वंदना करते हुए मेरे द्वारा आज षट्खण्डागम ग्रंथ के वेदना नामक चतुर्थ खण्ड में सप्तम वेदनाभाव विधान नामक अनुयोगद्वार की टीका प्रारंभ की जा रही है।

इस वेदनाभाव विधान में दो महाधिकार हैं। ये दोनों महाधिकार इस ग्रंथ के तृतीय और चतुर्थ महाधिकार के रूप में हैं। उनमें से तृतीय महाधिकार में एक सौ चौहत्तर (१७४) सूत्र हैं एवं चतुर्थ महाधिकार में एक सौ चालिस (१४०) सूत्र हैं। उसमें से चतुर्थ महाधिकार में तीन चूलिकाएं हैं, जो तीन अधिकारों को विभक्त करती हैं। प्रथम चूलिका में २२ सूत्र हैं। द्वितीय चूलिका में ७१ सूत्र हैं और तृतीय चूलिका में ४७ सूत्र हैं।

यहाँ द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अंतर्गत सातवें वेदनाभावविधान अनुयोगद्वार नामके तृतीय महाधिकार में ग्यारह स्थलों का विभाजन किया गया है। उसमें भी प्रथमस्थल में तीन भेद और उनके नामों का निरूपण करने हेतु ''वेयणाभावविहाणे'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में पदमीमांसा नामक प्रथम भेद का प्रतिपादन करने वाले ''पदमीमांसाए'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में स्वामियों के भेद के दो प्रभेद करके उत्कृष्टपद में भाव की अपेक्षा वेदना का कथन करने हेतु

---

१. मार्गशीर्षे द्वितीयायां वीराब्दे एकोनत्रिंशदधिकपंचविंशतिशततमे ख्रिष्ट्राब्दे द्व्यधिकट्टिसहस्रतमे (२२-११-२००२) दिवसे एषा टीका मया प्रारब्धा, अतएव सुपार्श्वनाथ-पार्श्वनाथयोः वन्दना कृता।

कर्मणां वेदनानिरूपणार्थं ''सामित्तेण जहण्णपदे'' इत्यादिस्वरूपेण एकोनविंशतिसूत्राणि।

तदनंतरं पंचमस्थले अल्पबहुत्वनामतृतीयभेदे त्रिप्रभेदं कथयित्वा तत्र जघन्यपदे कर्मणां वेदनाकथनार्थं ''अप्पाबहुए त्ति'' इत्यादिना अष्टौ सूत्राणि। ततश्च षष्ठस्थले उत्कृष्टपदे कर्मणां वेदनाप्रतिपादनार्थं ''उक्कस्सपदे'' इत्यादिना पंचसूत्राणि निरूपयिष्यन्ते। तदनु सप्तमस्थले जघन्योत्कृष्टपदे कर्मवेदनानिरूपणार्थं ''जहण्णुक्कस्स-पदेण'' इत्यादिस्वरूपेण द्वादश सूत्राणि कथयिष्यन्ते।

तदनंतरं अष्टमस्थले उत्तरप्रकृतिषु अनुभागाल्पबहुत्वप्ररूपणार्थं ''सादं जसुच्च-वे-कं'' इत्यादिना सूत्रातिरिक्तगाथात्रयं कथ्यते। पुनश्च नवमस्थले चतुःषष्टिपदिकोत्कृष्टानुभागमहादण्डकाल्पबहुत्वप्ररूपणार्थं ''एत्तो उक्कस्सओ'' इत्यादिना त्रिपंचाशत्सूत्राणि वक्ष्यन्ते। ततः परं दशमस्थले जघन्य चतुष्षष्टिपदिक-महादण्डक कथनार्थं ''संज-मण-दाण मोही'' इत्यादिना त्रीणि गाथासूत्राणि सूत्रातिरिक्तानीति ज्ञातव्यानि भवन्ति। तत्पश्चात् एकादशमस्थले जघन्येन सूचित चतुःषष्टिपदिकाल्पबहुत्वनिरूपणार्थं ''एत्तो जहण्णओ'' इत्यादिस्वरूपेण सप्तपंचाशत्सूत्राणीति चतुःसप्तत्यधिकैकशतसूत्रैः षड्भिर्गाथाभिश्च एकादशस्थलैरियं समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना वेदनाभावविधानकथनं प्रतिज्ञाय तस्यानुयोगद्वारभेदप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण —

वेयणाभावविहाणे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति।।१।।

''सामित्तं दुविहं'' इत्यादि पन्द्रह सूत्र कहेंगे। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में स्वामित्व अधिकार में जघन्यपद में कर्मों की वेदना का निरूपण करने के लिए ''सामित्तेण जहण्णपदे'' इत्यादिरूप से उन्नीस सूत्र हैं।

तदनंतर पंचम स्थल में अल्पबहुत्व नामक तृतीय भेद में तीन प्रभेदों को कहकर उसमें जघन्यपद में कर्मों की वेदना का कथन करने हेतु ''अप्पा बहुएत्ति'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। आगे छठे स्थल में उत्कृष्ट पद में कर्मों की वेदना का प्रतिपादन करने हेतु ''उक्कस्स पदे'' इत्यादि पाँच सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् सप्तमस्थल में जघन्योत्कृष्ट पद में कर्म वेदना का निरूपण करने हेतु ''जहण्णुक्कस्स पदेण'' इत्यादि स्वरूप से बारह सूत्र कहेंगे।

इसके अनंतर आठवें स्थल में उत्तरप्रकृतियों में अनुभाग का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु ''सादं जसुच्च-वे-कं'' इत्यादि सूत्र के अतिरिक्त तीन गाथाएं कही हैं। पुनश्च नवमें स्थल में चौंसठ पद वाले उत्कृष्ट अनुभागमहादण्डक का अल्पबहुत्व प्ररूपित करने हेतु ''एत्तो उक्कस्सओ'' इत्यादि तिरेपन सूत्र कहेंगे।

उसके बाद दशवें स्थल में जघन्य चौंसठ पद वाले महादण्डक का कथन करने हेतु ''संज-मण-दाण मोही'' इत्यादि तीन गाथासूत्र सूत्रों से अतिरिक्त जानना चाहिए। तत्पश्चात् ग्यारहवें स्थल में जघन्य से सूचित चौंसठ पदिक अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु ''एत्तो जहण्णओ'' इत्यादिरूप से सत्तावन सूत्र हैं। इस प्रकार एक सौ चौहत्तर सूत्र एवं छह गाथाओं के द्वारा ग्यारह स्थलों में विभक्त की गई यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब वेदनाभावविधान के कथन की प्रतिज्ञा के लिए उसके अनुयोगद्वारों के भेदों का प्ररूपण करने हेतु श्रीभूतबली आचार्यवर्य सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ —

अब वेदनाभावविधान का प्रारंभीकरण हो रहा है। उसमें तीन अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं।।१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र वेदनाभावविधानप्ररूपणायां भावश्चतुर्विधः कथ्यते—नामभावः स्थापनाभावो द्रव्यभावो भावभावश्चैति। तत्र भावशब्दो नामभावो नाम। सद्भावासद्भावस्वरूपेण 'स एष' इति अभेदेन संकल्पितार्थः स्थापनाभावो नाम। द्रव्यभावो द्विविधः—आगमद्रव्यभावो नोआगमद्रव्यभावश्चेति। तत्र भावप्राभृतज्ञायकोऽनुपयुक्त आगमद्रव्यभावो नाम। नोआगमद्रव्यभावस्त्रिविधः-ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यभावभेदेन। एषु ज्ञायकशरीर-भावि नोआगमद्रव्यभावो ज्ञात एव। तद्व्यतिरिक्त-द्रव्यभावो द्विविधः—कर्मद्रव्यभावो नोकर्मद्रव्यभावश्चेति। तत्र कर्मद्रव्यभावो ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणां अज्ञानादिसमुत्पादनशक्तिर्ज्ञातव्यः। नोकर्मद्रव्यभावो द्विविधः—सचित्तद्रव्यभावोऽचित्तद्रव्यभावश्च।**

तत्र केवलज्ञानदर्शनादिकः सचित्तद्रव्यभावः। अचित्तद्रव्यभावो द्विविधः—मूर्तद्रव्यभावोऽमूर्तद्रव्य-भावश्चेति। तत्र वर्ण-गंध-रस-स्पर्शादिको मूर्तद्रव्यभावः। अवगाहनादिकोऽमूर्तद्रव्यभावः।

भावभावो द्विविधः—आगम-नोआगमभावभावभेदेन। तत्र भाव प्राभृतज्ञायक उपयुक्त आगमभावभावः। नोआगमभावभावो द्विविधः—तीव्रमन्दभावो निर्जराभावश्चेति।

अत्र कश्चिदाह—तीव्र-मन्दतायां भावस्वरूपायां कथं भावभावव्यपदेशः ?

आचार्यदेवः प्राह—नैतद् वक्तव्यं, तीव्र-तीव्रतर-तीव्रतम-मंद-मंदतर-मंदतमादिगुणैर्भावस्यापि भावोपलंभात्। न निर्जराया भावभावत्वमसिद्धम्, सम्यक्त्वोत्पत्तिकादिभावभावैर्जनितनिर्जराया उपचारेण तदविरोधात्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ वेदनाभाव विधान की प्ररूपणा में चार प्रकार का भाव कहा गया है-नामभाव, स्थापनाभाव, द्रव्यभाव और भावभाव। उनमें भाव यह शब्द नामभाव है। सद्भाव या असद्भाव स्वरूप से 'वह यह है' इस प्रकार अभेद से सङ्कल्पित पदार्थ स्थापनाभाव कहा जाता है। द्रव्यभाव दो प्रकार का है-आगमद्रव्यभाव और नोआगम द्रव्यभाव। उनमें भावप्राभृत का जानकार उपयोगरहित जीव आगमद्रव्यभाव कहलाता है। नोआगमद्रव्यभाव तीन प्रकार का है—ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त। इनमें ज्ञायक शरीर और भावी ये नोआगमद्रव्यभाव ज्ञात हैं। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य भाव दो प्रकार का है—कर्मद्रव्यभाव और नोकर्मद्रव्यभाव। उनमें ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों की जो अज्ञानादिको उत्पन्न करनेरूप शक्ति है वह कर्मद्रव्यभाव कही जाती है। नोकर्मद्रव्यभाव दो प्रकार का है—सचित्तद्रव्यभाव और अचित्तद्रव्यभाव।

उनमें केवलज्ञान व केवलदर्शन आदि सचित्तद्रव्यभाव हैं। अचित्तद्रव्यभाव दो प्रकार का है—मूर्तद्रव्यभाव और अमूर्तद्रव्यभाव। उनमें वर्ण, गंध, रस व स्पर्श आदिक मूर्तद्रव्यभाव हैं। अवगाहनादिक अमूर्तद्रव्यभाव हैं।

भावभाव दो प्रकार का है—आगमभावभाव और नोआगमभावभाव। इनमें भावप्राभृत का जानकार उपयोग युक्त जीव आगमभावभाव कहा जाता है। नोआगमभावभाव दो प्रकार का है—तीव्र-मन्दभाव और निर्जराभाव।

यहाँ कोई शंका करता है कि—जब तीव्रता व मंदता भावस्वरूप हैं तब उन्हें भावभाव नाम से कहना कैसे उचित कहा जा सकता है?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द, मन्दतर और मन्दतम आदि गुणों के द्वारा भाव का भी भाव पाया जाता है। निर्जरा को भी भावभावरूपता असिद्ध नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्वोत्पत्ति आदिक भावभावों से उत्पन्न होने वाली निर्जरा के उपचार से भावभाव स्वरूप होने में कोई विरोध नहीं आता है।

अत्र कर्मभावेन प्रकृतं, अन्येषां वेदनायाः संबंधाभावात्। वेदनाया भावो वेदनाभावः, वेदनाभावस्य विधानं प्ररूपणं वेदनाभावविधानम्। तस्मिन् वेदनाभावविधाने इमानि त्रीण्यनुयोगद्वाराणि ज्ञातव्यानि भवन्ति।

अत्र कश्चित् शिष्य आशंकते—

अष्ट अनुयोगद्वाराणि किन्न प्ररूपितानि ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, शेषपंचानामनुयोगद्वाराणामत्रैव प्रवेशात्।

संप्रति वेदनाभावविधानं किमर्थमागतम् ?

वेदनाद्रव्यविधाने जघन्योत्कृष्टादिभेदेनावगतद्रव्यप्रमाणानां, क्षेत्रविधानेऽपि जघन्योत्कृष्टादि-भेदेनावगतावगाहनाप्रमाणानां, कालविधाने जघन्योत्कृष्टादिभेदेनावगतकालप्रमाणानामष्टानां कर्मणामज्ञानादि-कार्योत्पादनशक्ति-विकल्पप्रतिपादनार्थमागतम्।

त्रयाणामनुयोगद्वाराणां नामनिर्देशार्थमुत्तरसूत्रमवतार्यते श्रीमदाचार्यभूतबलिभट्टारकेण —

पदमीमांसा सामित्तमप्पाबहुए।।२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सूत्रे पदमित्युक्ते जघन्योत्कृष्टादिपदानां ग्रहणमस्ति, अन्यैः पदैरत्र प्रयोजनाभावात्। तेनात्र अर्थपद-व्यवस्थापदादिपदानां ग्रहणं न भवति, भेदपदस्यैवात्र ग्रहणं क्रियते। पदानां मीमांसा परीक्षा गवेषणा पदमीमांसा, एषः प्रथमोऽधिकारः। हय-हस्ति-स्वामित्वादिभेदेन यद्यपि**

यहाँ कर्मभाव प्रकृत है, क्योंकि कर्मभाव को छोड़कर और दूसरों की वेदना का यहाँ संबंध नहीं है। वेदना का भाव वेदनाभाव, वेदनाभाव का विधान अर्थात् प्ररूपणा वेदनाभाव विधान है। उस वेदनाभाव विधान में ये तीन अनुयोगद्वार जानने योग्य होते हैं।

यहाँ कोई शिष्य शंका करता है कि—

यहाँ आठ अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि शेष पाँच अनुयोगद्वार इन्हीं में प्रविष्ट हैं।

शंका—अभी वेदनाभावविधान का अवतार किसलिये हुआ है ?

समाधान—वेदनाद्रव्यविधान में जघन्य व उत्कृष्ट आदि के भेद से जिन आठ कर्मों के द्रव्यप्रमाण को जान लिया है, क्षेत्रविधान में जघन्य व उत्कृष्ट आदि के भेदों से जिनका अवगाहना प्रमाण जाना जा चुका है, तथा काल विधान में जिनका जघन्य व उत्कृष्ट आदि के भेदों से कालप्रमाण ज्ञात हो चुका है, उन आठ कर्मों की अज्ञानादि कार्यों की उत्पादक शक्ति के विकल्पों की प्ररूपणा करने के लिये वेदनाभावविधान का अवतार हुआ है।

अब तीनों अनुयोगद्वारों के नामनिर्देश करने हेतु श्री आचार्यभूतबली भट्टारक के द्वारा उत्तरसूत्र अवतरित किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

पदमीमांसा, स्वामित्व एवं अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार हैं।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र में कहे गये 'पद' शब्द से जघन्य व उत्कृष्ट आदि पदों का ग्रहण किया गया है, क्योंकि अन्यपदों का यहाँ कोई प्रयोजन नहीं हैं। इसलिये यहाँ अर्थपद व व्यवस्थापद आदिक पदों का ग्रहण नहीं होता है, किन्तु भेद पद का ही ग्रहण किया जाता है। पदों की मीमांसा अर्थात्

स्वामित्वं बहुप्रकारं तर्ह्यपि अत्र कर्मभावस्वामित्वं चैव गृहीतव्यं, अन्यैरधिकाराभावात्, एवं द्वितीयमनुयोगद्वारं। अल्पबहुत्वमपि यद्यपि द्रव्यादिभेदेनानेकविधं तर्ह्यपि अत्र कर्मभावाल्पबहुत्वस्यैव ग्रहणं कर्तव्यं, अन्यैरत्र प्रयोजनाभावात्, एवं तृतीयमनियोगद्वारम्। एवमस्मिन् ग्रंथे एतैस्त्रिभिरनुयोगद्वारैः भावप्ररूपणां करिष्यन्ति आचार्यदेवाः।

एवं प्रथमस्थले वेदनाभावविधानस्य भेदनामनिरूपणपरं सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना पदमीमांसायां भावापेक्षया ज्ञानावरणवेदनोत्कृष्टादिप्रश्नरूपेण श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण सूत्रमवतार्यते —

पदमीमांसाए णाणावरणीयवेयणा भावदो किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किमजहण्णा ?।।३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतद् देशामर्शकसूत्रमस्ति, तेनान्येषां नवानां पदानां सूचकं भवति। तेन सर्वपदानां समासास्त्रयोदश भवन्ति। तद्यथा—किमुत्कृष्टा इयं ज्ञानावरणीयवेदना, किमनुत्कृष्टा किं जघन्या किमजघन्या किं सादिका किमनादिका किं ध्रुवा किमध्रुवा किमोजा किं युग्मा किमोमा किं विशिष्टा किं नो-ओम नोविशिष्टा इति। पुनः अत्र एकैकं पदमाश्रित्य द्वादशभंगात्मकानि अन्यानि त्रयोदश पृच्छासूत्राणि निलीनानि। तान्यपि एतेन सूत्रेण सूचितानि भवन्ति। ततश्चतुर्दशानां पृच्छासूत्राणां सर्वभंगसमासः एकोनसप्ततिशतमात्र इति बोद्धव्यः (१६९)।**

परीक्षा या गवेषणा का नाम पदमीमांसा है, यह प्रथम अधिकार है। घोड़ा व हाथी आदि संबंधी स्वामित्व के भेद से यद्यपि स्वामित्व बहुत प्रकार का है, तो भी यहाँ कर्मभाव के स्वामित्व का ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि और दूसरों का यहाँ अधिकार नहीं है, यह दूसरा अनुयोगद्वार है। अल्पबहुत्व भी यद्यपि द्रव्यादि के भेद से अनेक प्रकार का है तो भी यहां कर्मभाव के अल्पबहुत्व का ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि दूसरे अल्पबहुत्वों का यहाँ प्रयोजन नहीं है, यह तृतीय अनुयोगद्वार है। इस प्रकार इस ग्रंथ में इन तीन अनुयोगद्वारों के द्वारा आचार्यदेव भावप्ररूपणा करेंगे।

इस प्रकार से प्रथमस्थल में वेदनाभावविधान के भेद निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब पदमीमांसा में भाव की अपेक्षा ज्ञानावरण वेदना के उत्कृष्ट आदि प्रश्नरूप से श्रीभूतबली आचार्य सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ—

पदमीमांसा में ज्ञानावरणीयवेदना भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कृष्ट है, क्या जघन्य है और क्या अजघन्य है ?।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिए वह अन्य नौ पदों का सूचक होता है। इसलिए सब पदों का योग (४+९) तेरह होता है। वह इस प्रकार है—उक्त ज्ञानावरणीय वेदना क्या उत्कृष्ट है ? क्या अनुत्कृष्ट है ? क्या जघन्य है ? क्या अजघन्य है ? क्या सादि है ? क्या अनादि है ? क्या ध्रुव है? क्या अध्रुव है? क्या ओज है ? क्या युग्म है ? क्या ओम है ? क्या विशिष्ट है? और क्या नोओम नोविशिष्ट है ? फिर इस सूत्र में एक-एक पद का आश्रय करके बारहभंग स्वरूप अन्य तेरह पृच्छासूत्र गर्भित हैं। वे भी इसी सूत्र से सूचित हैं। इस कारण चौदह पृच्छासूत्रों के सब भंगों का जोड़ एक सौ उनहत्तर समझना चाहिए।

अधुनात्र प्रथमसूत्रस्यार्थप्ररूपणार्थं देशामर्शकभावेन उत्तरसूत्रमवतार्यते —

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णा अजहण्णा वा।।४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र ज्ञानावरणीयसामान्ये निरुद्धे ओजपदं नास्ति, स्पर्द्धकेषु वर्गणासु, अविभागप्रतिच्छेदेषु च कृतयुग्मभावस्यैव उपलंभात्।**

कथमत्रमनादिपदस्य संभवः ?

नैतत्, ज्ञानावरणीयभावसामान्ये निरुद्धे अनादिकत्वाविरोधात्। न च सादिकपदस्याभावः, विशेषेऽर्पिते तस्याप्युपलंभात्। न च ध्रुवत्वाभावः सामान्यार्पणायां तदुपलंभात्। न चाध्रुवत्वस्याभावः, अनुभागविशेषार्पणायां विशिष्टैकजीवार्पणायां चाध्रुवत्वदर्शनात्। ततः प्रथमसूत्रं द्वादशभंगात्मकं इति द्रष्टव्यम् (१२)।

पुनो द्वितीयपृच्छासूत्रार्थ उच्यते। तद्यथा—उत्कृष्टानुभाग वेदना स्याद् जघन्या, जघन्यादुपरिमसर्व-विकल्पानामजघन्ये दर्शनात्। स्यात्सादिका, अनुत्कृष्टानुभागे स्थितस्य उत्कृष्टानुभागोत्पत्तेः। उत्कृष्टपदस्य अनादित्वं नास्ति, नानाजीवार्पणायां अपि उत्कृष्टपदस्यान्तरदर्शनात्। स्यादध्रुवा, उत्पन्नोत्कृष्टपदस्य नियमेन विनाशदर्शनात्। उत्कृष्टपदस्य ध्रुवत्वं नास्ति, नानाजीवार्पणायामपि उत्कृष्टपदविनाशदर्शनात्। स्याद् युग्मा, उत्कृष्टानुभागस्पर्द्धक-वर्गणाविभागप्रतिच्छेदेषु कृतयुग्मसंख्याया एव उपलंभात्। स्यान्नोम-नोविशिष्टा, एकविकल्पे उत्कृष्टानुभागे वृद्धिहान्योरभावात्। एवमुत्कृष्टपदं पंचविकल्पात्मकम् ५।

अब यहाँ प्रथम सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा करने हेतु देशामर्शक भाव से उत्तर सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उक्त ज्ञानावरणीय वेदना उत्कृष्ट भी होती है, अनुत्कृष्ट भी होती है, जघन्य भी होती है और अजघन्य भी होती है।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ ज्ञानावरणीय सामान्य की विवक्षा करने पर ओज पद नहीं है, क्योंकि स्पर्धकों, वर्गणाओं और अविभागप्रतिच्छेदों में कृतयुग्मभाव ही पाया जाता है।

शंका—यहाँ अनादि पद की सम्भावना कैसे है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि ज्ञानावरणीय भाव सामान्य की विवक्षा होने पर उसके अनादि होने में कोई विरोध नहीं आता है।

सादि पद का भी यहाँ अभाव नहीं है, क्योंकि विशेष की विवक्षा करने पर वह भी पाया जाता है। ध्रुव पद का भी अभाव नहीं है, क्योंकि सामान्य की मुख्यता होने पर वह भी पाया जाता है। अध्रुव पद का भी अभाव नहीं है, क्योंकि अनुभागविशेष की अथवा विशिष्ट एक जीव की विवक्षा करने पर अध्रुवपना देखा जाता है। इस कारण प्रथम सूत्र बारह (१२) भंग स्वरूप है, ऐसा समझना चाहिये।

पुनः द्वितीय पृच्छासूत्र का अर्थ कहा जाता है। वह इस प्रकार है—उत्कृष्ट अनुभागवेदना कथंचित् जघन्य है, क्योंकि अजघन्य पद में जघन्य से आगे के सभी विकल्प देखे जाते हैं। कथंचित् सादि है, क्योंकि अनुत्कृष्ट अनुभाग में स्थित जीव के उत्कृष्ट अनुभाग उत्पन्न होता है। उत्कृष्ट पद के अनादिपना नहीं है, क्योंकि नाना जीवों की विवक्षा होने पर भी उत्कृष्ट पद का अन्तर देखा जाता है। कथंचित् अध्रुव है, क्योंकि उत्पन्न हुए उत्कृष्ट पद का नियम से विनाश देखा जाता है। उत्कृष्ट पद के ध्रुवपना नहीं है, क्योंकि नाना जीवों की विवक्षा होने पर भी उत्कृष्ट पद का विनाश देखा जाता है। कथंचित् युग्म है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागस्वरूप स्पर्धकों, वर्गणाओं और अविभागप्रतिच्छेदों में कृतयुग्म संख्या ही पायी जाती है। कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट

संप्रति तृतीयपृच्छासूत्रस्यार्थ उच्यते—

तद्यथा—ज्ञानावरणीयानुत्कृष्टवेदना स्याद् जघन्या, उत्कृष्टादधस्तनसर्वविकल्पेषु अनुत्कृष्टसंज्ञितेषु जघन्यस्यापि प्रवेशदर्शनात्। स्यादजघन्या, जघन्यादुपरिमविकल्पेषु अजघन्यसंज्ञितेषु अनुत्कृष्टपदस्यापि प्रवेशदर्शनात्। स्यात्सादिका, अनुत्कृष्टपदविशेषं प्रतीत्यादिभावदर्शनात्। स्यादनादिका, अनुत्कृष्टसामान्यार्पणायां आदिभावानुपलंभात्। स्याद् ध्रुवा, अनुत्कृष्टसामान्येऽर्पिते विनाशानुपलंभात्। स्यादध्रुवा, अनुत्कृष्टपदविशेषेऽर्पिते सर्वानुत्कृष्टपदविशेषाणां विनाशदर्शनात्। स्याद् युग्मा, सर्वानुत्कृष्टविशेषगतानुभागस्पर्द्धक-वर्गणा-अविभागप्रतिच्छेदेषु कृतयुग्मसंख्याया उपलंभात्। स्यादोमा, काण्डकघातेनानुत्कृष्टपदविशेषस्य हानिदर्शनात्। स्याद् विशिष्टा, बंधेनानुभागवृद्धिदर्शनात्। स्यान्नोम-नोविशिष्टा, कुत्रापि अनुत्कृष्टपदविशेषस्य वृद्धिहान्योरनुपलंभात्। एवं अनुत्कृष्टपदं, दशविकल्पात्मकं भवति १०।

संप्रति चतुर्थपृच्छासूत्रस्य प्ररूपणा उच्यते। तद्यथा—जघन्यज्ञानावरणीयवेदना स्यादनुत्कृष्टा, उत्कृष्टादधस्तनविकल्पेऽनुत्कृष्टसंज्ञिते जघन्यस्यापि संभवात्। स्यात्सादिका, अजघन्यपदाद् जघन्यपदस्योत्पत्तिदर्शनात्। अनादिकभावो नास्ति, सर्वकालं जघन्यपदेनैवावस्थितजीवानुपलंभात्। स्यादध्रुवा, अजघन्यपदाद् जघन्यपदोत्पत्तेः। जघन्यस्य ध्रुवभावो नास्ति, जघन्यपदे चैव सर्वकालमवस्थितजीवानुपलंभात्। स्याद्युग्मा, जघन्यानुभागस्पर्द्धकवर्गणाविभागप्रतिच्छेदानां कृतयुग्मसंख्यानामुपलंभात्। ओजपदं नास्ति। स्याद् नोम-

---

है, क्योंकि एक विकल्प स्वरूप उत्कृष्ट अनुभाग में वृद्धि व हानि का अभाव है। इस प्रकार उत्कृष्ट पद पाँच विकल्प स्वरूप है।

अब तृतीय पृच्छासूत्र का अर्थ कहते हैं।

वह इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय की अनुत्कृष्ट वेदना कथंचित् जघन्य है, क्योंकि उत्कृष्ट से नीचे के अनुत्कृष्ट संज्ञा वाले सब विकल्पों में जघन्य पद का भी प्रवेश देखा जाता है। कथंचित् अजघन्य है, क्योंकि जघन्य से ऊपर के अजघन्य संज्ञावाले समस्त विकल्पों में अनुत्कृष्ट पद का भी प्रवेश देखा जाता है। कथंचित् सादि है, क्योंकि अनुत्कृष्ट पद विशेष की अपेक्षा उसके सादिता देखी जाती है। कथंचित् अनादि है, क्योंकि अनुत्कृष्ट सामान्य की विवक्षा होने पर सादिता नहीं पायी जाती है। कथंचित् ध्रुव है, क्योंकि अनुत्कृष्ट सामान्य की विवक्षा होने पर विनाश नहीं देखा जाता है। कथंचित् अध्रुव है, क्योंकि अनुत्कृष्ट पदविशेष की विवक्षा होने पर सब अनुत्कृष्ट पदविशेषों का विनाश देखा जाता है। कथंचित् युग्म है, क्योंकि सब अनुत्कृष्ट विशेषों में रहने वाले अनुभाग स्पर्धकों, वर्गणाओं और अविभाग प्रतिच्छेदों में कृतयुग्म संख्या पायी जाती है। कथंचित् ओम है, क्योंकि काण्डकघात से अनुत्कृष्ट पदविशेष की हानि देखी जाती है। कथंचित् विशिष्ट है, क्योंकि बंध से अनुभाग की वृद्धि देखी जाती है। कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट हैं, क्योंकि कहीं पर अनुत्कृष्ट पदविशेष की वृद्धि व हानि नहीं पायी जाती है। इस प्रकार अनुत्कृष्ट पद दस (१०) भेदरूप होता है।

अब चतुर्थ पृच्छासूत्र की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—

जघन्य ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट है, क्योंकि उत्कृष्ट से नीचे के अनुत्कृष्ट संज्ञावाले विकल्प में जघन्य पद की भी सम्भावना है। कथंचित् सादि है, क्योंकि अजघन्य पद से जघन्य पद की उत्पत्ति देखी जाती है। अनादिता नहीं है, क्योंकि सदा केवल जघन्य पद के साथ रहने वाले जीव नहीं पाये जाते हैं। कथंचित् अध्रुव है, क्योंकि अजघन्य पद से जघन्य पद उत्पन्न होता है। जघन्य पद के ध्रुवता नहीं है, क्योंकि जघन्य पद में ही सदा जीवों का अवस्थान नहीं पाया जाता। कथंचित् युग्म है, क्योंकि जघन्य अनुभाग संबंधी स्पर्धकों, वर्गणाओं और

नोविशिष्टा वर्द्धिते हापिते च जघन्यत्वाभावात्। एवं जघन्यपदं पंचविकल्पात्मकं ५।

संप्रति पंचमपृच्छासूत्रस्यार्थं उच्यते। तद्यथा—ज्ञानावरणीयस्याजघन्यवेदना स्यादुत्कृष्टा, स्यादनुत्कृष्टा, एतयोर्द्वयोः पदयोस्तत्रानुपलंभात्। स्यात्सादिका, अजघन्यपदविशेषं प्रतीत्य सादिकत्वदर्शनात्। स्यादनादिका, अजघन्यपदसामान्यं प्रतीत्यादेरभावात्। स्याद् ध्रुवा, अजघन्यपदसामान्यस्य त्रिष्वपि कालेषु विनाशाभावात्। स्यादध्रुवा, अजघन्यपदविशेषं प्रतीत्य विनाशदर्शनात्। स्याद् युग्मा, अजघन्यानुभागस्पर्द्धक-वर्गणाविभागप्रतिच्छेदेषु कृतयुग्मसंख्यायाश्चैवोपलंभात्। स्यादोमा, हापितेऽपि अजघन्यत्वदर्शनात्। स्याद् विशिष्टा, वर्द्धितेऽपि तदुपलंभात्। स्याद् नोम-नोविशिष्टा, वृद्धिहानिभ्यां विनावस्थिताजघन्यानुभागदर्शनात्। एवमजघन्यपदं दशविल्पात्मकं भवति १०।

संप्रति षष्ठपृच्छासूत्रं प्रतीत्यार्थप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—ज्ञानावरणीयस्य सादिवेदना स्यादुत्कृष्टा स्यादनुत्कृष्टा स्याद् जघन्या स्यादजघन्या। स्यादनादिका नानाजीपेक्षायां सादित्वेनापि आदिभावानुपलंभात्। स्याद् ध्रुवा, नानाजीवान् प्रतीत्य सर्वकालेषु सादित्वदर्शनात्। स्यादध्रुवा, सादिभावमापन्नानुभागस्य विनाशदर्शनात्। स्याद् युग्मा, अनुभागे स्पर्द्धकवर्गणाविभागप्रतिच्छेदेषु त्रिष्वपि कालेषु कृतयुग्मभावस्यैव दर्शनात्। स्यादोमा, हापितेऽपि सादित्वदर्शनात्। स्याद् विशिष्टा, वर्द्धितेऽपि तदुपलंभात्। स्यान्नोम-नोविशिष्टा, वृद्धिहानिभ्यां विनापि तदवस्थानदर्शनात्। एवं सादिकपदमेकादशविकल्पं भवति ११।

अविभागप्रतिच्छेदों की कृतयुग्म संख्याएं पायी जाती हैं। ओजपद नहीं है। कथंचित् नोओम नोविशिष्ट है, क्योंकि वृद्धि व हानि के होने पर जघन्यपना नहीं रह सकता। इस प्रकार जघन्य पद पाँच (५) भेद स्वरूप है।

अब पाँचवें पृच्छा सूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय की अजघन्य वेदना कथंचित् उत्कृष्ट है और कथंचित् अनुत्कृष्ट है, क्योंकि उसमें ये दोनों पद पाये जाते हैं। कथंचित् सादि है, क्योंकि अजघन्य पदविशेष की अपेक्षा सादिता देखी जाती है। कथंचित् अनादि है, क्योंकि अजघन्य पद सामान्य की अपेक्षा आदि का अभाव है। कथंचित् ध्रुव है, क्योंकि अजघन्य पद सामान्य की अपेक्षा तीनों ही कालों में उसका विनाश नहीं देखा जाता है। कथंचित् अध्रुव है, क्योंकि अजघन्य पद विशेष की अपेक्षा उसका विनाश देखा जाता है। कथंचित् युग्म है, क्योंकि अजघन्य अनुभाग के स्पर्धकों, वर्गणाओं और अविभागप्रतिच्छेदों की कृतयुग्म संख्या पायी जाती है। कथंचित् ओम है, क्योंकि हानि के होने पर भी अजघन्यता देखी जाती है। कथंचित् विशिष्ट है, क्योंकि वृद्धि के होने पर भी अजघन्यता देखी जाती है। कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि वृद्धि व हानि के होने के बिना अजघन्य अनुभाग का अवस्थान देखा जाता है। इस प्रकार अजघन्य पद दस (१०) भेद स्वरूप है।

अब छठे पृच्छासूत्र का आश्रय करके अर्थप्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है—

ज्ञानावरणीय की सादि वेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है व कथंचित् अजघन्य है। कथंचित् अनादि है, क्योंकि नाना जीवों की अपेक्षा सादि स्वरूप से भी आदिभाव नहीं पाया जाता। कथंचित् ध्रुव है क्योंकि नाना जीवों की अपेक्षा करके सब काल में उसकी सादिता देखी जाती है। कथंचित् अध्रुव है, क्योंकि सादिता को प्राप्त अनुभाग का विनाश देखा जाता है। कथंचित् युग्म है, क्योंकि तीनों ही कालों में अनुभाग के स्पर्धकों, वर्गणाओं और अविभागप्रतिच्छेदों में कृतयुग्मता ही देखी जाती है। कथंचित् ओम है, क्योंकि हानि के होने पर भी सादिता पायी जाती है। कथंचित् विशिष्ट है, क्योंकि वृद्धि के होने पर भी सादिता पायी जाती है। कथंचित् वह नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि वृद्धि व हानि के बिना भी उसका अवस्थान देखा जाता है। इस प्रकार सादिपद ग्यारह (११) भेदरूप होता है।

संप्रति सप्तमपृच्छासूत्रं प्रतीत्यार्थप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—अनादिकज्ञानावरणीयवेदना स्यादुत्कृष्टा स्यादनुत्कृष्टा स्याद् जघन्या स्यादजघन्या। स्यात्सादिका, ज्ञानावरणीयानुभागं प्रतीत्य सादित्वदर्शनात्। स्याद् ध्रुवा, अनुभागसामान्यस्य विनाशाभावात्। स्यादध्रुवा, तद्विशेषं प्रतीत्य विनाशदर्शनात्। स्याद् युग्मा, स्यादोमा स्याद् विशिष्टा स्यान्नोम-नोविशिष्टा। एवमनादिकपदमेकादशविकल्पं भवति ११।।

संप्रति अष्टमपृच्छासूत्रं प्रतीत्य अर्थप्ररूपणं करिष्यन्ति। तद्यथा—ध्रुवज्ञानावरणीयभाववेदना स्यादुत्कृष्टा स्यादनुत्कृष्टा स्याद् जघन्या स्यादजघन्या स्यात्सादिका स्यादनादिका स्याद् ध्रुवा स्यादध्रुवा स्याद् युग्मा स्यादोमा स्याद् विशिष्टा स्यान्नोम-नोविशिष्टा। एवं ध्रुवपदमेकादशविधं भवति ११।

संप्रति नवमपृच्छासूत्रं प्रतीत्य अर्थप्ररूपणं करिष्यन्ति। तद्यथा—अध्रुवज्ञानावरणीयभाववेदना स्यादुत्कृष्टा स्यादनुत्कृष्टा स्याद् जघन्या स्यादजघन्या स्यात्सादिका स्यादनादिका, नानाजीवेषु अनादिस्वरूपेणाध्रुवत्व-दर्शनात्। स्याद् ध्रुवा विशेषस्याभावेनाध्रुवस्यानुभागस्य सामान्यभावेन ध्रुवत्वदर्शनात्। स्याद् युग्मा स्यादोमा स्याद् विशिष्टा स्यान्नोम-नोविशिष्टा। एवमध्रुवपदं एकादश विकल्पं भवति ११।

दशमपृच्छासूत्रं प्रतीत्यार्थप्ररूपणं करिष्यन्त्याचार्यदेवाः। तद्यथा—युग्मज्ञानावरणीयभाववेदना स्यादुत्कृष्टा स्यादनुत्कृष्टा स्याद् जघन्या स्यादजघन्या स्यात्सादिका स्यादनादिका स्याद् ध्रुवा स्यादध्रुवा स्यादोमा स्याद् विशिष्टा स्याद् नोम-नोविशिष्टा। एवं युग्मपदं एकादशविकल्पं भवति ११।

अब सातवें पृच्छासूत्र की अपेक्षा करके अर्थ की प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है—

अनादि ज्ञानावरणवेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है व कथंचित् अजघन्य है। कथंचित् सादि है, क्योंकि ज्ञानावरणीय कर्म के अनुभाग विशेष का आश्रय करके सादिता देखी जाती है। कथंचित् ध्रुव है, क्योंकि अनुभागसामान्य का कभी विनाश नहीं होता। कथंचित् अध्रुव है, क्योंकि अनुभाग विशेष की अपेक्षा उसका विनाश देखा जाता है। कथंचित् युग्म है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है व कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है। इस प्रकार अनादि पद ग्यारह (११) भेदरूप होता है।

अब आठवें पृच्छासूत्र का आश्रय करके अर्थप्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—

ध्रुव ज्ञानावरणीय भाव वेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् अनादि है, कथंचित् ध्रुव है, कथंचित् अध्रुव है, कथंचित् युग्म है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है व कथंचित् नो ओम-नोविशिष्ट है। इस प्रकार ध्रुव पद ग्यारह (११) प्रकार का होता है।

अब नौवें पृच्छासूत्र का आश्रय कर अर्थ प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—अध्रुव ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है व कथंचित् अनादि है, क्योंकि नाना जीवों में अनादि स्वरूप से अध्रुवता पायी जाती है। कथंचित् ध्रुव है, क्योंकि विशेष की विवक्षा न होने से अध्रुव अनुभाग की सामान्यरूप से ध्रुवता देखी जाती है। कथंचित् युग्म है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है। इस प्रकार अध्रुव पद ग्यारह (११) विकल्परूप होता है।

दसवें पृच्छासूत्र का आश्रय कर आचार्यदेव अर्थप्ररूपणा करते हैं। वइ इस प्रकार है—

युग्म ज्ञानावरणीय भाववेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् अनादि है, कथंचित् ध्रुव है, कथंचित् अध्रुव है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है। इस प्रकार युग्म पद ग्यारह (११) विकल्परूप होता है।

संप्रति एकादशपृच्छासूत्रस्यार्थ उच्यते, नास्ति, अनुभागे ओजसंख्याभावात्।

संप्रति द्वादशपृच्छासूत्रस्यार्थ उच्यते। तद्यथा—

ओमज्ञानावरणीयभाववेदना स्यादनुत्कृष्टा स्यादजघन्या स्यात् सादिका स्यादनादिका स्याद् ध्रुवा स्यादध्रुवा स्याद् युग्मा। एवं ओमपदं सप्तविकल्पं भवति ७।

संप्रति त्रयोदशमपृच्छासूत्रं भणिष्यन्त्याचार्यदेवाः। तद्यथा—विशिष्टज्ञानावरणीयभाववेदना स्यादनुत्कृष्टा स्यादजघन्या स्यात्सादिका स्यादनादिका स्याद् ध्रुवा स्यादध्रुवा स्याद् युग्मा। एवं विशिष्टपदं सप्तविकल्पं भवति ७।

संप्रति चतुर्दशमपृच्छासूत्रार्थं भणिष्यन्त्याचार्यदेवाः। तद्यथा—नोम-नोविशिष्टा ज्ञानावरणीयभाववेदना-स्यादुत्कृष्टा स्यादनुत्कृष्टा स्याद् जघन्या स्यादजघन्या स्यात्सादिका स्यादनादिका स्याद् ध्रुवा स्यादध्रुवा स्याद् युग्मा। एवं नोम-नोविशिष्टपदं नवविकल्पं भवति ९।

अत्र सर्वसूत्रभंगांकसंदृष्टयो द्रष्टव्या भवन्ति—

१२।५।१०।५।१०।११।११।११।११।११ (०१) ७।७।९।

उक्तं च गाथायामपि—

बारस पण दस पण दस पंचेक्कारस य सत्त सत्त णव।
दुविहणयगहणलीणा पुच्छासुत्तंकसंदिट्ठी[१]।।

अब ग्यारहवें पृच्छासूत्र का अर्थ कहते हैं कि वह नहीं है, क्योंकि अनुभाग में ओज संख्या सम्भव नहीं है।

अब बारहवें पृच्छासूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—ओम ज्ञानावरणीय भाव वेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् अनादि है, कथंचित् ध्रुव है, कथंचित् अध्रुव है और कथंचित् युग्म है। इस प्रकार ओम पद सात (७) विकल्परूप है।

अब तेरहवें पृच्छासूत्र का अर्थ आचार्यदेव कहते है। वह इस प्रकार है—विशिष्ट ज्ञानावरणीय भाव वेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् अनादि है, कथंचित् ध्रुव है, कथंचित् अध्रुव है और कथंचित् युग्म है। इस प्रकार विशिष्ट पद सात (७) विकल्प रूप है।

अब चौदहवें पृच्छासूत्र का अर्थ आचार्यदेव कहते हैं। वह इस प्रकार है—

नोओम-नोविशिष्ट ज्ञानावरणीय भाववेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादिक है, कथंचित् अनादिक है, कथंचित् ध्रुव है, कथंचित् अध्रुव है, कथंचित् युग्म हैं। इस प्रकार नोओम-नोविशिष्ट पद नौ (९) भेदरूप है।

यहाँ सब सूत्रों के भंगों के अंकों की संदृष्टि देखें—

१२+५+१०+५+१०+११+११+११+११+११(+०)+७+७+९ है।

इसको गाथा के द्वारा भी बताया है—

बारस पण दस पण दस पंचेक्कारस य सत्त सत्त णव।
दुविहणयगहणलीणा पुच्छासुत्तंकसंदिट्ठी।।१।।

गाथार्थ—बारह, पाँच, दस, पाँच, दस, पाँच स्थानों में ग्यारह, सात-सात और नौ, इस प्रकार दोनों नयों की अपेक्षा यह पृच्छासूत्रों के अंकों की संदृष्टि है।।१।।

---

१. षट्खंडागम, धवलाटीका समन्वित, पु. १२ पृ. ११।

अत्र विशेषार्थः कथ्यते—अत्र वेदनाभावविधाने त्रीण्यनुयोगद्वाराणि कथितानि सन्ति—पदमीमांसा-स्वामित्वमल्पबहुत्वं च। उत्कृष्टादिपदैर्वेदनाभावविधानस्य यो विचारः क्रियते सैव पदमीमांसा नाम। अत्र सूत्रे उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यानां चतुर्णां पदानामेव निर्देशोऽस्ति किन्तु वीरसेनस्वामिना एभ्यः सूचितानि नव-पदान्यपि निगदितानि वर्तन्ते। सर्वे मिलित्वा एते त्रयोदशपदानि भवन्ति। तेष्वपि एकैकपदान्याश्रित्य शेषपदानां विचार्यमाणे एकोनसप्तत्यधिकशतपदानि भवन्ति। संप्रत्यत्र ज्ञानावरणीयभाववेदनामीमांसा प्रस्तुतास्ति।

संप्रति शेषकर्मणां पदप्ररूपणाकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं सत्तण्हं कम्माणं।।५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा ज्ञानावरणीयस्य पदमीमांसा प्ररूपिता तथैव सप्तानां कर्मणामपि प्ररूपयितव्यास्ति।**

एवं पदमीमांसानामप्रथमभेदप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इतो विशेषः—एकादशमतीर्थंकर श्रीश्रेयांसनाथजन्मभूमिसिंहपुर्यामागत्य[१] जिनमंदिरजिनप्रतिमाः वन्दित्वाग्रे प्रतिष्ठाप्यमानां एकादशफुटोत्तुंगप्रतिमां च विलोक्य हृष्टाभवम्। पुनश्च अष्टमतीर्थंकरश्रीचंद्रप्रभनाथस्य जन्मभूमिचन्द्रपुर्यां[२] समागत्य जन्मभूमिवंदनां कृतिकर्मविधिपूर्वकं अकार्षम्। एता वाराणसी-सिंहपुरी-चन्द्रपुरी-जन्मभूमयः श्रीमत्सुपार्श्वपार्श्वनाथ-श्रेयांसनाथ-चंद्रप्रभभगवन्तोऽपि अस्माकं स्वशुद्धात्मतत्त्वप्राप्त्यर्थं

यहाँ विशेषार्थ कहते हैं—वेदना भाव विधान में यहाँ तीन अधिकारों के द्वारा कथन किया गया है। वे तीन अनुयोगद्वार ये हैं—पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। उत्कृष्ट आदि पदों के द्वारा वेदनाभाव विधान के विचार का नाम ही पदमीमांसा है। यहां सूत्र में उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य इन चार पदों का ही निर्देश किया है। किन्तु वीरसेन स्वामी ने इनसे सूचित होने वाले नौ पद और गिनाए हैं। अतः ये कुल तेरह पद होते हैं। उसमें भी इनमें से एक-एक पद के आश्रय से शेष पदों का विचार करने पर कुल १६९ पद होते हैं। इस प्रकार यहाँ ज्ञानावरणीय भाव वेदना की मीमांसा प्रस्तुत की गई है।

अब शेष कर्मों की पद प्ररूपणा का कथन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के विषय में पदप्ररूपणा करनी चाहिए।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के पदों की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मों के पदों की प्ररूपणा करनी चाहिए।

इस प्रकार पदमीमांसा नामके प्रथम भेद का प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

यहाँ विशेष बात कही जाती है—

ग्यारवें तीर्थंकर श्रीश्रेयांसनाथ की जन्मभूमि सिंहपुरी में आकर जिनमंदिर और जिनप्रतिमा की वंदना करके आगे प्रतिष्ठित होने वाली प्रतिमाओं की और ग्यारह फुट उत्तुंग प्रतिमा को देखकर मुझे अत्यंत हर्ष का अनुभव हुआ। पुनः आठवें तीर्थंकर श्री चंद्रप्रभु भगवान की जन्मभूमि चंद्रपुरी में पहुँचकर कृतिकर्म विधिपूर्वक जन्मभूमि तीर्थ वंदना किया। ये वाराणसी, सिंहपुरी, चन्द्रपुरी नामक जन्मभूमियाँ एवं वहाँ जन्मे श्रीमान् तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ एवं चंद्रप्रभ भगवान् मेरे निजशुद्धात्म तत्त्व की प्राप्ति हेतु,

---

१. मार्गशीर्षे कृष्णापंचम्यां (२५-११-०२)। २. मार्गशीर्षे कृष्णासप्तम्यां (२७-११-०२)

शान्त्यर्थं सर्वपुष्टितुष्टिवृद्ध्यर्थं भवेयुः। कुण्डलपुरीयात्रा चापि निर्विघ्ना भवेदिति भावयामहे।

एवं ओजाधिकारगर्भितपदमीमांसानामाधिकारं समाप्तम्।

अधुना स्वामित्वभेदनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे।।६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र 'पद' शब्दः स्थानार्थे द्रष्टव्यः। जघन्यपदे एकं स्वामित्वमुत्कृष्टपदे द्वितीयं एवं स्वामित्वं द्विविधं ज्ञातव्यं।**

अजघन्यानुत्कृष्टपदाभ्यां सह चतुर्विधं किन्न भण्यते ?

नैतद् वक्तव्यं, किं चात्रैव तयोरन्तर्भावात्। तद्यथा—उत्कृष्टं द्विविधं ओघोत्कृष्टमादेशोत्कृष्टं चेति। तत्र संगृहीताशेषविकल्पमोघोत्कृष्टम्। अर्पितविकल्पादधिकमादेशमुत्कृष्टं। अनुत्कृष्टमादेशोत्कृष्टमित्येकार्थः। तेन 'उक्कस्सं' इत्युक्ते एतयोर्द्वयोरुत्कृष्टयोर्ग्रहणं भवति। जघन्यमपि द्विविधं—ओघजघन्यमादेशजघन्यमिति। यस्मादधोऽन्यो विकल्पो नास्ति तदोघजघन्यं, अर्पितादेकविकल्पादिना परिहीनमादेशजघन्यं। अत्र सूत्रे 'जहण्णपदे' इत्युक्ते एतयोर्द्वयोरापि जघन्ययोर्ग्रहणं कर्तव्यं। तेन स्वामित्वं द्विविधं चैव न चतुर्विधं। अतोऽग्रेपि यत्र यत्र द्विविधं स्वामित्वं इति भणिष्यति तत्र तत्र चैव द्विविधभावसमर्थना कर्तव्या।

शांति हेतु एवं समस्त पुष्टि-तुष्टि और वृद्धि में हेतु होवें। और मेरी कुण्डलपुरी तीर्थयात्रा भी निर्विघ्न सम्पन्न होवे यही मंगल भावना है।

इस प्रकार ओज अधिकार गर्भित पदमीमांसा नामका अधिकार समाप्त हुआ।

अब स्वामित्व के भेदों का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व दो प्रकार का होता है—जघन्यपद विषयक और उत्कृष्ट पद विषयक।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ 'पद' शब्द का अर्थ स्थान में समझना चाहिए। जघन्य पद में एक स्वामित्व होता है और दूसरा स्वामित्व उत्कृष्ट पद में होता है। इस प्रकार से स्वामित्व के दो भेद जानना चाहिए।

शंका—अजघन्य और अनुत्कृष्ट पद विषयक स्वामित्व के साथ स्वामित्व चार प्रकार का क्यों नहीं कहा ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इन्हीं दोनों में उनका अन्तर्भाव हो जाता है। वह इस प्रकार है—उत्कृष्ट स्वामित्व दो प्रकार का है—ओघ उत्कृष्ट और आदेश उत्कृष्ट। उनमें से समस्त विकल्पों का संग्रह करने वाला ओघ उत्कृष्ट स्वामित्व है और विवक्षित विकल्प से अधिक आदेश उत्कृष्ट स्वामित्व है। अनुत्कृष्ट और आदेश उत्कृष्ट इन दोनों का एक अर्थ है, इसी कारण 'उत्कृष्ट' ऐसा कहने पर इन दोनों उत्कृष्टों का ग्रहण हो जाता है।

जघन्य भी दो प्रकार का है—ओघ जघन्य और आदेश जघन्य। जिसके नीचे और कोई दूसरा विकल्प नहीं रहता वह ओघ जघन्य स्वामित्व है तथा विवक्षित विकल्प से एक विकल्प आदि से हीन आदेश जघन्य स्वामित्व है। उनमें से 'जघन्य पद' ऐसा कहने पर इन दोनों ही जघन्यों का ग्रहण करना चाहिये। इसलिये स्वामित्व दो प्रकार का ही है, चार प्रकार का नहीं। इसलिए जहाँ-जहाँ स्वामित्व दो प्रकार का कहा गया है या कहा जावेगा वहाँ-वहाँ इसी प्रकार दो भेदों का समर्थन करना चाहिये।

संप्रति उत्कृष्टपदे ज्ञानावरणीयभाववेदना निरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया कस्स ?।।७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्मिन् सूत्रे 'सामित्तेण' इति पदे तृतीया विभक्तिर्वर्तते, लक्षणेऽपि तृतीयाविभक्तिविधानात्। 'उक्कस्सपद' निर्देशेन जघन्यपदप्रतिषेधः कृतः। शेषकर्मप्रतिषेधार्थं 'ज्ञानावरणीय' निर्देशः कृतः। द्रव्यादिप्रतिषेधफलो 'भाव' निर्देशः। 'कस्स' इत्युक्ते किं नारकस्य तिरश्चो मनुष्यस्य देवस्य एकेन्द्रियस्य द्वीन्द्रियस्य त्रीन्द्रियस्य चतुरिन्द्रियस्य वा इति पृच्छा कृता आशंका वा।**

अधुना ज्ञानावरणभाववेदनास्वामिप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

अण्णदरेण पंचिंदिएण सण्णिमिच्छाइट्ठिणा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदेण सागारुवजोगेण जागारेण णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठेण बंधल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि।।८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतत्सूत्रमुत्कृष्टानुभागं बध्यमानस्य जीवस्य लक्षणं प्ररूपयति। विकलेन्द्रिया जीवा उत्कृष्टानुभागं न बध्नन्ति पंचेन्द्रियाश्चैव बध्नन्ति, इति ज्ञापनार्थं 'पंचिंदिएण' इति भणितं। वेदावगाहनागति-विशेषाभावप्रतिपादनार्थं 'अण्णदरेण' इत्युक्तं। असंज्ञिप्रतिषेधार्थं 'सण्णि' निर्देशः कृतः। सासादनादि प्रतिषेधफलं 'मिच्छाइट्ठि' निर्देशोऽस्ति। अपर्याप्तकाले उत्कृष्टानुभागबंधो नास्ति, पर्याप्तकाले**

अब उत्कृष्ट पद में ज्ञानावरणीय भाववेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व की अपेक्षा उत्कृष्ट पद में भाव से ज्ञानावरणीय की उत्कृष्ट वेदना किसके होती है ?।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र में 'सामित्तेण' इस पद में तृतीय विभक्ति है, क्योंकि लक्षण में भी तृतीया विभक्ति का विधान किया जाता है। सूत्र में उत्कृष्ट पद के निर्देश से जघन्य पद का प्रतिषेध किया है। शेष कर्मों का प्रतिषेध करने के लिए ज्ञानावरणीय पद का निर्देश किया है। भाव पद के निर्देश का फल द्रव्यादि का प्रतिषेध करना है। "किसके होती है' ऐसा कहने पर 'क्या नारकी के, तिर्यंच के, मनुष्य के, देव के, एकेन्द्रिय के, द्वीन्द्रिय के, त्रीन्द्रिय के अथवा चतुरिन्द्रिय के होती है' ऐसी पृच्छा अथवा आशंका प्रकट की गई है।

अब ज्ञानावरण भाववेदना के स्वामी का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

अन्यतर पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, सब पर्याप्तियों से पर्याप्त अवस्था को प्राप्त साकार उपयोग युक्त, जाग्रत और नियम से उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त जिस जीव के द्वारा बंध होता है और जिस जीव के इसका सत्व होता है।।८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह सूत्र उत्कृष्ट अनुभाग को बांधने वाले जीव का लक्षण बतलाता है। विकलेन्द्रिय उत्कृष्ट अनुभाग को नहीं बांधते हैं किन्तु पंचेन्द्रिय ही बांधते हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ सूत्र में पंचेन्द्रिय पद का निर्देश किया है। वेद, अवगाहना एवं गति आदि की विशेषता का अभाव बतलाने के लिये 'अन्यतर' पद दिया है। असंज्ञी का प्रतिषेध करने के लिए 'संज्ञी' पद का निर्देश किया है। सासादन आदि का

चैव बध्यते इति ज्ञापनार्थं 'सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदेण' इति भणितं। दर्शनोपयोगकाले उत्कृष्टानुभागबंधो नास्ति ज्ञानोपयोगकाल एव भवतीति ज्ञापनार्थं 'सागार' निर्देशः कृतः। सुप्तावस्थायां उत्कृष्टानुभागबंधो न भवितुं शक्यते जाग्रतो जीवस्यैवास्ति इति सूचनार्थं 'जागार' निर्देशः कृतः। मंद-मंदतर-मंदतम-तीव्र-तीव्रतर-तीव्रतमभेदेन षट्सु संक्लेशस्थानेषु षष्ठसंक्लेशस्थाने स उत्कृष्टानुभागो बध्यते इति ज्ञापनार्थं 'उक्कस्स संकिलिट्ठेण' इति कथितं। न च स एकविकल्पः आदेशोत्कृष्ट-ओघोत्कृष्टयोर्द्वयोरपि ग्रहणात्। 'णियमा' शब्दो येन मध्यदीपकस्तेन नियमात् पंचेन्द्रियेण नियमात् संज्ञिमिथ्यादृष्टिना नियमात् सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तगतेन नियमात् साकारोपयोगेन नियमात जाग्रता जीवेन नियमात् उत्कृष्टसंक्लेशेण इति वक्तव्यं। एवंविधेन जीवेन बद्धमुत्कृष्टानुभागं यस्य तत्सत्त्वकर्म अस्ति तस्येति उक्तं भवति।

तात्पर्यमेतत्—कस्यामपि गतौ स्थितस्य पंचेन्द्रिय-संज्ञि-मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक-ज्ञानोपयोगयुक्त-जागृत-उत्कृष्टसंक्लेशपरिणामयुक्त-बध्यमानोत्कृष्टानुभागसत्त्वसहितस्य जीवस्य ज्ञानावरणीयवेदना भावापेक्षया उत्कृष्टा भवति इति ज्ञातव्यमत्र।

अस्य सत्त्वं कस्येति आशंकायां सूत्रमवतार्यते —

तं एइंदियस्स वा बीइंदियस्स वा तीइंदियस्स वा चउरिंदियस्स वा पंचिंदियस्स वा सण्णिस्स वा असण्णिस्स वा बादरस्स वा सुहुमस्स वा पज्जत्तस्स वा

प्रतिषेध करने के लिए 'मिथ्यादृष्टि' पद का ग्रहण किया है। अपर्याप्त काल में उत्कृष्ट अनुभाग का बंध नहीं होता, किन्तु पर्याप्त काल में ही उसका बंध होता है, इस बात के ज्ञापनार्थ 'सब पर्याप्तियों से पर्याप्त अवस्था को प्राप्त' ऐसा कहा है। दर्शनोपयोग के काल में उत्कृष्ट अनुभाग का बंध नहीं होता, किन्तु ज्ञानोपयोग के काल में ही होता है यह बतलाने के लिए 'साकार' पद का निर्देश किया है। सुप्त अवस्था में उत्कृष्ट अनुभाग का बंध नहीं होता, किन्तु जागृत अवस्था में ही होता है, यह बतलाने के लिये 'जागार' पद का निर्देश किया है। मन्द, मन्दतर, मन्दतम, तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम के भेद से छह संक्लेशस्थानों में से छठे संक्लेश स्थान में वह उत्कृष्ट अनुभाग बांधता है, यह बतलाने के लिये 'उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त' ऐसा कहा गया है। वह एक प्रकार का नहीं है, क्योंकि यहाँ आदेश उत्कृष्ट और ओघ उत्कृष्ट इन दोनों का ही ग्रहण है। सूत्र में आया हुआ 'णियमा' पद चूँकि मध्य दीपक है अतः "नियम से पंचेन्द्रिय, नियम से संज्ञी एवं मिथ्यादृष्टि नियम से सब पर्याप्तियों द्वारा पर्याप्त अवस्था को प्राप्त, नियम से साकारोपयोग से, नियम से जाग्रत जीव से, नियम से उत्कृष्ट संक्लेश से सहित" ऐसा कहना चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त विशेषणों से संयुक्त जीव के द्वारा बांधे गये उत्कृष्ट अनुभाग का सत्व जिस जीव के होता है उसके ज्ञानावरणीय वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है यह उक्त कथन का अभिप्राय है।

तात्पर्य यह है कि किसी भी गति में स्थित पंचेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक ज्ञानोपयोग से संयुक्त जागृत उत्कृष्ट संक्लेश के परिणामों से युक्त बध्यमान उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व से सहित जीव के ज्ञानावरणीय वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है ऐसा यहाँ जानना चाहिए।

इसका सत्त्व किसके होता है ? ऐसी आशंका होने पर सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उसका सत्त्व एकेन्द्रिय अथवा द्वीन्द्रिय अथवा त्रीन्द्रिय अथवा चतुरिन्द्रिय अथवा पंचेन्द्रिय अथवा संज्ञी अथवा असंज्ञी अथवा बादर अथवा सूक्ष्म अथवा पर्याप्त अथवा

अपज्जत्तस्स वा अण्णदरस्स जीवस्स अण्णदवियाए गदीए वट्टमाणस्स तस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा।।९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**तत्सत्त्वकर्म भूत्वा एकेन्द्रियादिषु अपर्याप्तावसानेषु लभ्यते।**

अत्र कश्चिदाशंकते—अन्यत्र बद्धस्योत्कृष्टानुभागस्यान्यत्र कथं संभवः ?

आचार्यः समाधत्ते—नैष दोषः, उत्कृष्टानुभागं बंधयित्वा तस्य काण्डकघातमकृत्वान्तर्मुहूर्तेन कालेन एकेन्द्रियादिषु उत्पन्नानां जीवानां उत्कृष्टानुभागसत्त्वोपलंभात्। एवमेतेषु अवस्थाविशेषेषु वर्तमानस्य ज्ञानावरणीयवेदना भावत उत्कृष्टा भवतीति गृहीतव्यम्।

अत्रोपसंहारः किमिति नोच्यते ?

नैष दोषः, स्थान-स्पर्द्धक-वर्गणाविभागप्रतिच्छेदेषु अनिपुणस्य शिष्यस्य उपसंहारे भण्यमाने व्यामोहो मा भवत्विति कृत्वा तत्प्ररूपणाया अकरणात्।

संप्रति अनुत्कृष्टभाववेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।।१०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**तस्मादुत्कृष्टानुभागाद् व्यतिरिक्तं तद्व्यतिरिक्तं, सा अनुत्कृष्टा भाववेदना भवति।**

अत्र कश्चिदाशंकते—अत्रानुत्कृष्टस्थानानां पृथक्-पृथक् प्ररूपणा किन्न क्रियते ?

अपर्याप्त अन्यतर जीव के अन्यतम गति में विद्यमान होने पर होता है, अतएव उक्त जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।।९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वह सत्त्वकर्म सूत्र में कही गई एकेन्द्रिय से लेकर अपर्याप्त अवस्था तक सब अवस्थाविशेषों में पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

अन्यत्र बांधे गये उत्कृष्ट अनुभाग की दूसरी जगह सम्भावना कैसे हो सकती है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग को बांधकर इसका काण्डकघात किये बिना अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर एकेन्द्रियादिकों में उत्पन्न हुए जीवों के उत्कृष्ट अनुभाग का सत्व पाया जाता है। इस प्रकार इन अवस्थविशेषों में वर्तमान जीव के ज्ञानावरणीयवेदनाभाव से उत्कृष्ट होती है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

शंका—यहाँ उपसंहार का कथन क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जो शिष्य स्थान, स्पर्धक, वर्गणा और अविभाग प्रतिच्छेद के विषय में निपुण नहीं है उसे उपसंहारक कथन करने पर व्यामोह न हो इस कारण यहाँ उपसंहारक कथन नहीं किया है।

अब अनुत्कृष्ट भाववेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे भिन्न अनुत्कृष्ट भाव वेदना होती है।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उससे अर्थात् उत्कृष्ट अनुभाग से भिन्न जो वेदना है, वह तद्व्यतिरिक्त कहलाती है और वह अनुत्कृष्ट भाव वेदना है।

यहाँ कोई शंका करता है—

आचार्यदेवः समाधत्ते—नैतत्, उपरिमानुभागचूलिकायां अनुभागस्थानप्ररूपणां भणिष्यन्ति अत्रापि तत्प्ररूपणायां क्रियमाणायां पुनरुक्तदोषो भवतीति तदकरणात्।

अधुना दर्शनावरणादित्रिककर्मणां भाववेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।।११।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा ज्ञानावरणीयानुभागस्य उत्कृष्टानुकृष्टप्ररूपणा कृता तथैव शेषाणां त्रयाणां घातिकर्मणामुत्कृष्टानुत्कृष्टानुभागप्ररूपणा कर्तव्या, विशेषाभावात्।**

संप्रति वेदनीयवेदनानिरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्र चतुष्टयमवतार्यते —

सामित्तेण उक्कस्सपदे वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया कस्स ?।।१२।।

अण्णदरेण खवगेण सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेण चरिमसमयबद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि।।१३।।

तं खीणकसायवीदरागछदुमत्थस्स वा सजोगिकेवलिस्स वा तस्स वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा।।१४।।

यहाँ अनुत्कृष्ट स्थानों की पृथक् पृथक् प्ररूपणा क्यों नहीं करते ?

आचार्य देव इसका समधान देते है कि—

ऐसा नहीं है, क्योंकि आगे अनुभाग चूलिका में अनुभागस्थानों का कथन करेंगे ही, इसलिए यहाँ भी उनका कथन करने पर चूँकि पुनरुक्त दोष होता है, अतः उनका कथन नहीं किया है।

अब दर्शनावरण आदि तीन कर्मों की भाववेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय के विषय में प्ररूपणा करनी चाहिये।।११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग के स्वामी की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष तीन घातिया कर्मों की प्ररूपणा करनी चाहिये, क्योंकि इससे उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब वेदनीय कर्म की वेदना का निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व से उत्कृष्ट पद में वेदनीयवेदनाभाव की अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ?।।१२।।

अन्यतर क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत जिस जीव के द्वारा अंतिम समय में बंध होता है और जिस जीव के इसका सत्व होता है।।१३।।

उसका सत्त्व क्षीणकषायवीतराग छद्मस्थ के होता है अथवा सयोगिकेवली के होता है, अतएव उनके वेदनीय की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।।१४।।

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।।१५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**स्वामित्वेन उत्कृष्टपदे वेदनीयस्य वेदना भावतः उत्कृष्टा कस्य भवतीति प्रश्ने सति आचार्यदेवाः कथयिष्यन्ति—वेदावगाहनादिविशेषाभावप्रतिपादनार्थं सूत्रे 'अण्णदरेण' इति भणितं। अक्षपकप्रतिषेधार्थं 'खवगेण' इति निर्दिष्टं। 'सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेण' इति निर्देशः शेषक्षपकप्रतिषेधफलः। द्विचरमादिसमयेषु बद्धानुभागप्रतिषेधार्थं 'चरिमसमयबद्धल्लयं' इति भणितं। एतेन सूत्रेण चरमसमयसूक्ष्म-सांपरायिकशुद्धिसंयतः उत्कृष्टानुभागस्वामी भवतीति ज्ञापितं। न केवलमेष एव उत्कृष्टानुभागस्वामी भवति, किन्तु यस्य तत्सत्त्वकर्मास्ति सोऽपि स्वामी भवति। तत्सत्त्वकर्म केषु भवतीति कथिते एतेषु महामुनिषु भगवत्सु वा भवतीति ज्ञापनार्थं उत्तरसूत्रेण भणितमस्ति।**

क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थस्य वा सयोगिकेवलिनो वा तस्य वेदनीयवेदना भावापेक्षया उत्कृष्टा भवति।

सातावेदनीयोत्कृष्टानुभागं बंधयित्वा क्षीणकषाय-सयोगिअयोगिगुणस्थानानि प्राप्तस्य वेदनीयत्कृष्टानुभागः एतेषु गुणस्थानेषु लभ्यते।

कश्चिदाशंकते अत्र—

सूत्रे अयोगिनिर्देशेन विना कथमयोगिनि उत्कृष्टानुभागो भवतीति लभ्यते ? द्वितीयो ''वा'' शब्देन तदुपलब्धिरेतदपि न वक्तव्यं। किंच ''पंचिंदियस्स वा'' इत्यादिकेषु स्थितो 'वा' शब्द इव द्वितीयो ''वा''

उससे भिन्न अनुत्कृष्ट वेदना है।।१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वामित्व से उत्कृष्ट पद में वेदनीय कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ? ऐसा प्रश्न होने पर आचार्यदेव कहते हैं कि—

वेद व अवगाहना आदि की कोई विशेषता विवक्षित नहीं है यह बतलाने के लिये सूत्र में 'अन्यतर' पद कहा गया है। अक्षपक का प्रतिषेध करने के लिए 'क्षपक' पद का निर्देश किया है। 'सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयत' के निर्देश का प्रयोजन शेष क्षपकों का प्रतिषेध करना है। द्विचरम आदिक समयों में बांधे गये अनुभाग का प्रतिषेध करने के लिये 'चरिम समय में बांधा गया' ऐसा कहा है। इस सूत्र के द्वारा अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत उत्कृष्ट अनुभाग का स्वामी होता है, यह प्रगट किया गया है। केवल यही जीव उत्कृष्ट अनुभाग का स्वामी होता है, यह बात नहीं है किन्तु जिस जीव के उसका सत्व रहता है वह भी उसका स्वामी होता है। उसका सत्व किसके होता है, ऐसा पूछने पर उन महामुनि अथवा भगवन्तों में उसका सत्व होता है, यह बतलाने के लिये आगे का सूत्र कहा है।

उसका सत्त्व क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ के होता है अथवा सयोगकेवली के होता है अतएव उनके वेदनीय की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।

सातावेदनीय के उत्कृष्ट अनुभाग को बांधकर क्षीणकषाय, सयोगी और अयोगी गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव के इन गुणस्थानों में वेदनीय का उत्कृष्ट अनुभाग पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

सूत्र में अयोगी पद का निर्देश किये बिना अयोगिकेवली गुणस्थान में उत्कृष्ट अनुभाग होता है, यह कैसे जाना जाता है? द्वितीय 'वा' शब्द से उसका परिज्ञान होता है यह भी यहाँ नहीं कहा जा सकता है, कारण कि

शब्द उक्तार्थसमुच्चये प्रवृत्तेरिति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

भवतु नाम, 'पंचिंदियस्स वा' इत्यादिषु स्थितो ''वा'' शब्दानां प्रवृत्तिः प्रोक्तार्थसमुच्चये, तत्रान्यार्थाभावात्। किन्तु अत्रतनो द्वितीयो ''वा'' शब्दोऽनुक्तार्थसमुच्चये वर्तते, प्रथमो ''वा'' शब्देनैव उक्तसमुच्चयार्थसिद्धेः। ततो द्वितीयो ''वा'' शब्दोऽयोगि केवलिग्रहणनिमित्त इति गृहीतव्यः। अथवा, भवतु नाम द्वितीयो ''वा'' शब्दोऽपि उक्तसमुच्चयार्थः।

पुनरपि कश्चित् पृच्छति—

अयोगिनः कथं पुनः ग्रहणं भवति ?

आचार्यदेव उत्तरयति—अर्थापत्तेरेव तस्य ग्रहणं भवति। तद्यथा—क्षीणकषाय-सयोगिग्रहणं शुभानां प्रकृतीनां विशुद्ध्या केवलिसमुद्घातेन योगनिरोधेन वा अनुभागघातो नास्ति इति ज्ञापयति।

क्षीणकषाय-सयोगिनोः स्थिति-अनुभागघातयोः सतोरपि शुभानां प्रकृतीनां अनुभागघातो नास्तीति सिद्धे अयोगिनि भगवति स्थितिघात-अनुभागघातवर्जिते शुभानां प्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागो भवतीति अर्थापत्त्या सिद्धं।

अत्र कश्चिदाह—सूक्ष्मसांपरायिकक्षपकस्य उत्कृष्टानुभागस्थितिबंधो द्वादशमुहूर्तमात्रोऽस्ति, स कथं सयोगि-अयोगिकेवलिनोर्लभ्यते ? न च द्वादशमुहूर्तस्याभ्यन्तरे तदुभयगुणस्थानमुपगतयोरुपलभ्यते परतो नोपलभ्यते इति वक्तुं युक्तं, वेदनीयक्षेत्रवेदनायां उत्कृष्टायां सन्त्यां तस्यैव भावो नियमेन उत्कृष्ट इति एतेन

'पंचिंदियस्स वा' इत्यादिकों में स्थित वा शब्द के समान द्वितीय वा शब्द उक्त अर्थ के समुच्चय में प्रवृत्त है?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

पंचिदियस्स' इत्यादिकों में स्थित वा शब्दों की प्रवृत्ति उक्त अर्थ के समुच्चय में भले ही हो, क्योंकि वहाँ उनका दूसरा अर्थ नहीं है। किन्तु यहाँ स्थित द्वितीय 'वा' शब्द अनुक्त अर्थ के समुच्चय में प्रवृत्त है, क्योंकि उक्त समुच्चयरूप अर्थ की सिद्धि प्रथम वा शब्द से ही हो जाती है। अतएव द्वितीय वा शब्द को अयोगिकेवली का ग्रहण करने के निमित्त समझना चाहिए। अथवा द्वितीय 'वा' शब्द भी उक्त अर्थ का समुच्चय करने के लिये है।

पुनः कोई पूछता है—

तो फिर अयोगिकेवली का ग्रहण कैसे होता है।

आचार्यदेव इसका उत्तर देते हैं कि—

अर्थापत्ति से ही उसका ग्रहण हो जाता है। वह इस प्रकार है—सूत्र में क्षीणकषाय और सयोगिकेवली का ग्रहण यह प्रकट करता है कि शुभ प्रकृतियों के अनुभाग का घात विशुद्धि से , केवलीसमुद्घात अथवा योग निरोध से नहीं होता है।

क्षीणकषाय और सयोगी गुणस्थानों में स्थितिघात व अनुभाग घात के होने पर भी शुभ प्रकृतियों के अनुभाग का घात वहाँ नहीं होता, यह सिद्ध होने पर स्थिति घात व अनुभाग घात से रहित अयोगी गुणस्थान में शुभ प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग होता है, ऐसा अर्थापत्ति से सिद्ध है।

यहाँ कोई शंका करता है—

सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक के उत्कृष्ट अनुभाग व स्थिति का बंध बारह मुहूर्त प्रमाण होता है, वह सयोगी और अयोगकेवली में भला कैसे पाया जा सकता है। यदि कहा जाय कि बारह मुहूर्तों के भीतर ही उन दोनों गुणस्थानों को प्राप्त हुए जीवों के वह पाया जाता है आगे नहीं पाया जाता, सो यह कहना भी उचित नहीं है,

सूत्रेण सह विरोधात् ?

आचार्यदेवः प्राह — न, पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रस्थितिषु स्थितप्रदेशानां बंधानुभागस्वरूपेण परिणतानां स्तोकानामुपलंभात्।

एतत्कुतो ज्ञायते ?

''बंधे उक्कड्डदि'' इति वचनात्।

तदुत्कृष्टवेदनाया व्यतिरिक्ता अनुत्कृष्टा वेदना भवति।

अधुना नामगोत्रयोरुत्कृष्टवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं णामा-गोदाणं।।१६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **यशःकीर्ति-उच्चगोत्रयोः सूक्ष्मसांपरायिकक्षपकचरमसमये उत्कृष्टबंधोपलंभात्।**

अत्र कश्चिदाशंकते —

यथा घातिकर्मणां मिथ्यादृष्टिजीवे उत्कृष्टसंक्लेशप्राप्ते उत्कृष्टानुभागस्वामित्वं दत्तं तथा एतासां किन्न विद्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद् वक्तव्यं, तत्रतन-उत्कृष्टसंक्लेशेन शुभप्रकृतीनां बंधाभावात् तत्रतनाशुभप्रकृति-अनुभागसत्त्वकर्मणोऽपि चरमसमयसूक्ष्मसांपरायिकेन बद्धशुभप्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

क्योंकि वेदनीयक्षेत्र वेदना के उत्कृष्ट होने पर उसी के उसका भाव भी नियम से उत्कृष्ट होता है, इस सूत्र के साथ विरोध होगा ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि बांधे गये अनुभाग स्वरूप से परिणत पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितियों में स्थित प्रदेश थोड़े पाये जाते है।

शंका — यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान — वह 'बंधे उक्कड्डदि' इस वचन से जाना जाता है।

उस उत्कृष्ट वेदना से भिन्न अनुत्कृष्ट वेदना होती है।

अब नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार नाम व गोत्र कर्म के विषय में भी जानना चाहिए।।१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यशःकीर्ति और उच्चगोत्र का सूक्ष्मसांपरायिक क्षपक के अंतिम समय में उत्कृष्ट बंध उपलब्ध होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

जिस प्रकार उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त मिथ्यादृष्टि जीव के घातिया कर्मों के उत्कृष्ट अनुभाग का स्वामित्व बताया गया है उसी प्रकार इनका क्यों नहीं बताया जाता है ?

आचार्यदेव इसका समधान देते हैं कि —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि मिथ्यादृष्टि के उत्कृष्ट संक्लेश के द्वारा प्रकृतियों का बंध नहीं होता तथा वहाँ की अशुभ प्रकृतियों के अनुभागसत्त्व की अपेक्षा भी अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक के द्वारा बांधा गया शुभ प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा पाया जाता है।

अधुना आयुःकर्मोत्कृष्टवेदनानिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

सामित्तेण उक्कस्सपदे आउववेयणा भावदो उक्कस्सिया कस्स ?।।१७।।

अण्णदरेण अप्पमत्तसंजदेण सागारजागारतप्पाओग्गविसुद्धेण बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि।।१८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**साकारोपयोगयुक्त-जागृत-तद्योग्यविशुद्धियुक्त-अप्रमत्तसंयतो यदायुःकर्म बध्नाति तथा च यस्य अस्यायुःसत्त्वमस्ति तस्यैवायुःकर्मण उत्कृष्टवेदना भवति।**

अस्मिन् सूत्रेऽवगाहनादिभिर्भेदाभावप्रतिपादनार्थं ''अण्णदरेण'' इति भणितमस्ति। अप्रमत्तसंयत एवोत्कृष्टानुभागबंधो भवति न प्रमत्तमुनेरिति ज्ञापनार्थं 'अप्पमत्तसंजदेण' इति निरूपितं। दर्शनोपयोगे सुप्तावस्थायां वा उत्कृष्टानुभागबंधो नास्ति इति सूचनार्थं ''सागारजागार'' निर्देशः कृतः। अतिविशुद्ध्या अति संक्लेशेण चायुषो बंधो नास्तीति ज्ञापनार्थं ''तप्पाओग्गविसुद्धेण'' इति कथितमस्ति। येनायुषः उत्कृष्टानुभागो बद्धः स उत्कृष्टानुभागस्य स्वामी भवतीति सूचनार्थं सूत्रे ''बद्धल्लयं'' इति भणितं। द्वितीयादिसमयेषु बंधविरहितेषु उत्कृष्टानुभागः किं भवति न वा भवतीति पृच्छायां यस्स तत्सत्त्वकर्म अस्ति सोऽपि उत्कृष्टानुभागस्वामी भवतीति भणितमत्र।

अब आयुकर्म की उत्कृष्ट वेदना का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व से उत्कृष्ट पद में आयु कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ?।।१७।।

साकार उपयोग युक्त, जागृत और उसके योग्य विशद्धियुक्त अन्यतर जिस अप्रमत्तसंयत के द्वारा आयुकर्म का बंध होता है और जिसके इसका सत्व होता है।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—साकारोपयोग से सहित, जागृत और उसके योग्य विशुद्धि से समन्वित अप्रमत्तसंयत मुनि जिस आयुकर्म का बंध करते हैं और जिसके इस आयु का सत्त्व पाया जाता है उसी के आयुकर्म की उत्कृष्ट वेदना होती है।

इस सूत्र में अवगाहना आदि से होने वाली विशेषता का अभाव बतलाने के लिये 'अन्यतर' पद कहा है। अप्रमत्त गुणस्थान में ही उत्कृष्ट अनुभाग बंध होता है, प्रमत्त गुणस्थान में वह नहीं होता, यह बतलाने के लिये 'अप्रमत्त संयत के द्वारा' ऐसा कहा है। दर्शनोपयोग में अथवा सुप्त अवस्था में उत्कृष्ट अनुभाग का बंध नहीं होता, यह बतलाने के लिये 'साकार उपयोग सहित व जागृत' ऐसा निर्देश किया है। अत्यन्त विशुद्धि एवं अत्यंत संक्लेश से आयु का बंध नहीं होता यह बतलाने के लिये 'उसके योग्य विशुद्धि से संयुक्त' यह कहा है। जिसने आयु के उत्कृष्ट अनुभाग को बांधा है वह उत्कृष्ट अनुभाग का स्वामी होता है, यह बतलाने के लिये 'बद्धल्लयं' ऐसा सूत्र में निर्देश किया है। बंध से रहित द्वितीयादिक समयों में क्या उत्कृष्ट अनुभाग होता है या नहीं होता ऐसा पूछने पर जिसके उसका सत्त्व है वह भी उत्कृष्ट का स्वामी होता है यह कहा है।

तत्सत्त्वकर्म कस्यास्ति इति प्रश्ने सति अमुकस्य जीवस्यास्तीति ज्ञापनार्थं उत्तरसूत्रमवतरितमस्ति —

तं संजदस्स वा अणुत्तरविमाणवासियदेवस्स वा । तस्स आउववेयणा भावदो उक्कस्सा।।१९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूत्रे ''तं संजदस्स वा'' इत्युक्तेऽपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपरायिकोपशामकानां उपशान्तकषायाणां महामुनीनां प्रमत्तसंयतानां च ग्रहणं कर्तव्यं।**

अत्र कश्चिदाह—

प्रमत्तसंयतेषु उत्कृष्टानुभागसत्त्वस्योपलब्धिः कथं भवति ?

आचार्यदेवः प्राह—

नैष दोषः, आयुष उत्कृष्टानुभागं बंधयित्वा प्रमत्तगुणस्थानं प्रतिपन्नस्य तदुपलंभात्।

पुनरपि पृच्छति—

संयतासंयतादि-अधस्तनगुणस्थानवर्तिजीवा उत्कृष्टानुभागस्वामिनः किन्न भवन्ति ?

न भवन्ति, किं चोत्कृष्टानुभागेन सह आयुषि बद्धे संयतासंयताद्यधस्तनगुणानां गमनाभावात्।

कश्चित्पुनराशंकते—

उत्कृष्टानुभागं बंधयित्वा तमपवर्तनाघातेन घातयित्वा पुनः अधस्तनगुणस्थानानि प्रतिपन्ने सति

वह सत्व किसके होता है, ऐसा पूछने पर अमुक जीव के उसका सत्त्व होता है, यह बतलाने के लिये आगे का सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उसका सत्त्व संयत के होता है अथवा अनुत्तरविमानवासी देव के होता है अतएव उसके आयु कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।।१९।।

हिन्दीटीका—सूत्र में ''तं संजदस्स वा'' अर्थात् ''वह संयत के होता है'' ऐसा कहने पर अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकों का तथा उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती महामुनियों का व प्रमत्तसंयत मुनियों का ग्रहण करना चाहिये।

यहाँ कोई शंका करता है—

प्रमत्तसंयतों में उत्कृष्ट अनुभाग का सत्त्व कैसे पाया जाता है?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि आयु के उत्कृष्ट अनुभाग को बांधकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव के उसका सत्त्व पाया जाता है।

यहाँ कोई प्रश्न करता है—

संयतासंयतादिक नीचे के गुणस्थानों में स्थित जीव उत्कृष्ट अनुभाग के स्वामी क्यों नहीं होते हैं?

समाधान—नहीं होते हैं, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग के साथ आयु को बांधने पर संयतासंयतादि अधस्तन गुणस्थान में गमन नहीं होता है।

यहाँ कोई पुनः शंका करता है—

उत्कृष्ट अनुभाग को बांधकर उसे अपवर्तनाघात के द्वारा घातकर पश्चात् अधस्तन गुणस्थानों को प्राप्त

उत्कृष्टानुभागे स्वामित्वं किन्न भवतीति चेत् ?

आचार्यः समाधत्ते—

न भवति, किंच—घातितस्यानुभागस्य उत्कृष्टत्वविरोधात्।

उत्कृष्टानुभागे बंधेऽपवर्तनाघातो नास्तीति केऽप्याचार्या भणन्ति। तन्न घटते, उत्कृष्टायुर्बंधयित्वा पुनस्तं घातयित्वा मिथ्यात्वं गत्वाग्निदेवेषु उत्पन्नद्वीपायनेन मुनिना व्यभिचारात् महाबंधे आयुरुत्कृष्टानुभागान्तरस्य उपार्धपुद्गलपरिवर्तनमात्रकालप्ररूपणाया अन्यथानुपपत्तेर्वा।

अनुदिशादि-अधस्तनदेवेषु प्रतिबद्धायुषि बध्यमाने उत्कृष्टानुभागबंधो न भवतीति ज्ञापनार्थं ''अणुत्तरविमाण-वासियदेवस्स'' इति भणितं।

पुनरप्याशंका जायते—

उत्कृष्टानुभागेन सह त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमायुर्बंधयित्वाअनुभागं मुक्तवा केवलं स्थितेश्चैवापवर्तनाघातं कृत्वा सौधर्मादिषु उत्पन्नानां उत्कृष्टभावस्वामित्वं किन्न लभ्यते?

आचार्यः समाधत्ते—

न लभ्यते, किंच—अनुभागघातेन विनायुषः उत्कृष्टस्थितिघाताभावात्।

अत्रपर्यन्तमायुष उत्कृष्टवेदना भावापेक्षया कथितं।

अधुनानुत्कृष्टवेदनाकथनार्थं सूत्रं भण्यते —

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।।२०।।

होने पर उत्कृष्ट अनुभाग का स्वामी क्यों नहीं होता ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं—

नहीं होता है, क्योंकि घातित अनुभाग के उत्कृष्टपने का विरोध है। उत्कृष्ट अनुभाग को बांधने पर उसका अपवर्तनाघात नहीं होता है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि ऐसा मानने पर उत्कृष्ट आयु को बांधकर पश्चात् उसका घात करके मिथ्यात्व को प्राप्त अग्निकुमार देवों में उत्पन्न हुए द्वीपायन मुनि के साथ व्यभिचार आता है अथवा इसका घात माने बिना महाबंध ग्रंथ में प्ररूपित उत्कृष्ट अनुभाग का उपार्ध पुद्गल परिवर्तन प्रमाण अंतर भी नहीं बन सकता है।

अनुदिश आदि नीचे के देवों से संबंध रखने वाली आयु के बांधते हुए उत्कृष्ट अनुभाग का बंध नहीं होता, यह बतलाने के लिये 'अनुत्तरविमानवासी देव के' यह कहा गया है।

यहाँ पुनः शंका उत्पन्न होती है—

उत्कृष्ट अनुभाग के साथ तेतीससागरोपम प्रमाण आयु को बांधकर अनुभाग को छोड़ केवल स्थिति के अपवर्तनाघात को करके सौधर्मादि देवों में उत्पन्न हुए जीवों के उत्कृष्ट अनुभाग का स्वामित्व क्यों नहीं पाया जाता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

नहीं पाया जाता है, क्योंकि अनुभागघात के बिना आयु की उत्कृष्ट स्थिति का घात संभव नहीं है।

यहाँ तक मनुष्य आयुकी उत्कृष्ट वेदना भाव की अपेक्षा कही गई है।

अब उत्कृष्ट वेदना का कथन करने हेतु सूत्र कहा जा रहा है —

सूत्रार्थ—

उससे भिन्न उसकी अनुत्कृष्ट वेदना है।।२०।।

उत्कृष्टवेदनाया व्यतिरिक्तं अनुत्कृष्टवेदना जायते।

तात्पर्यमत्र — सिद्धान्तग्रंथपठनरुचिर्विधेया तावत् यावत्तस्य फलं शुक्लध्यानं न लभेत।

एवं स्वामित्वस्य द्विभेदं कृत्वा उत्कृष्टपदे भावापेक्षया वेदनाकथनत्वेन पंचदश सूत्राणि गतानि।

अधुना ज्ञानावरण-दर्शनावरण-अंतरायाणां जघन्यपदे वेदनानिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ?।।२१।।

अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमयछदुमत्थस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णा।।२२।।

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।२३।।

एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं।।२४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **अवगाहनादिविशेषैर्भेदाभावप्रतिपादनार्थं ''अण्णदरस्स'' इति भणितं। अक्षपकप्रतिषेधफलः ''खवगस्स'' निर्देशः। क्षीणकषायद्विचरमसमयप्रभृति-अधस्तनक्षपकप्रतिषेधफलः 'चरिमसमयछुदमत्थस्स' इति निर्देशः।**

हिन्दीटीका — इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि उत्कृष्ट वेदना से भिन्न अनुत्कृष्ट वेदना होती है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि जब तक मानव जीवन में शुक्लध्यान की प्राप्ति न होवे, तब तक सिद्धांत ग्रंथों के पठन, स्वाध्याय में सदैव रुचि रखना चाहिए।

इस प्रकार स्वामित्व के दो भेद करके उत्कृष्ट पद में भाव की अपेक्षा वेद का कथन करने वाले पन्द्रह सूत्र पूर्ण हुए।

अब ज्ञानावरण-दर्शनावरण-अन्तराय कर्मों की वेदना जघन्यपद में निरूपित करने हेतु चार सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

स्वामित्व से जघन्य ज्ञानावरणीय की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य किसके होती है ?।।२१।।

अन्यतर क्षपक अंतिम समयवर्ती छद्मस्थ के ज्ञानावरणीय की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है।।२२।।

उससे भिन्न उसकी अजघन्य वेदना होती है।।२३।।

इसी प्रकार दर्शनावरणीय और अंतराय की जघन्य और अजघन्य वेदना का कथन करना चाहिए।।२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अवगाहना आदि विशेषों से उत्पन्न भेद का अभाव बतलाने के लिये ''अण्णदरस्स'' अर्थात् 'अन्यतर' पद का निर्देश किया है। क्षपक पद के निर्देशका प्रयोजन अक्षपकों का प्रतिषेध करना है।

क्षीणकषाय गुणस्थान के द्विचरम समयवर्ती आदि अधस्तन क्षपकों का निषेध करने के लिए 'अंतिम समयवर्ती छद्मस्थ के' ऐसा निर्देश किया है।

अत्र कश्चिदाह—

चरमसमयसूक्ष्मसांपरायिकजघन्यानुभागबंधं गृहीत्वा जघन्यस्वामित्वं तत्र किन्न प्ररूपितम् ?

आचार्यः प्राह—

नैतद् वक्तव्यं, जघन्यानुभागबंधात् तत्रतनसत्त्वानुभागस्यानन्तगुणत्वोपलंभात्।

पुनः कश्चिदाशंकते—

क्षीणकषायचरमसमयेऽपि चिरन्तनानुभागसत्त्वकर्म चैव गृहीत्वा येन जघन्यं दत्तं तेन क्षीणकषायप्रथमसमये जघन्यस्वामित्वं दातव्यमासीत्, चिरन्तनानुभागसत्त्वकर्मत्वं प्रति भेदाभावादिति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैष दोषः, अनुसमयापवर्तनघातेन अनुसमयमनन्तगुणहीनं भूत्वा क्षीणकषायचरमसमयप्राप्तानुभागात् तस्यैव प्रथमसमयानुभागस्यानन्तगुणत्वदर्शनात्।

तद्व्यतिरिक्तमजघन्या वेदना भवति। एवं दर्शनावरणअन्तराययोर्जघन्याजघन्यवेदना कथयितव्या।

एतयोः कर्मणोर्घातिकर्मत्वेन ज्ञानावरणापेक्षया विशेषाभावात् अपरं च अपवर्तनाघातेन अनुसमयं घातं प्राप्य क्षीणकषायचरमसमये विनष्टत्वेन भेदाभावात्।

यहाँ कोई शंका करता है—

अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसांपरायिक के जघन्य अनुभागबंध को ग्रहणकर वहाँ जघन्य स्वामित्व क्यों नहीं बतलाया ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि जघन्य अनुभागबंध की अपेक्षा वहाँ अनुभाग का सत्त्व अनन्तगुणा पाया जाता है।

पुनः कोई शंका करता है—

क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय में भी चूँकि चिरन्तन अनुभाग के सत्व को लेकर ही जघन्य स्वामित्व दिया गया है अतएव क्षीणकषाय के प्रथम समय में भी जघन्य स्वामित्व दिया जाना चाहिए था, क्योंकि चिरन्तन के सत्व की अपेक्षा दोनों में कोई भेद नहीं है ?

आचार्यदेव इसका भी समाधान देते हैं कि—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि प्रत्येक समय में होने वाले अपवर्तन घात के द्वारा प्रतिसमय अनन्तगुणहीन होकर क्षीणकषाय के अंतिम समय को प्राप्त हुए अनुभाग की अपेक्षा उसी गुणस्थान के प्रथम समय का अनुभाग अनन्तगुणा देखा जाता है।

उससे भिन्न उसकी अजघन्य वेदना होती है। इसी प्रकार दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों की जघन्य और अजघन्य वेदना का कथन करना चाहिये।

ये दोनों घातिकर्म होने से ज्ञानावरण की अपेक्षा इनमें कोई विशेषता नहीं है। दूसरे प्रत्येक समय में होने वाले अपवर्तनाघात के द्वारा घात होकर क्षीणकषाय के अंतिम समय में विनष्ट हुए अनुभाग की अपेक्षा ज्ञानावरण से इनमें कोई विशेषता नहीं है।

संप्रति वेदनीय-मोहनीय योर्जघन्याजघन्यवेदनानिरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

सामित्तेण जहण्णपदे वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ?।।२५।।

अण्णदरखवगस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स असादवेदणीयस्स वेदयमाणस्स तस्स वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णा।।२६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अवगाहनादिभिर्विशेषाभावप्रतिपादनफलः 'अण्णदरस्स' इति निर्देशःकृतः। अक्षपकप्रतिषेधफलः 'खवगस्स' निर्देशः। द्विचरमभवसिद्धिकादिप्रतिषेधफलः 'चरिमसमयभवसिद्धियस्स' इति कथनमस्ति।**

अत्र कश्चिदाह—

भवसिद्धिकद्विचरमसमये जघन्यस्वामित्वं किन्न दीयते ?

आचार्यदेवः प्राह—

नैतत्, तत्र चरमसमयसूक्ष्मसांपरायिकेन बद्धसातावेदनीयोत्कृष्टानुभागसत्त्वकर्मणोऽस्तित्वदर्शनात्।

कश्चित् पृच्छति—

सूत्रेऽत्र 'असादवेदगस्स' इति विशेषणं किमर्थं क्रियते ?

अब वेदनीय और मोहनीय कर्मों की जघन्य-अजघन्य वेदना का निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तर रूप से छह सूत्र अवतरित हो रहे हैं —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व से जघन्य पद में वेदनीय की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य किसके होती है ?।।२५।।

असातावेदनीय का वेदन करने वाले अंतिम समयवर्ती भवसिद्धिक अन्यतर क्षपक के वेदनीय की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अवगाहना आदि से होने वाली विशेषता यहाँ विवक्षित नहीं है, यह बतलाने के लिये सूत्र में "अण्णदरस्स" अर्थात् "अन्यतर" पद का निर्देश किया है। क्षपक के निर्देश का फल अक्षपक का प्रतिषेध करना है। अंतिम समयवर्ती भवसिद्धिक कहने का प्रयोजन द्विचरम समयवर्ती आदि भवसिद्धिकों का प्रतिषेध करना है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

द्विचरम समयवर्ती भव्यसिद्धिक के जघन्य स्वामित्व क्यों नहीं दिया जाता ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं है, क्योंकि उसके अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसांपरायिक द्वारा बांधे गये सातावेदनीय के उत्कृष्ट अनुभाग का सत्व देखा जाता है।

पुनः कोई पूछता है—

'असातावेदनीय का वेदन करने वाले के' यह विशेषण किसलिये किया जा रहा है ?

आचार्यः कथयति—

सातावेदनीयं वेदयमानस्य द्विचरमसमये उदयाभावेन विनाशितासातस्य सातावेदनीयोत्कृष्टानुभागं ध्रियमाणचरमसमयभवसिद्धिकस्य वेदनीयजघन्यस्वामित्वविरोधात्। असातावेदनीयं वेदयमानस्य पुनो वेदनीयानुभागो जघन्यो भवति, उदयाभावेन भवसिद्धिकद्विचरमसमये विनष्टसातानुभागसत्त्वत्वात् क्षपकक्षेण्यां बहुशो घातं प्राप्तानुभागसहितासातावेदनीयस्य चैव भवसिद्धिकचरमसमयदर्शनात्।

कश्चित् पुनराशंकते—

असातावेदनीयं वेदयमानस्य सयोगिकेवलिनो भगवतः क्षुधातृषादिभिरेकादशपरीषहैर्बाध्यमानस्य कथं न भुक्तिर्भविष्यति ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैष दोषः, भोजनपानेषु जाततृष्णस्य समोहस्य मरणभयेन भुज्यमानस्य परीषहैः पराजितस्य केवलित्वविरोधात्।

संक्लेशाविनाभाविन्यां क्षुद् बाधायां दह्यमानस्य केवलित्वं युज्यते इति चेत् ?

नैतद्, किंच एषोऽपि दोषः समानमेव। किंच स्वकसहायघातिकर्माभावेन निःशक्तित्वमापन्नासाता-वेदनीयोदयात् बुभुक्षा-तृषादीनामनुत्पत्तेः।

फलदानमन्तरेण परमाणुपुंजस्य समयं प्रति निर्जीर्यमाणस्य कथमुदयव्यपदेशः ?

नैतद्, जीवकर्मणोर्विवेकमात्रफलं दृष्ट्वा उदयस्य फलत्वोपगमात्।

आचार्य इसका उत्तर देते हैं कि—जो सातावेदनीय का वेदन कर रहा है और जिसने द्विचरम समय में उदयाभाव होने से असातावेदनीय का नाश कर दिया है उस सातावेदनीय से उत्कृष्ट अनुभाग को धारण करने वाले अंतिम समयवर्ती भवसिद्धिक के वेदनीय का जघन्य स्वामित्व मानने में विरोध आता है। परन्तु असाता का वेदन करने वाले के वेदनीय का अनुभाग जघन्य होता है, क्योंकि एक तो उदयाभाव होने के कारण भवसिद्धिक के द्विचरम समय में सातावेदनीय के अनुभाग सत्त्व का विनाश हो जाता है और दूसरे क्षपकश्रेणि में बहुत बार घात को प्राप्त हुए अनुभाग सहित असातावेदनीय का ही भवसिद्धिक के अंतिम समय में सत्त्व देखा जाता है।

पुनः कोई शंका करता है—

असातावेदनीय का वेदन करने वाले तथा क्षुधा-तृषा आदि ग्यारह परीषहों से बाधा को प्राप्त हुये सयोगिकेवली भगवान के भोजन का ग्रहण कैसे नहीं होगा ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जो भोजन-पान में उत्पन्न हुई इच्छा से मोहयुक्त है तथा मरण के भय से जो भोजन करता है, अतएव परीषहों से जो पराजित हुआ है ऐसे जीव के केवली होने का विरोध पाया जाता है।

शंका—संक्लेश के साथ अविनाभाव रखने वाली क्षुधा से जलने वाले के भी केवलीपना बन जाएगा?

समाधान—ऐसा भी नहीं है, क्योंकि इस प्रकार का यह दोष समान ही है, क्योंकि अपने सहायक घातिया कर्मों का अभाव हो जाने से अशक्तता को प्राप्त हुए असातावेदनीय के उदय से क्षुधा व तृषा की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।

शंका—बिना फल दिये ही प्रतिसमय निर्जीर्ण होने वाले परमाणुसमूह की उदय संज्ञा कैसे बन सकती है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि जीव व कर्म के विवेक मात्र फल देखकर उदय को फलरूप से स्वीकार किया गया है।

यद्येवं तर्हि असातावेदनीयोदयकाले सातावेदनीयस्योदयो नास्ति असातावेदनीयस्यैवोदयोऽस्तीति न वक्तव्यं, स्वफलानुत्पादनेन द्वयोरपि सदृशत्वोपलंभात् ?

नैतद् वक्तव्यं, किंच—असातावेदनीयपरमाणूनामिव सातावेदनीयपरमाणूनां स्वकस्वरूपेण निर्जराभावात्। सातापरमाणवोऽसातास्वरूपेण विनश्यदावस्थायां परिणम्य विनश्यतो दृष्ट्वा सातावेदनीयस्योदयो नास्तीति उच्यते। परन्तु असातावेदनीयस्य एषः क्रमो नास्ति, असातापरमाणूनां स्वकस्वरूपेणैव निर्जरोपलंभात्। तस्मात् दुःखरूपफलाभावेऽपि असातावेदनीयस्योदयभावो युज्यते इति सिद्धं भवति।

अधुना अजघन्यवेदना निरूप्यते —

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।२७।।

एतत्सुगमं वर्तते। संप्रति मोहनीयवेदनाया जघन्याजघन्यस्वामिकथनं भवति।

सामित्तेण जहण्णपदे मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ?।।२८।।

अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमय-सकसाइस्स तस्स मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णा।।२९।।

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।३०।।

शंका—यदि ऐसा है तो असाता वेदनीय के उदयकाल में सातावेदनीय का उदय नहीं होता, केवल असातावेदनीय का ही उदय रहता है ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि अपने फल को नहीं उत्पन्न करने की अपेक्षा दोनों में समानता पायी जाती है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि तब असाता वेदनीय के परमाणुओं के समान सातावेदनीय के परमाणुओं की अपने रूप में निर्जरा नहीं होती। किन्तु विनाश होने की अवस्था में असातारूप से परिणमन करके उनका विनाश हो जाता है यह देखकर सातावेदनीय का उदय नहीं है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु असातावेदनीय का यह क्रम नहीं है, क्योंकि तब असाता के परमाणुओं की अपने रूप से ही निर्जरा पायी जाती है। इस कारण दुःखरूप फल के अभाव में भी असातावेदनीय का उदय मानना युक्तियुक्त है, यह सिद्ध होता है।

अब अजघन्य वेदना का निरूपण किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

इससे भिन्न उसकी अजघन्य वेदना होती है।।२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह सूत्र सुगम है। अब मोहनीय कर्म की वेदना की जघन्य-अजघन्य वेदना का कथन किया जा रहा है।

सूत्रार्थ—

स्वामित्व में जघन्य पद में मोहनीय की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य किसके होती है ?।।२८।।

अंतिम समयवर्ती सकषाय अन्यतर क्षपक के मोहनीय की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है।।२९।।

इसके विपरीत उसकी अजघन्यवेदना होती है।।३०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अन्तर्मुहूर्तमनुसमयमपवर्तनाघातेन घातितशेषानुभागग्रहणार्थं 'चरिमसमयसकसाइस्स' इति सूत्रे निर्दिष्टं भवति अस्मिन् सूत्रे इति ज्ञातव्यं। शेष सर्वसुगममस्ति।**

संप्रति आयुःकर्मजघन्यवेदनानिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

सामित्तेण जहण्णपदे आउअवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ?।।३१।।

अण्णदरेण मणुस्सेण पंचिंदियतिरिक्खजोणिएण वा परियत्तमाण-मज्झिमपरिणामेण अपज्जत्ततिरिक्खिाउअं बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्मं अत्थि तस्स आउअ-वेयणा भावदो जहण्णा।।३२।।

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।३३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अपर्याप्ततिर्यक्संबंधि-आयुर्देवनारका न बध्नन्ति इति ज्ञापनार्थं मणुस्सेण पंचिंदियतिरिक्खजोणिएण वा इत्युक्तं भवति।**

अत्र कश्चिदाह—

एकेन्द्रिया विकलेन्द्रिया अपि अपर्याप्ततिर्यगायुर्बध्नन्तः सन्ति, तत्र जघन्यस्वामित्वं किं न दीयते ?

आचार्यदेवः प्राह—

नैतद् वक्तव्यं, किंच—आयुर्जघन्यानुभागबंधकारणपरिणामानां तत्राभावात्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अन्तर्मुहूर्त कालतक प्रतिसमय अपवर्तनाघात के द्वारा घात करने से शेष रहे अनुभाग का ग्रहण करने के लिये 'अंतिम समयवर्ती सकषाय' इस पद का निर्देश किया है। शेष समस्त कथन सुगम है।

अब आयुकर्म की जघन्य वेदना का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व से जघन्य पद में आयु की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य किसके होती है ?।।३१।।

जो अन्यतर मनुष्य अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिवाला जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामों से अपर्याप्त तिर्यंच संबंधी आयु का बंध करता है उसके और जिसके इसका सत्त्व होता है उसके आयु की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है।।३२।।

इससे भिन्न उसकी अजघन्य वेदना होती है।।३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अपर्याप्त तिर्यंचों से संबंधित आयु को देव और नारकी जीव नहीं बांधते हैं यह बतलाने के लिये मनुष्य अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि वाले ऐसा कहा है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय जीव भी अपर्याप्त तिर्यंच की आयु को बांधते है, इसलिये उनके जघन्य स्वामित्व क्यों नहीं कहा जाता है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उनके आयु के जघन्य अनुभाग के बंध के कारणभूत परिणामों का अभाव है।

तत्रस्थजीवेषु परिणामा एतादृशा न सन्तीति कथं ज्ञायते ?

एतस्माच्चैव सूत्राद् ज्ञायते। अनुसमयं वर्द्धमाना हीयमानाश्च ये संक्लेश-विशुद्धिपरिणामास्तेऽपरिवर्तमानाः सन्ति। यत्र पुनः येषु परिणामेषु स्थित्वा तथा परिणामान्तरं गत्वा एकद्वयादिसमयैरागमनं संभवति ते परिणामाः परिवर्तमाना नाम। तैरायुर्बध्यते।

तत्र उत्कृष्टा मध्यमा जघन्या इति त्रिविधाः परिणामाः। अत्र अतिजघन्याः परिणामा आयुर्बंधस्य अप्रायोग्यं। अतिमहान्तोऽपि अप्रायोग्यं चैव, स्वाभाविकत्वात्। किन्तु द्वयोर्मध्ये स्थिताः परिवर्तमानमध्यमपरिणामा उच्यन्ते। तत्रतनजघन्यपरिणामैस्तत्प्रायोग्यविशेषप्रत्ययैर्येन यदपर्याप्ततिर्यगायुर्बद्धं तस्य जघन्यानुभागो भवति। यस्य तत्सत्त्वकर्म अस्ति तस्यापि जघन्यानुभागो भवति।

अस्माद् भिन्नात् तस्याजघन्यवेदना भवति इति ज्ञातव्यं।

अधुना नामकर्मणोर्जघन्याजघन्यवेदनानिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

सामित्तेण जहण्णपदे णामवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ?।।३४।।

अण्णदरेण सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तएण हदसमुप्पत्तियकम्मेण परियत्तमाणमज्झिमपरिणामेण बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि तस्स णामवेयणा भावदो जहण्णा।।३५।।

शंका — उनमें स्थित जीवों में वे परिणाम नहीं हैं, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — इसी सूत्र से जाना जाता है।

प्रतिसमय बढ़ने वाले या हीन होने वाले जो संक्लेश या विशुद्धिरूप परिणाम होते हैं वे अपरिवर्तमान परिणाम कहे जाते हैं। किन्तु जिन परिणामों में स्थित होकर तथा परिणामान्तर को प्राप्त हो पुनः एक दो आदि समयों द्वारा उन्हीं परिणामों में आगमन संभव होता है उन्हें परिवर्तमान परिणाम कहते हैं। उनसे आयु का बंध होता है।

उनमें उत्कृष्ट, मध्यम व जघन्य के भेद से वे परिणाम तीन प्रकार के हैं। इनमें अति जघन्य परिणाम आयु बंध के अयोग्य हैं। अत्यंत महान-उत्कृष्ट परिणाम भी आयुबंध के अयोग्य ही हैं, क्योंकि ऐसा स्वभाव है। किन्तु उन दोनों के मध्य में अवस्थित परिणाम परिवर्तमान मध्यम कहलाते हैं। उनमें जघन्य परिणामों से तत्प्रायोग्य विशेष कारणों द्वारा जिसने अपर्याप्त सम्बंधी तिर्यंच आयु को बांधा है उसके आयु का जघन्य अनुभाग होता है, तथा जिसके उक्त अनुभाग का सत्त्व होता है उसके भी आयु का जघन्य अनुभाग होता है।

इससे भिन्न उसके अजघन्य वेदना होती है ऐसा जानना चाहिए।

अब नाम कर्म की जघन्य और अजघन्य वेदना का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

स्वामित्व से जघन्य पद में नाम कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य किसके होती है ?।।३४।।

हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला अन्यतर जो सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव परिवर्तमान मध्यम परिणामों के द्वारा नामकर्म का बंध करता है उसके और जिसके इसका सत्त्व होता है उसके नाम कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है।।३५।।

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।३६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सूत्रेऽवगाहनादिविशेषाभावप्रतिपादनार्थं 'अण्णदरेण' इत्युक्तं भवति। बादरैकेन्द्रियापर्याप्तादि-उपरिमजीवसमासप्रतिषेधार्थं 'सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तएण' इति भणितं।**

अत्र कश्चिदाह—

उपरिमजीवसमासप्रतिषेधः किमर्थं क्रियते ?

आचार्यदेवः प्राह—

तत्र जघन्यानुभागासंभवात्। तद्यथा—

न तावत्तत्र सर्वविशुद्धेषु जघन्यस्वामित्वं, अप्रशस्तप्रकृतीनामनुभागादनन्तगुणप्रशस्तप्रकृत्यनुभागस्य तत्रानन्तगुणवृद्धिप्रसंगात्। न सर्वसंक्लिष्टेषु अपि, अतितीव्रसंक्लेषेण अशुभानां प्रकृतीनामनुभागवृद्धिप्रसंगात्। न परिवर्तमानमध्यमपरिणामेष्वपि जघन्यस्वामित्वं संभवति, सूक्ष्मनिगोदजीवापर्याप्त परिवर्तमानमध्यम-परिणामेभ्योऽनंतगुणैर्जघन्यभावानुपपत्तेः। 'हदसमुप्पत्तियकम्मेण' इत्युक्ते पूर्वोक्तमनुभागसत्त्वकर्म सर्वं घातयित्वा अनंतगुणहीनं कृत्वा 'ट्ठिदेण' इत्युक्तं भवति। तत्र जघन्योत्कृष्टपरिणामनिराकरणार्थं 'परियत्तमाणमज्झिम-परिणामेण' इत्युक्तं ज्ञातव्यं। येन तद् बद्धं यस्य तत्सत्त्वकर्म अस्ति तस्य नामकर्मवेदना भावतो जघन्या ज्ञातव्या।

एतस्याः व्यतिरिक्ता अजघन्या भवतीति मन्तव्यं।

इससे भिन्न उसकी अजघन्य वेदना होती है।।३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र में अवगाहना आदिसे होने वाली विशेषता का अभाव बतलाने हेतु "अण्णदरेण" अर्थात् अन्यतर शब्द को ग्रहण किया है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि आगे के जीव समासों का प्रतिषेध करने के लिये 'सूक्ष्म निगोद' अपर्याप्तक जीव के द्वारा ऐसा कहा है।

यहाँ कोई शंका करता है—

आगे के जीवसमासों का प्रतिषेध किसलिये करते हैं ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

चूँकि उनमें जघन्य अनुभाग की सम्भावना नहीं है अतः उनका प्रतिषेध करते हैं। जैसे-उक्त जीवसमासों में से सर्वविशुद्ध जीवों में तो जघन्य स्वामित्व बन नहीं सकता, क्योंकि ऐसा होने पर अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग से अनन्तगुणे प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग में अनंतगुणी वृद्धि का प्रसंग आता है। सर्व संक्लिष्ट जीवों में भी वह नहीं बन सकता, क्योंकि अति तीव्र संक्लेश के द्वारा अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग में वृद्धि का प्रसंग आता है। परिवर्तमान मध्यम परिणाम युक्त जीवों में भी जघन्य स्वामित्व संभव नहीं है, क्योंकि सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीव के परिवर्तमान मध्यम परिणाम की अपेक्षा उन जीवों के परिणाम अनंतगुणे होते हैं, इसलिये वे जघन्य नहीं हो सकते।

'हतसमुत्पत्तिककर्मवाले' ऐसा कहने पर पूर्व के समस्त अनुभाग सत्व का घात करके और उसे अनन्तगुणा हीन करके स्थित हुए जीव के द्वारा, यह अभिप्राय समझना चाहिये। सूत्र में जघन्य और उत्कृष्ट परिणामों का निराकरण के लिये 'परिवर्तमान मध्यम परिणाम के द्वारा' ऐसा निर्देश किया है। जिसने उक्त अनुभाग को बांधा है व जिसके उसका सत्व है उसे नामकर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है।

इससे भिन्न उसकी अजघन्य वेदना होती है ऐसा मानना चाहिए।

अधुना गोत्रवेदनानिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

सामित्तेण जहण्णपदे गोदवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ?।।३७।।

अण्णदरेण बादरतेउ-वाउजीवेण सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदेण सागारजागारसव्वविसुद्धेण हदसमुप्पत्तियकमेण उच्चागोदमुव्वेल्लिदूण णीचागोदं बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि गोदवेयणा भावदो जहण्णा।।३८।।

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।३९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सूत्रे 'बादरतेउ-वायुजीवेण' यत्कथितं तत्तु-तत्र बंधविवर्जितमुच्चगोत्रं नीचगोत्रात् शुभत्वेन महदनुभागमुद्वेल्य गालनार्थं कृतं। ''सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदेण'' इति निर्देशः, अपर्याप्तकाले सर्वोत्कृष्टविशुद्धिर्नास्ति इति पर्याप्तकाले सर्वोत्कृष्टविशुद्धाणां ग्रहणनिमित्तकोऽस्ति। साकारोपयुक्तजागृतकाले जीवे सर्वोत्कृष्टविशुद्धयः सर्वोत्कृष्टसंक्लेशाश्च भवन्तीति ज्ञापनार्थं 'सागार-जागार' निर्देशः कृतः।**

अत्र सर्वोत्कृष्टविशुद्धयाः किं प्रयोजनम् ?

बहुतरनीचगोत्रानुभागघातः प्रयोजनम् ज्ञातव्यम्। एवंविधस्य जीवस्यैव गोत्रवेदना भावतो जघन्या भवति। तद्व्यतिरिक्ता अजघन्या भवतीति मन्तव्यं।

अब गोत्र कर्म की वेदना का निरूपण करने हेतु तीन सूत्रों का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व से जघन्य पद में गोत्र की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य किसके होती है ?।।३७।।

सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुए साकार उपयोग से संयुक्त, जागृत, सर्वविशुद्ध एवं हतसमुत्पत्तिककर्मवाले जिस अन्यतर बादर तेजकायिक या वायुकायिक जीव के उच्च गोत्र की उद्वेलना होकर नीच गोत्र का बंध होता है व जिसके उसका सत्व होता है उसके गोत्र की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है।।३८।।

इससे भिन्न उसको अजघन्य वेदना होती है।।३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र में जो ''बादर तेजस्कायिक बादर वायुकायिक'' जीवों का निर्देश किया है, वह उनमें बंध को प्राप्त न होने वाले एवं नीचगोत्र की अपेक्षा शुभरूप होने से महत् अनुभाग युक्त उच्चगोत्र की उद्वेलना करके गलाने के लिये किया है।

चूँकि अपर्याप्तकाल में सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि नहीं होती है अतः पर्याप्तकाल में होने वाली विशुद्धियों का ग्रहण करने के लिये 'सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुए' इस पद का निर्देश किया है। साकार उपयोग व जागृत समय में ही जीव के सर्वोत्कृष्ट विशुद्धियाँ व सर्वोत्कृष्ट संक्लेश होते हैं, यह बतलाने के लिये 'साकार उपयोग युक्त व जागृत' इस पद का निर्देश किया है।

शंका—यहाँ सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि का क्या प्रयोजन है ?

समाधान—नीच गोत्र के बहुतर अनुभाग का घात करना ही उसका प्रयोजन जानना चाहिए। उक्त

तात्पर्यमत्र—वयं सर्वोत्कृष्टविशुद्धिमिच्छन्तः स्वात्मतत्त्वचिन्तनं करिष्याम इति भावयामहे। यावदीदृशी स्थितिर्न लभेत तावत् पंचपरमेष्ठिनां भगवतां श्री शांतिनाथकुंथुनाथारनाथानां शरणं गृण्हामः इति प्रतिजानीमहे।

एवं चतुर्थस्थले जघन्यपदे कर्मणां वेदनानिरूपणत्वेन एकोनविंशतिसूत्राणि गतानि।

एवं स्वकान्तःक्षिप्तस्थान संख्याजीवसमुदाहारानुयोगद्वारं नामस्वामित्वानुयोगद्वारं समाप्तम्।

अधुना अल्पबहुत्वस्य त्रिभेदरूपानुयोगद्वारनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अप्पाबहुए त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्दाराणि-जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे।।४०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र त्रीण्येवानुयोगद्वाराणि भवन्ति, एक-द्विसंयोगान् मुक्त्वा त्रिसंयोगादी-नामभावात्।**

संप्रति मोहनीयवेदना सर्वस्तोका इति प्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

जहण्णपदेण सव्वत्थोवा मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णिया।।४१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अपूर्व-अनिवृत्तिक्षपकगुणस्थानेषु संख्यातसहस्रबारं काण्डकघातेन अनंतगुणहीनं**

लक्षणों से संयुक्त जीव के गोत्र की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है।

इससे भिन्न अजघन्य वेदना होती है ऐसा समझना चाहिए।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—हम सर्वोत्कृष्ट विशुद्धता को प्राप्त करने की अभिलाषा करते हुए स्वात्मतत्त्व का चिन्तन करेंगे ऐसी भावना भाते हैं। जब तक ऐसी स्थिति प्राप्त नहीं होती है तब तक पंचपरमेष्ठी भगवन्तों की तथा तीर्थंकर श्री शांतिनाथ, कुन्थुनाथ एवं अरहनाथ भगवान् की शरण लेते हैं प्रतिज्ञा करते हैं।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में जघन्यपद में कर्मों की वेदना का निरूपण करने वाले उन्नीस सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार अपने भीतर स्थान, संख्या व जीव समुदाहार अनुयोगद्वार को समाविष्ट करने वाला नामस्वामित्व अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

अब अल्पबहुत्व के तीन भेदरूप अनुयोगद्वार का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अल्पबहुत्व का प्रकरण है। इसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं—जघन्य पदविषयक अल्पबहुत्व, उत्कृष्ट पदविषयक अल्पबहुत्व, जघन्य-उत्कृष्ट पदविषयक अल्पबहुत्व।।४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ तीन ही अनुयोगद्वार होते हैं, क्योंकि एक और दो संयोगी भंगों को छोड़कर यहाँ त्रिसंयोगी आदि भंगों का अभाव है।

अब मोहनीय कर्म की वेदना सब से स्तोक है यह प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतीर्ण हो रहा है —

सूत्रार्थ—

जघन्य इस पद से भाव की अपेक्षा मोहनीय की जघन्य वेदना सबसे स्तोक है।।४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण क्षपक गुणस्थानों में संख्यात हजार बार

कृत्वा पुनः स्पर्द्धकानुभागात् अनंतगुणहीनबादरकृष्टिस्वरूपेण कृत्वा पुनस्तं मोहानुभागं बादरकृष्टिगतं जहन्यबादरकृष्टितः अनंतगुणहीनसूक्ष्मकृष्टिस्वरूपेण कृत्वा पुनः सूक्ष्मसांपरायिकगुणस्थाने-ऽन्तर्मुहूर्तकालमनन्त-गुणहीनक्रमेण अनुसमयमपवर्त्य सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये उदयगतस्थितेः अनुभागस्य ग्रहणात्।

अत्र या अनुसमयमपवर्तना सा कीदृशी इति चेत् ?

चरमसमय-अनिवृत्तिकरणानुभागात् सूक्ष्मसांपरायिकप्रथमसमयेऽनुभागोऽनन्तगुणहीनो भवति। द्वितीयसमये स एवानुभागकांडकघातेन विना अनंतगुणहीनो भवति। पुनः सः घातितशेषस्तृतीयसमयेऽनन्त-गुणहीनो भवति। एवं यावत्सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमय इति गृहीतव्यम्। एषोऽनुसमयमपवर्तनघातो नाम।

एषोऽनुभागकाण्डकघात इति किन्न उच्यते ?

न, प्रारब्धप्रथमसमयादन्तर्मुहूर्तेण कालेन यो घातो निष्पद्यते सोऽनुभागकाण्डको नाम, यः पुनः उत्कीरणकालेन विना एक समयेन पतति सा अनुसमयापवर्तना नाम। अन्यच्च अनुसमयापवर्तनायां नियमेन अनन्तभागा नश्यन्ति, अनुभागकाण्डकघाते पुनर्नास्ति एष नियमः, षड्विधहान्या काण्डकघातोपलंभात्।

अधुना अन्तरायकर्मजघन्यवेदनाल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अंतराइयवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।।४२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**क्षीणकषायकालस्याभ्यन्तरे यद्यपि अंतरायकर्मानुभागः अनुसमयापर्वतनया घातं प्राप्तस्तर्हि अपि एषोऽनन्तगुणः, सूक्ष्मसांपरायिकबादरकृष्टिभ्योऽनन्तगुणस्पर्द्धकस्वरूपत्वात्।**

काण्डकघात के द्वारा अनुभाग को अनंतगुणा हीन करके, पश्चात् स्पर्धकगत अनुभाग की अपेक्षा उसे अनंतगुणा बादरकृष्टिरूप करके, तत्पश्चात् बादर कृष्टिगत उक्त मोहनीय के अनुभाग को जघन्य बादर कृष्टि की अपेक्षा अनन्तगुणा हीन सूक्ष्मकृष्टिरूप से करके, पुनः सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थान में अंतर्मुहूर्त काल तक प्रतिसमय अनंतगुणहीन क्रम से अपवर्तित करके सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थान के अंतिम समय में उदयप्राप्त स्थिति का अनुभाग यहाँ ग्रहण किया गया है।

शंका—यहाँ जो प्रतिसमय अपर्वतना कही है वह किस प्रकार की होती है ?

समाधान—अनिवृत्ति करण के अंतिम समय संबंधी अनुभाग की अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायिक का प्रथम समय संबंधी अनुभाग अनंतगुणा हीन होता है। उसके द्वितीय समय में वही अनुभाग काण्डकघात के बिना अनंतगुणा हीन होता है। पुनः घात करने के बाद शेष रहा वही अनुभाग तीसरे समय में अनन्तगुणाहीन होता है। इस प्रकार सूक्ष्मसांपरायिक के अंतिम समय तक जानना चाहिए। इसी का नाम अनुसमय अपवर्तनाघात है।

शंका—इसे अनुभागकाण्डकघात क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रारंभ किये गये प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा जो घात निष्पन्न होता है वह अनुभागकाण्डकघात है, परन्तु उत्कीरणकाल के बिना एक समय द्वारा ही जो घात होता है वह अनुसमय अपवर्तना है। दूसरे, अनुसमय अपवर्तना में नियम से अनंत बहुभाग नष्ट होता है, परन्तु अनुभागकाण्डकघात में यह नियम नहीं है, क्योंकि छह प्रकार की हानि द्वारा काण्डकघात की उपलब्धि होती है।

अब अन्तरायकर्म की जघन्य वेदना का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे भाव की अपेक्षा अन्तरायकर्म की जघन्य वेदना अनन्तगुणी है।।४२।।

अत्र कश्चिदाह—

अनुभागकांडकघातैरनुसमयापवर्तनाघातैश्च द्वयोः कर्मणोः सदृशत्वे सति किमर्थं घातितशेषानुभागानां विसदृशत्वम् ?

आचार्यदेवः प्राह—

नैष दोषः, संसारावस्थायां सर्वत्र लोभसंज्वलनानुभागाद् वीर्यान्तरायानुभागस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्। स्तोकानुभागप्रकृत्याः घातितशेषानुभागः स्तोको भवति, महदानुभागप्रकृत्या घातितशेषानुभागो बहुकश्चैव भवति तेन विसदृशत्वं युज्यते।

संप्रति ज्ञानावरणद्विकजघन्यवेदनाल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

णाणावरणीय-दंसणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णियाओ वि दो वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ।।४३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**घातितशेषस्य द्वयोः प्रकृत्योरनुभागस्य कथं सदृशत्वमिति पृष्टे सति आचार्यदेवेन कथ्यते—नैषः प्रश्नो विधातव्यः, किंच—संसारावस्थायां समानानुभागयोरशुभत्वेन समानयोः सदृशत्वानुभागघातयोः घातितशेषानुभागयोः सदृशत्वं प्रति विरोधाभावात्।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्षीणकषाय गुणस्थान के काल के भीतर यद्यपि अन्तराय कर्म का अनुभाग अनुसमय अपवर्तना के द्वारा घात को प्राप्त हुआ है तो भी यह मोहनीय के जघन्य अनुभाग से अनंतगुणा है, क्योंकि वह मोहनीय की सूक्ष्म और बादर कृष्टियों की अपेक्षा अनंतगुणे स्पर्धकरूप है।

यहाँ कोई शंका करता है—

अनुभागकाण्डकघात और अनुसमय अपवर्तनाघात के द्वारा दोनों कर्मों में समानता के होने पर घात करने के बाद रहे अनुभागों में विसदृशता क्यों पाई जाती है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि संसार अवस्था में सर्वत्र संज्वलनलोभ के अनुभाग की अपेक्षा वीर्यान्तराय का अनुभाग अनन्तगुणा उपलब्ध होता है। स्तोक अनुभाग वाली प्रकृति का घात करने के बाद शेष रहा अनुभाग स्तोक होता है और महान् अनुभाग वाली प्रकृति का घात करने के बाद शेष रहा अनुभाग बहुत ही होता है। इस कारण दोनों में विसदृशता बन जाती है।

अब ज्ञानावरणद्विक की जघन्य वेदना का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

उससे भाव की अपेक्षा ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय की जघन्य वेदनायें भी दोनों ही परस्पर तुल्य होकर अनंतगुणी हैं।।४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—घात करने के बाद शेष रहे दोनों प्रकृतियों के अनुभाग में समानता किस कारण से है ? ऐसा पूछने पर आचार्यदेव ने बताया है कि—

ऐसा प्रश्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि संसार अवस्था में ये दोनों प्रकृतियाँ समान अनुभाग वाली हैं, अशुभस्वरूप से समान हैं एवं समान अनुभागघात से संयुक्त हैं अतः दोनों प्रकृतियों के घात के बाद शेष अनुभागों के समान होने में विरोध का अभाव पाया जाता है।

कश्चिदाशंकते—

संसारावस्थायां द्वयोः प्रकृत्योः अनुभागः सदृश इति कथं ज्ञायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

''केवलणाणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं असादवेदणीयं वीरियंतराइयं च चत्तारि वि तुल्याणि'' इति चतुष्षष्टिपदिकमहादण्डकसूत्राद् ज्ञायते।

सर्वमेतद् युज्यते, किन्तु अंतरायजघन्यानुभागात् ज्ञानावरणदर्शनावरणानुभागयोर्जघन्ययोर्न घटते, संसारावस्थायां अनुभागेन समानानां त्रयाणामपि कर्मणां अनुभागकाण्डक-अनुसमयापवर्तनाघातापेक्षया सदृशानां विसदृशत्वविरोधात् इति चेत् ?

भवतु नाम सदृशत्वं, यदि सर्वघातित्वेन वीर्यांतरायां केवलज्ञानदर्शनावरणाभ्यां समानं भवेत् न चैवं वीर्यान्तरायस्य सर्वत्र क्षयोपशमदर्शनात्। ततो येन वीर्यान्तरायं देशघातिलक्षणं तेन एरण्डदण्डक इवासारत्वात् बहुकं घात्यते किंतु केवलज्ञानावरण-दर्शनावरणे पुनः सर्वघातिकर्मणी वज्रशैल इव निकाचितत्वात् बहुकं न घात्येते। तेन अन्तरायजघन्यानुभागात् ज्ञानावरण-दर्शनावरणजघन्यानुभागयोरनन्तगुणत्वं युज्यते।

अधुना आयुर्वेदनाल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

आउववेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।।४४।।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

संसार अवस्था में इन दोनों प्रकृतियों का अनुभाग समान होता है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शनावरणीय, असातावेदनीय और वीर्यान्तराय ये चारों ही प्रकृतियों तुल्य हैं इस चौंसठ पद वाले महादण्डकसूत्र से जाना जाता है।

शंका—यह सब तो बन जाता है, किन्तु अंतराय के जघन्य अनुभाग की अपेक्षा ज्ञानावरण और दर्शनावरण का जघन्य अनुभाग अनंतगुणा होता है यह नहीं बनता, क्योंकि ये तीनों कर्म संसार अवस्था में अनुभाग की अपेक्षा समान हैं तथा अनुभागकाण्डकघात व अनुसमय अपवर्तनाघात की अपेक्षा भी समान हैं अतएव उनके विसदृश होने में विरोध आता है ?

समाधान—भले ही सदृशता हो जावे, यदि वीर्यान्तराय कर्म सर्वघातिरूप से केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण के समान होता तो इन तीनों में समानता अनिवार्य थी, परन्तु ऐसा है नहीं। क्योंकि वीर्यान्तराय का सर्वत्र क्षयोपशम पाया जाता है। अतएव चूँकि वीर्यान्तराय कर्म देशघाती लक्षण वाला है इस कारण वह एरण्डदण्ड के समान निःसार होने से बहुत घाता जाता है, किन्तु केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण सर्वघाती हैं अतः वे वज्रशैल के समान निकाचित—निविडरूप से बंध को प्राप्त होने के कारण बहुत नहीं घाते जाते हैं इसलिये अंतरायकर्म के जघन्य की अपेक्षा ज्ञानावरण और दर्शनावरण के जघन्य अनुभाग का अनंतगुणा होना उचित ही है।

अब आयु कर्म की वेदना का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उनसे भाव की अपेक्षा आयुकर्म की जघन्य वेदना अनन्तगुणी है।।४४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**मनुष्येण वा पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिजीवेन वा परिवर्तमानमध्यमपरिणामेन बद्धमपर्याप्ततिर्यगायुरनुभागेन जघन्यं। एतद् ताभ्यां अनंतगुणं।**

कुतः ?

ज्ञानावरण-दर्शनावरणानुभाग इव काण्डकघातैरनुसमयापवर्तनाघातैश्च क्षपकश्रेण्यां अप्राप्तानुभागघातत्वात्।

संप्रति गोत्रवेदनाल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

गोदवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।।४५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**बादरतेजो-बादरवायुपर्याप्तकेषु सर्वविशुद्धेषु हतसमुत्पत्तिककर्मसु अपर्वितोच्चगोत्रेषु गोत्रानुभागो जघन्यो जातः। अत्र यद्यपि संख्यातसहस्त्रानुभागकाण्डकानि पतितानि तर्ह्यपि घातितशेषानुभाग-आयुर्जघन्यानुभागादनन्तगुणो भवति। सर्वोत्कृष्टतिर्यगायुरनुभागात् सर्वोत्कृष्टनीच-गोत्रानुभागोऽनन्तगुण इति चतुःषष्टिपदिकदण्डके भणितं। तेनायुषो जघन्यानुभागबंधात् नीचगोत्रस्य जघन्यानुभागबंधोऽनन्तगुण इति ज्ञायते। तस्मात् नीचगोत्रजघन्यानुभागोऽनन्तगुणः, द्विस्थानसत्त्वकर्मत्वात्।**

संप्रति नामवेदनाल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

णामवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मनुष्य अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिवाले जीव के द्वारा परिवर्तमान मध्यम परिणामों से बांधी गयी अपर्याप्त तिर्यंच संबंधी आयु अनुभाग की अपेक्षा जघन्य होती है। यह उपर्युक्त दोनों कर्मों के जघन्य अनुभाग से अनंतगुणी है।

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—क्योंकि जिस प्रकार क्षपकश्रेणि में ज्ञानावरण और दर्शनावरण का अनुभागकाण्डकघात व अनुसमय अपवर्तनाघात के द्वारा घात को प्राप्त होता है उसी प्रकार उनके द्वारा आयुकर्म का अनुभाग घात को नहीं प्राप्त होता है।

अब गोत्र कर्म की वेदना का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे भाव की अपेक्षा गोत्रकर्म की जघन्य वेदना अनंतगुणी है।।४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जो सर्व विशुद्ध हैं, हतसमुत्पत्तिककर्मा हैं और जिन्होंने उच्च गोत्र का अपवर्तनाघात किया है ऐसे बादर तेजस्कायिक व वायुकायिक पर्याप्त जीवों में गोत्र कर्म का अनुभाग जघन्य होता है। यहाँ यद्यपि संख्यात हजार अनुभागकाण्डकघात हुए हैं तो भी गोत्र कर्म का घात करने के बाद शेष रहा अनुभाग आयु के जघन्य अनुभाग की अपेक्षा अनंतगुणा है। अतः चतुःषष्ठिपदिक दण्डक में "सर्वोत्कृष्ट तिर्यंचायु के अनुभाग से सर्वोत्कृष्ट नीच गोत्र का अनुभाग अनंतगुणा है" ऐसा कहा गया है अतः इससे जाना जाता है कि आयु के जघन्य अनुभाग बंध की अपेक्षा नीचगोत्र का जघन्य अनुभाग बंध अनंतगुणा है। उससे नीचगोत्र का जघन्य अनुभाग अनंतगुणा है, क्योंकि वह द्विःस्थान सत्त्वकर्म है।

अब नामकर्म की वेदना का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

उससे भाव की अपेक्षा नामकर्म की जघन्य वेदना अनंतगुणी है।।४६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूक्ष्मनिगोदजीवापर्याप्तकस्य हतसमुत्पत्तिक-कर्मणि परिवर्तमान- मध्यमपरिणामे नामकर्मानुभागस्य जघन्यं जातं। एषः अनुभागो नीचगोत्रजघन्यानुभागादनन्तगुणोऽस्ति। सर्वत्र यशः कीर्त्यादीनां शुभप्रकृतीनामनुभागस्य नीचगोत्रानुभागादनन्तगुणस्य विशुद्ध्या घाताभावात्। अतिसंक्लेशं नीत्वा शुभप्रकृतीनामनुभागे घातितेऽपि न लाभोऽस्ति, संक्लेशेन अयशःकीर्त्यादि-अशुभप्रकृतीनामनुभागस्य वृद्धिदर्शनात्। परिवर्तमानमध्यमपरिणामैः शुभाशुभप्रकृतीनामनुभागमहद्वृद्धि-हान्योरनिमित्तैः परिणतस्य तेन स्वामित्वं दत्तं। ततो बहुवृद्धि-हान्योरभावात् नामवेदनाभावोऽनन्तगुण इति सिद्धम्।**

संप्रति वेदनीयवेदनाल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

वेयणीयवेदणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।।४७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र कश्चिदाह—वेदनीयानुभागः क्षपकश्रेण्यां संख्यातसहस्रानुभाग-काण्डकघातैः घातं प्राप्तोऽस्ति इति। चिरन्तनानुभागात् अनंतगुणहीनोऽयोगिचरमसमये एकनिषेकमवलम्ब्य स्थितः कथं नामानुभागात् अप्राप्तक्षपकश्रेणिघातात् संसारिजीवकाण्डकघातैः समुत्कृष्टं संप्रेक्ष्य अनंतगुणहीन-त्वमापन्नात् अनंतगुणो भवेत् ?**

अन्यच्च, वेदनीयोत्कृष्टानुभागात् असातावेदनीयसंज्ञितात् संसारावस्थायां यशःकीर्ति-उत्कृष्टानु-भागोऽनन्तगुणः, सः कथं संसारिकाण्डकघातैः क्षपकश्रेण्यां घातं प्राप्तासातावेदनीयानुभागादनन्तगुणहीनः क्रियते ?

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जो सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव हतसमुत्पत्तिक कर्म और परिवर्तमान मध्यम परिणामों से युक्त हैं उनके नामकर्म का अनुभाग जघन्य होता है। यह अनुभाग नीच गोत्र के जघन्य अनुभाग की अपेक्षा अनंतगुणा होता है, क्योंकि सर्वत्र नीच गोत्र के अनुभाग से अनंतगुणा जो यशःकीर्ति आदि शुभ प्रकृतियों का अनुभाग होता है इसका विशुद्धि के द्वारा घात नहीं होता। अति संक्लेश को प्राप्त कराकर शुभ प्रकृतियों के अनुभाग का घात कराने पर भी कोई लाभ नहीं है, क्योंकि संक्लेश से अयशःकीर्ति आदि अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग में वृद्धि देखी जाती है। इसीलिये जो परिवर्तमान मध्यम परिणाम शुभाशुभ प्रकृतियों के अनुभाग की महान वृद्धि और हानि में निमित्त नहीं पड़ते हैं, उनसे परिणत हुए जीवों को उसका स्वामी बतलाया है। अतएव बहुत वृद्धि व हानि का अभाव होने से नामकर्म की वेदना भाव से गोत्र कर्म की अपेक्षा अनंतगुणी होती है, यह सिद्ध होता है।

अब वेदनीय कर्म की वेदना का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे भाव की अपेक्षा वेदनीय कर्म की जघन्य वेदना अनंतगुणी है।।४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ कोई शंका करता है—वेदनीय कर्म का अनुभाग क्षपकश्रेणी में संख्यात हजार अनुभागकाण्डक घातों के द्वारा घात को प्राप्त होता है, इसलिए जो चिरन्तन अनुभाग की अपेक्षा अनंतगुणाहीन होता हुआ अयोगिकेवली के अंतिम समय में एक निषेक का अवलम्बन लेकर स्थित है वह भला जो क्षपक श्रेणि में घात को नहीं प्राप्त हुआ है और जो संसारी जीवों के काण्डक घातों के द्वारा अपने उत्कृष्ट अनुभाग की अपेक्षा अनंतगुणी है, ऐसे नामकर्म के जघन्य अनुभाग से अनंतगुणा कैसे हो सकता है ?

दूसरी बात यह है कि संसार अवस्था में यशःकीर्ति के उत्कृष्ट अनुभाग असाता संज्ञावाले वेदनीय के उत्कृष्ट अनुभाग से अनंतगुणा है ऐसी अवस्था में वह क्षपकश्रेणी में संसारी जीवों के काण्डकघातों के द्वारा घात को प्राप्त हुए असातावेदनीय के अनुभाग की अपेक्षा अनंतगुणाहीन कैसे किया जा सकता है ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैष दोषः, न केवलमकषायपरिणामश्चैव अनुभागघातस्य कारणं, किन्तु प्रकृतिगतशक्तिसर्वापेक्षी परिणामोऽनुभागघातस्य कारणं। तत्रापि प्रधानमन्तरंगकारणं, तस्मिन्नुत्कृष्टे सति बहिरंगकारणे स्तोकेऽपि बहु-अनुभागघातदर्शनात् अन्तरंगकारणे स्तोके सति बहिरंगकारणे बहुके सत्यपि बहु-अनुभागघातानुपलंभात्। ततो नामानुभागघातान्तरंगकारणाद् वेदनीयानुभागघातान्तरंगकारणमनन्तगुणहीनमिति नामजघन्यानुभागाद् वेदनीयजघन्यानुभागस्य अनंतगुणत्वं युज्यते।

एव पंचमस्थलेऽल्पबहुत्वस्य प्रथमे जघन्यपदभेदे कर्मणां वेदनाकथनत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

एवं जघन्यमल्पबहुत्वं समाप्तम्।

अधुना उत्कृष्टपदापेक्षया अल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रपंचकमवतार्यते —

उक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा आउववेदणा भावदो उक्कस्सिया।।४८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतद्भवधारणमात्रकार्यकारित्वात्।**

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणा भावदो उक्कस्सिया तिण्णि वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ।।४९।।

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि केवल अकषाय परिणाम ही अनुभागघात का कारण नहीं है, किन्तु प्रकृतिगत शक्ति की अपेक्षा रखने वाला परिणाम अनुभागघात का कारण है। उसमें भी अंतरंग कारण प्रधान है, उसके उत्कृष्ट होने पर बहिरंग कारण के स्तोक रहने पर भी अनुभाग घात बहुत देखा जाता है। तथा अंतरंग कारण के स्तोक होने पर बहिरंग कारण के बहुत होते हुए भी अनुभागघात बहुत नहीं उपलब्ध होता। अतः नामकर्मसंबंधी अनुभाग के घात के अंतरंग कारण की अपेक्षा वेदनीय संबंधी अनुभाग के घात का अंतरंग कारण अनंतगुणा हीन है अतः नामकर्म के जघन्य अनुभाग की अपेक्षा वेदनीय के जघन्य अनुभाग का अनंतगुणा होना उचित ही है।

इस प्रकार पंचम स्थल में अल्पबहुत्व के प्रथम जघन्य पद भेद में कर्मों की वेदना का कथन करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार जघन्य अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

अब उत्कृष्ट पद की अपेक्षा अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उत्कृष्ट पद का अवलम्बन लेकर भाव की अपेक्षा आयुकर्म की उत्कृष्ट वेदना सबसे स्तोक है।।४८।।

यह कथन इसलिए किया है, क्योंकि वह धारणमात्र कार्य को करने वाली है।

सूत्रार्थ—

भाव की अपेक्षा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय की उत्कृष्ट वेदनायें तीनों ही तुल्य होकर आयुकर्म की उत्कृष्ट वेदना से अनन्तगुणी हैं।।४९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र कश्चिदाशंकते—**

केवलज्ञान-केवलदर्शनयोः समानत्वेन तदावरणानुभागस्य अपि भवतु नाम समानत्वं, किन्तु अंतरायानुभागस्य न समानत्वं युज्यते, केवलज्ञान-दर्शन-अनंतवीर्याणां समानत्वाभावादिति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैष दोषः, केवलज्ञान-दर्शन-अनन्तवीर्याणां समानत्वाभ्युपगमात्।

कुतः समानत्वं ज्ञायते ?

एतस्माच्चैव सूत्राज्ज्ञायते। न च आवारकशक्तौ समानायां सत्यां तदावरष्यियाणं विसदृशत्वं युज्यते, विरोधात्।

कथं पुनः आयुरुत्कृष्टानुभागादनन्तगुणत्वं ?

नैतद्, अंतरंग-बहिरंगकारणप्रतिबद्धानां 'कार्योपलंभात्।'

मोहणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा।।५०।।

कुतः ? स्वाभाविकत्वात्। न च स्वभावो युक्तिगोचरः, अग्निर्दहनोऽपि संमारणमृत्यवादिषु युक्तेः अनुपलंभात्।

णामा-गोदवेयणाओ भावदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ अणंत-गुणाओ।।५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ कोई शंका करता है—

चूँकि केवलज्ञान और केवलदर्शन दोनों ही समान हैं अतः केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण के अनुभाग में भी समानता भले ही हो जावे, किन्तु अन्तराय के अनुभाग को इनके समान मानना उचित नहीं है, क्योंकि केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्तवीर्य में समानता नहीं है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि केवलज्ञान-केवलदर्शन और अनन्तवीर्य में समानता स्वीकार की गई है।

शंका—उन तीनों में समानता है यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—यह इसी सूत्र से जाना जाता है। और आवारकशक्ति के समान होने पर उनके द्वारा आवरण करने योग्य गुणों की असमानता मानना उचित नहीं है, क्योंकि वैसा मानने में विरोध आता है।

शंका—तो फिर आयु के उत्कृष्ट अनुभाग की अपेक्षा उनका अनुभाग अनन्तगुणा है यह कैसे संभव है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि अंतरंग व बहिरंग कारणों से प्रतिबद्ध उनके अनंत कार्य उपलब्ध होते हैं।

सूत्रार्थ—

उससे भाव की अपेक्षा मोहनीय की उत्कृष्ट वेदना अनंतगुणी है।।५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ऐसा कैसे है ? क्योंकि ऐसा स्वभाव है और स्वभाव युक्तिगोचर नहीं होता है। क्योंकि अग्नि दाहजनक होकर भी मृत्युदायक है इत्यादि में कोई युक्ति नहीं पाई जाती है।

सूत्रार्थ—

उनसे भाव की अपेक्षा नाम व गोत्र की उत्कृष्ट वेदनायें दोनों ही तुल्य होकर अनंतगुणी हैं।।५१।।

कुतः ?, शुभप्रकृतित्वात्।।

अशुभप्रकृति-अनुभागात् शुभ प्रकृतीनामनुभागः किमर्थं अनंतगुणः ?

न, स्वाभाविकत्वात्।

उक्तं च श्री वीरसेनाचार्येण—

''न हि स्वभावाः परपर्यनुयोगार्हाः[१]।''

वेदणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा।।५२।।

यशःकीर्ति उच्चगोत्राभ्यां सातावेदनीयस्य प्रशस्ततमत्वात्।

एवं षष्ठस्थले उत्कृष्टपदे कर्मणां वेदनाकथनत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

एवमुत्कृष्टानुभागाल्पबहुत्वं समाप्तम्।

अधुना जघन्योत्कृष्टापेक्षया अल्पबहुत्वनिरूपणार्थं द्वादशसूत्राणि अवतार्यन्ते —

जहण्णुक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णिया।।५३।।

अंतराइयवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।।५४।।

णाणावरणीय-दंसणावरणीयवेयणाओ भावदो जहण्णियाओ दो वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ।।५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कैसे अनन्तगुणी है ? क्योंकि ये दोनों शुभ प्रकृति हैं।

शंका—अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग से शुभ प्रकृतियों का अनुभाग अनंतगुणा क्यों है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि उनका वैसा स्वभाव ही है।

श्रीवीरसेनाचार्य ने कहा है—

''स्वभाव प्रश्न के विषय नहीं हुआ करते हैं।''

सूत्रार्थ—

उनसे भाव की अपेक्षा वेदनीय की उत्कृष्ट वेदना अनंतगुणी है।।५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि यशःकीर्ति और उच्च गोत्र की अपेक्षा सातावेदनीय अतिशय प्रशस्त है।

इस प्रकार छठे स्थल में उत्कृष्ट पद में कर्मों की वेदना का कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभाग का अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

अब जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु बारह सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

जघन्य-उत्कृष्ट पद से भाव की अपेक्षा मोहनीय की जघन्य वेदना सबसे स्तोक है।।५३।।

उससे भाव की अपेक्षा अन्तराय की जघन्य वेदना अनंतगुणी है।।५४।।

उससे भाव की अपेक्षा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय की जघन्य वेदनायें तुल्य होकर भी अनंतगुणी हैं।।५५।।

---

१. षट्खंडागम, धवलाटीका, पु. ११ पृ. ३८।

आउअवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।।५६।।

णामवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।।५७।।

गोदवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।।५८।।

वेदणीयवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।।५९।।

आउअवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।।६०।।

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणा भावदो उक्कस्सिया तिण्णि वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ।।६१।।

मोहणीयवेदणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा।।६२।।

णामा-गोदवेयणाओ भावदो उक्कस्सिया दो वि तुल्लाओ अणंत-गुणाओ।।६३।।

वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा।।६४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। अत्र एतज्ज्ञातव्यं, मोहनीयकर्मणः भाववेदना जघन्या सर्वस्तोकाः, क्रमशः अनंतगुणितक्रमेण वेदनीयस्य सर्वाधिका अनंतगुणाः इत्यादिसिद्धान्तविषयं ज्ञात्वा निजात्मतत्त्वभाववेदना-अनुभवनं तदेव श्रेयस्करं। तेनैव स्वात्मतत्त्वचिन्तनेन स्वात्मसिद्धिर्भविष्यति**

उससे भाव की अपेक्षा आयु की जघन्य वेदना अनंतगुणी है।।५६।।

उससे भाव की अपेक्षा नामकर्म की जघन्य वेदना अनंतगुणी है।।५७।।

उससे भाव की अपेक्षा गोत्रकर्म की जघन्य वेदना अनंतगुणी है।।५८।।

उससे भाव की अपेक्षा वेदनीय की जघन्य वेदना अनंतगुणी है।।५९।।

उससे भाव की अपेक्षा आयु की उत्कृष्ट वेदना अनंतगुणी है।।६०।।

उससे भाव की अपेक्षा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय की उत्कृष्ट वेदनायें तीनों ही तुल्य होकर भी अनंतगुणी हैं।।६१।।

उससे भाव की अपेक्षा मोहनीय की उत्कृष्ट वेदना अनंतगुणी है।।६२।।

उससे भाव की अपेक्षा नाम और गोत्र की उत्कृष्ट वेदनायें दोनों भी तुल्य होकर अनंतगुणी हैं।।६३।।

उससे भाव की अपेक्षा वेदनीय की उत्कृष्ट वेदना अनंतगुणी है।।६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ यह विशेष जानना है कि मोहनीय कर्म की भाववेदना जघन्य सबसे स्तोक है, वह क्रमशः अनंतगुणित के क्रम से वेदनीय कर्म की सर्वाधिक अनंतगुणी हो जाती है, इत्यादि सिद्धांत विषय को जान करके निज आत्मतत्त्व भाववेदना का जो अनुभवन-

इति निश्चेतव्यम्।

एवं सप्तमस्थले जघन्योत्कृष्टपदापेक्षया कर्मवेदनानिरूपणत्वेन द्वादश सूत्राणि गतानि।

अधुना उत्तरप्रकृतीः आश्रित्य अनुभागाल्पबहुत्वप्ररूपणार्थं गाथासूत्रेण उत्तरसूत्रमवतार्यते —

सादं जसुच्च-दे-कं, ते-आ-वे-मणु अनंतगुणहीणा।
ओ-मिच्छ-के-असादं, वीरिय-अणंताणु-संजलणा।।१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सूत्रे 'सादं' इत्युक्ते सातावेदनीयं गृहीतव्यं। 'जस' इत्युक्ते यशः कीर्तिर्ग्राह्या।**

कथं नाम एकदेशेन नामवतो विषयस्य संप्रत्ययः ?

नैतद् वक्तव्यं, देव-भामा-सेनशब्देभ्यो बलदेव-सत्यभामाभीमसेनादिषु संप्रत्ययदर्शनात्।

श्रीवीरसेनाचार्येण कथ्यते—''ण च लोगववहारो चप्पलओ, ववहारिज्जमणस्स चप्पलत्ताणुववत्तीदो।'' अत्र सूत्रे 'उच्च' इत्युक्ते उच्चगोत्रं गृहीतव्यं।

अत्र विरामः किमर्थं कृतः ?

यशःकीर्ति-उच्चगोत्रयोरनुभागः समान इति ज्ञापनार्थं। 'दे' इत्युक्ते देवगतिर्गृहीतव्या। 'कं' इति

वेदन है वही श्रेयस्कर है। उसी स्वात्मतत्व चिन्तन के द्वारा आत्मसिद्धि होगी ऐसा निश्चय करना चाहिए।

इस प्रकार सातवें स्थल में जघन्य और उत्कृष्ट पद की अपेक्षा कर्मवेदना का निरूपण करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा अनुभाग के अल्पबहुत्व का प्ररूपण करने हेतु गाथासूत्र के रूप में उत्तर सूत्र का अवतार किया जाता है —

गाथा सूत्रार्थ—

सातावेदनीय, यशःकीर्ति व उच्चगोत्र ये दो प्रकृतियाँ, देवगति, कार्मण शरीर, तैजस शरीर, आहारक शरीर, वैक्रियिक शरीर और मनुष्यगति ये प्रकृतियाँ उत्तरोत्तर अनंतगुणी हीन हैं। औदारिक शरीर, मिथ्यात्व, केवलज्ञानावरण-केवलदर्शनावरण-असातावेदनीय व वीर्यान्तराय ये चार प्रकृतियाँ अनंतानुबंधि चतुष्टय और संज्वलन चतुष्टय ये प्रकृतियाँ उत्तरोत्तर अनंतगुणी हीन हैं।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र में ''सादं'' ऐसा कहने पर सातावेदनीय कर्म का ग्रहण करना चाहिए। 'जस' यह कहने से यशःकीर्ति शब्द को ग्रहण करना चाहिए।

शंका—नामके एक देश से नामवाली वस्तु का बोध कैसे हो सकता है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि देव, भामा व सेन शब्दों से क्रमशः बलदेव, सत्यभामा व भीमसेन का प्रत्यय होता हुआ ऐसा देखा जाता है।

श्रीवीरसेनाचार्य ने कहा है—लोकव्यवहार चपल-असत्य होता है, यह बात नहीं है, क्योंकि व्यवहार की विषयभूत वस्तु की असत्यता नहीं बन सकती है। यहाँ सूत्र में 'उच्च' ऐसा कहने पर उच्चगोत्र का ग्रहण करना चाहिये।

शंका—यहाँ पर विराम किसलिये किया गया है ?

समाधान—यशःकीर्ति और उच्चगोत्र का अनुभाग समान है, यह बतलाने के लिये यहाँ विराम किया

कथिते कार्मणशरीरं गृहीतव्यं। 'ते' इति भणिते तैजसशरीरस्य ग्रहणं। 'आ' इति वचनेन आहारकशरीरस्य ग्रहणं। 'वे' इत्युक्ते वैक्रियिकशरीरस्य ग्रहणं। 'मणु' निर्देशः मनुष्यगतिग्रहणार्थः 'अणंतगुणहीणा' पदेन एताः कथितसर्वप्रकृतीः अन्योऽन्यमपेक्ष्य यथाक्रमेण अनंतगुणहीनाः सन्ति।

एषः 'अणंतगुणहीण' निर्देश उपरि अपि 'मंडूकोत्पतनन्यायेन' अनुवर्तते, कुत्रापि विरामदर्शनात्।

'ओ' निर्देशः औदारिकशरीरग्रहणार्थं। 'मिच्छ' निर्देशो मिथ्यात्वकर्मग्रहणनिमित्तोऽस्ति। 'के' इति निर्देशः केवलज्ञानावरणीय-केवलदर्शनावरणीयग्रहणनिमित्तो वर्तते। 'असाद' निर्देशोऽसातावेदनीय ग्रहणार्थः। 'वीरिय' कथनं वीर्यान्तरायग्रहणहेतुकः। एतासां चतसृणां प्रकृतीनामनुभागः सदृशोऽस्ति। अत्र अनंतगुणहीनानुवृत्तेरभावात्।

तदननुवृत्तिरपि कुतो ज्ञायते ?

एतस्य गाथासूत्रस्य विवरणभावेन रचितोपरिमचूर्णिसूत्राद् ज्ञायते। 'अणंताणु' इति निर्देशोऽनन्तानुबंधि-चतुष्कग्रहणार्थः। लोभानुभागेऽनन्तगुणहीनत्वमनुवर्तते नोपरिमसूत्रेष्वपि, लोभान्माया विशेषहीना क्रोधो विशेषहीनो मानो विशेषहीन इति उपरिमसूत्रे प्ररूपयिष्यमाणत्वात्। 'संजलणा' इत्युक्ते चतुर्णां संज्वलनानां ग्रहणं। तत्र लोभसंज्ज्वलनायां अनंतगुणहीनाधिकारोऽनुवर्तते, नोपरिमेषु।

एतत्कुतो ज्ञायते ?

गया है। 'दे' ऐसा कहने से देवगति का ग्रहण करना चाहिये। 'कं' ऐसा कहने पर कार्मण शरीर का ग्रहण करना चाहिये। 'ते' ऐसा कहने पर तैजस शरीर का ग्रहण करना चाहिए। 'आ' ऐसा कहने पर आहारक शरीर का ग्रहण करना चाहिए। 'वे' ऐसा कहने पर वैक्रियिक शरीर का ग्रहण करना चाहिए। 'मणु' पद का निर्देश मनुष्यगति का ग्रहण करने के लिए किया गया है। ये उपर्युक्त सब प्रकृतियाँ उत्तरोत्तर एक दूसरे की अपेक्षा क्रम से अनंतगुणी हीन हैं।

यह अनंतगुणहीन पद का निर्देश "मंडूकोत्पतन न्याय" अर्थात् (मेंढक के उछलने सदृश) न्याय से आगे भी अनुवृत्त होता है, क्योंकि कहीं पर विराम देखा जाता है।

'ओ' पद का निर्देश औदारिक शरीर का ग्रहण करने के लिए किया है 'मिच्छ' यह निर्देश मिथ्यात्व कर्म का ग्रहण करने में निमित्त है। 'के' पद का निर्देश केवलज्ञानावरण-केवलदर्शनावरण का ग्रहण करने के लिए किया है। 'असाद' पद का निर्देश असाता वेदनीय का ग्रहण करने के लिए है। 'वीरिय' पद का निर्देश वीर्यान्तराय का ग्रहण करने के लिए निमित्त है। इन चार प्रकृतियों का अनुभाग समान है, क्योंकि यहाँ 'अनंतगुणहीन' की अनुवृत्ति का अभाव है।

शंका—उसकी अननुवृत्ति—अनुवृत्ति नहीं है इसका भी परिज्ञान किस प्रमाण से होता है?

समाधान—इस गाथासूत्र के विवरणरूप से रचे गये आगे के चूर्णिसूत्र से उसका परिज्ञान होता है। 'अणंताणु' पद का निर्देश अनंतानुबंधि चतुष्टय का ग्रहण करने के लिये है। यहाँ लोभ के अनुभाग में अनंतगुणहीन पद की अनुवृत्ति होती है। आगे की तीन कषायों में उसकी अनुवृत्ति नहीं होती है। क्योंकि लोभ से माया विशेष हीन है, इससे क्रोध विशेष हीन है, इससे मान विशेष हीन है, इस प्रकार आगे के सूत्रों में उसकी प्ररूपणा की जाने वाली है। 'संजलणा' ऐसा कहने पर चार संज्वलन कषायों का ग्रहण होता है। उनमें से संज्वलन लोभ में अनंतगुणहीन पद के अधिकार की अनुवृत्ति होती है, आगे की कषायों में नहीं होती है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

उपरि भण्यमानसूत्रात्। अत्रापि माया-क्रोध-मानानुभागानां क्रमेण विशेषहीनत्वं वक्तव्यम्।

संप्रति काः काः प्रकृतयोऽनन्तगुणहीना ? इति प्रश्ने सति गाथासूत्रमवतार्यते —

अट्ठाभिणि-परिभोगे चक्खू तिण्णि तिय पंचणोकसाया।
णिद्दाणिद्दा पयलापयला णिद्दा या पयला य।।२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतस्य द्वितीयगाथासूत्रस्यार्थ उच्यते। तद्यथा—**

'अट्ठ' इत्युक्तेऽष्ट कषायाणां ग्रहणं। तत्र प्रत्याख्यानावरणीयानां लोभे येनानन्तगुणहीनाधिकारो अनुवर्तते तेन मानसंज्वलनानुभागात्। प्रत्याख्यानावरणीयलोभानुभागोऽनन्तगुणहीनः। माया विशेषहीना क्रोधो विशेषहीनो मानो विशेषहीनः प्रकृति विशेषेण।

कुतः ?

अनंतगुणहीनाधिकारस्यानुवृत्तेः। अप्रत्याख्यानावरणीयलोभो विशेषहीनः, तत्र तदनुवृत्तेः। उपरि विशेषहीनता, तदननुवृत्तेः।

कथं सर्वमिदं ज्ञायते ?

उपरि भण्यमानचूर्णिसूत्रात् ज्ञायते। 'आभिणि' इत्युक्ते आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयस्य ग्रहणं। 'परिभोगे'

समाधान—यह आगे कहे जाने वाले सूत्र से जाना जाता है।

यहाँ भी माया, क्रोध और मान के अनुभागों में क्रमशः विशेष हीनता का कथन करना चाहिए।

अब कौन-कौन सी प्रकृतियाँ अनंतगुणहीन है? ऐसा प्रश्न होने पर गाथासूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

आठ कषाय अर्थात् चार प्रत्याख्यानावरण और चार अप्रत्याख्यानावरण, आभिनिबोधिक ज्ञानावरण और परिभोगान्तराय ये दो, चक्षुदर्शनावरण, तीन त्रिक अर्थात् श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तराय ये तीन प्रकृतियाँ, अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय ये तीन प्रकृतियाँ, मनःपर्ययज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धि और दानान्तराय ये तीन प्रकृतियाँ, पाँच नोकषाय अर्थात् नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा और प्रचला ये प्रकृतियाँ क्रमशः उत्तरोत्तर अनंतगुणहीन हैं।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस द्वितीय गाथासूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—

"अट्ठ" ऐसा कहने पर आठ कषायों का ग्रहण किया गया है। उनमें से प्रत्याख्यानावरण लोभ में चूँकि अनंतगुणहीन अधिकार की अनुवृत्ति आती है अतः संज्वलनमान के अनुभाग से प्रत्याख्यानावरण लोभ का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। उससे प्रकृतिविशेष होने के कारण माया विशेष हीन है, उससे क्रोध विशेष हीन है, उससे मान विशेष हीन है। कैसे ? क्योंकि इनमें अनंतगुणहीन अधिकार की अनुवृत्ति नहीं होती है। उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभ अनंतगुणाहीन है, क्योंकि उसमें अनंतगुणहीन पद की अनुवृत्ति नहीं होती है।

शंका—यह सब किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—आगे कहे जाने वाले चूर्णिसूत्र से जाना जाता है। 'आभिणि' ऐसा कहने पर आभिनिबोधिक

इति कथने परिभोगान्तरायस्य ग्रहणं। इमे द्वे अपि प्रकृती अन्योऽन्यं तुल्ये भूत्वा पूर्वोक्तानुभागादनन्तगुणहीने स्तः।

एतयोःकथं तुल्यत्वं ज्ञायते ?

परमगुरूपदेशादेव ज्ञायते 'चक्खू' इत्युक्ते चक्षुर्दर्शनावरणीयस्य ग्रहणं। 'तिण्णि' इति वचनेन श्रुतज्ञानावरणीय-अचक्षुर्दर्शनावरणीय-भोगान्तरायाणां अन्योऽन्यमपेक्ष्य अनुभागेन समानानां ग्रहणं।

कथमेतासां तुल्यत्वं ज्ञायते ?

न, आचार्योपदेशात्। तेनात्रानन्तगुणहीनाधिकारः प्रत्येकं न संबध्यते किन्तु समुदाये वर्तते। 'तिय' इति भणिते अवधिज्ञानावरणीय-अवधिदर्शनावरणीय-लाभान्तरायाणामनुभागमपेक्ष्य अन्योऽन्येन समानानां ग्रहणं।

कथं समानत्वं ज्ञायते ?

उपरि भण्यमानचूर्णिसूत्राद् अवबुध्यते। मनःपर्ययज्ञानावरणीय-स्त्यानगृद्धि-दानान्तरायाणां चानुभागेनान्योन्यं तुल्यानां 'तिण्णि तिय' निर्देशेनैव ग्रहणमस्ति, अन्यथा त्रि-त्रिकत्वानुपपत्तेः, अत्रापि अनन्तगुणहीनाधिकारः समुदायेऽनुवर्तापयितव्यः। 'पंच णोकसाया' इत्युक्ते पंचानां नोकषायाणां ग्रहणं। अत्रानन्तगुणहीनाधिकारः प्रत्येकमनुवर्तापयितव्यः। तद्यथा—नपुंसकोऽनन्तगुणहीनः। अरतिरनन्तगुणहीना। शोकोऽनन्तगुणहीनः। भयमनन्त-गुणहीनं। जुगुप्सा अनंतगुणहीना इति। ''णिद्दाणिद्दा पलयापयला णिद्दा य पयला य। ''एताः प्रकृतयः क्रमेण अनंतगुणहीनाः, प्रत्येकमनन्तगुणहीनाधिकारस्य संबंधात्।

ज्ञानावरण का ग्रहण होता है। 'परिभोग' कहने पर परिभोगान्तराय का ग्रहण होता है। ये दोनों ही परस्पर समान होकर पूर्व के अनुभाग से अनंतगुणे हीन हैं।

शंका—इनकी समानता का परिज्ञान किस प्रमाण से होता है ?

समाधान—उसका परिज्ञान परमगुरु के उपदेश से होता है। 'चक्खू' ऐसा कहने पर चक्षुदर्शनावरणीय का ग्रहण होता है। 'तिण्णि' पद के निर्देश से एक दूसरे को देखते हुए अनुभाग की अपेक्षा समान श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तराय का ग्रहण होता है।

शंका—इनकी समानता किस प्रमाण से जानी जाती है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि वह आचार्यों के उपदेश से जानी जाती है।

इस कारण इनमें से प्रत्येक में अनंतगुणहीन पद के अधिकार का संबंध नहीं है, किन्तु समुदाय में है। 'तिय' ऐसा कहने पर अनुभाग की अपेक्षा परस्पर समान अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय का ग्रहण होता है।

शंका—यह समानता किस प्रमाण से जानी जाती है ?

समाधान—वह आगे कहे जाने वाले चूर्णिसूत्र से जानी जाती है।

परस्पर अनुभाग की अपेक्षा समानता को प्राप्त हुई मनःपर्ययज्ञानावरणीय, स्त्यानगृद्धि और दानान्तराय इन तीन प्रकृतियों का भी ग्रहण 'तिण्णितिय' पद के निर्देश से ही होता है, क्योंकि इसके बिना तीन त्रिक घटित नहीं होते। यहाँ पर भी अनंतगुणहीन पद के अधिकार की अनुवृत्ति समुदाय में ही करनी चाहिये। 'पंच णोकसाया' ऐसा कहने पर पाँच नोकषायों का ग्रहण होता है।

यहाँ अनंतगुणहीन पद के अधिकार की अनुवृत्ति प्रत्येक में करनी चाहिए। वह इस प्रकार है—नपुंसकवेद अनंतगुणा हीन है। उससे अरति अनंतगुणी हीन है। उससे शोक अनंतगुणा हीन है। उससे भय अनंतगुणाहीन है। उससे जुगुप्सा अनंतगुणी हीन है। निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा और प्रचला ये प्रकृतियाँ क्रमशः उत्तरोत्तर अनंतगुणी हीन हैं, क्योंकि अनंतगुणहीन पद के अधिकार का संबंध इनमें से प्रत्येक में है।

संप्रति अयशःकीर्त्यादिप्रकृति-अनंतगुणहीनाः इति प्रतिपादनार्थं गाथासूत्रमवतार्यते —

अजसो णीचागोदं णिरय-तिरिक्खगइ इत्थि पुरिसो य।
रदि-हस्सं देवाऊ णिरआऊ मणुय-तिरिक्खाऊ।।३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतस्यास्तृतीयायाः सूत्रगाथाया अर्थ उच्यते। तद्यथा-'अजसो णीचागोदं' इत्युक्तेऽयशःकीर्ति-नीचगोत्रयोरनुभागेन समानयोऽनन्तगुणाधिकारेण समुदायेन वध्यमानयोर्ग्रहणं। 'णिरय' इत्युक्ते नरकगतिर्गृहीतव्या। 'तिरिक्खगइ-इत्थिवेदपुरिसवेद-रदि-हस्स-देवाउ-णिरयाउ-मणुस्साउ-तिरिक्खाऊ' एताः प्रकृतयो यथासंख्यं अनंतगुणहीना इति गृहीतव्याः सन्ति।**

एवं अष्टमस्थले उत्तरप्रकृतिषु अल्पबहुत्वकथनत्वेन सूत्रातिरिक्तं गाथात्रयं गतम्।

संप्रति-एताभिस्तिसृभिर्गाथाभिः प्ररूपितचतुःषष्टिपदिक-उत्कृष्टानुभागमहादण्डक-अल्पबहुत्वस्य मन्दमेधाविजनानुग्रहाय अर्थप्ररूपणार्थमुपरिमसूत्रं भण्यते —

एत्तो उक्कस्सओ चउसट्ठियपदियो महादंडओ कायव्वो भवदि।।६५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**कश्चिदाशंकते—जघन्येन उत्कृष्टेन जघन्योत्कृष्टभेदेन च त्रिविकल्पानि अल्पबहुत्वानि प्ररूप्य तत्समाप्ते सति किमर्थं चतुःषष्टिपदिकमहादण्डक उच्यते ?**

अब अयशःकीर्ति आदि प्रकृतियाँ अनंतगुणा हीन हैं ऐसा प्रतिपादन करने हेतु गाथा सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

अयशःकीर्ति और नीचगोत्र ये दो, नरकगति, तिर्यग्गति, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, रति, हास्य, देवायु, नारकायु, मनुष्यायु और तिर्यग्गायु ये प्रकृतियाँ अनुभाग की अपेक्षा उत्तरोत्तर अनंतगुणी हीन हैं।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस तृतीय गाथासूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है-'अजसो णीचागोदं' ऐसा कहने पर अनुभाग की अपेक्षा समान और अनन्तगुणहीन पद के अधिकार की अपेक्षा समुदायरूप से बंधने वाली अयशःकीर्ति और नीचगोत्र प्रकृतियों का गहण होता है। 'णिरय' इस पद से नरकगति का ग्रहण करना चाहिये। तिर्यग्गति, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, रति, हास्य, देवायु, नरकायु, मनुष्यायु और तिर्यंचायु ये प्रकृतियाँ यथाक्रम से अनंतगुणी हीन हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार आठवें स्थल में उत्तर प्रकृतियों में अल्पबहुत्व का कथन करने वाले सूत्रों के अतिरिक्त तीन गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब इन तीन गाथाओं के द्वारा प्ररूपित चौंसठ पद वाले उत्कृष्ट अनुभाग महादण्डकरूप अल्पबहुत्व का मंदबुद्धि जनों पर अनुग्रह करने हेतु अर्थ का प्ररूपण करने के लिए आगे का सूत्र कहा जा रहा है —

सूत्रार्थ—

यहाँ से आगे चौंसठ पद वाला उत्कृष्ट महादण्डक करना चाहिए।।६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ कोई आशंका करता है—जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्योत्कृष्ट के भेद से तीन प्रकार के अल्पबहुत्व का कथन करके उसके समाप्त हो जाने पर फिर चौंसठ पद वाले महादण्डक को किसलिए कहा जाता है ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—नैष दोषः, पूर्वोक्तमूलप्रकृति-अल्पबहुत्वं येन देशामर्शकं तेन तदद्यापि न समाप्तं। ततस्तेनामर्शितोत्तरप्रकृति-उत्कृष्ट-जघन्यानुभागाल्पबहुत्वं भणित्वा तत्समापनार्थमिदं उच्यते।

अधुना सातावेदनीयानुभागनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सव्वतिव्वाणुभागं सादावेदणीयं।।६६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अतिशुभप्रकृतित्वात् सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमयतीव्रविशुद्ध्या प्रबद्धत्वात् संसारसुखहेतुत्वाद् वा सातावेदनीयप्रकृतिः सर्वतीव्रानुभागसंयुक्ता भवतीति ज्ञातव्या।**

सातावेदनीयाद् अनंतगुणहीनप्रकृतिनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

जसगित्ती उच्चागोदं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।।६७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सातावेदनीयात् एते द्वे अपि यशःकीर्ति-उच्चगोत्रकर्मणी शुभत्वेन सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये बंधाभावेन च सदृशे भूत्वापि अनंतगुणहीने स्तः।**

बंधभावेन सदृशे भूत्वापि कथं ततोऽनन्तगुणहीने भवतः ?

नैतद्, यशःकीर्त्युच्चगोत्राभ्यां अतिशुभस्वरूपत्वात्। न च शुभानां कर्मणां सर्वेषां समानत्वं वक्तुं शक्यते, तरतमभावेन अन्यत्र शुभत्वोपलंभात्। यशःकीर्ति-उच्चगोत्रे शुभे इति कृत्वा तत्कारणकर्मणी अपि शुभे स्तः।

आचार्य इसका समाधान देते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि पहिले का मूल प्रकृति अल्पबहुत्व चूँकि देशामर्शक है अतः वह आज भी समाप्त नहीं हुआ है। इस कारण उसके द्वारा आमर्शित उत्तर प्रकृतियों के उत्कृष्ट और जघन्य अनुभाग संबंधी अल्पबहुत्व को कहकर उसे समाप्त करने के लिये उक्त महादण्डक कहा जा रहा है।

अब सातावेदनीय का अनुभाग निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

सातावेदनीय प्रकृति सर्व तीव्र अनुभाग से संयुक्त है।।६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चूँकि वह सातावेदनीय कर्मप्रकृति अतिशय शुभ प्रकृति है। अथवा सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान के अंतिम समय में तीव्र विशुद्धि से उसका बंध हुआ है अथवा यह संसार सुख का हेतु है अथवा सातावेदनीयकर्म की प्रकृति सर्वतीव्र अनुभाग से संयुक्त होती है ऐसा जानना चाहिये।

सातावेदनीय से अनंतगुणहीन प्रकृति का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इससे यशकीर्ति और उच्चगोत्र ये दोनों भी परस्पर तुल्य होकर अनंतगुणी हीन हैं।।६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सातावेदनीय से यशःकीर्ति और उच्चगोत्र ये दोनों कर्म भी ज्यादा शुभ हैं और सूक्ष्मसांपरायिक के चरमसमय में बंध का अभाव होने के कारण सदृश होकर भी अनंतगुणा हीन हैं।

शंका—बंधभाव से ये दोनों प्रकृतियाँ सदृश होकर भी सातावेदनीय से अनंतगुणा हीन कैसे हो सकती हैं ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि यशःकीर्ति और उच्चगोत्र की अपेक्षा सातावेदनीय अतिशय शुभ है। सब शुभकर्म समान ही हों, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अन्यत्र तरतम भाव से शुभपना उपलब्ध होता है। यशः कीर्ति और उच्चगोत्र के शुभ होने से उनके कारणभूत कर्म भी शुभ हैं। परन्तु सातावेदनीय चूँकि अतिशय सुख को उत्पन्न करता है अतएव वह शुभतम है। इसी कारण वह उन दोनों की अपेक्षा अनंतगुणा है।

सातावेदनीयं पुनः अतिशुभं—अतिशयसुखमुत्पादयतीति शुभतमं वर्तते। ततः तदनन्तगुणमिति भणितमत्र।

अधुना देवगति-अल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

देवगदी अणंतगुणहीणा।।६८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अपूर्वक्षपकेण चरमसमयसूक्ष्मसांपरायिकविशुद्धितोऽनन्तगुणहीनविशुद्ध्या स्वकालसप्तभागेषु षष्ठभागचरमसमयस्थितेन बद्धत्वात्।**

संप्रति औदारिकमन्तरेण शरीरचतुष्काल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

कम्मइयसरीरमणंतगुणहीणं।।६९।।

तेयासरीरमणंतगुणहीणं।।७०।।

आहारसरीरमणंतगुणहीणं।।७१।।

वेउव्वियसरीरमणंतगुणहीणं।।७२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**द्वयोरपि समानपरिणामैर्बद्धयोर्विसदृशत्वं कथितमत्र।**

ततः कथं विसदृशत्वं युज्यते ?

नैतत्, जीवविपाकिपुद्गलविपाकिप्रकृत्योश्चानुभागयोः सदृशत्वानुपपत्तेः। कार्मणशरीरं पुद्गलविपाकि, तत्फलस्य पुद्गलादभिन्नस्य उपलंभात्। देवगतिः पुनः जीवविपाकिनी, तत्फलेन जीवेऽणिमादिगुणदर्शनात्।

यह यहाँ कहा गया है।

अब देवगति में अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

उनसे देवगति अनंतगुणी हीन है।।६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक की विशुद्धि की अपेक्षा अनंतगुणी हीन विशुद्धि वाले अपूर्वकरण क्षपक के द्वारा अपने काल के सात भागों में से छठे भाग के अंतिम समय में उसका बंध होता है।

अब औदारिक शरीर के बिना चार शरीरों का अल्पबहुत्व निरूपित करने हेतु चार सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे कार्मण शरीर अनंतगुणा हीन है।।६९।।

उससे तैजस शरीर अनंतगुणा हीन है।।७०।।

उससे आहारक शरीर अनंतगुणा हीन है।।७१।।

उससे वैक्रियिक शरीर अनंतगुणा हीन है।।७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों कर्म समान परिणामों के द्वारा बांधे जाते हैं तो भी यहाँ उनमें विसदृशता कही गई है।

शंका—तब उनमें विसदृशता कैसे उचित है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी प्रकृतियों के अनुभागों में समानता सम्भव नहीं है। कार्मण शरीर पुद्गलविपाकी है, क्योंकि उसका फल पुद्गल से अभिन्न उपलब्ध होता है। परन्तु देवगति जीवविपाकी है,

ततो जीवविपाकि-देवगत्यनुभागाद् बहिरंगपुद्गलविपाकिकार्मण शरीरानुभागोऽनन्तगुणहीन इति सिद्धं भवति।

एतस्मात्तैजसशरीरमनन्तगुणहीनं भवति।

कश्चिदाशंकते — पुद्गलविपाकित्वेन बंधस्वामित्वेन कार्मणशरीरेण तैजसशरीरं समानं वर्तते, ततोऽनन्त-गुणहीनत्वं न घटते इति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद् वक्तव्यं, कार्यमहत्त्वात् कार्मणशरीरानुभागस्य महत्ता सिद्ध्यति 'तैजसशरीरनामकर्मणस्तैजस-शरीरस्यैव निष्पत्तिर्भवति', कार्मण शरीरं पुनः गंधवान् पेलियावृंत्तमिव सर्वकर्मणामास्त्रवभावफलं। ततस्तैजसशरीरेण क्रियमाणकार्यात् कार्मणशरीरेण क्रियमाणकार्यमतिमहदिति तदनुभागस्य अनंतगुणत्वमवगम्यते।

आहारशरीरमनन्तगुणहीनं भवति।

कुत एतज्ज्ञायते ?

उद्वेलयिष्यमाणत्वात्। न च तीव्रानुभागः उद्वेल्य निःसत्त्वं कृत्वा शक्यते। आहारशरीरं पुनः उद्वेल्य निःसत्त्वं क्रियमाणमुपलभ्यते। ततस्तैजसशरीरानुभागादाहारशरीरानुभागोऽनन्तगुणहीन इति सिद्धं भवति।

वैक्रियिकशरीरमनन्तगुणहीनं जायते।

कुतः ?

प्रकृतिविशेषेण।

कः प्रकृतिविशेषः ?

क्योंकि उसके फल से जीव में अणिमा, महिमा आदि गुण देखे जाते हैं। इसीलिये जीवविपाकी देवगति के अनुभाग की अपेक्षा बहिरंग पुद्गलविपाकी कार्मण शरीर का अनुभाग अनंतगुणा हीन है, यह सिद्ध होता है।

उससे तैजस शरीर अनंतगुणा हीन होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि — तैजस शरीर पुद्गलविपाकी होने की अपेक्षा व बंधस्वामित्व की अपेक्षा कार्मण शरीर के समान है, अतएव उसमें कार्मण शरीर की अपेक्षा अनंतगुणी हीनता घटित नहीं होती है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि कार्य के महत्त्व से कार्मण शरीर के अनुभाग की भी महत्ता सिद्ध होती है। तैजस शरीर नामकर्म से केवल तैजस शरीर की उत्पत्ति होती है, किन्तु कार्मण शरीर गंधवाले पेलिया वृंत्त के समान सब कर्मों के आस्त्रव का कारण है इसलिये तैजस शरीर के द्वारा किये जाने वाले कार्य की अपेक्षा कार्मण शरीर के द्वारा किया जाने वाला कार्य अतिशय महान है, अतएव उसका अनुभाग अनंतगुणा माना जाता है।

उससे आहारक शरीर अनंतगुणा हीन होता है।

प्रश्न — यह बात कैसे जानी जाती है ?

उत्तर — क्योंकि वह उद्वेलना को प्राप्त होने वाली प्रकृति है। तीव्र अनुभाग की उद्वेलना करके उसे निःसत्व करना तो शक्य नहीं है। परन्तु आहारक शरीर की उद्वेलना करके उसे निःसत्व करते हुए देखा जाता है। इस कारण तैजस शरीर के अनुभाग की अपेक्षा आहारक शरीर का अनुभाग अनंतगुणा हीन है, यह सिद्ध होता है।

उससे वैक्रियिकशरीर अनंतगुणा हीन होता है।

कैसे ?

इसका कारण कर्म प्रकृति की विशेषता है।

प्रश्न — उस प्रकृति की विशेषता क्या है ?

आहारशरीरं दृष्ट्वा प्रशस्तभावेन ऊनतास्ति।

आहारशरीराद् वैक्रियिकशरीरमप्रशस्तमिति कथं ज्ञायते ?

नैतद्, यथा आहारशरीरं संयतेष्वेव बध्यते, तथा वैक्रियिकशरीरस्य बंधानुपलंभात् संयतेषु। अतएव तस्य वैक्रियिकशरीरस्याप्रशस्तता मन्तव्या।

संप्रति मनुष्यगति-औदारिकशरीर-मिथ्यात्वाल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

मणुसगदी अणंतगुणहीणा।।७३।।

ओरालियसरीरमणंतगुणहीणं।।७४।।

मिच्छत्तमणंतगुणहीणं।।७५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अपूर्वकरण-क्षपकस्य विशुद्ध्यपेक्षा अनंतगुणहीनविशुद्धिसहितः असंयतसम्यग्दृष्टिदेवएतादृशीं मनुष्यगतिं बध्नाति।**

एतदपेक्षया औदारिकशरीरमनन्तगुणहीनमस्ति।

द्वयोः मनुष्यगति-औदारिकशरीरप्रकृत्योः उत्कृष्टबंधस्य एकस्मिन् चैव स्वामिनि सति कथमनुभागं प्रति विसदृशत्वम् ?

नैष दोषः, प्रकृतिविशेषेण विसदृशत्वोपपत्तेः।

कः प्रकृति विशेषः ?

जीवविपाकित्वं पुद्गलविपाकित्वं चैवात्र प्रकृतिविशेषोऽस्ति। मनुष्यगतिर्जीवविपाकिनी प्रकृतिः,

---

उत्तर—आहारक शरीर में जितनी प्रशस्तता देखी जाती है, उसकी अपेक्षा वैक्रियिक शरीर में कुछ न्यूनता पाई जाती है, यही प्रकृति विशेषता है।

प्रश्न—आहारक शरीर की अपेक्षा वैक्रियिक शरीर अप्रशस्त है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

उत्तर—ऐसा नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार आहारक शरीर का बंध संयत जीवों के ही होता है उस प्रकार वैक्रियिक शरीर का बंध मात्र संयतों के नहीं उपलब्ध होता। इसी से उस वैक्रियिक शरीर की अप्रशस्तता जानना चाहिए।

अब मनुष्यगति-औदारिक शरीर और मिथ्यात्व का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे मनुष्यगति अनंतगुणी हीन है।।७३।।

उससे औदारिक शरीर अनंतगुणा हीन है।।७४।।

उससे मिथ्यात्व प्रकृति अनंतगुणा हीन है।।७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अपूर्वकरण क्षपक महामुनि की विशुद्धि की अपेक्षा अनंतगुणी हीन विशुद्धि वाला असंयत सम्यग्दृष्टि देव उसे बांधता है। इस अपेक्षा से औदारिक शरीर अनंतगुणा हीन होता है।

शंका—मनुष्यगति और औदारिक शरीर इन दोनों प्रकृतियों के उत्कृष्ट बंध का स्वामी एक ही जीव है फिर इनके अनुभाग में विसदृशता कैसे संभव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि प्रकृतिविशेष होने के कारण उनमें विसदृशता संभव है।

शंका—वह प्रकृतिविशेष क्या है ?

समाधान—जीवविपाकित्व और पुद्गलविपाकित्व ही यहाँ प्रकृति विशेष है। मनुष्यगति प्रकृति जीवविपाकी

औदारिकशरीरं पुद्गलविपाकित्वं च। तेन मनुष्यगत्यपेक्षया औदारिकशरीरस्यानन्तगुणहीनत्वं सिद्ध्यति।

मिथ्यात्वमनन्तगुणहीनमौदारिकशरीरापेक्षया इति।

कश्चिदाशंकते—

सर्वद्रव्यपर्यायाश्रद्धाने निबद्धजीवविपाकिमिथ्यात्वानुभागात्। पुद्गलविपाकि-औदारिक-शरीरानुभागः कथमनन्तगुणः? यदि कथ्येत—अंतरंगव्यावृतकर्मभ्यो बहिरंगव्यावृतकर्मणामनुभागेन महद्रूपं दृश्यतेः नैतत् सुष्ठु, विरोधादिति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैष दोषः, प्रकृतिविशेषेणानन्तगुणहीनत्वाविरोधात्।

कः प्रकृतिविशेषः ?

औदारिकशरीर-मिथ्यात्वयोः प्रशस्ताप्रशस्तत्वं।

कथमौदारिकशरीरस्य प्रशस्तत्वं ज्ञायते ?

मिथ्यादृष्टिजीवे एव मिथ्यात्वस्य बंधो भवति, न च औदारिकशरीरं तत्रैव बध्यते, सम्यग्दृष्टिजीवेष्वपि बंधोपलंभात्। अतो मिथ्यात्वस्य मिथ्यादृष्टिजीवे यथा बंधस्तथा औदारिकशरीरस्य बंधानुपलंभादेव ज्ञायते।

अधुना केवलज्ञानावरणादिचतुष्कानामनन्तगुणहीनत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

है और औदारिक शरीर पुद्गलविपाकी है। इस कारण मनुष्यगति की अपेक्षा औदारिक शरीर अनंतगुणा हीन है, यह सिद्ध होता है। उससे अर्थात् औदारिक शरीर की अपेक्षा मिथ्यात्व प्रकृति अनंतगुणी हीन होती है।

यहाँ इस विषय में कोई शंका उत्पन्न करता है कि—

सब द्रव्यों एवं उनकी पर्यायों में अश्रद्धान करने में निबद्ध जीवविपाकी मिथ्यात्व प्रकृति के अनुभाग की अपेक्षा पुद्गलविपाकी औदारिक शरीर का अनुभाग अनंतगुणा कैसे हो सकता है ? यदि कहा जाय कि अंतरंग में प्रवृत्त हुए कर्मों की अपेक्षा बहिरंग में प्रवृत्त हुए कर्म अनुभाग की अपेक्षा महान होते हैं तो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने में विरोध आता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि प्रकृतिविशेष होने के कारण औदारिक शरीर की अपेक्षा मिथ्यात्व के अनंतगुणे हीन होने में कोई विरोध नहीं आता है।

शंका—वह प्रकृति विशेष क्या है ?

समाधान—औदारिक शरीर प्रशस्त है और मिथ्यात्व अप्रशस्त है, यही यहाँ प्रकृति विशेष है।

शंका—औदारिक शरीर प्रशस्त है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—जिस प्रकार मिथ्यात्व का बंध एक मात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है उस प्रकार औदारिक शरीर का बंध केवल वहाँ ही नहीं होता है, किन्तु सम्यग्दृष्टि जीवों में भी बंध पाया जाता है, इसी से औदारिक शरीर की प्रशस्तता जानी जाती है। इसलिए जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव में मिथ्यात्व का बंध होता है, उस प्रकार औदारिक शरीर का बंध नहीं पाया जाता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब केवलज्ञानावरणीय आदि चार प्रकृतियों के अनंतगुणहीनपने का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

केवलणाणावरणीयं केवलदंणावरणीयं असादावेदणीयं वीरियंतराइयं च चत्तारि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।।७६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**इमाश्चतस्त्रः प्रकृतयस्तुल्या अपि अनंतगुणहीनाः कथ्यन्ते।**

अत्र कश्चिदाशंकते—

एतासां चतसृणां प्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागस्य मिथ्यात्वस्येव सर्वसंक्लिष्टो मिथ्यादृष्टिर्जीवः स्वामी। ततो मिथ्यात्वप्रकृत्यपेक्षया एतासां चतुःप्रकृतीनामनन्तगुणहीनत्वं न युज्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, प्रकृतिविशेषेण एतासां प्रकृतीनामनन्तगुणहीनत्वं भवितुमर्हति।

केन प्रमाणेन एतत्प्रकृतिविशेषो ज्ञायते ?

मिथ्यात्वोदयो सति केवलज्ञानावरणादिसर्वप्रकृतीनां बंधसत्त्वविनाशाभावदर्शनात् केवलज्ञानावरणादीनामुदये सति मिथ्यात्वस्य बंधसत्त्वविनाशोपलंभात्। अस्मादेव कारणात् प्रकृतिगतविशेषत्वं ज्ञायते।

अधुना अनन्तानुबंधिचतुष्कतरतमत्वनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्कमवतार्यते —

अणंताणुबंधिलोभो अणंतगुणहीणो।।७७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**प्रकृतिविशेषेण अनन्तानुबंधिलोभस्यानन्तगुणहीनत्वं भवति।**

सूत्रार्थ—

केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शनावरणीय, असातावेदनीय और वीर्यान्तराय ये चारों ही प्रकृतियां तुल्य होकर उससे अनंतगुणी हीन हैं।।७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये चारों प्रकृतियाँ तुल्य होते हुए भी अनंतगुणी हीन कही गई हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

मिथ्यात्व के समान इन चार प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग का स्वामी सर्वसंक्लिष्ट परिणाम वाला मिथ्यादृष्टि जीव ही होता है, अतएव मिथ्यात्व प्रकृति की अपेक्षा ये चार प्रकृतियाँ अनंतगुणहीन नहीं बन सकती ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि प्रकृति विशेष होने के कारण वे चारों ही प्रकृतियाँ अनंतगुणी हीन बन जाती हैं।

शंका—इनकी प्रकृतिगत विशेषता का परिज्ञान किस प्रमाण से होता है ?

समाधान—मिथ्यात्व का उदय होने पर केवलज्ञानावरणीय आदि सब प्रकृतियों के बंध व सत्व का विनाश नहीं देखा जाता है, परन्तु केवलज्ञानावरणादिकों के उदय में मिथ्यात्व के बंध व सत्व का विनाश उपलब्ध होता है। इसी से इनकी प्रकृतिगत विशेषता का ज्ञान होता है।

अब अनंतानुबंधी चतुष्क की तरतमता का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उनसे अनंतानुबंधी लोभ अनंतगुणा हीन है।।७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रकृति विशेष के द्वारा अनंतानुबंधी लोभ के अनंतगुणा हीनपना होता है।

कः प्रकृतिविशेषः ?

उपरि कथितचतुःप्रकृतीनामपेक्षया अस्य दुर्बलत्वमेव प्रकृतिगतविशेषत्वं भवति।

अस्य दुर्बलत्वं केन प्रमाणेन ज्ञायते ?

सम्यक्त्वपरिणामैस्तस्य विसंयोजनमुपलभ्यते, किन्तु एषां चतसृणां विसंयोजनं नोपलभ्यते, अतो ज्ञायते अनंतानुबंधिलोभस्तासां चतुःप्रकृतीनामपेक्षया दुर्बलो वर्तते।

माया विसेसहीणा।।७८।।

प्रकृतिविशेषेण ज्ञातव्या।

कोधो विसेसहीणो।।७९।।

प्रकृतिविशेषेण ज्ञातव्यो भवति।

माणो विसेसहीणो।।८०।।

प्रकृतिविशेषेण अवबोद्धव्यः।

अधुना संज्वलनचतुष्कतरतमत्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्कमवतार्यते —

संजलणाए लोभो अणंतगुणहीणो।।८१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**उपर्युक्तप्रकृतिभ्यः संज्वलनलोभोऽनन्तगुणहीनो वर्तते।**

कश्चिदाह—

शंका—वह प्रकृतिगत विशेषता क्या है ?

समाधान—उपर्युक्त चारों प्रकृतियों की अपेक्षा इसकी दुर्बलता ही प्रकृतिगत विशेषता है।

शंका—इसकी दुर्बलता किस प्रमाण से जानी जाती है ?

समाधान—क्योंकि, सम्यक्त्व परिणामों के द्वारा उसका विसंयोजन उपलब्ध होता है, परन्तु इन चारों का विसंयोजन उपलब्ध नहीं होता है, अतएव ज्ञात होता है कि अनंतानुबंधी लोभ उन चारों की अपेक्षा दुर्बल है।

सूत्रार्थ—

उससे अनंतानुबंधी माया विशेष हीन है।।७८।।

इसका कारण प्रकृतिगत विशेषता जानना चाहिए।

उससे अनंतानुबंधी क्रोध विशेषहीन है।।७९।।

इसका कारण प्रकृतिगत विशेषता है ऐसा जानना चाहिए।

उससे अनंतानुबंधी मान विशेष हीन है।।८०।।

प्रकृतिगत विशेषता ही इसका कारण जानना चाहिए।

अब संज्वलन चतुष्क की तरतमता का प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे संज्वलन लोभ अनंतगुणा हीन है।।८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त प्रकृतियों से संज्वलन लोभ अनंतगुणा हीन होता है।

यहाँ कोई शंका करता है—

अनन्तानुबंधि-संज्वलनयोर्मिथ्यादृष्टिजीवे एवोत्कृष्टबंधे सति अनन्तानुबंधि-अनुभागात् कथं संज्वलनानुभागो-ऽनन्तगुणहीनः ?

आचार्यः प्राह—

प्रकृतिविशेषादेव संभवति। तद्यथा—अनन्तानुबंधिचतुष्कं सम्यक्त्वसंयमयोर्घातकं, संज्वलनचतुष्कं पुनः चारित्रस्यैव विनाशकं। ततोऽनन्तानुबंधिचतुष्कशक्त्यपेक्षया संज्वलनचतुष्कशक्तेरल्पतरत्वं ज्ञायते। तेनानन्तानुबंधि-अनुभागात् संज्वलनानुभागस्यानन्तगुणहीनत्वं ज्ञायते।

माया विसेसहीणा।।८२।।

प्रकृतिविशेषेण ज्ञातव्या।

कोधो विसेसहीणो।।८३।।

प्रकृतिविशेषेण ज्ञातव्यो भवति।

माणो विसेसहीणो।।८४।।

प्रकृतिविशेषेण मन्तव्यो भवति।

अधुना प्रत्याख्यानावरणचतुष्कतरतमत्वनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्कमवतार्यते —

पच्चक्खाणावरणीयलोभो अणंतगुणहीणो।।८५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**प्रकृतिविशेषेण एतज्ज्ञातव्यो भवति।**

जब अनंतानुबंधी और संज्वलन का उत्कृष्ट बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान वाले जीव में ही होता है तब अनंतानुबंधी के अनुभाग की अपेक्षा संज्वलन का अनुभाग अनंतगुणा हीन कैसे हो सकता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं—

प्रकृतिविशेष होने के कारण वैसा होना संभव है। यथा—अनंतानुबंधी चतुष्क सम्यक्त्व और संयम का घातक है, परन्तु संज्वलन चतुष्क केवल चारित्र का ही घात करने वाला है। इसी से अनंतानुबंधिचतुष्क की शक्ति की अपेक्षा संज्वलन चतुष्क की शक्ति अल्पतर है यह जाना जाता है। और इस कारण अनंतानुबंधी के अनुभाग के संज्वलन का अनुभाग अनंतगुणा हीन है, यह जाना जाता है।

सूत्रार्थ—

उससे संज्वलन माया विशेष हीन है।।८२।।

इसका कारण प्रकृतिविशेष जानना चाहिए।

उससे संज्वलन क्रोध विशेष हीन है।।८३।।

इसका कारण प्रकृति विशेष ज्ञातव्य है।

उससे संज्वलन मान विशेष हीन है।।८४।।

इसका कारण प्रकृतिविशेष को मानना चाहिए।

अब प्रत्याख्यानावरण चतुष्क की तरतमता का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

उससे प्रत्याख्यानावरण लोभ अनंतगुणा हीन है।।८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसमें प्रकृतिगत विशेषता को ही कारण जानना चाहिए।

कथमत्र प्रकृतिविशेषो ज्ञायते ?

संज्वलनचतुष्कं यथाख्यातसंयमघातकं प्रत्याख्यानावरणीयं पुनः सरागसंयमघातकं। तेन प्रत्याख्यानात् संज्वलनानुभागमहत्ता ज्ञायते। किंच, प्रत्याख्यानावरणस्य उदयः संयतासंयतगुणस्थानं यावत्। उदयः संज्वलनानां पुनः सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतचरमसमय इति संज्वलनं यावत्। उपरिमपरिणामेभ्यः संयतासंयतैः अनन्तगुणैः परिणामैरपि उदयविनाशानुपलंभात् वा ज्ञायते तथा संज्वलनानुभागात् प्रत्याख्यानावरणीय-प्रकृतेरनन्तगुणहीनत्वं।

माया विसेसहीणा।।८६।।

प्रकृतिविशेषेण ज्ञातव्यः। किंच, मायाया लोभपुरंगमत्वोपलंभात्।

कोधो विसेसेहीणो।।८७।।

प्रकृतिविशेषेण ज्ञायते, उपसंहृतक्रोधमहर्षीणामपि लोभमाययोरुदयोपलंभात्।

माणो विसेसहीणो।।८८।।

क्रोधपुरंगमत्वोपदर्शनात्।

संप्रति अप्रत्याख्यानावरणीय चतुष्कतरतमप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्कमवतार्यते —

अपच्चक्खाणावरणीयलोभो अणंतगुणहीणो।।८९।।

शंका — यहाँ प्रकृतिगत विशेषता किस प्रमाण से जानी जाती है ?

समाधान — संज्वलनचतुष्क यथाख्यात संयम का घातक है, परन्तु प्रत्याख्यानावरणीय सरागसंयम का घातक है। इसी से प्रत्याख्यानावरण की अपेक्षा संज्वलन का अनुभाग अतिशय महान है यह जाना जाता है। दूसरी बात यह है कि प्रत्याख्यानावरण का उदय संयतासंयम गुणस्थान तक होता है, परन्तु संज्वलनों का उदय सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धि संयत के अंतिम समय तक रहता है अथवा उपरिम अनंतगुनी संयतासंयत परिणामों के भी द्वारा संज्वलन के उदय का विनाश नहीं उपलब्ध होता। इससे भी जाना जाता है कि संज्वलन के अनुभाग की अपेक्षा प्रत्याख्यानावरणीय प्रकृति का अनुभाग अनंतगुणा हीन है।

सूत्रार्थ —

उससे प्रत्याख्यानावरण माया विशेष हीन है।।८६।।

इसका कारण प्रकृतिगत विशेषता जानना चाहिए, क्योंकि माया लोभपूर्वक उपलब्ध होती है।

उससे प्रत्याख्यानावरण क्रोध विशेष हीन है।।८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इससे प्रकृति विशेष को जाना जाता है, क्योंकि जिन महर्षियों ने क्रोध का उपसंहार कर लिया है उनके भी लोभ और माया का उदय उपलब्ध होता है।

उससे प्रत्याख्यानावरण मान विशेष हीन है।।८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्योंकि वह क्रोधपूर्वक देखा जाता है।

अब अप्रत्याख्यानावरणीय चतुष्क की तरतमता प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उससे अप्रत्याख्यानावरणीय लोभ अनंतगुणा हीन है।।८९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**प्रकृतिमाहात्म्येनास्य अनंतगुणहीनत्वं ज्ञायते।**

तत्कथं ज्ञायते ?

कार्यस्तोकबहुत्वदर्शनात्। तद्यथा—संयमासंयमघातकमप्रत्याख्यानावरणीयं प्रत्याख्यानावरणीयं पुनः संयमघातकं। तेनाप्रत्याख्यानावरणात् प्रत्याख्यानावरणस्य महत्ता ज्ञायते।

माया विसेसहीणा।।९०।।

प्रकृतिविशेषेण ज्ञातव्या भवति।

कोधो विसेसहीणो।।९१।।

प्रकृतिविशेषेण मन्तव्योऽस्ति।

माणो विसेसहीणो।।९२।।

प्रकृतिविशेषेणैव एतत्कथनं वर्तते।

अधुना मतिज्ञानावरण-परिभोगान्तरायहीनत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

आभिणिबोहियणाणावरणीयं परिभोगांतराइयं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।।९३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतत्कथनमपि प्रकृतिविशेषेण ज्ञातव्यं भवति।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रकृति के माहात्म्य से इसकी अनंतगुणी हीनता जानी जाती है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—उसका परिज्ञान कार्य के अल्पबहुत्व को देखने से होता है। वह इस प्रकार है—अप्रत्याख्यानावरणीय संयमसंयम का घातक है, परन्तु प्रत्याख्यानावरणीय संयम का विघातक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण की अपेक्षा प्रत्याख्यानावरण की महत्ता जानी जाती है।

सूत्रार्थ—

उससे अप्रत्याख्यानावरण माया विशेषहीन है।।९०।।

इसका कारण प्रकृति विशेष जानना चाहिए।

उससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध विशेष हीन है।।९१।।

इसका कारण प्रकृति विशेष मानना चाहिए।

उससे अप्रत्याख्यानावरण मान विशेष हीन है।।९२।।

प्रकृति विशेष के द्वारा इसका कथन किया गया है।

अब मतिज्ञानावरण-परिभोगान्तराय का हीनपना प्रतिपादित करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

उससे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय और परिभोगान्तराय दोनों ही तुल्य होकर अनंतगुणे हीन हैं।।९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह कथन भी प्रकृति विशेष के कारण ही जानना चाहिए।

प्रकृतिमाहात्म्यं कथं ज्ञायते ?

सर्वघाति-देशघातित्वाभ्यां ज्ञायते। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं सर्वघाति वर्तते, निःशेषदेशसंयमघातित्वात्। आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयं परिभोगान्तरायं च देशघाति, मतिज्ञान-परिभोगयोरेकघातित्वात्। तत एतयोर्द्वयोः कर्मणोरनुभागोऽनन्तगुणहीन इति सिद्धं भवति।

अधुना चक्षुर्दर्शनावरणहीनत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

चक्खुदंसणावरणीयमणंतगुणहीणं।।९४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्य कारणमणि प्रकृतिविशेषेण ज्ञातव्यं।**

मतिज्ञानावरण-परिभोगान्तरायापेक्षया अस्य शक्तिहीनत्वं कथं ज्ञायते ?

किमिति न ज्ञायते, ज्ञायत एवेति तात्पर्यं। आभिनिबोधिकपरिभोगान्तराययोरिव चक्षुर्दर्शनावरणीयस्य सर्वत्र क्षयोपशमस्यानुपलंभात्।

अत्र कश्चिदाशंकते—

स्तोकेष्वेव जीवेषु क्षयोपशमं गत्वा अनंतजीवराशिं सर्वं चक्षुरिन्द्रियं घातयित्वा स्थितस्य चक्षुरिन्द्रियावरणस्य ऊनत्वं नास्ति, विरोधात् ?

आचार्यः समाधत्ते—

नैष दोषः, आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयं येन पंचेन्द्रिय-नोइंन्द्रियप्रतिबद्धाशेषज्ञानघातकं, चक्षुर्दर्शनावरणीयं

शंका—प्रकृति का माहात्म्य किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—उसका परिज्ञान सर्वघाती व देशघाती स्वरूप से होता है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क सर्वघाती है, क्योंकि वह पूर्णतया देशसंयम का घात करता है। परन्तु आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय और परिभोगान्तराय देशघाती हैं, क्योंकि ये दोनों क्रमशः मतिज्ञान और परिभोग के एक देश का घात करने वाले हैं। इस कारण इन दोनों कर्मों का अनुभाग अप्रत्याख्यानावरण मान के अनुभाग की अपेक्षा अनंतगुणा हीन है, यह सिद्ध होता है।

अब चक्षुदर्शनावरण की हीनता का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

उनसे चक्षुदर्शनावरणीय प्रकृति अनंतगुणी हीन है।।९४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण भी प्रकृतिविशेष ही जानना चाहिए।

शंका—मतिज्ञानावरण और परिभोगान्तराय इन दोनों की अपेक्षा इसकी शक्ति हीन है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्यों नहीं जाना जाता है अर्थात् अवश्य जाना जाता है, क्योंकि आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय और परिभोगान्तराय के समान चक्षुदर्शनावरणीय का सर्वत्र क्षयोपशम नहीं पाया जाता है।

यहां कोई शंका करता है कि—

चूंकि चक्षुदर्शनावरण का थोड़े ही जीवों में क्षयोपशम होता है, इसके सिवा अनंत जीवराशि में वह पूर्णरूप से चक्षुरिन्द्रिय का घातक है अतः उसकी शक्ति हीन नहीं हो सकती, क्योंकि ऐसा मानने में विरोध आता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय चूँकि

पुनः चक्षुर्दर्शनोपयोगमात्रघातकं, ततोऽल्पकार्यकरणात् चक्षुर्दर्शनावरणीयशक्तिः स्तोकेति ज्ञायते।

अधुना श्रुतज्ञानावरणादित्रिककर्महीनत्वनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

सुदणाणावरणीयमचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।।९५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**श्रुतज्ञानावरणीयं नाम महाविषयं, परोक्षस्वरूपेण सर्वत्र-सर्वपदार्थ-परिच्छेदि-श्रुतज्ञानघातने व्यापृतत्वात्। शेषद्विप्रकृत्यनुभागोऽपि महांश्चैव, श्रुतज्ञानावरणीयसमानत्वात्। तत एतेषामनुभागेन चक्षुर्दर्शनावरणीयानुभागात् अनंतगुणहीनेन भवितव्यमिति महाविषयस्यानुभागो महान् भवति, स्तोकविषयस्यानुभागः स्तोको भवतीति केनापि शंकाकारेण कथितं, तर्हि आचार्यदेवः समाधत्ते—**

यदि एवं मन्यसे तर्हि इदमर्थं मुक्त्वा अयमर्थो गृहीतव्यः। तद्यथा—क्षपकश्रेण्यां देशघातिबंधकरणे यस्य पूर्वमेवानुभागबंधो देशघाती जातस्तस्यानुभागः स्तोकः। यस्य पश्चात् देशघाती जातस्तस्य बहुकः। एतासां तिसृणां प्रकृतीनां चानुभागबंधश्चक्षुर्दर्शनावरणीयानुभागबंधात् पूर्वमेव देशघाती जातोऽस्ति। तद्यथा—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादिं कृत्वा यावदनिवृत्तिकरणकाले संख्याता भागास्तावत् एतासामनुभागबंधः सर्वघाती बध्यते। पुनः तत्र मनःपर्ययज्ञानावरणीयं दानान्तरायं च बंधेन देशघातिं करोति। तत उपरि

स्पर्शनादि पाँच इंद्रिय और नोइन्द्रिय से संबंध रखने वाले सब ज्ञान का घातक है, परन्तु चक्षुदर्शनावरणीय केवल चक्षुदर्शनोपयोग मात्र का घातक है, अतः अल्पकार्य करने के कारण चक्षुदर्शनावरणीय की शक्ति स्तोक है, यह जाना जाता है।

अब श्रुतज्ञानावरणादि तीन कर्मों की हीनता का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय ये तीनों ही प्रकृतियाँ तुल्य होकर चक्षुदर्शनावरणीय से अनंतगुणी हीन हैं।।९५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—श्रुतज्ञानावरण कर्म का विषय महान—बहुत है, क्योंकि वह परोक्ष स्वरूप से सब पदार्थों को जानने वाले श्रुतज्ञान के घातने में प्रवृत्त है। शेष दो प्रकृतियों का अनुभाग भी महान-बहुत ही है, क्योंकि वह श्रुतज्ञानावरण के अनुभाग के ही समान है। इस कारण इनका अनुभाग चक्षुदर्शनावरणीय के अनुभाग की अपेक्षा अनंतगुणा होना चाहिये, क्योंकि महान विषयवाली प्रकृति का अनुभाग महान होता है और अन्य विषयवाली प्रकृति का अनुभाग अल्प होता है ऐसा किसी शंकाकार के द्वारा कहा गया है तो आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

यदि ऐसा मानते हो तो इस अर्थ को छोड़कर ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिये। जो इस प्रकार है—

क्षपकश्रेणि में देशघाती बंध करण के समय जिसका अनुभाग बंध पहिले ही देशघाती हो गया है। उसका अनुभाग स्तोक होता है और जिसका अनुभाग बंध पीछे देशघाती होता है उसका अनुभाग बहुत होता है। इस नियम के अनुसार इन तीन प्रकृतियों का अनुभाग बंध चक्षुदर्शनावरणीय के अनुभाग बंध से पहिले ही देशघाती हो जाता है। वह इस प्रकार है—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण काल के संख्यात बहुभाग तक इनका अनुभागबंध सर्वघाती बंधता है। फिर वहाँ मनःपर्यय ज्ञानावरण और दानान्तराय को बंध की अपेक्षा देशघातीरूप करता

अन्तर्मुहूर्तं गत्वा अवधिज्ञानावरणीयं अवधिदर्शनावरणीयं लाभान्तरायं च त्रीण्यापि बंधेन देशघातिं करोति। ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा श्रुतज्ञानावरणीयं अचक्षुर्दर्शनावरणीयं भोगान्तरायं च त्रीण्यपि बंधेन देशघातिं करोति। ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा चक्षुर्दर्शनारणीयं बंधेन देशघातिं करोति। ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयं परिभोगान्तरायं ततोऽपि बंधेन देशघातिं करोति। ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा वीर्यान्तरायं बंधेन देशघातिं करोति इति।

तेन चक्षुर्दर्शनावरणीयानुभागः एतासां तिसृणां प्रकृतीनामनुभागादनन्तगुणः। अयमर्थो द्वादशानां देशघातिबंधप्रकृतीनां सर्वत्र योजयितव्यः।

संप्रति अवधिज्ञानावरणादित्रिप्रकृतीनामनन्तगुणहीनत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

ओहि णाणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं लाहंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।९६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**कारणं पूर्वं प्ररूपितमिति नेह प्ररूप्यते।**

संप्रति मनःपर्ययज्ञानावरणादित्रिकप्रकृतीनामनंतगुणहीनत्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

मणपज्जयणाणावरणीयं थीणगिद्धी दाणंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।।९७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्रापि कारणं पूर्ववत् ज्ञातव्यं भवति।**

है। इससे आगे अन्तर्मुहूर्त जाकर अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय इन तीनों प्रकृतियों को बंध की अपेक्षा देशघातीरूप करता है। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय इन तीनों को बंध की अपेक्षा देशघातीरूप करता है। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर चक्षुदर्शनावरणीय को बंध की अपेक्षा देशघातीरूप करता है। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय और परिभोगान्तराय इन दोनों प्रकृतियों को बंध की अपेक्षा देशघातीरूप करता है। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर वीर्यान्तराय को बंध की अपेक्षा देशघाती करता है।

इस कारण चक्षुदर्शनावरणीय का अनुभाग इन तीन प्रकृतियों के अनुभाग से अनंतगुणा है। इस अर्थ की बारह देशघाती बंध प्रकृतियों के संबंध में सर्वत्र योजना करनी चाहिये।

अब अवधिज्ञानावरणादि तीन प्रकृतियों का अनंतगुणा हीनपना बतलाने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

उनसे अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय ये तीनों ही तुल्य होकर अनंतगुणी हीन हैं।।९६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण चूँकि पूर्व में बता चुके हैं, इसलिए यहाँ नहीं कह रहे हैं।

अब मनःपर्यय ज्ञानावरणादि तीन प्रकृतियों का अनंतगुणा हीनपना बतलाने हेतू सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

उनसे मनःपर्यय ज्ञानावरणीय, स्त्यानगृद्धि और दानान्तराय ये तीनों ही तुल्य होकर अनंतगुणी हीन हैं।।९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ भी कारण पूर्ववत् ही जानना चाहिए।

अधुना नवनोकषायान्तर्गतनपुंसकवेदादिपंचप्रकृतीनां अनंतगुणहीनत्वनिरूपणार्थं सूत्रपंचकमवतार्यते —

णवुंसयवेदो अणंतगुणहीणो।।९८।।

अरदी अणंतगुणहीणा।।९९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**नोकषायत्वादिति ज्ञातव्यं भवति।**

अरदी अणंतगुणहीणा—प्रकृतिविशेषेण ज्ञातव्या भवति। तद्यथा—इष्टिकापाकसन्निभो नपुंसकवेदोदयः, अरतिः पुनः अरमणमात्रोत्पादिका। तेनानन्तगुणहीना भवति।

सोगो अणंतगुणहीणो।।१००।।

अरतिपुरंगमत्वात्।

कथमरतिपुरंगमत्वम् ?

अरत्या विना शोकानुत्पत्तेः।

भयमणंतगुणहीणं।।१०१।।

भयोदयकालात् शोकोदयकालस्य बहुत्वोपलंभात्।

कश्चिदाशंकते—शोकः उत्कृष्टेण षण्सासमात्रश्चैव, भयस्य कालो नारकेषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्र इति भयमनंतगुणं किन्न जायते ?

आचार्यः समाधत्ते—

अब नौ नोकषाय के अन्तर्गत नपुंसकवेद आदि पाँच प्रकृतियों का अनंतगुणहीनपना निरूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उनसे नपुंसकवेद प्रकृति अनंतगुणी हीन हैं।।९८।।

उससे अरति अनंतगुणी हीन है।।९९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि उसके नोकषायपना जानना चाहिए।

अरति उससे अनंतगुणी हीन हैं, क्योंकि इनमें प्रकृतिगत विशेषता है। जो इस प्रकार है—नपुंसक वेद का उदय ईटों के पाक के समान है, परन्तु अरति तो मात्र नहीं रमनेरूप भाव को उत्पन्न करने वाली है, इस कारण वह नपुंसक वेद की अपेक्षा अनंतगुणी हीन है।

उससे शोक अनंतगुणा हीन है।।१००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वह अरतिपूर्वक होता है।

शंका—वह अरतिपूर्वक कैसे होता है ?

समाधान—क्योंकि अरति के बिना शोक नहीं उत्पन्न होता है।

उससे भय अनंतगुणा हीन है।।१०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—भय के उदयकाल की अपेक्षा शोक का उदयकाल बहुत पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है—चूँकि शोक उत्कृष्ट से छह मास पर्यन्त ही होता है, परन्तु भय का काल नारकियों में तेतीस सागरोपम प्रमाण है, अतएव शोक की अपेक्षा भय अनंतगुणा क्यों नहीं होता ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

न जायते, किंच — नारकेष्वपि भयकालस्यान्तर्मुहूर्तमात्रमेवोपलंभात्।

दुगुंछा अणंतगुणहीणा।।१०२।।

प्रकृतिविशेषेण एषा अनंतगुणहीना ज्ञातव्या।

अधुना निद्रानिद्रादिप्रकृतीनामनन्तगुणहीनत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रपंचदशकमवतार्यते —

णिद्दाणिद्दा अणंतगुणहीणा।।१०३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **कस्यापि जीवस्य कुत्रचिदपि उदयदर्शनात्।**

पयलापयला अणंतगुणहीणा।।१०४।।

लालास्यन्दनेन स्तोककालप्रतिबद्धचैतन्याभावदर्शनात्, निद्रानिद्राया उदयेन तदनुपलंभात्।

णिद्दा अणंतगुणहीणा।।१०५।।

एतस्या उदयेन सचेतन इव निद्रोपलंभात्।

पयला अणंतगुणहीणा।।१०६।।

एतस्या उदयेन वदतः तिष्ठतो वहतो वा शिरसोऽतिस्तोकसंचालदर्शनात्।

अजसकित्ती णीचागोदं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।।१०७।।

नहीं होता है, क्योंकि नारकियों में भी भय का काल अंतर्मुहूर्त मात्र ही उपलब्ध होता है।

उससे जुगुप्सा अनंतगुणी हीन है।।१०२।।

प्रकृतिविशेष के द्वारा यह अनंतगुणी हीन जाननी चाहिए।

अब निद्रानिद्रा आदि प्रकृतियों की अनंतगुणीहीनता बतलाने हेतु पन्द्रह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उससे निद्रानिद्रा अनंतगुणी हीन है।।१०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्योंकि किसी भी जीव के कहीं पर भी उसका उदय देखा जाता है।

उससे प्रचलाप्रचला अनंतगुणी हीन है।।१०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्योंकि लार बहने से थोड़े काल से संबंध रखने वाला चैतन्य का अभाव देखा जाता है, परन्तु निद्रानिद्रा के उदय से उसकी उपलब्धि नहीं होती है।

उससे निद्रा अनंतगुणी हीन है।।१०५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्योंकि इसके उदय से सचेतन के समान निद्रा उपलब्ध होती है।।

उससे प्रचला अनंतगुणी हीन है।।१०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्योंकि इसके उदय से बोलते हुए, बैठे हुए अथवा चलते हुए जीव के सिर का संचार — सिर हिलाते हुए बहुत स्तोक देखा जाता है।

उससे अयशःकीर्ति और नीचगोत्र ये दोनों प्रकृतियाँ तुल्य होकर अनंतगुणी हीन हैं।।१०७।।

स्वाभाविकत्वात्। न च स्वभावः परपर्यनुयोगार्हः।

उक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण—''ण च सहाओ परपज्जणियोगारिहो।''

णिरयगई अणंतगुणहीणा।।१०८।।

नारकभावनिर्वर्तकत्वात्।

तिरिक्खगई अणंतगुणहीणा।।१०९।।

नरकगतिरिव त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमफलोत्पादनशक्त्याः अभावात् नरकगतेरिव एतस्या दुःखकारणत्वाभावाद्वा।

इत्थिवेदो अणंतगुणहीणो।।११०।।

अरतिगर्भितमुर्मराग्निसमदुःखोत्पादनात्।

पुरिसवेदो अणंतगुणहीणो।।१११।।

तृणाग्निसमस्तोकदुःखोत्पादनात्।

रदी अणंतगुणहीणा।।११२।।

इयं रतिप्रकृतिः मायालोभत्रिवेदपुरंगमत्वात् पुरुषवेदादनन्तगुणहीणा ज्ञातव्या।

हस्समणंतगुणहीणं।।११३।।

अस्याः प्रकृतेः रतिपुरंगमत्वात् अनंतगुणहीनत्वं मन्तव्यम्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि ऐसा स्वभाव देखा जाता है और स्वभाव दूसरों के प्रश्न के योग्य नहीं होता है। श्री वीरसेनाचार्य ने भी कहा है—''स्वभाव दूसरों के द्वारा प्रश्न करने योग्य नहीं होता है।''

उनसे नरकगति अनंतगुणी हीन है।।१०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वह नारक पर्याय को उत्पन्न कराने वाली है।

उससे तिर्यग्गति अनंतगुणी हीन है।।१०९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि उसमें नरकगति के समान तेतीस सागरोपम काल तक फल उत्पन्न कराने की शक्ति नहीं है अथवा वह नरकगति के समान दुःख की कारण नहीं है।

उससे स्त्रीवेद अनंतगुणा हीन है।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वह अरति गर्भित कण्डे की आग के समान दुःखोत्पादक है।

उससे पुरुषवेद अनंतगुणा हीन है।।१११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वह तृणाग्नि के समान थोड़े दुःख को उत्पन्न करने वाला है।

उससे रति अनंतगुणा हीन है।।११२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वह माया, लोभ और तीन वेद पूर्वक होने से पुरुषवेद से अनंतगुणी हीन होती है, ऐसा जानना चाहिए।

उससे हास्य अनंतगुणा हीन है।।११३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वह रतिपूर्वक होने से अनंतगुणाहीन होता है ऐसा मानना चाहिए।

देवाउअमणंतगुणहीणं।।११४।।

स्वाभाविकत्वात्।

णिरयाउअमणंतगुणहीणं।।११५।।

कुतः ? देवायुषोऽपेक्षया अप्रशस्तभावात्।

मणुसाउअमणंतगुणहीणं।।११६।।

नरकायुष इव मनुष्यायुषो दीर्घकालमुदयानुपलंभात्।

कश्चिदाशंकते — नरकायुषो मनुष्यायुष्कं प्रशस्तमिति अनंतगुणं किन्न जायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते — नैतद् वक्तव्यं, प्रशस्तभावेन जनितानुभागात् दीर्घकालोदयनिमित्तकबंधनानुभागस्य प्राधान्यात्।

तिरिक्खाउअमणंतगुणहीणं।।११७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **मनुष्यायुषस्तिर्यगायुषोऽप्रशस्तदर्शनात्।**

एवमुत्कृष्टश्चतुःषष्टिपदिको महादण्डकः कृतो भवति।

संप्रति एतेनाल्पबहुत्वेन सूचितोत्तरप्रकृतिस्वस्थानोत्कृष्टानुभागाल्पबहुत्वं कथयिष्यन्ति आचार्यदेवाः। तद्यथा — सर्वतीव्रानुभागं केवलज्ञानावरणीयं। आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयमनन्तगुणहीनं। श्रुतज्ञानावरणी-

---

उससे देवायु अनंतगुणी हीन है।।११४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्योंकि ऐसा ही स्वभाव है।

उससे नरकायु अनंतगुणी हीन है।।११५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — कैसे ? कारण यह है कि वह देवायु की अपेक्षा अप्रशस्त है।

उससे मनुष्यायु अनंतगुणी हीन है।।११६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — कारण यह है कि नारकायु के समान मनुष्यायु का बहुत समय तक उदय नहीं पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है — चूँकि नरकायु की अपेक्षा मनुष्यायु प्रशस्त है, अतः वह उससे अनंतगुणी क्यों नहीं होती ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि यहाँ प्रशस्तता से उत्पन्न अनुभाग की अपेक्षा बहुत समय तक रहने वाले उदय निमित्तक अनुभाग की प्रधानता है।

सूत्रार्थ —

उससे तिर्यगायु अनन्तगुणी हीन है।।११७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — कारण यह है कि मनुष्यायु की अपेक्षा तिर्यगायु के अप्रशस्ता देखी जाती है।

इस प्रकार उत्कृष्ट चौंसठ पद वाला महादण्डक समाप्त हुआ।

अब इस अल्पबहुत्व के द्वारा सूचित उत्तर प्रकृतियों के स्वस्थान उत्कृष्ट अनुभाग का अल्पबहुत्व आचार्यदेव कहते हैं। जो इस प्रकार है —

केवलज्ञानावरण सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। उससे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय अनंतगुणी हीन है।

यमनन्तगुणहीनं। अवधिज्ञानावरणीयमनन्तगुणहीनं। मनःपर्ययज्ञानावरणीयमनन्तगुणहीनं।

सर्वतीव्रानुभागं केवलदर्शनावरणीयं। चक्षुर्दर्शनावरणीयमनन्तगुणहीनं। अचक्षुर्दर्शनावरणीयमनंत-गुणहीनं। अवधिदर्शनावरणीयमनन्तगुणहीनं। स्त्यानगृद्धिः अनन्तगुणहीना। निद्रानिद्रा अनंतगुणहीना। प्रचलाप्रचला अनंतगुण-हीना। निद्रा अनंतगुणहीना। प्रचला अनंतगुणहीना।

सर्वतीव्रानुभागं सातमसातमनंतगुणहीनम्।

सर्वतीव्रानुभागं मिथ्यात्वं। अनंतानुबंधिलोभोऽनन्तगुणहीनः। माया विशेषहीना। क्रोधो विशेषहीनः। मानो विशेषहीनः। संज्वलनस्य लोभोऽनन्तगुणहीनः। माया विशेषहीना। क्रोधो विशेषहीनः। मानो विशेषहीनः। एवं प्रत्याख्यानचतुष्क-अप्रत्याख्यानचतुष्कयोश्च वक्तव्यम्। नपुंसकवेदोऽनन्तगुणहीनः। अरतिरनन्तगुणहीना। शोकोऽनन्तगुणहीनः। भयमनन्तगुणहीनः। जुगुप्सा अनंतगुणहीना। स्त्रीवेदोऽनन्तगुणहीनः। पुरुषवेदोऽनन्त-गुणहीनः। रतिरनन्तगुणहीना। हास्यमनन्तगुणहीनं।

सर्वतीव्रानुभागं देवायुष्कं। नारकायुरनन्तगुणहीनं। मनुष्यायुरनन्तगुणहीनं। तिर्यगायुरनन्तगुणहीनम्।

सर्वतीव्रानुभागा देवगतिः। मनुष्यगतिरनन्तगुणहीना। नरकगतिरनन्तगुणहीना। तिर्यग्गतिरनन्तगुणहीना।

सर्वतीव्रानुभागा पंचेन्द्रियजातिः। एकेन्द्रियजातिरनन्तगुणहीना। द्वीन्द्रियजातिरनन्तगुणहीना। त्रीन्द्रियजातिर-नन्तगुणहीना। चतुरिन्द्रियजातिरनन्तगुणहीना।

उससे श्रतुज्ञानावरणीय अनंतगुणी हीन है। उससे अवधिज्ञानावरणीय अनंतगुणी हीन है। उससे मनः पर्ययज्ञानावरणीय अनंतगुणी हीन है।

केवलदर्शनावरणीय सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है उससे चक्षुदर्शनावरणीय अनंतगुणी हीन है। उससे अचक्षुदर्शनावरणीय अनंतगुणी हीन है। उससे अवधिदर्शनावरणीय अनंतगुणी हीन है। उससे स्त्यानगृद्धि अनंतगुणी हीन है। उससे निद्रानिद्रा अनंतगुणी हीन है। उससे प्रचलाप्रचला अनंतगुणी हीन है। उससे निद्रा अनंतगुणी हीन है। उससे प्रचला अनंतगुणी हीन है।

सातावेदनीय सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। उससे असातावेदनीय अनंतगुणी हीन है।

मिथ्यात्व प्रकृति सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। उससे अनंतानुबंधी लोभ अनंतगुणा हीन है। उससे अनंतानुबंधी माया विशेष हीन है। उससे अनंतानुबंधी क्रोध अनंतगुणा है। उससे अनंतानुबंधी मान विशेष हीन है। उससे संज्वलन लोभ अनंतगुणा हीन है। उससे संज्वलन माया विशेष हीन है। उससे संज्वलन क्रोध विशेष हीन है। उससे संज्वलन मान विशेष हीन है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण चतुष्क और अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क के विषय में कहना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण मान से नपुंसकवेद अनंतगुणा हीन है। उससे अरति अनंतगुणी हीन है। उससे शोक अनंतगुणा हीन है। उससे जुगुप्सा अनंतगुणी हीन है। उससे स्त्रीवेद अनंतगुणा हीन है। उससे पुरुषवेद अनंतगुणा हीन है। उससे रति अनंतगुणी हीन है। उससे हास्य अनंतगुणा हीन है।

देवायु सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। उससे नारकायु का अनुभाग अनंतगुणाहीन है। उससे मनुष्यायु का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। उससे तिर्यगायु का अनुभाग अनंतगुणा हीन है।

देवगति सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। उससे मनुष्यगति का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। उससे नरकगति अनंतगुणी हीन है। उससे तिर्यग्गति अनंतगुणी हीन है।

पंचेन्द्रिय जाति सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। उससे एकेन्द्रिय जाति अनंतगुणी हीन है। उससे द्वीन्द्रिय जाति अनंतगुणी हीन है। उससे त्रीन्द्रिय जाति अनंतगुणी हीन है। उससे चतुरिन्द्रिय जाति अनंतगुणी हीन है।

सर्वतीव्रानुभागं कार्मणशरीरं तैजसशरीरमनंतगुणहीनं। आहारशरीरमनन्तगुणहीनं। वैक्रियिकशरीरमनंत-गुणहीनं। औदारिकशरीरमनंतगुणहीनं।

सर्वतीव्रानुभागं समचतुरस्त्रसंस्थानं। हुण्डकसंस्थानमनन्तगुणहीनं। वामनसंस्थानमनंतगुणहीनं। कुब्जक-संस्थानमनंतगुणहीनं। स्वातिसंस्थानमनंतगुणहीनं। न्यग्रोधसंस्थानमनन्तगुणहीनम्।

सर्वतीव्रानुभागमाहारशरीरांगोपांगं। वैक्रियिकशरीरांगोपांगमनन्तगुणहीनं। औदारिकशरीरांगोपांगमनंत-गुणहीनम्।

संहननानामल्पबहुत्वं संस्थानवत् ज्ञातव्यं।

सर्वतीव्रानुभागं प्रशस्तवर्णचतुष्कमप्रशस्तवर्णचतुष्कमनन्तगुणहीनं।

यथा गतिस्तथानुपूर्वीप्ररूपणा ज्ञातव्या।

सर्वतीव्रानुभागा अगुरुलघुप्रकृतिः। उच्छ्वासमनंतगुणहीनं। परघातमनंतगुणहीनं। उपघातमनंतगुणहीनं। एतस्मात् सर्वयुगलानां सर्वतीव्राणि प्रशस्तानि। अप्रशस्तानि प्रतिपक्षाणि अनंतगुणहीनानि।

एतस्मात् सर्वयुगलानां सर्वतीव्रानुभागानि प्रशस्तानि। अप्रशस्तानि प्रतिपक्षभूतानि अनंतगुणहीनानि।

सर्वतीव्रानुभागमुच्चैर्गोत्रं। नीचैर्गोत्रमनंतगुणहीनं।

सर्वतीव्रानुभागं वीर्यान्तरायं। अधस्तनेषु क्रमेण दानान्तरायादिका अनंतगुणहीना ज्ञातव्याः।

एवं नवमस्थले चतुःषष्टिपदिकोत्कृष्टानुभागमहादण्डकाल्पबहुत्वप्ररूपणपरत्वेन त्रिपंचाशत्सूत्राणि गतानि।

एवं स्वस्थानाल्पबहुत्वं समाप्तम्।

कार्मण शरीर सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। उससे तैजस शरीर का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। उससे आहारक शरीर का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। उससे वैक्रियिक शरीर का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। उससे औदारिक शरीर का अनुभाग अनंतगुणा हीन है।

समचतुरस्त्र संस्थान सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। उससे हुंडक संस्थान का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। उससे वामन संस्थान का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। उससे कुब्जक संस्थान का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। उससे स्वाति संस्थान का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। उससे न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। आहारक शरीरांगोपांग सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। उससे वैक्रियिक शरीरांगोपांग का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। उससे औदारिक शरीरांगोपांग का अनुभाग अनंतगुणा हीन है।

संहननों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा संस्थानों के समान जानना चाहिए। प्रशस्त वर्णचतुष्क सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। उससे अप्रशस्त वर्णचतुष्क का अनुभाग अनंतगुणा हीन है। आनुपूर्वी की प्ररूपणा गति नामकर्म के समान जानना चाहिए। अगुरुलघु सबसे तीव्र अनुभाग वाला है। इससे उच्छ्वास का अनुभाग अनंतगुणाहीन है। उससे परघात का अनुभाग अनंतगुणाहीन है। उससे उपघात का अनुभाग अनंतगुणाहीन है। सब युगलों में प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग तीव्र है। उससे अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग अनंतगुणा हीन है।

आगे त्रस-स्थावरादि सब युगलों में प्रशस्त प्रकृतियाँ सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त हैं। उनकी प्रतिपक्षभूत अप्रशस्त प्रकृतियाँ अनंतगुणी हीन हैं।

उच्चगोत्र सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। उससे नीचगोत्र अनंतगुणाहीन है। वीर्यान्तराय सबसे तीव्र अनुभाग से युक्त है। इसके नीचे क्रमशः दानान्तरायादिक अनंतगुणे हीन जानना चाहिए।

इस प्रकार नवमें स्थल में चौंसठपदिक उत्कृष्ट अनुभाग महादण्डकों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करने वाले त्रेपन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार स्वस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

अधुना 'संज-' इत्यादिना गाथासूत्रमवतार्यते अल्पबहुत्वकथनप्रकारेण —

संज-मण-दाणमोही लाभं सुदचक्खु-भोग चक्खुं च।
आभिणिबोहिय परिभोग विरिय णव णोकसाया।।४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**'संज' इत्युक्ते चत्वार्यपि संज्वलनानि गृहीतव्यानि। 'मण-दाणं' इत्युक्ते मनःपर्ययज्ञानावरणीयस्य दानान्तरायस्य च ग्रहणं। 'ओहि' इति कथिते अवधिज्ञानावरणीयमवधिदर्शनावरणीयं गृहीतव्यं। 'लाभ' निर्देशो लाभान्तरायग्रहणार्थः। 'सुद' निर्देशः श्रुतज्ञानावरणीयप्रज्ञापनार्थः।**

'अचक्क्षु' निर्देशः अचक्षुर्दर्शनावरणीयग्रहणनिमित्तः। 'भोग' निर्देशो भोगान्तरायस्य प्ररूपकः। 'चक्खुं च' इति निर्देशः चक्षुर्दर्शनावरणीयग्रहणनिमित्तकः।

किमर्थं चशब्दोच्चारणं क्रियते ?

श्रुतज्ञानावरणीय-अचक्षुर्दर्शनावरणीय-भोगान्तरायं च एतानि त्रीण्यपि कर्माणि यथा अनुभागेनान्योन्यं समानानि तथा चक्षुर्दर्शनावरणीयं च भवतीति ज्ञापनार्थं क्रियते।

'आभिणिबोहिय' निर्देशेन आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीयं गृहीतव्यं। 'परिभोग' वचनेन परिभोगान्तरायं गृहीतव्यं। 'णव च' इति 'च' शब्देन एतासामनन्तरात् प्रकृतीनामनुभागः सदृश इति सूचितः।

'विरिय' इति भणिते वीर्यान्तरायस्य ग्रहणं। 'णव णोकसाया' इत्युक्ते नवानां नोकषायाणां ग्रहणं कर्तव्यं। अत्र सर्वत्र अनंतगुणशब्दस्य अध्याहारः कर्तव्यः।

अब 'संज-' इत्यादि प्रकार से अल्पबहुत्व के कथन के प्रकाररूप गाथासूत्र अवतीर्ण होता है —

गाथासूत्रार्थ—

संज्वलनचतुष्क, मनःपर्ययज्ञानावरण, दानान्तराय, अवधिज्ञानावरण, अवधि-दर्शनावरण, लाभान्तराय, श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण, भोगान्तराय, चक्षुदर्शनावरण, आभिनिबोधिकज्ञानावरण, परिभोगान्तराय, वीर्यान्तराय और नौ नोकषाय ये प्रकृतियाँ उत्तरोत्तर अनंतगुणी हैं।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—"संज" ऐसा कहने पर चारों ही संज्वलन कषायों का ग्रहण करना चाहिये। मण-दाणं यह कहने पर मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानान्तराय का ग्रहण करना चाहिये। 'ओहि' ऐसा कहने पर अवधिज्ञानावरणीय का ग्रहण करना चाहिए। 'लाभ' पद का निर्देश लाभान्तराय का ग्रहण करने के लिये किया है। श्रुतज्ञानावरणीय का ज्ञान कराने के लिये 'सुद' पद का निर्देश किया है।

अचक्षुदर्शनावरणीय का ग्रहण करने के निमित्त 'अचक्खु' पद का निर्देश किया है। 'भोग' पद का निर्देश भोगान्तराय का प्ररूपक है। 'चक्खुं च' यह निर्देश चक्षुदर्शनावरणीय का ग्रहण करने के निमित्त है।

शंका—'चक्खुं च' यहाँ 'च' शब्द का उच्चारण किसलिये किया है ?

समाधान—जिस प्रकार श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भागोन्तराय ये तीन प्रकृतियाँ अनुभाग की अपेक्षा परस्पर समान हैं उस प्रकार चक्षुदर्शनावरणीय समान नहीं है, यह बतलाने के लिये 'च' शब्द का निर्देश किया है।

'आभिणिबोहिय' पद के निर्देश से आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय का ग्रहण करना चाहिए। 'परिभोग' इस वचन से परिभोगान्तराय का ग्रहण करना चाहिये। 'णव च' यहाँ किये गये 'च' शब्द के निर्देश से इन

संप्रति केवलज्ञानावरणादिप्रकृती नामनुभागापेक्षया अनंतगुणत्वनिरूपणार्थं गाथासूत्रद्वयमवतार्यते —

के-प-णि-अट्ठ-त्तिय-अण-मिच्छा-ओ-वे-तिरिक्ख-मणुसाऊ।
तेयाकम्मसरीरं तिरिक्ख-णिरय-मणुव-देवगई।।५।।
णीचागोदं अजसो असादमुच्चं जसो तहा सादं।
णिरयाऊ देवाऊ आहारसरीरणामं च।।६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**केवलज्ञानावरणीय-केवलदर्शनावरणीययोर्ग्रहणार्थं ''के'' इति निर्देशः कृतः सूत्रेऽस्मिन्। ते द्वे अपि सदृशे इति ज्ञापनार्थं 'के' इति एकशब्देन निर्दिष्टे स्तः। 'प' इत्युक्ते प्रचला गृहीतव्या, नामैकदेशादपि नामवतः प्रतिपत्तिदर्शनात्। 'णि' इत्युक्ते निद्राया ग्रहणं। कारणं पूर्वमिव वक्तव्यं। 'अट्ठ' इत्युक्ते अष्टकषाया गृहीतव्या। 'तिय' इति भणिते स्त्यानगृद्धित्रिकं गृहीतव्यं।**

कुतः ?

आचार्योपदेशात्।

प्रकृतियों से अव्यवहित प्रकृतियों का अनुभाग सदृश है, यह सूचना की गई है। 'विरिय' कहने पर वीर्यान्तराय का ग्रहण किया गया है। 'णव णोकसाया' ऐसा कहने पर नौ नोकषायों का ग्रहण करना चाहिये। यहाँ सर्वत्र 'अनंतगुण' शब्द का अध्याहार करना चाहिए।

अब केवलज्ञानावरण आदि प्रकृतियों का अनुभाग की अपेक्षा अनंतगुणितपना निरूपण करने हेतु दो गाथासूत्र अवतीर्ण किये जा रहे हैं —

गाथा सूत्रार्थ —

केवलज्ञानावरण व केवलदर्शनावरण, प्रचला,निद्रा, आठ कषाय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, अनंतानुबंधी चतुष्क, मिथ्यात्व, औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, तिर्यग्गति, नरकगति, मनुष्यगति और देवगति में प्रकृतियाँ उत्तरोत्तर अनुभाग की अपेक्षा अनंतगुणी है।।५।।

नीचगोत्र, अयशःकीर्ति, असातावेदनीय, उच्चगोत्र, यशःकीर्ति तथा सातावेदनीय, नारकायु, देवायु और आहारशरीर ये प्रकृतियाँ उत्तरोत्तर अनंतगुणी हैं।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उपर्युक्त गाथा सूत्र में केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय का ग्रहण करने के लिये 'के' ऐसा निर्देश किया है। वे दोनों प्रकृतियाँ सदृश हैं, यह बतलाने के लिये 'के' इस एक ही शब्द के द्वारा उन दोनों का निर्देश किया गया है। 'प' ऐसा कहने पर प्रचला का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि नाम के एक देश से भी नामवाले का बोध होता हुआ देखा जाता है। 'णि' इस निर्देश से निद्रा का ग्रहण करना चाहिये। कारण पहिले के समान कहना चाहिये। 'अट्ठ' ऐसा कहने पर प्रत्याख्यानावरण चतुष्क और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क इन आठ कषायों का ग्रहण करना चाहिये। 'तिय' कहने पर स्त्यानगृद्धित्रय का ग्रहण करना चाहिये।

प्रश्न — ऐसा क्यों ?

उत्तर — क्योंकि ऐसा ही आचार्यों का उपदेश है।

'अण' यह निर्देश अनंतानुबंधिचतुष्क का ग्रहण करने के निमित्त से है। 'मिच्छा' शब्द का निर्देश

'अण' इति निर्देशोऽनन्तानुबंधिचतुष्कग्रहणनिमित्तः। 'मिच्छा' निर्देशो मिथ्यात्वस्य ग्राहकः। 'ओ' इति कथिते औदारिकशरीरं गृहीतव्यं।

अवधिज्ञानं किन्न गृह्यते ?

न गृह्यते, तस्य पूर्वं प्ररूपितत्वात्। 'वे' इति भणिते वैक्रियिकशरीरस्य ग्रहणं नान्यस्य, असंभवात्। 'तिरिक्ख-मणुसाऊ'' इति भणिते द्वयोरायुषोर्ग्रहणं, आयुःशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबंधात्। ''तेयाकम्मसरीरं'' इत्युक्ते तैजसकार्मणशरीरयोर्ग्रहणं। ''तिरिक्ख-णिरयमणुव-देवगई'' इत्युक्ते चतुर्गतयो गृहीतव्याः, गतिशब्दस्य प्रत्येकमभिसंबंधात्।

षष्ठीगाथाया अर्थः सुगमो वर्तते। अस्यायमर्थः—पूर्वं गाथात्रयं कथितं। ततोऽपेक्षया इयं तृतीयागाथात्र षष्ठी कथ्यते।

एवं दशमे स्थले जघन्यचतुःषष्टिपदिकमहादण्डककथनत्वेन गाथात्रयं गतम्।

अधुना चतुःषष्टिपदिकमहादण्डकनिरूपणार्थं संज्वलनचतुष्कानन्तगुणत्वप्रतिपादनपरं सूत्रपंचकमवतार्यते —

एत्तो जहण्णओ चउसट्ठिपदिओ महादंडओ कायव्वो भवदि।।११८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पूर्वोक्तजघन्याल्पबहुत्वेन देशामर्शकेन सूचितचतुःषष्टिपदिकाल्पबहुत्वं श्रीभूतबलिसूरिवर्येण भणिष्यते।**

सव्वमंदाणुभागं लोभसंज्वलनं।।११९।।

मिथ्यात्व का ग्राहक है। 'ओ' कहने पर औदारिक शरीर का ग्रहण करना चाहिए।

शंका—'ओ' कहने पर अवधिज्ञानावरण का ग्रहण क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान—नहीं ग्रहण किया जाता है, क्योंकि उसका पहिले कथन कर आये हैं।

'वे' ऐसा कहने पर वैक्रियिक शरीर का ग्रहण करना चाहिये, अन्य का नहीं, क्योंकि उससे अन्य का ग्रहण करना सम्भव ही नहीं है। 'तिरिक्ख-मणुसाऊ' ऐसा कहने पर तिर्यगायु और मनुष्यायु इन दो आयुओं का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि आयु शब्द का प्रत्येक के साथ संबंध है।'तेयाकम्मसरीरं' ऐसा कहने पर तैजस और कार्मण शरीर का ग्रहण करना चाहिए। 'तिरिक्ख-णिरय-मणुव-देवगई' ऐसा कहने पर चारों गतियों का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि गति शब्द का संबंध प्रत्येक के साथ है।

छठी गाथा का अर्थ सुगम है। इसका अर्थ यह है कि पूर्व में तीन गाथाएँ कही गई हैं। उसकी अपेक्षा यह तृतीय गाथा यहाँ छठी कही गई है।

इस प्रकार दशवें स्थल में जघन्य चौंसठ पद वाले दण्डक का कथन करने वाली तीन गाथाएँ पूर्ण हुईं।

अब चौंसठ पद वाले महादण्डक का निरूपण करने हेतु संज्वलनचतुष्क के अनंतगुणितपने को प्रतिपादित करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

आगे चौंसठ पदवाला जघन्य महादण्डक कथन करने योग्य है।।११८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पूर्वोक्त जघन्य अल्पबहुत्व वाले देशामर्शक सूत्र से सूचित चौंसठ पद वाले अल्पबहुत्व को श्रीभूतबली आचार्यवर्य आगे कहेंगे।

सूत्रार्थ—

संज्वलन लोभ सबसे मंद अनुभाग से युक्त है।।११९।।

मायासंज्वलनमणंतगुणं।।१२०।।

माणसंजलनमणंतगुणं।।१२१।।

कोधसंजलनमणंतगुणं।।१२२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**संज्वलनलोभकषायः सर्वापेक्षया मन्दानुभागेन युक्तोऽस्ति, अनिवृत्तिचरमसमयबंधग्रहणात्।**

अत्र कश्चिदाशङ्कते—

सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमयवर्तिलोभः सूक्ष्मकृष्टिस्वरूपः किन्न गृह्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

न गृह्यते, किंच—बंधाधिकारे सत्त्वग्रहणानुपपत्तेः। न वेदनायां सत्त्वं चैव प्ररूप्यते, बंधसत्त्वयोर्द्वयोरपि प्ररूपितत्वात्। एतानि चतुःषष्टिपदिकानि जघन्योत्कृष्टाल्पबहुत्वानि बंधं चैवाश्रित्यास्थितानि।

एतत्कथं ज्ञायते ?

महाबंधसूत्रोपदिष्टत्वादेव ज्ञायते।

अस्मात् लोभान्मायासंज्वलनमनन्तगुणमस्ति, अनिवृत्तिकरणचरमसमयादधोऽन्तर्मुहूर्तमवतीर्य स्थितमायाकषायचरमानुभागबंधग्रहणात्।

कुत एतज्ज्ञायते ?

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानचरमानुभागबंधाद् द्विचरमानुभागबंधोऽनन्तगुणोऽस्ति। तस्मात् त्रिचरमानुभाग-

---

उससे माया संज्वलन का अनुभाग अनंतगुणा है।।१२०।।

उससे मान संज्वलन का अनुभाग अनंतगुणा है।।१२१।।

उससे क्रोध संज्वलन का अनुभाग अनंतगुणा है।।१२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संज्वलनलोभकषाय सभी कषायों की अपेक्षा मंद अनुभाग से युक्त है, क्योंकि अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के अंतिम समयसंबंधी बंध का यहाँ ग्रहण किया है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान के अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मकृष्टिस्वरूप लोभ का ग्रहण क्यों नहीं किया जाता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते है कि—

नहीं ग्रहण किया जाता है, क्योंकि बंध के अधिकार में सत्व का ग्रहण करना नहीं बन सकता है। वेदना में केवल सत्व का ही कथन नहीं किया जा रहा है, क्योंकि वह बंध और सत्व दोनों का ही प्ररूपक है। ये चौंसठ पदवाले जघन्य व उत्कृष्ट अल्पबहुत्व बंध का आश्रय करके ही अवस्थित हैं।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—यह महाबंध सूत्र के उपदेश से जाना जाता है।

इस लोभ से माया संज्वलन का अनुभाग अनंतगुणा है, क्योंकि अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय से नीचे अन्तर्मुहूर्त उतरकर स्थित माया कषाय के चरम अनुभागबंध का यहाँ ग्रहण किया है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय संबंधी अनुभाग बंध की अपेक्षा उसका द्विचरम समय

बंधोऽनन्तगुणः। एवं सर्वत्रानिवृत्तिकालस्याभ्यन्तरेऽनुभागवृद्धिर्दर्शनात्।

अस्मान्मानसंज्वलनमनन्तगुणमस्ति, मायासंज्वलनजघन्यबंधप्रदेशादधोऽन्तर्मुहूर्तमवतीर्य स्थितमान-जघन्यबंधग्रहणात्। अत्राप्यनन्तगुणत्वस्य कारणं प्रतिसमयमनन्तगुणायाः श्रेण्याः अधस्तनानुभागबंधवृद्धिर्भवति।

अस्मात्क्रोधसंज्वलनमनन्तगुणं वर्तते, तस्मादधोऽन्तर्मुहूर्तमवतीर्य जघन्यबंधग्रहणात्।

अधुना मनःपर्ययज्ञानावरणादिद्वादशप्रकृतीनां क्रमशोऽनन्तगुणत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

मणपज्जयणाणावरणीयं दाणंतराइयं च दोवि तुल्लाणि अणंत-गुणाणि।।१२३।।

ओहिणाणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं लाभंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि।।१२४।।

सुदणाणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि।।१२५।।

चक्खुदंसणावरणीयमणंतगुणाणि।।१२६।।

संबंधी अनुभागबंध अनंतगुणा है। उससे त्रिचरम समय संबंधी अनुभाग बंध अनंतगुणा है। इस प्रकार सर्वत्र अनिवृत्तिकरण काल के भीतर अनुभाग की वृद्धि देखे जाने से उक्त कथन का परिज्ञान होता है।

इससे मान संज्वलन का अनुभाग अनंतगुणा है, क्योंकि माया संज्वलन के जघन्य बंध संबंधी स्थान के पीछे अन्तर्मुहूर्त जाकर स्थित मान संज्वलन के जघन्य बंध का यह ग्रहण किया है। यहाँ भी अनंतगुणे का कारण प्रतिसमय अनंतगुणित श्रेणिरूप से पीछे अनुभागबंध की वृद्धि है।

उससे क्रोध संज्वलन का अनुभाग अनंतगुणा है, क्योंकि उससे नीचे अन्तर्मुहूर्त जाकर स्थित जघन्य बंध को यहाँ ग्रहण किया गया है।

अब मनःपर्ययज्ञानावरण आदि बारह प्रकृतियों के क्रमशः अनंतगुणितपने को प्रतिपादित करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उससे मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानान्तराय इन दोनों ही प्रकृतियों का अनुभाग तुल्य होकर अनंतगुणा है।।१२३।।

अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय इन तीनों ही प्रकृतियों का अनुभाग तुल्य होकर उनसे अनंतगुणा है।।१२४।।

श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय इन तीनों ही प्रकृतियों का अनुभाग तुल्य होकर उनसे अनंतगुणा है।।१२५।।

उनसे चक्षुदर्शनावरणीय का अनुभाग अनंतगुणा है।।१२६।।

आभिणिबोहियणाणावरणीयं परिभोगंतराइयं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि।।१२७।।

विरियंतराइयमणंतगुणं।।१२८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**क्रोधसंज्वलनं जघन्यानुभागो बादरकृष्टिस्वरूपोऽस्ति, एतयोर्मनः पर्ययज्ञानावरणीय-दानान्तराययोर्द्वयोः कर्मणोरनुभागः पुनः स्पर्द्धकं, एतयोः सूक्ष्मसांपरायिक चरमजघन्यबंधस्य स्पर्द्धकत्वं मुक्त्वा कृष्टित्वाभावात्। तेन क्रोधसंज्वलनजघन्यबंधात् अर्पितद्विप्रकृत्योर्जघन्यबंधोऽनन्तगुणोऽस्ति। प्रकृतिविशेषेण अवधिज्ञानावरणीयं अवधिदर्शनावरणीयं लाभान्तरायं च त्रीण्यपि तुल्यानि अनंतगुणानि।**

एतत्कथं ज्ञायते ?

क्षपकश्रेण्यां देशघातिबंधकरणेषु पूर्वोक्तेभ्यः पश्चात् देशघातित्वमुपपन्नत्वाद् ज्ञायते।

प्रकृतिविशेषात् श्रुतज्ञानावरणीयं अचक्षुर्दर्शनावरणीयं भोगान्तरायं च त्रीण्यपि तुल्यानि अनंतगुणानि सन्ति।

एतदपि कुतो ज्ञायते ?

पश्चाद् देशघातिबंधयोगादेव ज्ञायते।

अग्रेतनयोर्द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति।

उससे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय और परिभोगान्तराय इन दोनों प्रकृतियों का अनुभाग तुल्य होकर अनंतगुणा है।।१२७।।

उनसे वीर्यान्तराय का अनुभाग अनंतगुणा है।।१२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संज्वलन क्रोध का जघन्य अनुभाग बंध बादर कृष्टिस्वरूप है, परन्तु इन दोनों प्रकृतियों का अनुभाग स्पर्धकस्वरूप है, क्योंकि इनका सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान के अंतिम समय में जो जघन्य बंध होता है वह स्पर्धकरूप होता है वह कृष्टिस्वरूप नहीं हो सकता, इसलिये संज्वलन क्रोध के जघन्य बंध की अपेक्षा विवक्षित इन दो प्रकृतियों का जघन्य बंध अनंतगुणा है।

प्रकृति विशेष के कारण अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय ये तीनों कर्म एक समान होकर उनसे अनंतगुणे हैं।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—क्षपक श्रेणी के भीतर देशघातिबंधकरणविधान में जो बतलाया गया है कि "जिन प्रकृतियों का अनुभागबंध पूर्व में देशघाती होता है उनका अनुभाग स्तोक होता है, तथा जिनका अनुभागबंध पीछे देशघाती होता है उनका अनुभाग बहुत होता है।" उसी से वह जाना जाता है।

प्रकृति विशेष के कारण श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय ये तीनों ही तुल्य होकर उनसे अनंतगुणी हैं।

शंका—यह बात भी किस प्रमाण से जानी जाती है ?

समाधान—चूँकि इन प्रकृतियों का अनुभागबंध पश्चात्—पीछे देशघातिपने को प्राप्त होता है अतः इसी बात से उसका निश्चय हो जाता है।

आगे के १२७-१२८ इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है।

संप्रति नवनोकषायाणामनन्तगुणत्वनिरूपणार्थं नवसूत्राण्यवतार्यन्ते —

पुरिसवेदो अणंतगुणो।।१२९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**वीर्यान्तरायस्यानुभागो देशघाती एकस्थानिकः, पुरुषवेदस्यापि अनुभागः एतादृशश्चैव। किन्तु अन्तर्मुहूर्तमधोऽवतीर्य बद्धस्तेनानन्तगुणो जातः।**

हस्समणंतगुणं।।१३०।।

अपूर्वकरणचरमसमयसर्वघातिद्विस्थानिकजघन्यानुभागबंधग्रहणात्।

रदी अणंतगुणा।।१३१।।

एषा प्रकृतिः हास्यकर्मपुरंगमत्वात्।

दुगुंछा अणंतगुणा।।१३२।।

यद्यपि रतिजुगुप्सयोर्द्वयोः प्रकृत्योः अपूर्वकरणचरमसमये चैव जघन्यबन्धो जातस्तर्ह्यपि रत्यपेक्षया जुगुप्सानन्तगुणा, प्रकृतिविशेषमाश्रित्य संसारावस्थायां सर्वत्र तथावस्थानात्।

भयमणंतगुणं।।१३३।।

जुगुप्सापेक्षया भयमनन्तगुणमस्ति प्रकृतिविशेषेणेति।

सोगो अणंतगुणो।।१३४।।

अब नौ नोकषाय के अनंतगुणितपने को निरूपण करने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे पुरुषवेद का अनुभाग अनंतगुणा है।।१२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वीर्यान्तराय का अनुभाग देशघाती एकस्थानीय है तथा पुरुषवेद का भी अनुभाग इसी प्रकार है। परन्तु वह चूँकि अन्तर्मुहूर्त पीछे जाकर-नीचे उतरकर बांधा गया है अतः वह अनंतगुणा हीन है।

उससे हास्य का अनुभाग अनंतगुणा है।।१३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कारण यह है कि यहाँ अपूर्वकरण के अंतिम समय संबंधी सर्वघाती द्विस्थानीय जघन्य अनुभाग बंध का ग्रहण किया है।

उससे रति का अनुभाग अनंतगुणा है।।१३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कारण यह है कि वह हास्य नोकर्मपूर्वक होता है।

उससे जुगुप्सा का अनुभाग अनंतगुणा है।।१३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यद्यपि रति और जुगुप्सा इन दोनों प्रकृतियों का अपूर्वकरण के अंतिम समय में ही जघन्य बंध हो जाता है तो भी रति की अपेक्षा जुगुप्सा का अनुभाग अनंतगुणा है, क्योंकि प्रकृतिविशेष का आश्रय करके संसार अवस्था में सर्वत्र इसी प्रकार की स्थिति देखी जाती है।

उससे भय का अनुभाग अनंतगुणा है।।१३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जुगुप्सा की अपेक्षा भय का अनुभाग अनंतगुणा है, इसका कारण प्रकृतिविशेष है।

उससे शोक का अनुभाग अनंतगुणा है।।१३४।।

एतस्य कारणं यदपूर्वकरणविशुद्ध्यपेक्षया अनंतगुणहीनविशुद्धिसहितेन प्रमत्तसंयतेन बद्ध-जघन्यानुभाग-ग्रहणात्।

अरदी अणंतगुणा।।१३५।।

शोकापेक्षया अरतिप्रकृतिरनन्तगुणा भवति, स्वाभाविकत्वात्।

इत्थिवेदो अणंतगुणो।।१३६।।

प्रमत्तसंयतविशुद्ध्यपेक्षया अनंतगुणहीनसर्वविशुद्धमिथ्यादृष्टिजीवेन बद्धस्त्रीवेदजघन्यानुभागग्रहणात् स्त्रीवेदोऽनन्तगुणो भवति।

णवुंसयवेदो अणंतगुणो।।१३७।।

मिथ्यादृष्टिजीवेन सर्वविशुद्धेन संयमाभिमुखेन बद्धजघन्यानुभागग्रहणात् नपुंसकवेदोऽनन्तगुणो भवति।

अधुना केवलज्ञानदर्शनावरणद्विकप्रकृति-अनंतगुणत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

केवलणाणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं च दोवि तुल्लाणि अणंत-गुणाणि।।१३८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतयोर्द्वयोरपि प्रकृत्योः सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमयेऽन्तर्मुहूर्तमनंतगुणहानिं गत्वा**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कारण यह है कि अपूर्वकरण की विशुद्धि की अपेक्षा अनंतगुणी हीन विशुद्धि वाले प्रमत्तसंयत द्वारा बांधे गये जघन्य अनुभाग का यहाँ ग्रहण किया है।

उससे अरति का अनुभाग अनंतगुणा है।।१३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—शोक की अपेक्षा अरति नामक प्रकृति का अनुभाग अनंतगुणा होता है, क्योंकि ऐसा ही स्वभाव है।

उससे स्त्रीवेद का अनुभाग अनंतगुणा है।।१३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ प्रमत्त संयत की विशुद्धि की अपेक्षा अनंतगुणी हीन विशुद्धि युक्त सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव के द्वारा बांधे गये स्त्रीवेद के जघन्य अनुभाग ग्रहण किया है। इसीलिये स्त्रीवेद का अनुभाग अनंतगुणित है।

उससे नपुंसकवेद का अनुभाग अनंतगुणा है।।१३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संयम के सम्मुख हुए सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि के द्वारा बांधे गये जघन्य अनुभाग का ग्रहण होने से नपुंसकवेद का अनुभाग अनंतगुणा होता है।

अब केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण इन दोनों प्रकृतियों के अनंतगुणितपने को बतलाने हेतू सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय दोनों ही प्रकृतियों का अनुभाग तुल्य होकर अनंतगुणा है।।१३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यद्यपि इन दोनों ही प्रकृतियों का अंतर्मुहूर्तकाल तक अनंतगुणी हानि होकर सूक्ष्मसाम्परायिक के अंतिम समय में जघन्य अनुभाग बंध होता है तो भी सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि के

जघन्यानुभागबंधो यद्यपि जातस्तर्ह्यपि मिथ्यादृष्टिजीवेन सर्वविशुद्धेन बद्धनपुंसकवेद-जघन्यानुभाग-बंधादनन्तगुणो भवति।

कुत एतत् ?

स्वाभाविकत्वात्।

संप्रति प्रचलानिद्राप्रकृतिद्वयतरतमानन्तगुणनिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

पयला अणंतगुणा।।१३९।।

णिद्दा अणंतगुणा।।१४०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अपूर्वकरणगुणस्थानवर्तिजीवेन स्वककालस्य सप्तभागेषु प्रथमभागे वर्तमानेन चरमसमयसूक्ष्मसांपरायिकस्य विशुद्ध्यपेक्षया अनंतगुणहीनविशुद्धिसहितेन बद्धत्वात्।**

यद्यपि निद्रायास्तत्रैव जघन्यबंधो भवति तथापि प्रकृतिविशेषेण सानन्तगुणा भवति प्रचलापेक्षयेति।

अधुना प्रत्याख्यानावरणचतुष्कतरतमत्वनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

पच्चक्खाणावरणीयमाणो अणंतगुणो।।१४१।।

कोधो विसेसाहिओ।।१४२।।

माया विसेसाहिया।।१४३।।

द्वारा बांधे गये नपुंसकवेद के जघन्य अनुभाग बंध की अपेक्षा वह अनंतगुणा है।

ऐसा क्यों है ?

क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

अब प्रचला और निद्रा इन दो प्रकृतियों की तरतमता से अनंतगुणितपने को निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतीर्ण किये जाते हैं —

सूत्रार्थ—

उनसे प्रचला का अनुभाग अनंतगुणा है।।१३९।।

उससे निद्रा का अनुभाग अनंतगुणा है।।१४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वह अपने काल के सात भागों में से प्रथम भाग में वर्तमान और अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक की विशुद्धि से अनंतगुणी हीन विशुद्धि वाले अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव के द्वारा बांधी जाती है।

यद्यपि निद्रा का जघन्य अनुभागबंध वहीं होता है, फिर भी प्रकृति विशेष के द्वारा वह प्रचला की अपेक्षा अनन्तगुणा है।

अब प्रत्याख्यानावरणचतुष्क के तरतमपने का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे प्रत्याख्यानावरणीय मान का अनुभाग अनंतगुणा है।।१४१।।

उससे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध का अनुभाग विशेष अधिक है।।१४२।।

उससे प्रत्याख्यानावरणीय माया का अनुभाग विशेष अधिक है।।१४३।।

लोभो विसेसाहिओ।।१४४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अपूर्वकरणवर्तिक्षपकविशुद्ध्यपेक्षया अनंतगुणहीनविशुद्धिसहितेन सर्वविशुद्धेन संयतासंयतेन बद्धजघन्यानुभागग्रहणात् प्रत्याख्यानावरणीयमानोऽनन्तगुणो भवति। अस्यापेक्षया क्रोधो विशेषाधिकस्ततो माया विशेषाधिका, ततो लोभो विशेषाधिको ज्ञातव्यः।**

संप्रति अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-निद्रात्रिकप्रकृतीनामनन्तगुणत्वादिख्यापनार्थं सूत्रसप्तकमवतार्यते —

अपच्चक्खाणावरणीयमाणो अणंतगुणो।।१४५।।

कोधो विसेसाहिओ।।१४६।।

माया विसेसाहिया।।१४७।।

लोभो विसेसाहिओ।।१४८।।

णिद्दाणिद्दा अणंतगुणा।।१४९।।

पयलापयला अणंतगुणा।।१५०।।

थीणगिद्धी अणंतगुणा।।१५१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**प्रत्याख्यानावरणीयलोभापेक्षया अप्रत्याख्यानावरणीयमानोऽनन्तगुणो भवति।**

उससे प्रत्याख्यानावरणीय लोभ का अनुभाग विशेष अधिक है ।।१४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अपूर्वकरण क्षपक की विशुद्धि से अनंतगुणी हीन विशुद्धि वाले तथा सर्वविशुद्ध संयतासंयत जीव के द्वारा बांधे गये जघन्य अनुभाग का यहाँ ग्रहण किया है।

इसलिए प्रत्याख्यानावरणीय मान का अनुभाग अनंतगुणा होता है। इसकी अपेक्षा क्रोध का अनुभाग विशेष अधिक है, उससे माया का अनुभाग विशेष अधिक है, उससे लोभ का अनुभाग विशेष अधिक है ऐसा जानना चाहिए।

अब अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-निद्रात्रिक प्रकृतियों के अनंतगुणत्व आदि को बतलाने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे अप्रत्याख्यानावरणीय मान का अनुभाग अनंतगुणा है।।१४५।।

उससे अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध का अनुभाग विशेष अधिक है।।१४६।।

उससे अप्रत्याख्यानावरणीय माया का अनुभाग विशेष अधिक है।।१४७।।

उससे अप्रत्याख्यानावरणीय लोभ का अनुभाग विशेष अधिक है ।।१४८।।

उससे निद्रानिद्रा का अनुभाग अनंतगुणा है।।१४९।।

उससे प्रचलाप्रचला का अनुभाग अनंतगुणा है।।१५०।।

उससे स्त्यानगृद्धि का अनुभाग अनंतगुणा है।।१५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रत्याख्यानावरणीय लोभ की अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरणीय मान का

किंच-संयतासंयतविशुद्धितः अनंतगुणहीनविशुद्धिसहितेन असंयतसम्यग्दृष्टिजीवेन सर्वविशुद्धेन चरमसमये बद्धजघन्यानुभागग्रहणात्। ततः प्रकृतिविशेषेण क्रोधो विशेषाधिकः। ततो माया विशेषाधिका, ततो लोभो विशेषाधिकः प्रकृतिविशेषेणैव ज्ञातव्यो भवति। असंयतसम्यग्दृष्टिविशुद्धितः-अनंतगुणहीनविशुद्धिसहित-मिथ्यादृष्टिजीवेन सर्वविशुद्धेन बद्धत्वात् निद्रानिद्रा अनंतगुणा भवति।

यद्यपि निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचलयोर्द्वयोरपि प्रकृत्योः जघन्यानुभागबंधानामेकश्चैव स्वामी तर्ह्यपि प्रकृति-विशेषेण प्रचलाप्रचला अनंतगुणा बोद्धव्या।

ततः स्त्यानगृद्धिरपि प्रकृतिविशेषेण अनंतगुणा ज्ञातव्यो भवति।

अधुना अनंतानुबंधि-आदिप्रकृतीनां अनंतगुणत्वादिप्रतिपादनार्थं सूत्रपंचकमवतार्यते —

अणंताणुबंधिमाणो अणंतगुणो।।१५२।।

कोधो विसेसाहिओ।।१५३।।

माया विसेसाहिया।।१५४।।

लोभो विसेसाहिओ।।१५५।।

मिच्छत्तमणंतगुणं।।१५६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पूर्वकथितस्त्यानगृद्धिनामदर्शनावरणकर्मप्रकृत्यपेक्षया अनंतानु-**

अनुभाग अनंतगुणा होता है, क्योंकि संयतासंयत विशुद्धि से अनन्तगुणहीन विशुद्धि सहित सर्वविशुद्ध असंयतसम्यग्दृष्टि जीव के द्वारा चरम समय में बांधे गये जघन्य अनुभागबंध का यहाँ ग्रहण किया है।

उससे प्रकृति विशेषता के कारण क्रोध का अनुभाग विशेष अधिक है। उससे माया का अनुभाग विशेष अधिक है। उससे लोभ का अनुभाग विशेष अधिक है, यह प्रकृति विशेष के कारण ही जानना चाहिए। असंयतसम्यग्दृष्टि की विशुद्धि से अनंतगुणाहीन विशुद्धि सहित सर्वविशुद्धि मिथ्यादृष्टि जीव के द्वारा बांधी जाने के कारण निद्रानिद्रा का अनुभाग अनंतगुणा होता है।

यद्यपि निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला इन दोनों की प्रकृतियों के जघन्य अनुभागबंध का एक ही स्वामी है, तो भी प्रकृतिविशेष के कारण प्रचलाप्रचला अनंतगुणा जानना चाहिए।

उससे स्त्यानगृद्धि भी प्रकृति विशेष के कारण अनंतगुणी जानना चाहिए।

अब अनंतानुबंधी आदि प्रकृतियों के अनंतगुणत्व आदि का प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे अनंतानुबंधी मान का अनुभाग अनंतगुणा है।।१५२।।

उससे अनंतानुबंधी क्रोध का अनुभाग विशेष अधिक है।।१५३।।

उससे अनंतानुबंधी माया का अनुभाग विशेष अधिक है।।१५४।।

उससे अनंतानुबंधी लोभ का अनुभाग विशेष अधिक है ।।१५५।।

उससे मिथ्यात्व का अनुभाग अनंतगुणा है।।१५६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पूर्व में कथित स्त्यानगृद्धि नामक दर्शनावरणकर्म प्रकृति की अपेक्षा

बंधिमानोऽनन्तगुणो भवति। संयमाभिमुखचरमसमयमिथ्यादृष्टिजीवेन बद्धजघन्यानुभागबंधग्रहणात्।

प्रकृतिविशेषेण क्रोधो विशेषाधिकः, ततो माया विशेषाधिका, तदपेक्षया प्रकृतिविशेषेणैव लोभो विशेषाधिकः।

मिथ्यादृष्टिजीवेन सर्वविशुद्धेन संयमाभिमुखेन स्वककालस्य चरमसमये वर्तमानेन बद्धजघन्यानुभागग्रहणात्।

अत्र कश्चिदाशङ्कते—

द्वयोरपि प्रकृत्योः मिथ्यादृष्टिरेक एव स्वामी अस्ति, तदानीं मिथ्यात्वस्यानन्तगुणत्वं कथं युज्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, प्रकृतिविशेषेण तदविरोधात्।

संप्रति औदारिकादिप्रकृतीनामनन्तगुणत्वप्रतिपादनार्थं दशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

ओरालियसरीरमणंतगुणं।।१५७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**येन एषा प्रशस्तप्रकृतिस्तेन एतस्याः संक्लेशेन जघन्यबंधो भवति। पुन एषा औदारिकशरीरप्रकृतिः यद्यपि मिथ्यादृष्टिसंबंधिनी उत्कृष्टसंक्लेशेण बद्धा तर्ह्यपि मिथ्यात्वादनन्तगुणा भवति।**

कुतः ?

शुभानां प्रकृतीनां संक्लेशेन महतोऽनुभागस्य क्षयाभावात्।

अनंतानुबंधी मान का अनुभाग अनंतगुणा होता है। क्योंकि संयम के अभिमुख हुए अंतिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव के द्वारा बांधे गये जघन्य अनुभागबंध का यहाँ ग्रहण किया है।

प्रकृतिविशेष के कारण क्रोध का अनुभाग विशेष अधिक है, उससे माया का अनुभाग विशेष अधिक होता है, उसकी अपेक्षा प्रकृति विशेष के कारण लोभ का अनुभाग विशेष अधिक है। क्योंकि संयम के अभिमुख हुए व अपने काल के अंतिम समय में स्थित सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव के द्वारा बांधे गये जघन्य अनुभाग का यहाँ ग्रहण किया है।

यहाँ कोई शंका करता है—

जब इन दोनों ही प्रकृतियों का एक ही मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी है तब अनंतानुबंधी लोभ की अपेक्षा मिथ्यात्व का अनंतगुणा अनुभाग होना कैसे उचित है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि प्रकृति विशेष होने से उसमें कोई विरोध नहीं आता है।

अब औदारिक आदि प्रकृतियों के अनंतगुणितपने का प्रतिपादन करने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे औदारिक शरीर का अनुभाग अनंतगुणा है।।१५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह प्रकृति चूँकि प्रशस्त प्रकृति है, इसलिए इसका संक्लेश से जघन्य बंध होता है। यद्यपि यह औदारिक शरीर प्रकृति मिथ्यादृष्टि है, संबंधी उत्कृष्ट संक्लेश से बांधी गई है, तो भी वह मिथ्यात्व की अपेक्षा अनंतगुणी है।

क्यों ?

क्योंकि संक्लेश से शुभ प्रकृतियों के महान—बहुत अधिक अनुभाग का क्षय नहीं होता है।

वेउव्वियसरीरमणंतगुणं।।१५८।।

एषा प्रकृतिः औदारिकशरीरमपेक्ष्य प्रशस्ततमत्वात् अनंतगुणा भवति।

तिरिक्खाउअमणंतगुणं।।१५९।।

उत्कृष्टसंक्लेश-विशुद्धिभ्यां आयुर्बंधाभावो भवति, अतः तत्प्रायोग्यसंक्लेश-विशुद्धिभ्यां बद्धतिर्यग-पर्याप्तजघन्यायुर्ग्रहणात् वैक्रियिकशरीरपेक्षया तिर्यगायुरनन्तगुणं भवति।

मणुसाउअमणंतगुणं।।१६०।।

तिर्यगायुरपेक्षया मनुष्यायुरनन्तगुणमस्ति, विशुद्धतमत्वात्।

तेजइयसरीरमणंतगुणं।।१६१।।

तैजसशरीरं येन शुभप्रकृतिस्तेनैतस्या जघन्यबंधः सर्वसंक्लिष्टमिथ्यादृष्टिजीवे भवति। भवन्नपि मनुष्यायुषोऽपेक्षया अनंतगुणो भवति।

कुतः ?

शुभानां प्रकृतीनां बहु-अनुभागबंधापसरणाभावात्।

कम्मइयसरीरमणंतगुणं।।१६२।।

प्रकृतिविशेषेण एषा कार्मणप्रकृतिरनन्तगुणा भवति।

उससे वैक्रियिक शरीर का अनुभाग अनंतगुणा है।।१५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह प्रकृति औदारिक शरीर की अपेक्षा प्रशस्ततम-अतिशय प्रशस्त होने से अनंतगुणी होती है।

उससे तिर्यंचायु का अनुभाग अनंतगुणा है।।१५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उत्कृष्ट संक्लेश एवं उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा आयु के बंध का अभाव पाया जाता है, अतएव तत्प्रायोग्य संक्लेश एवं विशुद्धि के द्वारा बांधी गयी तिर्यञ्च अपर्याप्तक की जघन्य आयु ग्रहण करने के कारण वैक्रियिक शरीर की अपेक्षा तिर्यञ्चायु का अनुभाग अनंतगुणा होता है।

उससे मनुष्यायु का अनुभाग अनंतगुणा है।।१६०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तिर्यंचायु की अपेक्षा मनुष्यायु का अनुभाग अनंतगुणा होता है, क्योंकि उसमें अतिशय विशुद्धता पाई जाती है।

उससे तैजस शरीर का अनुभाग अनंतगुणा है।।१६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चूँकि तैजस शरीर शुभ प्रकृति है अतएव इसका जघन्य बंध सर्वसंक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि जीव के होता है। मिथ्यादृष्टि के होता हुआ भी वह मनुष्यायु की अपेक्षा अनंतगुणा है।

क्यों ?

क्योंकि शुभ प्रकृतियों के बहुत अनुभागबंध का अपसरण नहीं होता है।

उससे कार्मण शरीर का अनुभाग अनंतगुणा है।।१६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रकृतिविशेष के कारण इस कार्मण प्रकृति का अनुभाग अनंतगुणा होता है।

तिरिक्खगदी अणंतगुणा।।१६३।।

कार्मणशरीरापेक्षया तिर्यग्गतिरनंतगुणा भवति, सर्वविशुद्धसप्तमपृथिवीनारकमिथ्यादृष्टिजीवेन बद्धत्वात्।

णिरयगदी अणंतगुणा।।१६४।।

असंज्ञिपंचेन्द्रिय तिर्यग्गतिसंक्लेशात् अनंतगुणसंक्लेशेन बद्धत्वात्।

मणुसगदी अणंतगुणा।।१६५।।

यद्यपि एतस्या मनुष्यगतेः एकेन्द्रियेषु जघन्यबंधो जातस्तर्ह्यपि एषा नरकगतिमपेक्ष्य अनंतगुणा भवति, शुभप्रकृतित्वात्।

देवगदी अणंतगुणा।।१६६।।

यद्यपि एतस्या जघन्यबंधः असंज्ञिपंचेन्द्रियेषु परिवर्तमानमध्यमपरिणामेषु जातस्तर्ह्यपि मनुष्यगतिमपेक्ष्य देवगतिरनन्तगुणा भवति, एकेन्द्रियपरिवर्तमानमध्यमपरिणामात् असंज्ञिपंचेन्द्रियपरिवर्तमानमध्यमपरिणामानाम-नन्तगुणत्वदर्शनात्।

अधुना नीचगोत्रादि प्रकृतीनामनन्तगुणत्वख्यापनार्थं सूत्राष्टकमवतार्यते —

णीचागोदमणंतगुणं।।१६७।।

उससे तिर्यंचगति का अनुभाग अनंतगुणा है।।१६३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कार्मणशरीर की अपेक्षा तिर्यंचगति का अनुभाग अनंतगुणा होता है, क्योंकि वह सर्व विशुद्ध सातवीं पृथिवी के मिथ्यादृष्टि नारकी जीव के द्वारा बांधा गया है।

उससे नरकगति का अनुभाग अनंतगुणा है।।१६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वह असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच गति के संक्लेश की अपेक्षा अनंतगुणे संक्लेश के द्वारा बांधा गया है।

उससे मनुष्यगति का अनुभाग अनंतगुणा है।।१६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यद्यपि इसका एकेन्द्रियों के जघन्य बंध होता है तो भी इसका नरकगति की अपेक्षा अनुभाग अनंतगुणा है, क्योंकि यह शुभ प्रकृति है।

उससे देवगति का अनुभाग अनंतगुणा है।।१६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यद्यपि इसका जघन्य बंध परिवर्तमान मध्यम परिणामों से युक्त असंज्ञीपचेन्द्रियों के होता है तो भी मनुष्यगति की अपेक्षा देवगति का अनुभाग अनंतगुणा है, क्योंकि एकेन्द्रिय के परिवर्तमान मध्यम परिणामों की अपेक्षा असंज्ञी पंचेन्द्रिय के परिवर्तमान मध्यम परिणाम अनंतगुणे देखे जाते हैं।

अब नीचगोत्र आदि प्रकृतियों का अनंतगुणितपना बतलाने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे नीचगोत्र का अनुभाग अनंतगुणा है।।१६७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यद्यपि एतस्य नीचगोत्रस्य सप्तमपृथ्वीनारकेषु सर्वविशुद्धपरिणामेषु जघन्यं बंधं जातं तर्ह्यपि देवगत्यपेक्षया नीचगोत्रमनन्तगुणं भवति, स्वाभाविकत्वात्।**

अजसकित्ती अणंतगुणा।।१६८।।

सर्वविशुद्धेन प्रमत्तसंयतेन प्रबद्धत्वात्।

असादावेदणीयमणंतगुणं।।१६९।।

एतस्यासातावेदनीयस्य जघन्यबंधो यद्यपि प्रमत्तसंयते मुनौ जातस्तर्ह्यपि अयशःकीर्तिप्रकृतेरेतस्यानुभागोऽनन्तगुणो भवति प्रकृतिविशेषेणेति।

जसकित्ती उच्चागोदं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि।।१७०।।

यद्यपि अतिसंक्लेशयुक्तमिथ्यादृष्टिपंचेन्द्रियेषु यशःकीर्तिउच्चगोत्रयोर्द्वयोः कर्मणोः जघन्यो बंधो भवति, तर्ह्यपि असातावेदनीयापेक्षया अनयोरनुभागोऽनंतगुणोऽस्ति, शुभप्रकृतीनां बहु-अनुभागबंधापसरणाभावात्।

सातावेदणीयमणंतगुणं।।१७१।।

एतस्यापि जघन्यानुभागबंधस्य सर्वसंक्लिष्टो मिथ्यादृष्टिश्चैव स्वामी, किन्तु प्रकृतिविशेषेण सातावेदनीयप्रकृतिरनन्तगुणा अस्ति।

णिरयाउअमणंतगुणं।।१७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यद्यपि सर्वविशुद्धि परिणामवाले सातवीं पृथिवी के नारकियों में इसका जघन्य बंध होता है, तो भी देवगति की अपेक्षा नीचगोत्र अनंतगुणा है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

उससे अयशःकीर्ति का अनुभाग अनंतगुणा है।।१६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वह सर्वविशुद्ध प्रमत्तसंयत जीव के द्वारा बांधा जाता है।

उससे असातावेदनीय का अनुभाग अनंतगुणा है।।१६९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यद्यपि इस असाता वेदनीय का जघन्य बंध प्रमत्तसंयत मुनि के ही होता है, तो भी उस अयशकीर्ति की अपेक्षा इस असाता वेदनीय का अनुभाग प्रकृतिविशेष होने से अनंतगुणा होता है।

उससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्र दोनों ही तुल्य होकर अनंतगुणे है।।१७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यद्यपि अति तीव्र संक्लेश युक्त पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवों में इन दोनों ही प्रकृतियों का जघन्य बंध होता है, तो भी असातावेदनीय की अपेक्षा इनका अनुभाग अनंतगुणा है, क्योंकि शुभ प्रकृतियों के बहुत अनुभाग बंध का अपसरण नहीं होता है।

उनसे सातावेदनीय का अनुभाग अनंतगुणा है।।१७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसके भी जघन्य अनुभागबंध का स्वामी सर्वसंक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि जीव ही है, किन्तु प्रकृतिविशेष होने से वह सातावेदनीय उक्त दोनों प्रकृतियों से अनंतगुणी है।

उससे नारकायु का अनुभाग अनंतगुणा है।।१७२।।

सातावेदनीयापेक्षया नरकायुरनन्तगुणमस्ति, स्वाभाविकत्वात्।

देवाउअमणंतगुणं।।१७३।।

कारणं सुगमं ज्ञातव्यं।

आहारसरीरमणंतगुणं।।१७४।।

अप्रमत्तसंयतेन तत्प्रायोग्यविशुद्धेन प्रबद्धत्वात्।

एवं जघन्यं चतुःषष्टिपदिकं परस्थानाल्पबहुत्वं समाप्तं।

संप्रति एतेन सूचितस्वस्थानाल्पबहुत्वं वक्ष्यन्ते—

सर्वमन्दानुभागं मनःपर्ययज्ञानावरणीयं। अवधिज्ञानावरणीयमनन्तगुणं। श्रुतज्ञानावरणीयमनन्तगुणं। आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयमनन्तगुणं। केवलज्ञानावरणीयमनन्तगुणं ज्ञातव्यमस्ति।

सर्वमन्दानुभागमवधिदर्शनावरणीयं। अचक्षुर्दर्शनावरणीयमनन्तगुणं। चक्षुर्दर्शनावरणीयमनन्तगुणं। केवलदर्शनावरणीयमनन्तगुणं। प्रचला अनन्तगुणा। निद्रा अनंतगुणा। निद्रानिद्रा अनंतगुणा। प्रचलाप्रचला अनंतगुणा। स्त्यानगृद्धिरनन्तगुणा।

सर्वमन्दानुभागमसातावेदनीयं। सातावेदनीयमनंतगुणं।

सर्वमन्दानुभागं लोभसंज्वलनं। मायासंज्वलनमनन्तगुणं। मानसंज्वलनमनन्तगुणं। क्रोधसंज्वलनमनंतगुणं।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सातावेदनीय की अपेक्षा नरकायु का अनुभाग अनन्तगुणा होता है, क्योंकि ऐसा ही स्वभाव है।

उससे देवायु का अनुभाग अनंतगुणा है।।१७३।।

इसका कारण सुगम है।

उससे आहारक शरीर का अनुभाग अनंतगुणा है।।१७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि वह तत्प्रयोग्य विशुद्धि को प्राप्त अप्रमत्तसंयत मुनि के द्वारा बांधा गया है।

इस प्रकार चौंसठ पदवाला जघन्य परस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

अब इससे सूचित स्वस्थान अल्पबहुत्व को कहेंगे—

मनः पर्ययज्ञानावरण कर्म सर्वमंद अनुभाग से युक्त है। उससे अवधिज्ञानावरणीय अनंतगुणा है। उससे श्रुतज्ञानावरणीय अनंतगुणा है। उससे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय अनंतगुणा है। उससे केवलज्ञानावरणीय अनंतगुणा है, ऐसा जानना चाहिए।

अवधिदर्शनावरणीय सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे अचक्षुदर्शनावरणीय अनंतगुणा है, उससे चक्षुदर्शनावरणीय अनंतगुणा है। उससे केवलदर्शनावरणीय अनंतगुणा है। उससे प्रचला अनंतगुणी है। उससे निद्रा अनंतगुणी है। उससे निद्रानिद्रा अनन्तगुणी है। उससे प्रचलाप्रचला अनन्तगुणी है। उससे स्त्यानगृद्धि अनंतगुणी है। इन सबमें अनुभाग शब्द लगा लेना चाहिए।

असातावेदनीय सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे सातावेदनीय अनंतगुणा है। संज्वलन लोभ सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे संज्वलन माया अनंतगुणी है। उससे संज्वलन मान अनंतगुणा है।

पुरुषवेदोऽनन्तगुणः। हास्यमनंतगुणं। रतिरनन्तगुणा। जुगुप्सा अनंतगुणा। भयमनंतगुणं। शोकोऽनन्तगुणः। अरतिरनन्तगुणा। स्त्रीवेदोऽनन्तगुणः। नपुंसकवेदोऽनन्तगुणः। प्रत्याख्यानमानोऽनन्तगुणः। क्रोधो विशेषाधिकः माया विशेषाधिका। लोभो विशेषाधिकः। अप्रत्याख्यानमानोऽनन्तगुणः। क्रोधो विशेषाधिकः। माया विशेषाधिका। लोभो विशेषाधिकः। अनन्तानुबंधिमानोऽनन्तगुणः। क्रोधो विशेषाधिकः। माया विशेषाधिका। लोभो विशेषाधिकः। मिथ्यात्वमनन्तगुणमिति ज्ञातव्यम्।

सर्वमन्दानुभागं तिर्यगायुः। मनुष्यायुरनन्तगुणं। नरकायुरनन्तगुणं। देवायुरनन्तगुणं।

सर्वमन्दानुभागा तिर्यग्गतिः। नरकगतिरनन्तगुणा। मनुष्यगतिरनन्तगुणा। मनुष्यगतिरनन्तगुणा। देवगतिरन्तगुणा।

सर्वमन्दानुभागा चतुरिन्द्रियजातिः। त्रीन्द्रियजातिरनन्तगुणा। द्वीन्द्रियजातिरनन्तगुणा। एकेन्द्रियजातिरनन्तगुणा। पंचेन्द्रियजातिरनन्तगुणा।

सर्वमन्दानुभागमौदारिकशरीरं। वैक्रियिकशरीरमनन्तगुणं। तैजसशरीरमनन्तगुणं। कार्मणशरीरमनन्तगुणं। आहारशरीरमनन्तगुणं।

सर्वमन्दानुभागं न्यग्रोधसंस्थानं। स्वातिसंस्थानमनन्तगुणं। कुब्जकसंस्थानमनन्तगुणं। वामनसंस्थान-मनन्तगुणं। हुंडकसंस्थानमनन्तगुणं। समचतुरस्त्रसंस्थानमनन्तगुणम्।

सर्वमन्दानुभागमौदारिकशरीरांगोपांग। वैक्रियिकशरीरांगोपांगमनन्तगुणं। आहारकशरी-रांगोपांगम-

---

उससे संज्वलन क्रोध अनंतगुणा है। उससे पुरुषवेद अनंतगुणा है। उससे हास्य अनंतगुणा है। उससे रति अनंतगुणी है। उससे जुगुप्सा अनंतगुणी है। उससे भय अनंतगुणा है। उससे शोक अनंतगुणा है। उससे अरति अनंतगुणी है। उससे स्त्रीवेद अनंतगुणा है। उससे नपुंसकवेद अनंतगुणा है। उससे प्रत्याख्यानावरण मान अनन्तगुणा है। उससे प्रत्याख्यानावरण क्रोध विशेष अधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरण माया विशेष अधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरण लोभ विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण मान अनंतगुणा है। उससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण माया विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभ विशेष अधिक है। उससे अनंतानुबंधी मान अनंतगुणा है। उससे अनन्तानुबंधी क्रोध विशेष अधिक है। उससे अनंतानुबंधी माया विशेष अधिक है। उससे अनंतानुबंधी लोभ विशेष अधिक है। उससे मिथ्यात्व अनंतगुणा है ऐसा जानना चाहिए। यहाँ सभी में अनुभाग शब्द लगा लेना चाहिए।

तिर्यञ्चायु सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे मनुष्यायु अनंतगुणी है। उससे नरकायु अनंतगुणी है। उससे देवायु अनंतगुणी है।

तिर्यग्गति सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे नरकगति अनंतगुणी है। उससे मनुष्यगति अनंतगुणी है। उससे देवगति अनंतगुणी है।

चतुरिन्द्रिय जाति सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे त्रीन्द्रिय जाति अनंतगुणी अनुभाग वाली है। उससे द्वीन्द्रिय जाति अनंतगुणी अनुभाग वाली है। उससे एकेन्द्रिय जाति अनंतगुणी है। उससे पंचेन्द्रिय जाति अनंतगुणी है। उससे पंचेन्द्रिय जाति अनंतगुणी है। औदारिक शरीर सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे वैक्रियिक शरीर का अनुभाग अनंतगुणा है। उससे तैजस शरीर का अनुभाग अनंतगुणा है। उससे कार्मणशरीर का अनुभाग अनंतगुणा है। उससे आहारक शरीर का अनुभाग अनंतगुणा है। न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान

नन्तगुणं।।

संहननानां भंगः संस्थानवत् ज्ञातव्यः।

सर्वमन्दानुभागमप्रशस्तवर्णादिचतुष्कं। प्रशस्तचतुष्कमनन्तगुणं।

यथा गतिस्तथानुपूर्वीव्यवस्था ज्ञातव्या।

सर्वमन्दानुभागमुपघातं। परघातमनंतगुणं। उच्छ्वासमनन्तगुणं। अगुरुलघुमनन्तगुणं। सर्वमन्दानुभागा अप्रशस्तविहायोगतिः। प्रशस्तविहायोगतिरनन्तगुणा।

त्रसादिदशयुगलस्य सातासातप्रकृतिवत् भंगो ज्ञातव्यः।

सर्वमन्दानुभागं नीचगोत्रं। उच्चगोत्रमनन्तगुणं।

सर्वमन्दानुभागं दानान्तरायं। एवं परिपाटीक्रमेण उपरिमचत्वारोऽपि अन्तराया अनन्तगुणाः ज्ञातव्या भवन्ति।

तात्पर्यमत्र—एतानि सर्वाल्पबहुत्वादीनि ज्ञात्वा स्वात्मनः सकाशात् सर्वाणि कर्माण्येव भिन्नानि शुद्धनिश्चयनयेनेति निश्चित्य 'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन'' इत्यादिकलशकाव्यानां अपि स्मारं स्मारं निरन्तरं 'शुद्धोऽहं बुद्धोऽहं' इत्यादिभावना भावयितव्याः।

एवं स्वस्थानजघन्याल्पबहुत्वं समाप्तम्।

एवं एकादशस्थले चतुःषष्टिपदिकाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सप्तपंचाशत्सूत्राणि गतानि।

सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे स्वाती संस्थान का अनुभाग अनंतगुणा है। उससे कुब्जक संस्थान का अनुभाग अनंतगुणा है। उससे वामन संस्थान का अनुभाग अनंतगुणा है। उससे हुंडक संस्थान का अनुभाग अनंतगुणा है। उससे समचतुस्र संस्थान का अनुभाग अनंतगुणा है।

औदारिक शरीर अंगोपांग सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे वैक्रियिक शरीरांगोपांग का अनुभाग अनंतगुणा है। उससे आहारकशरीरांगोपांग का अनुभाग अनंतगुणा है।

संहननों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा संस्थानों के समान जानना चाहिये। अप्रशस्त वर्गचतुष्क सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे प्रशस्त वर्णआदि चतुष्क का अनुभाग अनंतगुणा है। जिस प्रकार गति के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार आनुपूर्वी के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करनी चाहिए।

उपघात सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे परघात का अनुभाग अनंतगुणा है। उससे उच्छ्वास का अनुभाग अनंतगुणा है। उससे अगुरुलघु का अनुभाग अनंतगुणा है।

अप्रशस्त विहायोगति सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे प्रशस्त विहायोगति अनंतगुणी अनुभाग वाली है। त्रसादिक दस युगलों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा साता व असाता वेदनीय के समान जानना चाहिए।

नीचगोत्र सर्वमंद अनुभाग से सहित है। उससे उच्चगोत्र का अनुभाग अनंतगुणा है।

दानान्तराय सर्वमंद अनुभाग से सहित है, इस प्रकार परिपाटी क्रम से आगे की चारों ही अंतराय प्रकृतियाँ उत्तरोत्तर अनंतगुणी हैं ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—इन सभी अल्पबहुत्व आदि को जानकर अपनी आत्मा समस्त कर्मों से निश्चयनय की अपेक्षा भिन्न है ऐसा निश्चय करके ''भेदविज्ञान की अपेक्षा सभी आत्मा सिद्ध हैं'' इत्यादि समयसार के कलश काव्य को बारम्बार स्मरण करते हुए ''मैं शुद्ध हूँ, मैं बुद्ध हूँ'' ऐसा भावना भानी चाहिए।

इस प्रकार स्वस्थान जघन्य अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार ग्यारहवें स्थल में चौंसठ पद वाले अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले सत्तावन सूत्र पूर्ण हुए।

इति श्रीमत्पुष्पदन्तभूतबलिसूरिवर्यप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीभूतबलिआचार्यविरचितवेदना-नाम्निचतुर्थखण्डे द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-सप्तमवेदनाभावविधानानुयोगद्वारे श्रीवीरसेनाचार्यविरचित-धवलाटीकाप्रमुखनानाग्रंथाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यश्चारित्रचक्रवर्ती-श्रीशांतिसागरगुरुवर्यस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागरा-चार्यस्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीपरचनातीर्थंकरजन्मभूमिविकासादिप्रेरिका-गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां वेदनाभावविधाने तृतीयोऽयं महाधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम के अंदर श्री भूतबली आचार्य रचित वेदना नाम के चतुर्थखंड में द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अंतर्गत सप्तम वेदनाभाव विधान नामके अनुयोगद्वार में श्रीवीरसेनाचार्य विरचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रची गई टीका में बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज उनके प्रथम पट्टाधीश श्रीवीरसागर आचार्य, उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना, तीर्थंकर जन्मभूमि तीर्थों के विकास आदि की संप्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी कृत सिद्धांतचिन्तामणि टीका में वेदनाभाव विधान में यह तृतीय महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ प्रथमाचूलिका

(वेदनाभावविधानस्य)

चतुर्थो महाधिकारः

अन्तर्गत-प्रथमोऽधिकारः

सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रवन्दना

अनुष्टुप्छंदः — सिद्धान् सर्वान् नमस्कृत्य, सिद्धस्थानं जिनेशिनाम्।
पूज्यं सम्मेदशैलेन्द्रं, भक्त्या संस्तौमि सिद्धये।।१।।

विंशतितीर्थकर्तारः, कूटेषु विंशतौ शिवम्।
असंख्ययोगिनश्चापि, जग्मुः सर्वान्नमाम्यहम्।।२।।

कूटे सिद्धवराभिख्येऽजितनाथः शिवं ययौ।
सहस्रमुनिभिः सार्धं, वन्दे भक्त्या शिवाप्तये।।३।।

आर्यास्कन्धछंदः — तत्कूटे चैकार्बुद-चतुरशीतिकोटिपंचचत्वारिंशत्।
लक्षप्रमिता मुनयो, दग्ध्वा कर्माणि मुक्तिमापुर्योगात्।।४।।

अनुष्टुप्छंदः — मनसा वपुसा वाचा, संततं भक्तिभावतः।
तान् सुसिद्धान् नमस्यामि, स्वकर्ममलहानये।।५।।

अथ प्रथम चूलिका

(वेदनाभाव विधान की प्रथम चूलिका)

चतुर्थ महाधिकार

अन्तर्गत-प्रथम अधिकार

सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र वंदना

श्लोकार्थ — समस्त सिद्धों को नमन करके, जिनेन्द्र भगवन्तों के सिद्धस्थानस्वरूप सम्मेदशैलेन्द्र-पर्वतराज सम्मेदशिखर नामक परमपूज्य शाश्वत तीर्थ की मैं सिद्धपद की प्राप्ति हेतु स्तुति करता हूँ।।१।।

उस पर्वत की बीस टोंकों-कूटों पर बीस तीर्थंकर भगवन्तों ने एवं असंख्यात मुनियों ने मोक्षधाम को प्राप्त किया है उन सभी को मेरा नमस्कार है।।२।।

सिद्धवरकूट नाम के टोंक से श्री अजितनाथ भगवान ने एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया, उनकी मैं शिवपद की प्राप्ति हेतु वन्दना करता हूँ।।३।।

उस कूट पर एक अरब चौरासी करोड़ पैंतालिस लाख प्रमाण मुनियों ने कर्मों को जलाकर मुक्ति पद प्राप्त किया है।।४।।

मन-वचन-काय से भक्तिभावपूर्वक उन सभी सिद्धों को अपने कर्ममल को नष्ट करने हेतु मैं नमस्कार करता हूँ।।५।।

आर्यास्कंधछंदः— ***कूटे ज्ञानधरे पूज्यो, कुंथुदेवो सुरैर्नुतः।**
सहस्त्रमुनियुक् प्रापत, सिद्धिं सर्वान् नमामि तान्।।६।।
षण्णवतिकोटिकोट्यः, सुषण्णवतिकोटिलक्षकद्वात्रिंशत्।
तत्र सिद्धाः षण्णवति-सहस्त्रसप्तशतद्विचत्वारिंशत्।।७।।

अनुष्टुप्छंदः— **अक्षयानंदबोधस्य, स्वामिनः स्युः स्तवीमि तान्।**
तत्कूटं च सदा मोदात्, यतो लप्स्येऽक्षयं सुखम्।।८।।

ततश्च— **स्वर्ण भद्राभिधे कूटे, पार्श्वनाथो बुधैर्नुतः।**
त्रिशतमुनियुङ्मुक्ति-श्रियं प्राप्नोत् प्रणौमि तम्।।९।।

आर्यास्कंधछंदः— **तदनुद्वयशीतिकोट्यश्चतुरधिकाशीतिलक्षसंकलिताः स्युः।**
पंचचत्वारिंशत्सहस्त्राणि सप्तशतद्विचत्वारिंशत्।।१०।।

अनुष्टुप्छंदः— **नृदेवमुनिभिर्वंद्या, एते सर्वे शिवं ययुः।**
भवपाशच्छिदेऽहं तान्, तत्कूटं च स्तुवे मुदा।।११।।
भरतेऽस्मिन्नयं मुक्त्यै-तीर्थेशां शाश्वतो गिरिः।
कालदोषाच्चतुस्तीर्थं-कराः सिद्धाः पृथक् पृथक्।।१२।।

ज्ञानधर नाम के कूट पर देवों द्वारा पूज्य कुंथुनाथ भगवान् ने एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया, उन सभी सिद्धों को मेरा नमस्कार है।।६।।

उसी कूट पर पुनः छ्यानवे कोड़ाकोड़ी, छ्यानवे करोड़, बत्तीस लाख, छ्यानवे हजार, सात सौ बयालिस मुनियों ने अक्षय-अनन्त ज्ञान के स्वामी बनकर मोक्ष को प्राप्त किया, उन सभी को तथा उस कूट को मैं हर्षभावपूर्वक नमन करता हूँ, इससे मुझे अक्षय सुख की प्राप्ति होगी।।७-८।।

स्वर्णभद्र नाम के कूट पर ज्ञानियों के द्वारा स्तुत भगवान पार्श्वनाथ ने तीन सौ मुनियों के साथ मुक्तिलक्ष्मी को प्राप्त किया, उनको मेरा नमन है।।९।।

पुनः उस कूट पर बयासी करोड़, चौरासी लाख, पैंतालिस हजार, सात सौ बयालिस मुनियों के समूह को भी शिवपद की प्राप्ति हुई, उन सभी नर-सुर एवं मुनियों से वंद्य सिद्ध भगवन्तों की एवं कूट की संसार पाश के छेदन हेतु मैं स्तुति करता हूँ।।१०-११।।

इस भरतक्षेत्र में तीर्थंकरों के निर्वाण से पवित्र यह सम्मेदशिखर पर्वत शाश्वत सिद्धक्षेत्र है, किन्तु कालदोष—हुण्डावसर्पिणी काल के दोष के कारण चार तीर्थंकरों ने अलग-अलग स्थानों से सिद्धपद प्राप्त कर लिया अर्थात् इस युग के चौबीस तीर्थंकरों में से बीस तीर्थंकर (भगवान ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ और महावीर स्वामी को छोड़कर) सम्मेदशिखर से निर्वाण को प्राप्त हुए हैं।।१२।।

---

* अत्राक्रमेण तथा च प्रथमतः कुंथुनाथस्य कूटं दृश्यते अतः केवलं कुंथुनाथं पुनश्चान्तिमकूटं पार्श्वनाथस्य वन्दित्वा संक्षेपेण वंदनाफलं दर्शितं। मया रचितेयं बृहत्स्तुतिः जिनस्तोत्रसंगृहे पठनीयः।

विशेष—वीराब्दे एकोनत्रिंशदधिक-पंचविंशतिशततमे चैत्रकृष्णापंचम्यां एषोऽधिकारः सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रे पर्वतस्योपरि चोपड़ाकुंडस्थले मया लिखितः।

एतस्यामवसर्पिण्या-मस्मिन् शैले शिवं ययुः।
यावन्तोऽपि जनास्तेषां, जिनैः संख्या उदीरिताः।।१३।।
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योऽनंतातीतासु येऽत्र वै।
तीर्थंकरा मुनींद्राश्चा-नंता मुक्ता नमामि तान्।।१४।।
भाविकाले तथानन्तास्तीर्थंकराश्च योगिनः।
अस्मात्सिद्धिं प्रयास्यंति, तान् सर्वान्नौम्यहं मुदा।।१५।।
अनाद्यनिधनस्यास्य, माहात्म्यं केन वर्ण्यते।
भव्या एव प्रवंदंते, नाभव्यैर्वंद्यते कदा।।१६।।
कुरुते वन्दनां भक्त्या, बारमेकं जनोऽस्य यः।
तिर्यङ्नरकगत्योश्च, गमनं तस्य नो भवेत्।।१७।।
तथा चैकोनपंचाशत्, भवस्याभ्यंतरे स हि।
नियमाल्लप्स्यते मुक्ति-मेतदुक्तं जिनेश्वरैः।।१८।।
अस्य वन्दनयासंख्यो-पवासानां फलं भवेत्।
किमन्यैर्जल्पनैर्यद्धि, निर्वाणसौख्यमश्नुते।।१९।।
क्षेत्रस्य वन्दनास्तोत्रैर्दग्ध्वा पापानि शुद्धधीः।
सम्यग् 'ज्ञानमति' ध्यान-संपत्त्या सिद्धिमाप्नुयाम्।।२०।।

इस अवसर्पिणी काल में जितने भी मुनियों ने इस पर्वत पर मोक्ष प्राप्त किया है, उन सबकी संख्या जिनेन्द्र भगवान ने ग्रंथों में बताई है।।१३।।

अनन्त उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी काल के भूतकालों में जो अनन्त तीर्थंकर और मुनिगण मुक्त हुए हैं, उन सबको मेरा नमस्कार है।।१४।।

तथा भविष्यत्काल में जो अनन्त तीर्थंकर एवं योगीजन इस गिरिराज से सिद्धि को प्राप्त करेंगे, उन सभी को परम हर्ष भाव से मैं नमस्कार करता हूँ।।१५।।

इस अनादि-अनिधन सिद्धक्षेत्र का माहात्म्य भला कौन वर्णन कर सकता है ? अर्थात् भौतिक रसना से इस अतुलनीय तीर्थ की महिमा नहीं गाई जा सकती है। इस पर्वत की वंदना भव्य प्राणी ही करते हैं, अभव्य इसकी वंदना कभी नहीं कर सकते हैं।।१६।।

जो मनुष्य एक बार भी भक्तिपूर्वक इस पर्वत की वंदना कर लेते हैं, वे नरक एवं तिर्यञ्चगति में गमन नहीं करते हैं।।१७।।

तथा इस पर्वत की वंदना करने वाले भव्यजन उनंचास भव के अंदर नियम से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, ऐसा जिनेन्द्र भगवन्तों ने कहा है।।१८।।

इस पर्वत की वंदना से असंख्य उपवासों का फल प्राप्त होता है। इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ है ? अर्थात् इसके बारे में जितना भी गुणगान किया जावे कम है, क्योंकि इसकी वंदना से एक दिन निर्वाणपद की भी प्राप्ति होती है।।१९।।

इस सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की वंदना करने से तथा इसका स्तोत्र पढ़ने से सम्यक्बुद्धि वाले भव्यजीव पापों को जलाकर सम्यक्ज्ञानमतीरूपी ध्यान की संपत्ति से सिद्धिप्रिया को भी प्राप्त कर लेते हैं।।२०।।

अद्याहं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रे वन्दनार्थमागत्य परमपवित्रपर्वतराजस्योपरि चोपड़ाकुण्डस्थाने दिगम्बर-जैनमंदिरे स्थित्वा विश्रम्य सर्वकूटानां वन्दनां संघेन सहिता विघाय संप्रति षट्खण्डागमस्य सिद्धान्त-चिन्तामणिटीकां लिखामि। अद्यतना इयं चैत्रकृष्णापंचमी पावनी तिथिर्मम जन्मनि अतिशायिनी एव। वीराब्दे एकोनत्रिंशदधिक-पंचविंशतिशततमे ख्रिष्टाब्दे त्र्युत्तरद्विसहस्रतमेऽस्माकं सम्मेदशिखर-शाश्वतसिद्धक्षेत्रवन्दनायाः यो लाभोऽभूत्, सः केवलं भगवन्महावीरजन्मभूमिकुण्डलपुरविकासयात्राया एव फलमतएव भगवन्महावीरस्वामिनः चरणकमलयोरनन्तशो वंदनां कुर्वेऽहम्[१]।

आज मैंने सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर वंदना के निमित्त आकर परम पवित्र पर्वतराज के ऊपर चोपड़ाकुण्ड नामक स्थान पर निर्मित दिगम्बर जैन मंदिर परिसर में ठहर कर संघ सहित पर्वत के समस्त कूटों की वंदना करके मंदिर में बैठकर इस समय षट्खण्डागम ग्रंथ के इस प्रकरण की सिद्धान्तचिंतामणि टीका का लेखन किया है। आज की यह चैत्र कृष्णा पंचमी की पावन तिथि मेरे जीवन के लिए अतिशयकारी ही है। वीर निर्वाण संवत् २५१९, ईसवी सन् २००३ में हमने सम्मेदशिखर शाश्वत सिद्धक्षेत्र की वंदना का जो लाभ प्राप्त किया है, वह केवल भगवान् महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर विकास हेतु की गई यात्रा का ही फल है, इसलिए भगवान महावीर स्वामी के चरण कमल में मैं अनन्तबार वंदना करती हूँ।

भावार्थ— पाठकगण इस प्रकरण से स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि शाश्वत तीर्थ सम्मेदशिखर की यात्रा का सातिशय पुण्य जो भव्य जीव प्राप्त कर लेते हैं, उनका मनुष्य जन्म सफल हो जाता है। दिनाँक २२ मार्च २००३ को पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने षट्खण्डागम के चतुर्थ खण्ड की इस टीका में वेदनाभाव विधान की चूलिका के प्रारंभ में सम्मेदशिखर की महिमा वर्णन करते हुए अपने हार्दिक उद्गार इसलिए व्यक्त किये हैं कि ४० वर्ष के पश्चात् उन्होंने पर्वतराज की वंदना करने का सौभाग्य प्राप्त करने के साथ-साथ उस पवित्र पर्वत पर बैठकर महान ग्रंथराज की टीका लिखी, जिससे उन्हें अति आल्हाद का अनुभव हुआ।

हमारी आँखों के सामने ये दोनों दृश्य हैं, जब हमने स्वयं पूज्य माताजी के साथ प्रथम बार सम्मेदशिखर पर्वत की वंदना करके अपने जन्म को धन्य किया। उस समय चोपड़ा कुण्ड की दिगम्बर जैन धर्मशाला में सात दिन रहकर हम लोगों ने लगातार पर्वत की सात वंदना करके असीम आनंद का अनुभव किया। यह वंदना करने के पश्चात् मैंने भी सम्मेदशिखर के प्रत्येक टोंक को हृदय में बसाकर एक "सम्मेदशिखर टोंक वंदना" नामक काव्य २१ छंदों में रचा, जो कि जैन समाज में अतिशय प्रसिद्धि को प्राप्त हुई है।

यहाँ पूज्य माताजी ने सम्मेदशिखर वन्दना में केवल दो टोंक (प्रथम कुंथुनाथ की और अंतिम पार्श्वनाथ की) के ही श्लोक दिये हैं। यह पूरी वन्दना (संस्कृत और हिन्दी में) "जिनस्तोत्र संग्रह" नामक पुस्तक में छपी है। वहाँ से आप पढ़ें।

यहाँ प्रसंगोपांत मेरे द्वारा रचित "सम्मेदशिखर वंदना" प्रस्तुत है, जिसे पढ़कर आप सभी प्रतिदिन सम्मेदशिखर की परोक्ष वंदना कर सकते हैं।

---

१. चोपड़ाकुंड सम्मेदशिखर पर्वत पर चैत्र कृ. ५, वी. नि. सं. २५२९ (दिनाँक २२-३-२००३) में यह प्रकरण लिखा है।

सम्मेदशिखर टोंक वन्दना

तीर्थराज सम्मेदशिखर है, शाश्वत सिद्धक्षेत्र जग में।
एक बार जो करे वन्दना, वह भी पुण्यवान सच में।।
ऊँचा पर्वत पार्श्वनाथ हिल, नाम से जाना जाता है।
जिनशासन का सबसे पावन, तीरथ माना जाता है।।१।।

जब प्रत्यक्ष करें यात्रा, उस पुण्य का वर्णन क्या करना।
लेकिन प्रतिदिन भी परोक्ष में, गिरि का ध्यान किया करना।।
आँख बन्दकर करो कल्पना, मेरी यात्रा शुरू हुई।
प्रातःकाल चले सब यात्री, जय जयकारा शुरू हुई।।२।।

एक हाथ में छड़ी दूसरे, में चावल की झोली है।
ज्यादातर सब पैदल हैं, पर किसी-किसी की डोली है।।
कभी न चलने वाले भी, हिम्मत कर पर्वत चढ़ते हैं।
पारस प्रभु के पास पहुँचने, हेतु कदम बढ़ चलते हैं।।३।।

चढ़ते-चढ़ते आठ किलोमीटर, का पथ जब तय होता।
दायें हाथ तरफ तब इक, चौपड़ा कुंड दर्शन होता।।
वहाँ दिगम्बर जिनमंदिर, संस्कृति की अमिट धरोहर है।
पार्श्वनाथ चन्द्रप्रभु बाहुबलि की मूर्ति मनोहर हैं।।४।।

उस मन्दिर में रुककर अपने, प्रभु का दर्शन कर लेना।
सुन्दर बनी धर्मशाला में, इच्छा हो तो ठहर लेना।।
मंदिर दर्शन करके फिर, यात्रा प्रारंभ करो अपनी।
बायें हाथ चलो चढ़ कर जहाँ, गौतम स्वामी टोंक बनी।।५।।

यहाँ पहुँचकर ठंडी-ठंडी, हवा थकान मिटाती है।
गणधर चरण वन्दना से, यात्रा की शक्ती आती है।।
प्रथम टोंक यह हुई पास में, दुतिय टोंक कुंथु जिन की।
तीर्थंकर क्रम में यह पहली, टोंक नमूँ कुंथु प्रभु की।।६।।

इन टोंकों के दर्शन से, उपवास का फल प्रारंभ हुआ।
त्रय प्रदक्षिणा देने से, आगे शुभ गति का बंध हुआ।।
शुभ भावों से आगे बढ़कर, टोंक तीसरी आती है।
श्रीनमिनाथ जिनेश्वर की, वन्दना सहज हो जाती है।।७।।

चौथा नाटक कूट तीर्थंकर, अरहनाथ का आया है।
जहाँ करोड़ों मुनियों ने भी, तपकर शिवपद पाया है।।
वन्दन कर आगे बढ़ने से, मल्लिनाथ के चरण मिले।
आगे छठे टोंक पर श्री, श्रेयाँसनाथ पदकमल मिले।।८।।

इन सबका वन्दन कर मैंने, सिद्धशिला को नमन किया।
वहाँ विराजे सिद्धों को, अपने मन में स्मरण किया।।
थकना नहिं अब पुष्पदंत की, सप्तम टोंक पे चलना है।
आगे चढ़ने हेतु वहीं से, आतमशक्ती भरना है।।९।।

पुष्पदंत प्रभु के चरणों में, अर्घ्य चढ़ाकर नमन किया।
और चले आठवीं टोंक पर, पदमप्रभू का शरण लिया।।
नवमीं टोंक विराजे श्री, मुनिसुव्रत जिन के चरणकमल।
इन सबके पावन पद में, श्रद्धा से मैंने किया नमन।।१०।।

हे भव्यात्मन् ! अब दसवीं चन्द्रप्रभ टोंक पे चलना है।
पहले दौड़-दौड़ कर उतरो, फिर ऊँचाई चढ़ना है।।
चन्द्रप्रभ मंदिर में जाकर, चरणवन्दना करना है।
अपने सारे सुख-दुख को, प्रभु चरण बैठकर कहना है।।११।।

अब ग्यारहवीं टोंक पे चलकर, ऋषभदेव को नमन करो।
गिरि कैलाश से मुक्त हुए, यहाँ उनके चरण चिन्ह प्रणमो।।
श्री शीतल जिनवर की है, बारहवीं टोंक प्रसिद्ध कही।
मन-वच-तन से वन्दन कर, पाओ यात्रा का पुण्य सही।।१२।।

श्री अनंत तीर्थंकर का, तेरहवाँ कूट स्वयंभू है।
उनके चरणों में श्रद्धायुत, शीश झुकाकर वन्दूँ मैं।।
संभव जिनवर का चौदहवाँ, धवलकूट माना जाता।
वासुपूज्य जिनका पन्द्रहवां, टोंक सभी को सुखदाता।।१३।।

इनको वन्दन कर आगे, अभिनन्दन प्रभु के पास चलो।
बन्दर चिन्ह सहित उन प्रभु की, टोंक पे बन्दर से न डरो।।
अभिनन्दन के चरणों में, कर नमन चलो जलमंदिर तक।
चढ़ो वहाँ से जहाँ है गौतम, गणधर प्रभु की टोंक प्रथम।।१४।।

फिर सत्रहवीं टोंक से अपनी, अगली यात्रा करना है।
धर्मनाथ प्रभु के चरणों में, नमन सभी को करना है।।
सुमतिनाथ का अट्ठारहवाँ, टोंक है अविचल कूट कहा।
नौ करोड़ बत्तीसलाख, उपवास का फल मिलता है यहाँ।।१५।।

उन्निसवाँ है टोंक शांतिजिन, का जो यहाँ से मोक्ष गये।
नौ करोड़ से अधिक मुनी, इस कुंदकूट से मोक्ष गये।।
शांतिनाथ के संग सब मुनियों, को श्रद्धा से नमन किया।
पुनः बीसवीं टोंक पे जाकर, वीरप्रभू की शरण लिया।।१६।।

अथ द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गतसप्तमवेदनाभावविधानानुयोगद्वारस्य तिसृः चूलिकाः सन्ति। तत्र तावत् चतुर्थे महाधिकारे त्रिचूलिकाभिः इमे त्रयोऽधिकाराः ज्ञातव्याः।

प्रथमचूलिकायां द्वाविंशतिसूत्राणि, द्वितीयचूलिकायां एकसप्ततिसूत्राणि, तृतीयचूलिकायां सप्तचत्वारिंशत्सूत्राणि सन्ति।

अधुना प्रथमाचूलिकानाम्ना प्रथमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमतः गाथाद्वयमधिकं गृहीत्वा द्वाविंशतिसूत्रेषु त्रीणिस्थलानि ज्ञातव्यानि भवन्ति। प्रथमस्थले 'सम्मत्तुप्पत्ती' इत्यादि रूपेण एकादशगुण-

---

श्री सुपार्श्व तीर्थंकर इक्कीसवीं टोंक पर राजे हैं।
कहते हैं यहाँ की मिट्टी से, रोग सभी नश जाते हैं।।
इनका वंदन करके पास में, विमल नाथ की टोंक चलो।
बाइसवीं इस टोंक को नमकर, अजितनाथ के निकट चलो।।१७।।

थके कदम से तेइसवीं इस, टोंक का वंदन कठिन तो है।
लेकिन यात्रा पूरी करने, का शुभ भाव हृदय में है।।
धीरे-धीरे चढ़कर आखिर, अजितनाथ तक पहुँच गये।
उन चरणों में नमन किया फिर, नेमिनाथ जी प्राप्त हुए।।१८।।

इस चौबिसवीं टोंक पे नेमीनाथ चरण को नमन किया।
पारसनाथ प्रभू पाने हेतू फिर मैंने गमन किया।।
स्वर्णभद्र यह टोंक है अंतिम, यात्रा पूर्ण यहाँ होती।
पार्श्वनाथ की पूजन करके, मन सन्तुष्टि यहाँ होती।।१९।।

कुछ क्षण ध्यान करो फिर नीचे, गुफा में स्थित चरण नमो।
खुशी-खुशी वन्दना पूर्ण कर, पर्वत से नीचे उतरो।।
यही वन्दना आत्मा की, भव्यत्व शक्ति बतलाती है।
तभी ''चन्दनामती'' सभी में, भक्ति स्वयं आ जाती है।।२०।।

भगवन् ! इस सम्मेदशिखर का, पुनः पुनः दर्शन पाऊँ।
यही भावना है मन में, सिद्धों के गुण में रम जाऊँ।।
इसी क्षेत्र से कभी मुझे, निर्वाण धाम भी मिल जावे।
सिद्ध भक्ति मेरे जीवन में, सिद्ध अवस्था दिलवाये।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अब द्वितीयवेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत सातवें वेदनाभावविधान अनुयोगद्वार में तीन चूलिकाएं हैं, उसमें इस चतुर्थ महाधिकार में इन तीन चूलिका नामसे ये तीन अधिकार जानना चाहिए।

इसकी प्रथम चूलिका में बाईस सूत्र हैं, द्वितीय चूलिका में इकहत्तर सूत्र हैं तथा तृतीय चूलिका में सैंतालिस सूत्र हैं।

अब प्रथम चूलिका नाम से प्रथम अधिकार प्रारंभ होता है। उसमें प्राथमिकरूप से दो गाथाओं को अधिक ग्रहण करके २२ सूत्रों में विभाजित किये गये तीन स्थल हैं। जिसमें प्रथम स्थल में ''सम्मत्तुप्पत्तीए''

श्रेणिनिर्जरानिरूपणार्थं गाथाद्वयं कथयिष्यंति। तदनु द्वितीयस्थले दर्शनमोहोपशामकादीनां गुणश्रेणिगुण-कारनिरूपणार्थं 'सव्वत्थोवो दंसणमोहउवसामयस्स'' इत्यादिना त्रयोदश सूत्राणि सन्ति। तदनन्तरं तृतीयस्थले क्षीणकषायमहामुनीनामादिं कृत्वा दर्शनमोहोपशामकपर्यंत जीवानां गुणश्रेणिकालप्रतिपादनार्थं ''खीणकसाय'' इत्यादिरूपेण नवसूत्राणि ब्रुवन्तीति आचार्यदेवाः, एषा समुदायपातनिका भवति।

अधुना एतस्मादुपरि चूलिकाप्रतिपादनार्थं गाथासूत्रद्वयमवतार्यते —

सम्मत्तुप्पत्ती वि य सावयविरदे अणंतकम्मंसे।
दंसणमोहक्खवए कसाय उवसामए य उवसंते।।७।।
खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा।
तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणाए सेडीए।।८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**इमे द्वे अपि गाथे निर्जीर्यमाणप्रदेशकालाभ्यां विशेषं कृत्वा एकादशश्रेणीः प्ररूपयतः।**

अत्र कश्चिदाशङ्कते—

भावविधाने प्ररूपयिष्यमाणे एकादशगुणश्रेणिप्रदेशनिर्जराप्ररूपणा तत्कालप्ररूपणा च किमर्थं क्रियते?

इत्यादिरूप से ग्यारह गुणश्रेणिनिर्जरा का निरूपण करने वाली दो गाथाएँ कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में दर्शनमोह का उपशमन करने वालों के गुणश्रेणिगुणकार का निरूपण करने हेतु ''सव्वत्थोवो दंसणमोहउवसामयस्स'' इत्यादि तेरह सूत्र हैं। तदनन्तर तृतीय स्थल में क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती महामुनियों को आदि में करके दर्शन मोह के उपशामक पर्यन्त जीवों के गुणश्रेणिकाल का प्रतिपादन करने वाले ''खीणकसाय'' इत्यादिरूप से नौ सूत्र आचार्यदेव कहेंगे, यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब इसके आगे चूलिका का प्रतिपादन करने हेतु दो गाथासूत्र अवतरित होते हैं —

गाथा सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वोत्पत्ति अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि, श्रावक अर्थात् देशव्रती, विरत अर्थात् महाव्रती, अनन्तानुबंधी कषाय का विसंयोजन करने वाला, दर्शनमोह का क्षपक, चारित्रमोह का उपशामक, उपशान्तकषाय, क्षपक, क्षीणमोह और स्वस्थान जिन व योगनिरोध में प्रवृत्त जिन, इन स्थानों में उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। परन्तु निर्जरा का काल उससे विपरीत अर्थात् आगे से पीछे की ओर बढ़ता हुआ है, जो संख्यातगुणित श्रेणिरूप है।।७-८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये दोनों ही गाथाएँ निर्जीर्ण होने वाले कर्मप्रदेश और उनके काल से विशेषित ग्यारह गुणश्रेणी—ग्यारह स्थान का कथन करती हैं।

यहाँ कोई शंका करता है—

भावविधान का कथन करते समय ग्यारह गुणश्रेणियों में होने वाली कर्मप्रदेश निर्जरा का कथन और उसके काल का कथन किसलिए करते हैं ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

विशुद्धिभिरनुभागक्षयेण प्रदेशनिर्जराज्ञापनद्वारेण जीवकर्मणोः संबंधस्यानुभागश्चैव कारणमिति ज्ञापनार्थं उच्यते।

अथवा वेदनाद्रव्यविधाने जघन्यस्वामित्वे भण्यमाने गुणश्रेणिनिर्जरा सूचिता। तस्या गुणश्रेणिनिर्जराया भावः कारणमिति भावविधाने तद्विकल्पप्ररूपणार्थमुच्यते।

'सम्मत्तुप्पत्ती' इति भणिते दर्शनमोहोपशामनं कृत्वा प्रथमसम्यक्त्वोत्पादनं गृहीतव्यम्। 'सावए' इति भणिते देशविरतेर्ग्रहणं भवति। 'विरदे' इति कथिते संयतस्य ग्रहणं। 'अणंतकम्मंसे' इत्युक्तेऽनन्तानुबंधीनां विसंयोजना गृहीतव्या। 'दंसणमोहखवगे' इत्युक्ते दर्शनमोहनीयक्षपको गृहीतव्यः। 'कसायउवसामगे' इत्युक्ते चारित्रमोहनीयोपशामको गृहीतव्यः। 'उवसंते' इति भणिते उपशान्तकषायो गृहीतव्यः। 'खवगे' इति भण्यमाने चारित्रमोहनीयक्षपको गृहीतव्यः। 'खीणमोहे' इति कथिते क्षीणकषायस्य द्वादशमगुणस्थानिवर्तिनो महामुनेर्ग्रहणं भवति। 'जिणे' इति भणिते स्वस्थानजिनानां योगनिरोधे व्यापृतजिनानां च ग्रहणं कर्तव्यम्।

एतेन गाथासूत्रकलापेन एकादशप्रदेशगुणश्रेणिनिर्जरा प्ररूपिता। 'तव्विवरीदो कालो' एतेषां गुणश्रेणि-निक्षेपाध्वानं पुनो विपरीतं भवति। उपरितोऽधो वर्द्धमानं गच्छतीति भणितं भवति। पूर्वमिव असंख्यातगुणश्रेण्याः

आचार्यदेव समाधान देते हैं—

विशुद्धियों के द्वारा अनुभागक्षय होता है और उससे प्रदेश निर्जरा होती है, इस बात का ज्ञान कराने से जीव और कर्म के संबंध का कारण अनुभाग ही है, इस बात को बतलाने के लिए उक्त कथन किया जा रहा है। अथवा वेदनाद्रव्यविधान में जघन्य स्वामित्व की प्ररूपणा करते हुए गुणश्रेणिनिर्जरा की सूचना की गई थी। इस गुणश्रेणिनिर्जरा का कारण भाव है, अतएव यहाँ भावविधान में उसके विकल्पों का कथन करने के लिए यह कथन किया जा रहा है।

पूर्वोक्त गाथा में ''सम्मत्तुप्पत्ती' ऐसा कहने पर दर्शनमोह का उपशम करके प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का ग्रहण करना चाहिए। 'सावए' कहने से देशविरति का ग्रहण किया गया है। 'विरदे' कहने पर संयत का ग्रहण करना चाहिए। 'अणंतकम्मंसे' ऐसा निर्देश करने पर अनन्तानुबंधीकषाय की विसंयोजना का ग्रहण करना चाहिए। 'दंसणमोहक्खवगे' ऐसा कहने पर दर्शनमोहनीय के क्षपक का ग्रहण करना चाहिए। 'कसायउवसामगे' कहने पर चारित्रमोहनीय का उपशम करने वाले जीव का ग्रहण करना चाहिए। 'उवसंते' कहने पर उपशान्तकषाय जीव का ग्रहण करना चाहिए। 'खवगे' कहने पर चारित्रमोहनीय की क्षपणा करने वाले जीव का ग्रहण करना चाहिए। 'खीणमोहे' ऐसा कहने पर क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थानवर्ती महामुनि का ग्रहण करना चाहिए। 'जिणे' कहने पर स्वस्थान जिनों का और योगनिरोध में प्रवर्तमान जिनों-सयोगकेवली-अयोगकेवली का ग्रहण करना चाहिए।

इस गाथासूत्रकलाप के द्वारा ग्यारह प्रकार की प्रदेश गुणश्रेणि निर्जराओं की प्ररूपणा की गई है। 'तव्विवरीदो कालो' परन्तु उनका गुणश्रेणिनिक्षेप अध्वान—काल उससे विपरीत है अर्थात् ऊपर से नीचे की ओर वृद्धिंगत होकर जाता है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है। पूर्व के समान असंख्यातगुणित श्रेणिरूप से प्राप्त वृद्धि का प्रतिषेध करने के लिए 'संखेज्जगुणाए सेडीए' यह कहा है।

इस प्रकार दो गाथाओं के द्वारा कही गई ग्यारह गुणश्रेणियों का मंदबुद्धि शिष्यों पर अनुग्रह करने के

प्राप्तवृद्ध्याः प्रतिषेधार्थं 'संखेज्जगुणाए सेडीए' इति भणितं। एवं द्वाभ्यां गाथाभ्यां प्ररूपितैकादशगुणश्रेणीनां बालजनानुग्रहार्थं पुनरपि प्ररूपणां करिष्यन्ति आचार्यदेवाः।

एवं प्रथमस्थले एकादशस्थानेषु गुणश्रेणीनिर्जराक्रमप्रतिपादनत्वेन गाथाद्वयं गतम्।

अधुना दर्शनमोहोपशामकस्य गुणश्रेणिनिर्जराप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सव्वत्थोवो दंसणमोहउवसामयस्स गुणसेडिगुणो।।१७५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**गुणो गुणकारः, तस्य श्रेणिः आवलिः पंक्तिर्गुणश्रेणिर्नाम। दर्शनमोहोपशामकस्य प्रथमसमये निर्जीर्यमाणद्रव्यं स्तोकं। द्वितीयसमये निर्जीर्यमाणद्रव्यमसंख्यातगुणं। तृतीयसमये निर्जीर्यमाणद्रव्यम-संख्यातगुणं। एवं नेतव्यं यावद् दर्शनमोहोपशामकचरमसमय इति। एषा गुणकारपंक्तिर्गुणश्रेणिरिति भणितं भवति। गुणश्रेण्या गुणो गुणश्रेणिगुणो, गुणश्रेणिगुणकार इति भणितं भवति। एतस्य भावार्थः—सम्यक्त्वोत्पत्तौ यो गुणश्रेणिगुणकारः सर्वमहान् सोऽपि उपरि भण्यमानजघन्यगुणकारादपि स्तोकः इति कथितं ज्ञातव्यं।**

संयतासंयतगुणश्रेणिनिर्जराप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

संजदासंजदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।।१७६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**संयतासंयतस्य गुणश्रेणिनिर्जराया यो जघन्यो गुणकारः सः पूर्वोक्तो-त्कृष्टगुणकारादसंख्यातगुणो ज्ञातव्यः।**

लिए पुनः दूसरी बार कथन करते हैं। इसके लिए आगे का सूत्र कहते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में ग्यारह स्थानों में गुणश्रेणी निर्जरा का क्रम प्रतिपादन करने वाले दो गाथा सूत्र पूर्ण हुए।

अब दर्शनमोह के उपशामक की गुणश्रेणी निर्जरा की प्ररूपणा हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

दर्शनमोह का उपशम करने वाले का गुणश्रेणिगुणकार सबसे स्तोक है।।१७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—गुण शब्द का अर्थ गुणकार है तथा उसकी श्रेणि, आवलि या पंक्ति का नाम गुणश्रेणि है। दर्शनमोह का उपशम करने वाले जीव का प्रथम समय में निर्जरा को प्राप्त होने वाला द्रव्य स्तोक है। उससे द्वितीय समय में निर्जरा को प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा है। उससे तीसरे समय में निर्जरा को प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा है। इस प्रकार दर्शनमोह उपशामक के अंतिम समय तक ले जाना चाहिए। यह गुणकार पंक्ति गुणश्रेणि कही गई है यह उक्त कथन का तात्पर्य है तथा गुणश्रेणिगुण अर्थात् गुणश्रेणिगुणकार कहलाता है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है। इसका भावार्थ यह है—

सम्यक्त्व की उत्पत्ति में जो गुणश्रेणिगुणकार सर्वोत्कृष्ट है, वह भी आगे कहे जाने वाले जघन्य गुणकार की अपेक्षा भी स्तोक—कम है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

अब संयतासंयत की गुणश्रेणी निर्जरा का प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे संयतासंयत का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।।१७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संयतासंयत की गुणश्रेणी निर्जरा का जो जघन्य गुणकार है, वह पूर्वोक्त उत्कृष्ट गुणकार से असंख्यातगुणा जानना चाहिए।

अधुना अधःप्रवृत्तसंयतस्य गुणश्रेणिनिर्जराकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

अधापवत्तसंजदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।।१७७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — संयतासंयतस्य उत्कृष्टगुणश्रेणिगुणकारात् स्वस्थानसंयतस्य जघन्यगुण-श्रेणिगुणकारोऽसंख्यातगुणः।

कश्चिदाशंकते — संयमासंयमपरिणामाद् येन संयमपरिणामोऽन्तगुणस्तेन प्रदेशनिर्जराया अपि अनंतगुणाया भवितव्यं, एतस्मादन्यत्र सर्वत्र कारणानुरूपकार्योपलंभात् इति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद् वक्तव्यं, योगगुणकारानुसारि-प्रदेशगुणकारस्यानन्तगुणत्वविरोधात्। न च प्रदेशनिर्जराया अनन्तगुण-त्वाभ्युपगमो युक्तः, गुणश्रेणिनिर्जराया द्वितीयसमये चैव निर्वृत्तिप्रसंगात्। न च कार्यं कारणानुसारि चैवेति नियमोऽस्ति, अंतरंगकारणापेक्षायाः प्रवृत्तस्य कार्यस्य बहिरंगकारणानुसारित्वनियमानुपपत्तेः।

पुनरपि कश्चिदाशंकते —

सम्यक्त्वसहितसंयम-संयमासंयमाभ्यां जायमाना गुणश्रेणिनिर्जरा सम्यक्त्वव्यतिरिक्तसंयम-संयमासंयमाभ्यां चैव भवतीति कथमुच्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

अब अधःप्रवृत्त संयत की गुणश्रेणी निर्जरा का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

उससे अधःप्रवृत्तसंयत का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।।१७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — संयतासंयत के उत्कृष्ट गुणश्रेणिगुणकार की अपेक्षा स्वस्थानसंयत का जघन्य गुणश्रेणि गुणकार असंख्यातगुणा है।

यहाँ कोई शंका करता है —

चूँकि संयमासंयमरूप परिणाम की अपेक्षा संयमरूप परिणाम अनन्तगुणा है। अतः संयमासंयम परिणाम की अपेक्षा संयम परिणाम के द्वारा होने वाली प्रदेश निर्जरा भी अनन्तगुणी होनी चाहिए, क्योंकि इससे दूसरी जगह सर्वत्र कारण के अनुरूप ही कार्य की उपलब्धि होती है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि प्रदेश निर्जरा का गुणकार योगगुणकार का अनुसरण करने वाला है, अतएव उसके अनन्तगुणे होने में विरोध आता है। दूसरी बात यह है कि प्रदेश निर्जरा में अनन्तगुणत्व स्वीकार करना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा स्वीकार करने पर गुणश्रेणिनिर्जरा के दूसरे समय में ही मुक्ति का प्रसंग आवेगा। तीसरी बात यह है कि कार्य कारण का अनुसरण करता ही हो, ऐसा भी कोई नियम नहीं है, क्योंकि अतरंग कारण की अपेक्षा प्रवृत्त होने वाले कार्य के बहिरंग कारण के अनुसरण करने का नियम नहीं बन सकता है।

पुनः कोई शंका करता है कि —

सम्यक्त्व सहित संयम और संयमासंयम से होने वाली गुणश्रेणि निर्जरा सम्यक्त्व के बिना संयम और संयमासंयम से ही होती है, यह कैसे कहा जा सकता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि —

नैतद् वक्तव्यं, अप्रधानीकृतसम्यक्त्वभावात्। अथवा सः संयमः यः सम्यक्त्वाविनाभावी नान्यः, तत्र गुणश्रेणिनिर्जराकार्यानुपलंभात्। ततः संयमग्रहणादेव सम्यक्त्वसहायसंयमसिद्धिर्जाता।

अधुना अनंतानुबंधिविसंयोजकगुणश्रेणिनिर्जराप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अणंतानुबंधी विसंजोएंतस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।।१७८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**स्वस्थानसंयतोत्कृष्टगुणश्रेणिगुणकाराद् असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-संयतेषु अनन्तानुबंधि-विसंयोजकस्य जघन्यगुणकारोऽसंख्यातगुणः अस्ति। अत्र सर्वत्र गुणसेडिगुणगारो। इति कथिते गलमानप्रदेशगुणश्रेणिगुणकारः निषिच्यमानप्रदेशगुणश्रेणिगुणकारश्च गृहीतव्यः।**

कथमेतज्ज्ञायते ?

'गुणसेडिगुणो'' इति सामान्यनिर्देशात्।

अत्र कश्चिदाशंकते—संयमपरिणामेभ्यः अनंतानुबंधिविसंयोजनकस्य असंयतसम्यग्दृष्टिजीवस्य परिणामोऽनन्तगुणहीनः, कथं तस्मात् असंख्यातगुणश्रेणिनिर्जरा जायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैष दोषः, संयमपरिणामेभ्योऽनन्तानुबंधिनां विसंयोजनायाः कारणभूतानां सम्यक्त्वपरिणामानामनन्तगुणत्वोपलंभात्।

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि यहाँ सम्यक्त्व परिणाम को प्रधानता नहीं दी गई है। अथवा संयम वही है, जो सम्यक्त्व का अविनाभावी है, अन्य नहीं है। क्योंकि अन्य में गुणश्रेणि निर्जरारूप कार्य नहीं उपलब्ध होता है। इसलिए संयम के ग्रहण करने से ही सम्यक्त्व सहित संयम की सिद्धि होती है।

अब अनंतानुबंधी विसंयोजक की गुणश्रेणीनिर्जरा का प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करने वाले का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।।१७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वस्थान संयत के उत्कृष्ट गुणश्रेणिगुणकार की अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि संयतासंयत और संयत जीवों में अनन्तानुबंधी का विसंयोजन करने वाले जीव का जघन्य गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।

यहाँ सब जगह ''गुणसेडिगुणगारो'' ऐसा सूत्र कहने पर गलमान प्रदेशों का गुणश्रेणिगुणकार और विसिंचमान प्रदेशों का गुणश्रेणिगुणकार ग्रहण करना चाहिए।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—यह 'गुणसेडिगुणो' ऐसा सामान्य निर्देश करने से जाना जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है—

संयमरूप परिणामों की अपेक्षा अनन्तानुबंधी का विसंयोजन करने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि का परिणाम अनन्तगुणा हीन होता है, ऐसी अवस्था में उससे असंख्यातगुणी प्रदेश निर्जरा कैसे हो सकती है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि संयमरूप परिणामों की अपेक्षा अनन्तानुबंधी कषायों की विसंयोजना में कारणभूत सम्यक्त्वरूप परिणाम अनंतगुणे उपलब्ध होते हैं।

पुनः कश्चिदाशंकते—

यदि सम्यक्त्वपरिणामैः अनन्तानुबंधिनां विसंयोजना क्रियते तर्हि सर्वसम्यग्दृष्टिषु तद्भावः प्रसज्यते इति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, सर्वसम्यग्दृष्टिषु अनंतानुबंधिकषायविसंयोजनायाः प्रसंगो नागच्छति, किंच—विशिष्टैश्चैव सम्यक्त्वपरिणामैः तद्विसंयोजनाभ्युपगमात्।

एतदपेक्षया दर्शनमोहक्षपकगुणश्रेणिनिर्जरानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते—

दंसणमोहखवगस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।।१७९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अनंतानुबंधिविसंयोजकस्य जीवस्य द्वयोर्गुणश्रेण्योरुत्कृष्टगुणकारात् दर्शनमोहनीयक्षयं कुर्वाणस्य द्विविधगुणश्रेण्योर्जघन्यगुणकारः असंख्यातगुणो भवति। अतीतानागत-वर्तमानप्रदेशगुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातभाग इति द्रष्टव्योऽस्ति।**

संप्रति कषायोपशामकगुणश्रेणिनिर्जराकथनार्थं सूत्रमवतार्यते—

कसायउवसामगस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।।१८०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**दर्शनमोहनीयक्षयं कुर्वतो द्विविधगुणश्रेण्योरुत्कृष्टगुणकारात् कषायानां**

पुनः कोई शंका करता है—

यदि सम्यक्त्वरूप परिणामों के द्वारा अनन्तानुबंधी कषायों की विसंयोजना की जाती है, तो सभी सम्यग्दृष्टि जीवों में उसकी विसंयोजना का प्रसंग आता है ?

ऐसा पूछने पर आचार्यदेव समाधान करते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सब सम्यग्दृष्टियों में अनंतानुबंधी कषाय की विसंयोजना का प्रसंग नहीं आ सकता, क्योंकि विशिष्ट सम्यक्त्वरूप परिणामों के द्वारा ही अनन्तानुबंधी कषायों की विसंयोजना स्वीकार की गई है।

इस अपेक्षा से दर्शनमोह के क्षपक की गुणश्रेणी निर्जरा का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उससे दर्शनमोह का क्षय करने वाले जीव का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।।१७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करने वाले जीव के दोनों गुणश्रेणी संबंधी उत्कृष्ट गुणकार की अपेक्षा दर्शनमोह का क्षय करने वाले जीव की दोनों प्रकार की गुणश्रेणियों का जघन्य गुणकार असंख्यातगुणा है। अतीत, अनागत और वर्तमान का प्रदेशगुणश्रेणिगुणकार पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण जानना चाहिए।

अब कषायोपशामक की गुणश्रेणी निर्जरा का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उससे कषायोपशामक जीवों का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।।१८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय करने वाले जीव की दोनों प्रकार की गुणश्रेणियों

उपशामकस्य जघन्योऽपि गुणकारोऽसंख्यातगुणः। दर्शनमोहनीयक्षपकगुणश्रेणिगुणकारात् अपूर्वोपशामकस्य गुणश्रेणिगुणकारः असंख्यातगुणः। तस्मात् अनिवृत्तिकरणोपशामकस्य गुणश्रेणिगुणकारः असंख्यातगुणः। तत्तः सूक्ष्मसांपरायिकस्य गुणश्रेणिगुणकारोऽसंख्यातगुणोऽस्ति।

अत्र कश्चिदाशङ्कते—

एवं चारित्रमोहक्षपकाणां अपि पृथक्-पृथक् गुणकारस्य अल्पबहुत्वे भण्यमाने गुणश्रेणिनिर्जरा एकादशविधा न भूत्वा पंचदशविधा भवतीति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, नैगमनयेऽवलम्ब्यमाने त्रयाणामुपशामकानां त्रयाणां क्षपकाणां च एकत्वार्पणायां एकादशगुणश्रेणिनिर्जरोपपत्तेः।

अधुना उपशान्तकषायस्य गुणश्रेणिनिर्जराप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

उवसंतकसायवीयरायछदुमत्थस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।।१८१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र पल्योपमस्य असंख्यातभागो गुणकारो ज्ञातव्यः। तथा चात्र मोहनीयं मुक्त्वा शेषकर्मणां द्विविधगुणश्रेणीनां गुणकारस्याल्पबहुत्वप्ररूपणा कर्तव्या, किंच उपशमभावप्राप्तमोहनीय-कर्मणो निर्जराया असंभवात्।**

संप्रति कषायक्षपकस्य गुणश्रेणिनिर्जराकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

के उत्कृष्ट गुणकार की अपेक्षा कषायों का उपशम करने वाले जीव का जघन्य गुणकार असंख्यातगुणा है। दर्शनमोहनीय के क्षपक के गुणश्रेणिगुणकार से अपूर्वकरण उपशामक का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है। उससे अनिवृत्तिकरण उपशामक का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है। उससे सूक्ष्मसाम्परायिक का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।

यहाँ कोई शंका करता है—

इसी प्रकार चारित्रमोह के क्षपकों के भी पृथक्-पृथक् गुणकार के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करने पर गुणश्रेणिनिर्जरा ग्यारह प्रकार की न रहकर पन्द्रह प्रकार की हो जाती है ?

इस शंका के समाधान में आचार्यदेव कहते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि नैगम नय का अवलम्बन करने पर तीन उपशामकों और तीन क्षपकों के एकत्व की विवक्षा होने पर ग्यारह प्रकार की गुणश्रेणिनिर्जरा बन जाती है।

अब उपशान्तकषाय की गुणश्रेणी निर्जरा का प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

उससे उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।।१८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए तथा यहाँ मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष कर्मों की दोनों गुणश्रेणियों के गुणकार संबंधी अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि यहाँ उपशम भाव को प्राप्त मोहनीय कर्म की निर्जरा संभव नहीं है।

अब कषायक्षपक की गुणश्रेणी निर्जरा का कथन करने हेतु सूत्र अवतीर्ण किया जा रहा है —

कसायखवगस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।।१८२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**उपशान्तकषायद्विविधगुणश्रेण्युत्कृष्टगुणकारेभ्यस्त्रयाणां क्षपकाणां द्रव्यार्थिकनयेन एकत्वमापन्नानां द्विविधगुणश्रेणिगुणकारो जघन्योऽपि असंख्यातगुणः।**

शेषं सुगमं वर्तते।

संप्रति क्षीणकषायगुणश्रेणिनिर्जराप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

खीणकसायवीयरायछदुमत्थस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।।१८३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**मोहनीयस्य बंधोदयसत्त्वाभावेन कर्मनिर्जरायाः शक्तिरनन्तगुणा वृद्धिंगता भवतीति ज्ञातव्यं।**

संप्रति सयोगिकेवलिगुणश्रेणिनिर्जरानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अधापवत्तकेवलिसंजदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।।१८४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र पल्योपमस्य असंख्यातभागो गुणकारो ज्ञातव्यः।**

कुतः ?

घातिकर्मक्षयेण वर्द्धितानन्तगुणकर्मनिर्जरणपरिणामात्।

अधुना अयोगिकेवलिगुणश्रेणिनिर्जराप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

जोगणिरोधकेवलिसंजदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।।१८५।।

सूत्रार्थ—

उससे कषायक्षपक का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।।१८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशान्तकषाय की दोनों गुणश्रेणियों संबंधी उत्कृष्ट गुणकार की अपेक्षा द्रव्यार्थिक नय से अभेद को प्राप्त हुए तीन क्षपकों का जघन्य भी गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है। शेष कथन सुगम है।

अब क्षीणकषाय की गुणश्रेणी निर्जरा का प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।।१८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण यह है कि मोहनीय के बंध, उदय व सत्व का अभाव हो जाने से कर्मनिर्जरा की शक्ति अनन्तगुणी वृद्धिंगत हो जाती है, ऐसा जानना चाहिए।

अब सयोगकेवली की गुणश्रेणी निर्जरा का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे अधःप्रवृत्त केवली संयत का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।।१८४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

कैसे ?

क्योंकि घातिया कर्मों के क्षीण हो जाने से कर्म निर्जरा का परिणाम अनन्तगुणी वृद्धि को प्राप्त हो जाता है।

अब अयोगकेवली की गुणश्रेणी निर्जरा का प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे योगनिरोध करने वाले केवली संयत का गुणश्रेणिगुणकार असंख्यातगुणा है।।१८५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**योगनिरोधक—अयोगकेवलिभगवतां महासंयतानां गुणश्रेणिनिर्जरा पूर्वकथित-सयोगकेवलिभगवदपेक्षया असंख्यातगुणा अधिका भवति।**

कुतः ?

स्वाभाविकत्वात्।

संप्रति ''तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणाए सेडीए'' एतस्य सूत्रस्यार्थप्ररूपणार्थं अग्रे सूत्राणि भणन्ति श्रीभूतबलिसूरिवर्याः।

अधुना सर्वस्तोककालः कस्येति प्रश्नस्य उत्तरदातुकामेन सूत्रमवतार्यते —

सव्वत्थोवो जोगणिरोधकेवलिसंजदस्स गुणसेडिकालो।।१८६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**योगनिरोधं कुर्वन् सयोगकेवली भगवान् आयुर्वज्यानां कर्मणां प्रदेशमपकर्ष्य उदये स्तोकं ददाति। द्वितीयसमयेऽसंख्यातगुणितमधिकं ददाति। तृतीयायां स्थितौ असंख्यातगुणं निक्षिपति। एवं तावन्निक्षिपति यावदन्तर्मुहूर्तं। तदुपरिमसमये असंख्यातगुणहीनं निक्षिपति। तत्तो विशेषहीनं यावदात्मात्मनोऽति-स्थापनावलिकमप्राप्त इति। अत्र यद् गुणश्रेणिकर्मप्रदेशनिक्षेपाध्वानं तत्स्तोकं, सर्वजघन्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात्।**

संप्रति सयोगकेवलिभगवद्गुणश्रेणिनिर्जराकालप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अधापवत्तकेवलिसंजदस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।।१८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—योग निरोध करने वाले-अयोगकेवली भगवन्तों-महासंयतों की गुणश्रेणी निर्जरा पूर्वकथित सयोगकेवली भगवान की अपेक्षा असंख्यातगुणी अधिक होती है।

ऐसा क्यों है ? क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

आगे 'तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणाए सेडीए' इस गाथासूत्र के अर्थ का कथन करने के लिए श्री भूतबली आचार्य आगे का सूत्र कहेंगे।

अब सर्वस्तोककाल किसके होता है? इस प्रश्न का उत्तर देने की इच्छा से सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ—

योगनिरोध केवली संयत का गुणश्रेणिकाल सबसे स्तोक है।।१८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—योगनिरोध करने वाले सयोगकेवली भगवान आयु को छोड़कर शेष कर्मों के प्रदेशों का अपकर्षण कर उदय में स्तोक होते हैं। उससे द्वितीय समय में असंख्यातगुणा होते हैं। उससे तीसरी स्थिति में असंख्यातगुणा निक्षिप्त करते हैं। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक निक्षिप्त करते हैं। उससे आगे के समय में असंख्यातगुणे हीन प्रदेश निक्षिप्त करते हैं। आगे अपनी-अपनी अतिस्थापनावली को नहीं प्राप्त होने तक विशेष हीन निक्षिप्त करते हैं। यहाँ गुणश्रेणि कर्मप्रदेश निक्षेप का अध्वान—काल स्तोक है, क्योंकि वह सबसे जघन्य—सबसे छोटा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

अब सयोगकेवली भगवान की गुणश्रेणी निर्जरा के काल का प्रमाण निरूपित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उससे अधःप्रवृत्त-सयोग केवली संयत का गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है।।१८७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्रापि उदयादिगुणश्रेणिक्रमः पूर्ववत् प्ररूपयितव्यः।**

नवरि पूर्वोक्तगुणश्रेणिप्रदेशनिक्षेपाध्वानात् एतस्य गुणश्रेण्याः प्रदेशनिक्षेपाध्वानं संख्यातगुणं।

को गुणकारः ?

संख्याताः समया इति ज्ञातव्याः।

एवं द्वितीयस्थले दर्शनमोहोपशामकादीनां केवलिभगवतां च गुणश्रेणीगुणकारनिरूपणत्वेन त्रयोदशसूत्राणि गतानि।

संप्रति क्षीणकषायादिव्रतिनां गुणश्रेणिनिर्जराप्ररूपणार्थं सूत्रनवकमवतार्यते —

खीणकसायवीयरायछदुमत्थस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।।१८८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र को गुणकारः ? संख्याताः समया इति ज्ञातव्याः।**

कसायखवगस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।।१८९।।

अत्र को गुणकारः ? संख्याताः समयाः। अत्र गुणश्रेण्याः प्रदेशनिक्षेपक्रमः स्मृत्वा कथयितव्यः।

उवसंतकसायवीयरायछदुमत्थस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।।१९०।।

अत्रापि गुणकारः संख्यातसमया ज्ञातव्याः।

कसायउवसामयस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।।१९१।।

गुणकारः संख्यातसमयाः कथयितव्याः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ पर भी उदयादि गुणश्रेणि का क्रम पहले के ही समान कहना चाहिए। विशेष इतना है कि पहले के गुणश्रेणि प्रदेश निक्षेप के अध्वान—काल से अधःप्रवृत्त केवली के गुणश्रेणि प्रदेश निक्षेप का काल संख्यातगुणा है।

गुणकार क्या है ?

गुणकार संख्यात समय है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में दर्शनमोहनीय के उपशामक आदि एवं केवली भगवन्तों की गुणश्रेणी गुणकार का निरूपण करने वाले तेरह सूत्र पूर्ण हुए।

अब क्षीणकषायादि व्रतियों की गुणश्रेणी निर्जरा के प्ररूपण हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ का गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है।।१८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार क्या है ? संख्यातसमय गुणकार है, ऐसा जानना चाहिए।

उससे कषायों का क्षपण करने वाले मुनियों का गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है।।१८९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—गुणकार क्या है ? गुणकार संख्यात समय है। यहाँ गुणश्रेणि के प्रदेश निक्षेप क्रम को स्मरण करके कहना चाहिए।

उससे उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ का गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है।।१९०।।

यहाँ भी गुणकार संख्यातसमय जानना चाहिए।

उससे कषायोपशामक का गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है।।१९१।।

गुणकार संख्यात समय कहना चाहिए।

दंसणमोहक्खवयस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।।१९२।।

गुणकारः संख्यातसमया ज्ञातव्याः सन्ति।

अणंताणुबंधिविसंजोएंतस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।।१९३।।

गुणकारः संख्यातसमयाः सन्ति।

अधापवत्तसंजदस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।।१९४।।

अधःप्रवृत्तसंयतः स्वस्थानाप्रमत्तसंयतः एकान्तानुवृद्ध्यादिक्रियाविरहितसंयतः इति एकार्थो ज्ञातव्यः।

संजदासंजदस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।।१९५।।

अत्रापि गुणकारः संख्यातसमयाः भवन्ति।

दंसणमोहउवसामयस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।।१९६।।

गुणकारः संख्यातसमयमात्राः सन्तीति निर्णेतव्याः।

एवं तृतीयस्थले क्षीणकषायादिजीवानां गुणश्रेणिकालकथनत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

एवं प्रथमाचूलिका समाप्ता।

इति श्रीषट्खंडागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे एकादशग्रन्थे भाववेदनाविधानानुयोगद्वारस्य प्रथमचूलिकायां गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां चतुर्थे महाधिकारे प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

उससे दर्शनमोहक्षपक का गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है।।१९२।।

गुणकार संख्यात समय है।

उससे अनन्तानुबंधिविसंयोजक का गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है।।१९३।।

गुणकार संख्यात समय जानना।

उससे अधःप्रवृत्तसंयत का गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है।।१९४।।

अधःप्रवृत्तसंयत स्वस्थान अप्रमत्तसंयत और एकान्तानुवृद्धि आदि क्रियाओं से रहित संयत, इन दोनों का अर्थ एक जानना चाहिए।

उससे संयतासंयत का गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है।।१९५।।

यहाँ भी गुणकार संख्यात समय होते हैं।

उससे दर्शनमोहोपशामक का गुणश्रेणिकाल संख्यातगुणा है।।१९६।।

गुणकार संख्यात समय मात्र है, ऐसा निर्णय करना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में क्षीणकषाय आदि जीवों के गुणश्रेणी काल का कथन करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार प्रथम चूलिका समाप्त हुई।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम के वेदनानामक चतुर्थ खण्ड में ग्यारहवें ग्रंथ में भाववेदनाविधान अनुयोगद्वार की प्रथम चूलिका में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में चतुर्थ महाधिकार में प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ द्वितीयाचूलिका

(वेदनाभावविधानस्य)

(चतुर्थमहाधिकारान्तर्गत)

द्वितीयोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

क्षान्त्यादिदशधर्मस्य, प्राप्तये कर्महानये।
सिद्धिकान्तापतीन् वन्दे, भक्त्या लोकाग्र्यसुस्थितान्।।१।।

अथ द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गतसप्तमभाववेदनानुयोगद्वारे चतुर्थे महाधिकारे द्वादशानुयोगप्रतिपादनपरा द्वितीयाचूलिकानाम्ना द्वितीयोऽधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् द्वादशस्थलैः एकसप्ततिसूत्राणि सन्ति। अत्र प्रथमस्थले ''एत्तो अणुभाग बंधज्झवसाण'' द्वादशानुयोगनामनिरूपणपरम-विभागप्रतिच्छेदप्ररूपणानाम- प्रथमानुयोगद्वार इत्यादिकप्रतिपादकं च सूत्रत्रयं। तदनन्तरं द्वितीयस्थले ''ठाणपरूवणदाए'' इत्यादिना स्थानप्ररूपणानाम द्वितीयानुयोगद्वारं प्रतिपादनार्थं सूत्रमेकं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले ''अंतरपरूवणदाए'' इत्यादिना तृतीयान्तरप्ररूपणा निरूपणार्थं सूत्रमेकं। तदनु चतुर्थस्थले ''कंडयपरूवणदाए'' इत्यादिना कांडकप्ररूपणानाम-चतुर्थानुयोगनिरूपणार्थं सूत्रमेकं। ततः परं पंचमस्थले ''ओजजुम्म-परूवणदाए'' इत्यादिरूपेण ओजयुग्मप्ररूपणानाम पंचमानुयोगद्वारसूचनार्थं सूत्रमेकं। तदनंतरं षष्ठस्थले

अथ द्वितीय चूलिका

(वेदनाभावविधान की द्वितीय चूलिका)

द्वितीय अधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—जो लोक के अग्रभाग पर सुस्थित हैं, सिद्धिकान्ता के पति हैं, ऐसे सिद्ध भगवन्तों को उत्तम क्षमा आदि दश धर्मों की प्राप्ति हेतु तथा कर्मों को नष्ट करने हेतु मेरा वन्दन-नमस्कार है।।१।।

अब द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत सातवें भाववेदनानुयोगद्वार के चतुर्थ महाधिकार में बारह अनुयोगों का प्रतिपादन करने वाली द्वितीय चूलिका नाम से द्वितीय अधिकार कहा जा रहा है। उसमें बारह स्थलों के द्वारा इकहत्तर सूत्र हैं। उनमें से प्रथम स्थल में ''एत्तो अनुभाग बंधज्झवसाण'' इत्यादि के द्वारा बारह अनुयोगद्वारों का नाम निरूपण करने वाले अविभाग प्रतिच्छेद प्ररूपणा नामक प्रथम अनुयोगद्वार इत्यादि का प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र हैं। तदनन्तर द्वितीय स्थल में ''ठाणपरूवणदाए'' इत्यादि के द्वारा स्थानप्ररूपणा नाम के द्वितीय अनुयोगद्वार का प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र है। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में ''अंतर परूवणदाए'' इत्यादि के द्वारा तृतीय अन्तरप्ररूपणा का निरूपण करने वाला एक सूत्र है। पुनः चतुर्थ स्थल में ''कंडयपरूवणदाए'' इत्यादि के द्वारा काण्डक प्ररूपणा नामक चतुर्थ अनुयोगद्वार का निरूपण करने वाला एक सूत्र है। उसके बाद पंचम स्थल में ''ओजजुम्मपरूवणदाए'' इत्यादिरूप से ओजयुग्मप्ररूपणा नाम के पंचम अनुयोगद्वार को बतलाने हेतु एक सूत्र है। तदनंतर छठे स्थल में ''छट्ठाणपरूवणदाए''

''छट्ठाणपरूवणदाए'' इत्यादिरूपेण षट्स्थानप्ररूपणा प्ररूपणार्थं एकादशसूत्राणि वक्ष्यन्ते। पुनश्च सप्तमस्थले ''हेट्ठाट्ठाणपरूवणदाए'' इत्यादिसूत्रमादौ कृत्वा अधस्तनस्थानप्ररूपणा नाम सप्तमानुयोगद्वार कथनार्थं पंचदशसूत्राणि सन्ति। ततः परं अष्टमस्थले ''समय- प्ररूवणदाए'' इत्यादि सूत्रादिभिः समयप्ररूपणा प्रतिपादनार्थं षोडशसूत्राणि कथयिष्यन्ते। तत्पश्चात् नवमस्थले वृद्धिप्ररूपणा निरूपणार्थं ''वड्ढिपरूवणदाए'' इत्यादि सूत्रादिना सप्तसूत्राणि निरूपयिष्यन्ते। पुनश्च दशमस्थले यवमध्यप्ररूपणानिरूपणायां ''जवमज्झपरूवणदाए'' इत्यादिना एकं सूत्रं। ततः परं एकादशमस्थले पर्यवसानप्ररूपणाकरणार्थं ''पज्जवसाणपरूवणदाए'' इत्यादिना एकं सूत्रं। अनन्तरं द्वादशमस्थले अल्पबहुत्वानुयोगद्वारप्रतिपादनार्थं ''अप्पपबहुए त्ति'' इत्यादिसूत्रमादौ कृत्वा त्रयोदशसूत्राणि वक्ष्यन्ते। इत्यत्र द्वितीयचूलिकायाः समुदायपातनिका सूचिता भवति।

संप्रति द्वितीयचूलिकाप्ररूपणार्थं श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण उत्तरसूत्रमवतार्यते —

एत्तो अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि बारस अणुयोग-द्दाराणि।।१९७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**''अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि'' इत्युक्तेऽनुभागस्थानानां ग्रहणं कर्तव्यं।**

कश्चिदाशंकते—

कथमनुभागबंधस्थानानामनुभागबंधाध्यवसानस्थानसंज्ञास्ति ?

आचार्यः समाधत्ते—

इत्यादिरूप से षट्स्थानप्ररूपणा को प्ररूपित करने हेतु ग्यारह सूत्र कहेंगे। पुनश्च सातवें स्थल में ''हेट्ठाट्ठाणपरूवणदाए'' इत्यादि सूत्र को आदि में करके अधस्तनस्थानप्ररूपणा नाम के सातवें अनुयोगद्वार का कथन करने हेतु पन्द्रह सूत्र हैं। उसके आगे आठवें स्थल में ''समयपरूवणदाए'' इत्यादि सूत्रों के द्वारा समय प्ररूपणा का प्रतिपादन करने हेतु सोलह सूत्र कहेंगे। तत्पश्चात् नवमें स्थल में वृद्धिप्ररूपणा का निरूपण करने हेतु ''वड्ढिपरूवणदाए'' इत्यादि सूत्र के द्वारा सात सूत्र निरूपित करेंगे। पुनश्च दशवें स्थल में यवमध्यप्ररूपणा के निरूपण में ''जवमज्झपरूवणदाए'' इत्यादि एक सूत्र है। आगे ग्यारहवें स्थल में पर्यवसानप्ररूपणा के कथन में ''पज्ज्वसाणपरूवणदाए'' इत्यादि एक सूत्र है। अनन्तर बारहवें स्थल में अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार का प्रतिपादन करने हेतु ''अप्पबहुए त्ति'' इत्यादि सूत्र को आदि में करके तेरह सूत्र कहेंगे। इस प्रकार यहाँ द्वितीय चूलिका की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब द्वितीय चूलिका का प्ररूपण करने हेतु श्रीमान् भूतबली आचार्यदेव उत्तर सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

इसके आगे अनुभागबंधाध्यवसान स्थान की प्ररूपणा का अधिकार है। उसमें ये बारह अनुयोगद्वार हैं।।१९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनुभागबंध अध्यवसानस्थान ऐसा कहने पर अनुभागस्थानों का ग्रहण करना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

अनुभाग बंधस्थानों की अनुभागबंधाध्यवसानस्थान संज्ञा कैसे संभव है?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं—

नैष दोषः, कार्ये कारणोपचारेण तेषां सा संज्ञा उपपद्यते।

पुनरपि आशंकते — किमर्थमेषा चूलिका आगता ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

अजघन्यानुत्कृष्टस्थानानि पूर्वोक्तेषु त्रिष्वनुयोगद्वारेषु सूचितानि चैव न प्ररूपितानि, तेषां प्ररूपणार्थमियं चूलिकागता, अन्यथा अनुक्तसमानत्वप्रसंगात्।

तस्मिन् प्ररूपयिष्यमाणेऽपि द्वादश चैवानुयोगद्वाराणि भवन्ति, अन्येषामसंभवात्।

संप्रति तेषामनुयोद्वाराणां नामनिर्देशार्थं सूत्रमवतार्यते —

अविभागपडिच्छेदपरूवणा ट्ठाणप्परूवणा अंतरपरूवणा कंडयपरूवणा ओजजुम्मपरूवणा छट्ठाणपरूवणा हेट्ठाट्ठाणपरूवणा समयपरूवणा वड्ढिपरूवणा जवमज्झपरूवणा पज्जवसाणपरूवणा अप्पाबहुए त्ति।।१९८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणामादौ कृत्वाल्पबहुत्वपर्यंतद्वादशानुयोग-द्वाराणां नामानि कथितानि। तत्र एकैकस्मिन् अनुभागबंधस्थाने एतावन्तोऽविभागप्रतिच्छेदा भवन्तीति ज्ञापनार्थमविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा आगतास्ति।**

अत्र स्थानप्ररूपणा किमर्थमागता ?

अनुभागबंधस्थानानि सर्वाण्यपि एतावन्त्येव भवन्तीति ज्ञापनार्थं स्थानप्ररूपणा निरूपितास्ति।

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि कार्य में कारण का उपचार करने से उनकी वह संज्ञा बन जाती है।

पुनः भी कोई शंका करता है —

इस चूलिका का अवतार किसलिए हुआ है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं —

पहले तीन अनुयोगद्वारों में अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थानों की सूचना मात्र की है, प्ररूपणा नहीं की है। अतएव उनकी प्ररूपणा करने के लिए इस चूलिका का अवतार हुआ है, क्योंकि अन्यथा अनुक्तसमानता का प्रसंग आता है।

उनकी प्ररूपणा करने पर भी बारह ही अनुयोगद्वार होते हैं, क्योंकि और दूसरे अनुयोगद्वारों की संभावना नहीं है।

उन अनुयोगद्वारों का नाम निर्देश आगे के सूत्र द्वारा कहते हैं —

सूत्रार्थ —

अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, काण्डकप्ररूपणा, ओजयुग्मप्ररूपणा, षट्स्थानप्ररूपणा, अधस्तनस्थानप्ररूपणा, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, पर्यवसानप्ररूपणा और अल्पबहुत्व, ये बारह अनुयोगद्वार हैं।।१९८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अविभाग प्रतिच्छेद प्ररूपणा आदि में करके अल्पबहुत्वपर्यन्त बारह अनुयोगद्वारों के नाम कहे हैं। उनमें से एक-एक अनुभागबंध स्थानों में इतने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं, यह बतलाने के लिए उक्त अविभाग प्रतिच्छेद प्ररूपणा की गई है।

शंका — स्थानप्ररूपणा किसलिए की गई है ?

समाधान — सभी अनुभागबंध स्थान इतने ही होते हैं, यह बतलाने के लिए स्थान प्ररूपणा की गई है।

अन्तरप्ररूपणा किमर्थमागता ?

एकैकस्य स्थानस्य संख्यातासंख्यातानन्ताविभागप्रतिच्छेदैरन्तरं न भवतीति, किन्तु सर्वजीवैरनन्त-गुणमात्राविभागप्रतिच्छेदैरन्तरयित्वान्यं स्थानमुत्पद्यते इति ज्ञापनार्थमन्तरप्ररूपणा समागता।

काण्डकप्ररूपणा किमर्थमागता ?

अंगुलस्यासंख्यातभाग एकं काण्डकं। पुनः एककाण्डकप्रमाणेन अनंतभागवृद्धि-असंख्यातभागवृद्धि-संख्यातभागवृद्धिसंख्यातगुणवृद्धि-असंख्यातगुणवृद्धि-अनंतगुणवृद्धीः कृत्वावलोक्यमाने सर्ववृद्धयो निरग्रा भवन्तीति ज्ञापनार्थमागता काण्डकप्ररूपणेति।

ओजयुग्मप्ररूपणा किमर्थमागता ?

सर्वाणि अनुभागस्थानानि सर्वाविभागप्रतिच्छेदा वर्गणाः स्पर्द्धकानि काण्डकानि च कृतयुग्मान्येवेति ज्ञापनार्थमोजयुग्मप्ररूपणा समायाता।

षट्स्थानप्ररूपणा किमर्थमागता ?

अनंतभागवृद्धिस्थानेषु वृद्धिभागहारः सर्वजीवराशिः, असंख्यातभागवृद्धिस्थानेषु वृद्धिभागहारोऽसंख्याता लोकाः, संख्यातभागवृद्धिस्थानेषु वृद्धिभागहारः उत्कृष्टसंख्यातं, संख्यातगुणवृद्धिस्थानेषु वृद्धिगुणकारः उत्कृष्टसंख्यातं, असंख्यातगुणवृद्धिस्थानेषु वृद्धिगुणकारोऽसंख्याता लोकाः, अनन्तगुणवृद्धिस्थानेषु वृद्धिगुणकारः सर्वजीवराशिर्भवतीति ज्ञापनार्थं षट्स्थानप्ररूपणा आगतास्ति।

अधःस्तनस्थानप्ररूपणा किमर्थमागता ?

शंका—अन्तरप्ररूपणा किसलिए की गई है ?

समाधान—एक-एक स्थान का संख्यात, असंख्यात व अनन्त अविभागप्रतिच्छेदों के द्वारा अन्तर नहीं होता, किन्तु सब जीवों से अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेदों से अन्तर को प्राप्त होकर दूसरा स्थान उत्पन्न होता है, यह बतलाने के लिए अन्तर प्ररूपणा की गई है।

शंका—काण्डकप्ररूपणा किसलिए आई है ?

समाधान—अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र एक काण्डक होता है। पुनः एक काण्डक के प्रमाण से अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि इन वृद्धियों को करके देखने पर वे निरग्र होती हैं, यह बतलाने के लिए काण्डकप्ररूपणा आई है।

शंका—ओज युग्मप्ररूपणा किसलिए आई है ?

समाधान—सब अनुभागस्थान, सब अविभागप्रतिच्छेद, वर्गणाएं, स्पर्धक और काण्डक कृतयुग्म ही होते हैं, यह बतलाने के लिए उक्त प्ररूपणा आई है।

शंका—षट्स्थान प्ररूपणा किसलिए आई है ?

समाधान—अनन्तभागवृद्धि के स्थानों में वृद्धि का भागहार सर्वजीवराशि है, असंख्यातभागवृद्धि के स्थानों में वृद्धि का भागहार असंख्यात लोक है, संख्यातभागवृद्धि के स्थानों में वृद्धि का भागहार उत्कृष्ट संख्यात है, संख्यातगुणवृद्धि के स्थानों में वृद्धि का गुणकार उत्कृष्ट संख्यात है, असंख्यातगुणवृद्धि के स्थानों में वृद्धि का गुणकार असंख्यात लोक है तथा अनन्तगुणवृद्धि के स्थानों में वृद्धि का गुणकार सर्व जीवराशि है, यह बतलाने के लिए षट्स्थान प्ररूपणा आई है।

शंका—अधस्तनस्थानप्ररूपणा किसलिए आई है ?

काण्डकमात्रानन्तभागवृद्धीः गत्वा असंख्यातभागवृद्धिर्भवति, काण्डकमात्रासंख्यातभागवृद्धीर्गत्वा संख्यातभागवृद्धिर्भवति, काण्डकमात्रसंख्यातभागवृद्धीर्गत्वा संख्यातगुणवृद्धिर्भवति, काण्डकमात्रसंख्यात-गुणवृद्धीर्गत्वा असंख्यातगुणवृद्धिर्भवति, काण्डकमात्रासंख्यातगुणवृद्धीर्गत्वा अनंतगुणवृद्धिर्भवति इति ज्ञापनार्थमियं प्ररूपणागता।

समयप्ररूपणा किमर्थमागता ?

एतान्यनुभागबंधस्थानानि जघन्येन इयत्कालं बध्यन्ते उत्कृष्टेन एतावत्कालमिति ज्ञापनार्थमियं समयप्ररूपणा समागता।

वृद्धिप्ररूपणा किमर्थमागताः ?

अनुभागबंधस्थानेषु अनंतवृद्धिहान्यौ आदिं कृत्वा वृद्धिहान्यः षडेव भवन्ति। एतासां बन्धकालो जघन्योत्कृष्टेन एतावान् भवतीति ज्ञापनार्थमियं वृद्धिप्ररूपणा समागता।

यवमध्यप्ररूपणा किमर्थमागता ?

अनन्तगुणवृद्धौ कालयवमध्यस्य आदिर्भूत्वानन्तगुणहानौ समाप्तेति ज्ञापनार्थमियं प्ररूपणा समागतास्ति।

पर्यवसानप्ररूपणा किमर्थमागता ?

सर्वसमयस्थानानां पर्यवसानमनन्तगुणस्योपरि अनंतगुणं भविष्यतीति पर्यवसानं जातमिति सूचनार्थमियं प्ररूपणा समागतास्ति।

अल्पबहुत्वानुयोगद्वारं किमर्थमागतमिति चेत् ?

समाधान—काण्डक प्रमाण अनन्तभागवृद्धियाँ होने पर असंख्यातभागवृद्धि होती है, काण्डक प्रमाण असंख्यातभागवृद्धियाँ होने पर संख्यातभागवृद्धि होती है, काण्डक प्रमाण संख्यातभागवृद्धियाँ होने पर संख्यातगुणवृद्धि होती है, काण्डकप्रमाण संख्यातगुणवृद्धियाँ होने पर असंख्यातगुणवृद्धि होती है तथा काण्डक प्रमाण असंख्यातगुणवृद्धियाँ होने पर अनन्तगुणवृद्धि होती है, यह दिखलाने के लिए उक्त प्ररूपणा आई है।

शंका—समय प्ररूपणा किसलिए आई है ?

समाधान—ये अनुभागबंधस्थान जघन्यरूप से इतने काल तक बंधते हैं और उत्कृष्ट रूप से इतने काल तक बंधते हैं, यह बतलाने के लिए समय प्ररूपणा आई है।

शंका—वृद्धिप्ररूपणा किसलिए आई है ?

समाधान—अनुभागबंधस्थानों में अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि लेकर वृद्धियाँ व हानियाँ छह ही होती हैं, इनका बंधकाल जघन्य व उत्कृष्ट रूप से इतना है, यह बतलाने के लिए वृद्धिप्ररूपणा आई है।

शंका—यवमध्यप्ररूपणा किसलिए आई है ?

समाधान—अनन्तगुणवृद्धि में कालयवमध्य का प्रारंभ होकर वह अनन्तगुणहानि में समाप्त होता है, यह बतलाने के लिए यवमध्यप्ररूपणा आई है।

शंका—पर्यवसानप्ररूपणा किसलिए आई है ?

समाधान—सब समय स्थानों का पर्यवसान अनन्तगुणित के ऊपर अनन्तगुणा होगा, तब पर्यवसान होता है, यह बतलाने के लिए पर्यवसान प्ररूपणा आई है।

शंका—अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार किसलिए आया है ?

एकस्मिन् षट्स्थानेऽनन्तगुणवृद्ध्यादिस्थानानां स्तोकबहुत्वप्ररूपणार्थमिदमनुयोगद्वारमागतं।

एतद् देशामर्शकं सूत्रं वर्तते, तेन बंधसमुत्पत्तिकहतसमुत्पत्तिक-हतहतसमुत्पत्तिकस्थानेषु त्रिष्वपि एतानि द्वादशानुयोगद्वाराणि प्ररूपयितव्यानि।

तत्र तावद् बंधस्थानेषु एतान्यनुयोगद्वाराणि भणिष्यन्त्याचार्यदेवाः।

कुतः ?

बंधात् सत्त्वोत्पत्तिदर्शनादिति निश्चेतव्यं।

अधुना प्रथमप्ररूपणानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अविभागपडिच्छेदपरूवणदाए एक्केक्कम्हि ट्ठाणम्हि केवडिया अविभागपडिच्छेदा ? अणंता अविभागपडिच्छेदा सव्वजीवेहि अणंतगुणा, एवदिया अविभागपडिच्छेदा।।१९९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**संप्रति जघन्यानुभागबंधस्थानमाश्रित्य अविभागप्रतिच्छेदप्रमाणप्ररूपणा क्रियते।**

कोऽनुभागो नाम ?

अष्टानामपि कर्मणां जीवप्रदेशां चान्योन्यानुगमनहेतुपरिणामोऽनुभागोऽस्ति।

प्रकृतिरनुभागः किन्न भवति ?

समाधान—एक षट्स्थान में अनन्तगुणवृद्धि आदि स्थानों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करने के लिए अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार आया है।

यह देशामर्शक सूत्र है अतएव बंधसमुत्पत्तिक, हतसमुत्पत्तिक और हतहतसमुत्पत्तिक इन तीनों ही स्थानों में इन बारह अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा करनी चाहिए। उनमें पहले बंधस्थानों में इन अनुयोगद्वारों को आचार्यदेव कहेंगे।

प्रश्न—क्यों कहेंगे ?

क्योंकि बंध से सत्व की उत्पत्ति देखी जाती है, ऐसा निश्चय करना चाहिए।

अब प्रथम प्ररूपणा के निरूपण हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अविभागप्रतिच्छेद प्ररूपणा का प्रकरण है—एक-एक स्थान में कितने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं ? अनन्त अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, जो सब जीवों से अनन्त गुणे होते हैं, इतने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं।।१९९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अब जघन्य अनुभागबंधस्थान का आश्रय लेकर अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण की प्ररूपणा करते हैं।

शंका—अनुभाग किसे कहते हैं ?

समाधान—आठों कर्मों और जीवप्रदेशों के परस्पर में अन्वय (एकरूपता) के कारणभूत परिणाम को अनुभाग कहते हैं।

शंका—प्रकृति अनुभाग क्यों नहीं होती है ?

न भवति, किंच — योगादुत्पद्यमानप्रकृत्याः कषायादुत्पत्तिविरोधात्। न च भिन्नकारणानां कार्याणामेकत्वं विप्रतिषेधात्। किंच — अनुभागवृद्धिः प्रकृतिवृद्धौ निमित्ता, तस्यां महन्त्यां सत्यां प्रकृतिकार्यस्य अज्ञानादिकस्य तस्मान्न प्रकृतिरनुभाग इति गृहीतव्यं।

कश्चिदाशंकते —

अन्योन्यं स्पर्शहेतुगुणस्यानुभागत्वे सति उदयावलिकायां स्थितप्रदेशाग्राणामुत्कृष्टानुभागाभावः प्रसज्यते इति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

एतन्नाशंकनीयं, स्थितिक्षयेण अन्योन्यस्पर्शक्षयस्य नियमानुपपत्तेः।

तत्र एकस्मिन् परमाणौ यो जघन्येनावस्थितोऽनुभागस्तस्य 'अविभागप्रतिच्छेदा' इति संज्ञा। स्थाने जघन्येनावस्थितानुभागस्य अविभागप्रतिच्छेदसंज्ञा नास्ति, तत्र निर्विकल्पत्वाभावात्। पुन एतेनाविभाग-प्रतिच्छेदप्रमाणेन जघन्यानुभागस्थाने कृते सर्वजीवैरनन्तगुणमात्रा अविभागप्रतिच्छेदा भवन्ति।

तत्र तावद् द्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य यद्जघन्यस्थानं तस्याविभागप्रतिच्छेदानामवस्थानक्रम उच्यते। तद्यथा —

नैगमनयमाश्रित्य यद् जघन्यानुभागस्थानं तस्य सर्वपरमाणुपुंजं एकत्रीकृत्य स्थापयित्वा तत्र मन्दानुभागपरमाणुं गृहीत्वा वर्णगंधरसान् मुक्त्वा स्पर्शं चैव बुद्ध्या गृहीत्वा तस्य प्रज्ञया छेदः कर्तव्यो यावद् विभागवर्जितप्रतिच्छेद[१] इति। तस्यान्तिमखंडस्य अच्छेद्यस्य 'अविभागप्रतिच्छेद इति संज्ञा वर्तते।

समाधान — नहीं होती है, क्योंकि प्रकृति योग के निमित्त से उत्पन्न होती है, अतएव उसकी कषाय से उत्पत्ति होने में विरोध आता है। भिन्न कारणों से उत्पन्न होने वाले कार्यों में एकरूपता नहीं हो सकती, क्योंकि इसका निषेध है। दूसरी बात, अनुभाग की वृद्धि प्रकृति की वृद्धि में निमित्त होती है, क्योंकि उसके बहुत होने पर प्रकृति के कार्यरूप अज्ञानादि की वृद्धि देखी जाती है। इस कारण से प्रकृति अनुभाग नहीं हो सकती, ऐसा यहाँ जानना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है —

परस्पर स्पर्श के हेतुभूत गुण को यदि अनुभाग स्वीकार किया जाता है, तो उदयावलि में स्थित प्रदेशाग्रों के उत्कृष्ट अनुभाग के अभाव का प्रसंग आता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि स्थिति के क्षय से परस्पर स्पर्श का अभाव होता है, ऐसा नियम नहीं बनता है।

एक परमाणु में जो जघन्यरूप से अवस्थित अनुभाग है, उसकी अविभागप्रतिच्छेद संज्ञा है। स्थान में जघन्यरूप से अवस्थित अनुभाग की अविभागप्रतिच्छेद संज्ञा नहीं है, क्योंकि वहाँ निर्विकल्परूपता नहीं उपलब्ध होती। पुनः इस अविभागप्रतिच्छेद के प्रमाण से जघन्य अनुभागस्थान का विभाग करने पर वहाँ सब जीवों से अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेद होते हैं।

यहाँ सर्वप्रथम द्रव्यार्थिक नय का आश्रय करके जो जघन्य स्थान है, उसके अविभागप्रतिच्छेदों के अवस्थानक्रम को कहते हैं। वह इस प्रकार है —

नैगमनय का आश्रय करके जो जघन्य अनुभागस्थान है, उसके सब परमाणुओं के समूह को एकत्रित करके स्थापित करें। फिर उनमें से सर्वमन्द अनुभाग से संयुक्त परमाणु को ग्रहण करके वर्ण, गंध और रस

---

१. 'परिच्छेदो' पाठोऽस्ति, टिप्पण्यांतु आप्रतौ जाव विभागपडि.....।

पुनस्तेन प्रमाणेन सर्वस्पर्शखंडेषु खण्डितेषु सर्वजीवैरनन्तगुणाः सर्वाकाशप्रदेशैरपि अनंतगुणा अविभागप्रतिच्छेदा लभ्यन्ते। तेषां सर्वेषामपि 'वर्ग' इति संज्ञा।

स च संदृष्ट्या अनन्तोऽपि सन् 'अष्ट' (८) इति गृहीतव्यः। पुनस्तस्मिन् एव परमाणुपुंजे तत्सदृशद्वितीयपरमाणुं गृहीत्वा तत्स्पर्शस्य पूर्वमिव प्रज्ञया छेदने कृते अत्रापि तावन्तश्चैवाविभागप्रतिच्छेदा लभ्यन्ते।

अत्र कश्चिदाह—

अच्छेद्यस्य परमाणोः कथं छेदः क्रियते ?

आचार्यः प्राहः—

नैष दोषः, तस्य द्रव्यमेव अच्छेद्यं न गुणाः इति अभ्युपगमात्।

पुनः कश्चिदाशंकते—

परमाणुगुणानां वृद्धिहान्योः सन्त्योः परमाणुत्वं कथं न विरुध्यते ?

आचार्यः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, द्रव्यतो वृद्धिहान्यभावं प्रतीत्य तस्य परमाणुत्वाभ्युपगमात्। एषो द्वितीयो वर्गोऽनन्तोऽपि सन् संदृष्ट्या अष्टसंख्यः पूर्वोक्तवर्गस्पर्शे स्थापयितव्यः (८८)। एतेन क्रमेण गुणेन पूर्वोक्तपरमाणुसदृशैकैकपरमाणुं गृहीत्वा तेषां तेषां गृहीतपरमाणूनां स्पर्शस्य अविभागप्रतिच्छेदे कृते एकैको वर्गः उत्पद्यते। एवं तावत्कर्तव्यं यावद् जघन्यपरमाणवः सर्वे निर्दिष्टा इति। एवं कृते अभव्यसिद्धिकैरनन्तगुणाः

को छोड़कर केवल स्पर्श का ही बुद्धि से ग्रहण कर उसका विभाग रहित छेद होने तक प्रज्ञा के द्वारा छेद करना चाहिए। उस नहीं छेदने योग्य अंतिम खण्ड की अविभागप्रतिच्छेद संज्ञा है।

पश्चात् उक्त प्रमाण से सब स्पर्श खण्डों के खण्डित करने पर सब जीवों से अनन्तगुणे सब आकाशप्रदेशों से भी अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। उन सभी की वर्ग यह संज्ञा है।

उसका प्रमाण अनन्त होकर भी संदृष्टि में आठ (८) ऐसा ग्रहण करना चाहिए। पुनः उसी परमाणुपुंज में उसके सदृश दूसरे परमाणु को ग्रहण कर उसके स्पर्श के पहले के समान प्रज्ञा के द्वारा प्रतिच्छेद करने पर यहाँ भी उतने ही अविभागप्रतिच्छेद उपलब्ध होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है—

नहीं छिदने योग्य परमाणु का छेद कैसे किया जा सकता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उसका केवल द्रव्य ही अच्छेद्य है, गुण नहीं, ऐसा स्वीकार किया गया है।

पुनः कोई शंका करता है—

परमाणु के गुणों में वृद्धि एवं हानि होने पर उसका परमाणुपना कैसे विरोध को नहीं प्राप्त होगा ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि द्रव्य की अपेक्षा वृद्धि व हानि के अभाव का आश्रय लेकर उसका परमाणुपना स्वीकार किया गया है। यह द्वितीय वर्ग अनन्त होता हुआ भी संदृष्टि में आठ संख्यारूप है। इसे पूर्व वर्ग के पास में स्थापित करना चाहिए। ८८। इस क्रम से गुण की अपेक्षा पूर्व परमाणु के सदृश एक-एक परमाणु को लेकर उन ग्रहण किये गये परमाणुओं में स्थित स्पर्श के

सिद्धानामनन्तभागमात्रा वर्गा लब्धा भवन्ति। तेषां प्रमाणं संदृष्ट्या एवं (८८८८)। एतेषां सर्वेषामपि द्रव्यार्थिकनयेऽवलंबिते वर्गणा इति संज्ञा।

अत्र कश्चिदाह—

कथं वर्गाणां वर्गणा इति व्यपदेशः ?

आचार्यः प्राह—नैतद्, वर्गवर्गणयोर्भेदोपलंभात्। वर्गाणां समूहो वर्गणा, तेषां चैवासमूहो वर्गः। वर्गणा एका, वर्गा अनन्ताः। तस्मान्न तेषामेकत्वमिति।

एतावन्मात्रवर्गणा गृहीत्वा जघन्यस्थानस्य एकं जघन्यस्पर्द्धकं भवति।

कथं स्पर्द्धकसंज्ञा ?

क्रमेण स्पर्द्धते वर्द्धते इति स्पर्द्धकम्।

एतस्य कथमेकत्वम् ?

अन्तरित्वा वृद्ध्या अनुपलंभात्।

इयं अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा त्रिविधास्ति—वर्गणाप्ररूपणा, स्पर्द्धकप्ररूपणा, अंतरप्ररूपणा चेति। तत्र वर्गणाप्ररूपणा अपि त्रिविधा—प्ररूपणा-प्रमाणाल्पबहुत्वानि च। प्ररूपणा सुगमा, अविभागप्रतिच्छेद-प्ररूपणायाश्चैव वर्गणासंज्ञिताविभागप्रतिच्छेदानामस्तित्वसिद्धेः। तत्र प्रमाणमुच्यते। तद्यथा—अनन्ता वर्गणा

अविभागप्रतिच्छेद करने पर एक-एक वर्ग उत्पन्न होता है। इस क्रिया को जघन्य गुण वाले सब परमाणुओं के समाप्त होने तक करना चाहिए। ऐसा करने पर अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण वर्ग प्राप्त होते हैं। उनका प्रमाण संदृष्टि में इस प्रकार है ८८८८। इन सभी की द्रव्यार्थिकनय का अवलम्बन करने पर 'वर्गणा' संज्ञा है।

यहाँ कोई शंका करता है—

वर्गों की वर्गणा संज्ञा कैसे हो सकती है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं है, क्योंकि वर्ग और वर्गणा में भेद उपलब्ध होता है। वर्गों के समूह का नाम वर्गणा है और उन्हीं के असमूह का नाम वर्ग है। वर्गणा एक होती है, परन्तु वर्ग अनन्त होते हैं। इस कारण वे दोनों एक नहीं हो सकते हैं।

इतनी मात्र वर्गणाओं को ग्रहण कर जघन्यस्थान का एक जघन्य स्पर्द्धक होता है।

शंका—स्पर्द्धक संज्ञा कैसे है ?

समाधान—क्रम से जो स्पर्धा करता है, अर्थात् बढ़ता है वह स्पर्द्धक है।

शंका—इनमें एकपना कैसे है ?

समाधान—क्योंकि उसमें अन्तर देकर वृद्धि नहीं उपलब्ध होती, अतः वह एक है।

वह अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा तीन प्रकार की है—वर्गणाप्ररूपणा, स्पर्द्धकप्ररूपणा और अन्तरप्ररूपणा। उनमें से वर्गणाप्ररूपणा भी तीन प्रकार की है—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व। इनमें से प्ररूपणा नामकी वर्गणा सुगम है, क्योंकि अविभागप्रतिच्छेदों की प्ररूपणा करने से ही वर्गणा संज्ञा वाले अविभागप्रतिच्छेदों का अस्तित्व सिद्ध होता है।

अब प्रमाण का कथन करते हैं। वह इस प्रकार है—वर्गणाएँ अनन्त हैं, जो अभव्यसिद्धों से

अभव्यसिद्धि-कैरनन्तगुणाः सिद्धामनन्तभागमात्राः।

प्रमाणप्ररूपणा गता।

अल्पबहुत्वमुच्यते। सर्वस्तोका जघन्यायां वर्गणायां अविभागप्रतिच्छेदा, उत्कृष्टाया वर्गणाया अविभागप्रतिच्छेदा अनंतगुणाः।

को गुणकारः ?

अभव्यसिद्धिकैरनन्तगुणः सिद्धानामनन्तभागमात्रः।

कुतः ?

चरमसमयसूक्ष्मसांपरायिकजघन्यबंधग्रहणात् तत्रावस्थितस्पर्द्धकान्तरोपलंभात्। अजघन्यानुत्कृष्ट-वर्गणाविभागप्रतिच्छेदा अनंतगुणाः।

को गुणकारः ?

अभव्यसिद्धिकैरनन्तगुणः सिद्धानामनन्तभागमात्रः। एषा प्ररूपणा एकश्रेणिमाश्रित्य कृता, अन्यथा उत्कृष्ट-वर्गणापेक्षया अजघन्यानुत्कृष्टवर्गणायां अनंतगुणत्वानुपपत्तेः।

संप्रति स्पर्द्धकप्ररूपणापि त्रिविधा—प्ररूपणाप्रमाणमल्पबहुत्वं चेति। प्ररूपणा सुगमा, अविभाग-प्रतिच्छेद-प्ररूपणया चैव प्ररूपितत्वात्। संप्रति स्पर्द्धकानां प्रमाणमुच्यते- अनन्ताभिर्वर्गणाभिः सर्वत्रावस्थित-संख्याभिरेकं स्पर्द्धकं भवति। तानि च जघन्यबंधस्थाने अभव्यसिद्धिकैरनन्तगुणानि सिद्धानामनन्त-भागमात्राणि। प्रमाणं गतं।

अनन्तगुणा हैं और सिद्धों के अनन्तवें भाग मात्र हैं।

प्रमाण प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब अल्पबहुत्व कहते हैं—जघन्य वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

उत्तर—अभव्यसिद्धों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भाग मात्र गुणकार है।

ऐसा क्यों है ? इसका कारण यह है कि यहाँ अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक के जघन्य बंध का ग्रहण करने से वहाँ अवस्थित स्पर्द्धक का अन्तर उपलब्ध होता है। उनसे अजघन्यानुत्कृष्ट वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे है।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

उत्तर—अभव्यसिद्धों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भाग मात्र गुणकार है। यह प्ररूपणा एक श्रेणि का आश्रय करके की गई है, क्योंकि इसके बिना उत्कृष्ट वर्गणा की अपेक्षा अजघन्यानुत्कृष्ट वर्गणा में अनन्तगुणत्व नहीं बन सकता है।

स्पर्द्धकप्ररूपणा भी तीन प्रकार की है—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व। उनमें से प्ररूपणा सुगम है, क्योंकि अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा से ही उसकी प्ररूपणा हो जाती है। अब स्पर्द्धकों का प्रमाण कहते हैं। सर्वत्र अवस्थित संख्या वाली अनन्त वर्गणाओं से एक स्पर्द्धक होता है। वे जघन्य बंधस्थान में अभव्यसिद्धों से अनन्तगुणे व सिद्धों के अनन्तवें भाग मात्र होते हैं।

प्रमाण समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्वमुच्यते — सर्वस्तोकाः जघन्याविभागप्रतिच्छेदाः। उत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदा अनंतगुणाः। अजघन्यानुत्कृष्टस्पर्द्धकानामविभागप्रतिच्छेदा अनंतगुणाः।

को गुणकारः ?

अभव्यसिद्धिकैरनन्तगुणः सिद्धानामनन्तभागमात्रः।

स्पर्द्धकप्ररूपणा गता।

अन्तरप्ररूपणा त्रिविधा — प्ररूपणा-प्रमाणमल्पबहुत्वं चेति। प्ररूपणा सुगमा, बहुस्पर्द्धकप्ररूपणाया-श्चैवान्तर-स्यास्तित्वसिद्धेः। न चान्तरेण विना द्वितीयादिस्पर्द्धकानां संभवः, विरोधात्।

प्रमाणमुच्यते — सर्वजीवैरनन्तगुणमात्रैरविभागप्रतिच्छेदैरेकैकं स्पर्द्धकान्तरं भवति।

प्रमाणप्ररूपणा गता।

अल्पबहुत्वं नास्ति, जघन्यस्थानसर्वस्पर्द्धकानां सदृशत्वोपलंभात्।

संप्रति अविभागप्रतिच्छेदाधारभूतपरमाणवोऽपि अविभागप्रतिच्छेदा भण्यन्ते, आधारे आधेयोपचारात्। ततः प्रदेशप्ररूपणापि अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा इति कृत्वा अत्र जघन्यस्थाने प्रदेशप्ररूपणां करिष्यन्ति। तद्यथा — अत्र षडनुयोगद्वाराणि-प्ररूपणा प्रमाणं श्रेणिः अवहारो भागाभागमल्पबहुत्वं चेति। द्विशतपंचाशत् आदिं कृत्वा यावन्नव इति संदृष्ट्यां स्थापयित्वा एतस्याः उपरि बालजनानुग्रहार्थं षडनुयोगद्वाराणि भणन्ति आचार्यदेवाः।

एतेषां विस्तरस्तु धवलाटीकायां दृष्टव्योऽस्ति।

अब अल्पबहुत्व कहते हैं — जघन्य स्पर्द्धक के अविभागप्रतिच्छेद सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट स्पर्द्धक के अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं। उनसे अजघन्यानुत्कृष्ट स्पर्द्धकों के अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं।

प्रश्न — गुणकार क्या है ?

उत्तर — अभव्यसिद्धों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भाग मात्र गुणकार है।

स्पर्द्धकप्ररूपणा समाप्त हुई।

अन्तर प्ररूपणा तीन प्रकार की है — प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व। इनमें प्ररूपणा सुगम है, क्योंकि बहुस्पर्द्धकों की प्ररूपणा से ही अन्तर का अस्तित्व सिद्ध होता है। अन्तर के बिना द्वितीय आदि स्पर्द्धकों की संभावना नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने में विरोध आता है।

प्रमाण कहते हैं — सब जीवों से अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेदों से एक-एक स्पर्द्धक का अन्तर होता है।

प्रमाण प्ररूपणा समाप्त हुई।

अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि जघन्य स्थान के सब स्पर्द्धक समान पाये जाते हैं।

अब अविभागप्रतिच्छेदों के आधारभूत परमाणु भी अविभागप्रतिच्छेद कहे जाते हैं, क्योंकि आधार में आधेय का उपचार होता है। इसलिए प्रदेशप्ररूपणा को भी अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा मानकर यहाँ जघन्य स्थान में प्रदेशप्ररूपणा कहते हैं।

वह इस प्रकार है — यहाँ छह अनुयोगद्वार हैं — प्ररूपणा, प्रमाण, श्रेणि, अवहार, भागाभाग और अल्पबहुत्व। दो सौ छप्पन से लेकर नौ तक संदृष्टि में स्थापित कर इसके ऊपर अज्ञानी जनों के अनुग्रहार्थ आचार्यदेव छह अनुयोगद्वारों को कहते हैं।

इनका विस्तृत वर्णन धवलाटीका में देखना चाहिए।

एवं प्रथमस्थले द्वादशानुयोगद्वारनामभिरविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणाकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना स्थानप्ररूपणाप्ररूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रमवतार्यते आचार्यदेवेन —

ठाणपरूवणदाए केवडियाणि ट्ठाणाणि ? असंखेज्जलोगट्ठाणाणि एवडियाणि ट्ठाणाणि।।२००।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एकजीवे एकस्मिन् समये यो दृश्यते कर्मानुभागस्तत्स्थानं नाम। तच्च स्थानं द्विविधं—अनुभागबंधस्थानं अनुभागसत्त्वस्थानं चेति। तत्र यद बंधेन निष्पन्नं तद् बंधस्थानं नाम। पूर्वबन्धानुभागे घातयिष्यमाने यद् बंधानुभागेन सदृशं भूत्वा पतति तदपि बंधस्थानमेव, तत्सदृशानुभागबंधोपलंभात्।**

यद् घातयिष्यमाणं अनुभागस्थानं बंधानुभागस्थानेन सदृशं न भवति, किन्तु बंधसदृशाष्टांक-उर्वंकयोर्मध्ये अधस्तनोर्वंकादनन्तगुणं उपरिमाष्टांकादनन्तगुणहीनं भूत्वा तिष्ठति, तदनुभागसत्त्वकर्मस्थानं नाम। पुनः अनुभागबंधस्थानानि सत्त्वकर्मस्थानानि च असंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति। अत्रानुभागबंधस्थानं सत्त्वकर्मस्थानं चेत्युक्ते एकजीवेऽवस्थित कर्मपरमाणुषु य उत्कृष्टानुभागसहितकर्मपरमाणुः सः चैव स्थानं, भिन्नपरमाणु-स्थितानुभागानां अर्पितपरमाणुस्थितानुभागेन सह प्रवृत्त्या अभावेन बुद्ध्या प्राप्तैकत्वानां एकस्थानत्वविरोधात्। विस्तरस्तु धवलाटीकायां दृष्टव्योऽस्ति।

एवमसंख्यातलोकमात्रस्थानानां प्रत्येकं स्वरूपप्ररूपणा कर्तव्या।

इस प्रकार प्रथम स्थल में बारह अनुयोगद्वार नाम के द्वारा अविभागप्रतिच्छेद की प्ररूपणा का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब स्थानप्ररूपणा को प्ररूपित करने हेतु प्रश्नोत्तर रूप से आचार्यदेव सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

स्थानप्ररूपणा से स्थान कितने हैं ? असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इतने स्थान हैं।।२००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एक जीव में एक समय में जो कर्मानुभाग दिखता है, उसे स्थान कहते हैं। वह स्थान दो प्रकार का है— अनुभागबंधस्थान और अनुभागसत्वस्थान। उनमें से जो बंध से उत्पन्न होता है, वह बंधस्थान कहा जाता है। पूर्वबद्ध अनुभाग का घात किये जाने पर जो बंध अनुभाग के सदृश होकर पड़ता है, वह भी बंधस्थान ही है, क्योंकि उसके सदृश अनुभाग बंध पाया जाता है।

घाता जाने वाला जो अनुभागस्थान है, वह बंधानुभाग के सदृश नहीं होता है। परन्तु बंध सदृश अष्टांक और ऊर्वंक के मध्य में अधस्तन ऊर्वंक से अनन्तगुणा और उपरिम अष्टांक से अनन्तगुणा हीन होकर स्थित रहता है, वह अनुभाग सत्कर्मस्थान है। पुनः वे अनुभागबंधस्थान और सत्कर्मस्थान असंख्यात लोकमात्र होते हैं। यहाँ अनुभागबंधस्थान और सत्कर्मस्थान, ऐसा कहने पर एक जीव में अवस्थित कर्म परमाणुओं में जो उत्कृष्ट अनुभाग सहित कर्मपरमाणु हैं वही स्थान होता है, क्योंकि भिन्न परमाणुओं में स्थित अनुभागों की विवक्षित परमाणु में स्थित अनुभाग के साथ प्रवृत्ति न होने से बुद्धि से एकता को प्राप्त हुए उनकी एकस्थानता का विरोध पाया जाता है। इसका विस्तार धवला टीका में देखना चाहिए।

इस प्रकार असंख्यातलोकमात्रस्थानों के प्रत्येक के स्वरूप की प्ररूपणा करना चाहिए।

एवं द्वितीयस्थले स्थानप्ररूपणा निरूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

एवं स्थानसंख्या प्ररूपणा समाप्ता।

संप्रति अंतरप्ररूपणानिरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रमवतार्यते —

अंतरपरूवणदाए एक्केक्कस्स ट्ठाणस्स केवडियमंतरं ? सव्वजीवेहि अणंतगुणं, एवडियमंतरं।।२०१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**असंख्यातलोकमात्राणि अनुभागबंधस्थानानि सत्त्वस्थानानि च प्ररूपितानि। एतस्मादेव प्ररूपणानिरूपणात् ज्ञायते यथा स्थानानामन्तरमस्तीति, अन्यथा स्थानभेदानुपपत्तेः। ततोऽन्तरप्ररूपणा-निष्फलेति प्रश्ने संजाते कथ्यते — न निष्फला, अंतरप्रमाणप्ररूपणाद्वारेण सफलत्वदर्शनात्। न च स्थान-भेदावगममात्रेणान्तरप्रमाणमवगम्यते, तथानुपलंभात्। न च स्थानानामन्तरेण भवितव्यमेवेति नियमोऽस्ति, अविभागप्रतिच्छेदोत्तरक्रमेण गताना मपि स्थानत्वं प्रति विरोधाभावात्।**

किं स्थानान्तरं नाम ?

अधस्तनस्थानमुपरिमस्थाने शोधयित्वा रूपोने कृते यद्लब्धं तत्स्थानान्तरं नाम। तत्र यद् जघन्यं स्थानान्तरं तदपि सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणं एकस्मिन् अनंतभागवृद्धिप्रक्षेपेऽपि सर्वजीवैः अनंतगुणमात्राविभाग-प्रतिच्छेदोपलंभात्।

अत्रानुभागबंधस्थानानामन्तराणि योगस्थानान्तराणि इव सदृशानि न भवन्ति, योगस्थानप्रक्षेपाणामिव

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में स्थानप्ररूपणा का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार स्थानसंख्याप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब अन्तरप्ररूपणा का निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से सूत्र अवतरित किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

अन्तरप्ररूपणा में एक-एक स्थान का अन्तर कितना है ? सब जीवों से अनन्तगुणा है, इतना अन्तर है।।२०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधस्थान और स्वस्थानों की प्ररूपणा की जा चुकी है। इसी प्ररूपणा से जाना जाता है कि स्थानों में अन्तर है, क्योंकि उसके बिना स्थानभेद घटित नहीं होता। इस कारण अन्तरप्ररूपणा निष्फल है ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं कि—वह निष्फल नहीं है, क्योंकि अन्तर के प्रमाण की प्ररूपणा द्वारा उसकी सफलता देखी जाती है। कारण कि स्थान भेद के जान लेने मात्र से अन्तर का प्रमाण नहीं जाना जाता, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है। दूसरे स्थानों का अन्तर होना ही चाहिए, ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि एक-एक अविभागप्रतिच्छेद की अधिकता के क्रम से गये हुए भी स्थानों की स्थानरूपता में कोई विरोध नहीं देखा जाता है।

शंका—स्थानान्तर किसे कहते हैं ?

समाधान—उपरिम स्थानों में से अधस्तन स्थान को घटाकर एक कम करने पर जो प्राप्त हो, वह स्थानान्तर कहा जाता है। उसमें जो जघन्य स्थानान्तर है, वह भी सब जीवों से अनन्तगुणा है, क्योंकि एक अनन्तभाग वृद्धि प्रक्षेप में भी सब जीवों से अनन्तगुणे मात्र अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं।

यहाँ अनुभागबन्धस्थानों के अन्तर योगस्थानान्तरों के समान सदृश नहीं होते हैं, क्योंकि योगस्थानप्रक्षेपों

अनुभागस्थानप्रक्षेपाणां सदृशत्वाभावात्। अनुभागस्थानेषु षड्विधवृद्धिदर्शनात् वा नानुभागस्थानान्तराणां सदृशत्वमस्ति। तद्यथा—सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये जघन्यानुभागबंधस्थानमेव भवति।

अत्र कश्चिदाशंकते—

योगवृद्धिवशेन सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये अजघन्यानुभागबंधस्थानं अपि कश्मिंश्चिद् जीवविशेषे किं न भवेत् ?

आचार्यः समाधत्ते—

न भवेत्, योगवृद्ध्या अनुभागवृद्धेरभावात्।

तत्कथं ज्ञायते ?

वेदनीय-नाम-गोत्राणां सयोगि-अयोगिकेवलिनोरुत्कृष्टानुभागश्चैव भवतीति वेदनास्वामित्वसूत्रे प्ररूपितत्वात्। यदि पुनः योगवृद्धिरनुभागवृद्धेः कारणं भवेत् तर्हि नैष नियमो युज्जते, उत्कृष्टानुत्कृष्टयोर्द्वयोरपि अनुभागस्थानानां संभवात्।

अथवा वेदनासन्निकर्षविधाने यस्य वेदनीयवेदना क्षेत्रतः उत्कृष्टा तस्य भाववेदना नियमादुत्कृष्टा इति प्ररूपितत्वात् ज्ञायते, यथा योगवृद्धिहान्यौ अनुभागवृद्धिहानीनां कारणं न भवत इति।

सयोगिकेवलिनो लोकपूरणे वर्तमानस्य क्षेत्रमुत्कृष्टं जातं। भावोऽपि सूक्ष्मसांपरायिकक्षपकेण यो बद्धः स उत्कृष्टो वा अनुत्कृष्टो वा लोकमापूरि केवलिनि भवतीति अभणित्वा भवतीति प्ररूपितत्वात्

के समान अनुभागस्थानप्रक्षेपों में सदृशता का अभाव है। अथवा अनुभागस्थानों में छह प्रकार की वृद्धि देखे जाने से अनुभागस्थानान्तरों में सदृशता नहीं है। वह इस प्रकार है—सूक्ष्मसाम्परायिक के अंतिम समय में जघन्य अनुभागबंधस्थान ही होता है।

यहाँ कोई शंका करता है—

योगवृद्धि के प्रभाव से सूक्ष्मसाम्परायिक के अंतिम समय में किसी जीव विशेष में अजघन्य अनुभागस्थान भी क्यों नहीं होता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि—

नहीं होता है, क्योंकि योगवृद्धि से अनुभागवृद्धि संभव नहीं है।

शंका—वह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म का सयोग और अयोग केवलियों में उत्कृष्ट अनुभाग ही होता है, ऐसा चूँकि वेदनास्वामित्व सूत्र में कहा जा चुका है, अतः इससे जाना जाता है कि योगवृद्धि के होने से अनुभागवृद्धि संभव नहीं है।

यदि पुनः योगवृद्धि अनुभागवृद्धि का कारण होती, तो यह नियम उचित नहीं था, क्योंकि वैसा होने पर उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों ही अनुभागस्थान वहाँ संभव थे। अथवा जिस जीव के वेदनीय कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है, उसके भाववेदना नियम से उत्कृष्ट होती है, इस प्रकार जो वेदनासन्निकर्ष विधान में प्ररूपणा की गई है, उससे भी जाना जाता है कि योग की वृद्धि व हानि अनुभाग की वृद्धि व हानि में कारण नहीं है।

लोकपूरण समुद्घात में वर्तमान सयोगकेवली का क्षेत्र उत्कृष्ट होता है। भाव भी जो सूक्ष्म साम्परायिक क्षपक के द्वारा बांधा गया है वह लोकपूरण को प्राप्त केवली में उत्कृष्ट भी होता है व अनुत्कृष्ट भी होता है,

योगवृद्धिहान्यौ अनुभागवृद्धिहानीनां कारणं न भवतः इति भणितं भवति।

अथवा कषायप्राभृते सम्यक्त्व-सम्यङ्मिथ्यात्वयोरुत्कृष्टानुभागो दर्शनमोहक्षपकं मुक्त्वा सर्वत्र भवतीति प्ररूपितत्वाद् ज्ञायते। क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन वा गुणितकर्मांशिकलक्षणेन वा आगत्य सम्यक्त्वं प्रतिपद्य द्वि-षट्षष्टिसागरोपमकालं भ्रमित्वा दर्शनमोहक्षपक-अपूर्वकरणप्रथमानुभागकाण्डको यावन्न पतति तावत्सम्यक्त्व-सम्यङ्मिथ्यात्वयोरुत्कृष्टानुभागश्चैव भवतीति भणितं। अन्यथा क्षपितकर्मांशिकं मुक्त्वा गुणितकर्मांशिकेन चैव सम्यक्त्वे गृहीते सम्यक्त्व-सम्यङ्मिथ्यात्वयोरुत्कृष्टानुभागो भवेत्, तत्र योगबहुत्वोपलंभात् एवं सति दर्शनमोहक्षपकं मुक्त्वा सम्यक्त्व-सम्यङ्मिथ्यात्वयोरनुभाग उत्कृष्टो वा अनुत्कृष्टो वा सर्वत्र भवेत्। न चैवं, तथोपदेशाभावात्। तस्मात् योगोऽनुभागकारणं न भवतीति सिद्धम्।

उक्तं च—

''जोगा पयडिपदेसे ट्ठिदिअणुभागे कसायदो कुणदि'' त्ति[१]।

क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन आगत्य सम्यक्त्वं प्रतिपद्य द्विषट्षष्टिसागरोपमकालं भ्रमित्वा मिथ्यात्वं गत्वा द्वीर्घ-उद्वेलनकालेन सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वे उद्वेल्य द्विसमयकालप्रमाणं एकस्थितिं कृत्वा स्थितजघन्य-सत्त्वकर्मिकस्यापि सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वयोरुत्कृष्टानुभागोपलंभात् सदृशधनयुक्तवृद्ध्या अनुभागवृद्धिर्नास्तीति ज्ञायते। एतेन सदृशधनिकैर्बहुकैः सत्त्वैरनुभागबहुत्वं भवतीति एष आग्रहोऽपसारितो भवति।

ऐसा न कहकर 'उत्कृष्ट ही होता है' इस प्रकार की गई प्ररूपणा से निश्चित होता है कि योग की वृद्धि व हानि अनुभाग की वृद्धि व हानि का कारण नहीं है, यह अभिप्राय है।

अथवा कषायप्राभृत में दर्शनमोहक्षपक को छोड़कर सर्वत्र सम्यक्त्व और सम्यङ्मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अनुभाग होता है, यह जो कहा गया है उससे भी जाना जाता है कि योगवृद्धि अनुभागवृद्धि का कारण नहीं है। इसी से क्षपित कर्मांशिक स्वरूप से अथवा गुणितकर्मांशिक स्वरूप से आकर सम्यक्त्व को प्राप्त कर दो छ्यासठ सागरोपम परिभ्रमण करके दर्शनमोहक्षपक अपूर्वकरण का जब तक प्रथम अनुभागकाण्डक पतित नहीं होता है, तब तक सम्यक्त्व व सम्यङ्मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अनुभाग ही होता है, ऐसा कहा है। अथवा (योगवृद्धि को अनुभागवृद्धि का कारण मानने पर) क्षपित कर्मांशिक को छोड़कर गुणित कर्मांशिक के द्वारा ही सम्यक्त्व के ग्रहण किये जाने पर सम्यक्त्व व सम्यङ्मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अनुभाग होना चाहिए क्योंकि वहाँ योग की अधिकता पाई जाती है और ऐसा होने पर दर्शनमोहक्षपक को छोड़कर सर्वत्र सम्यक्त्व व सम्यङ्मिथ्यात्व का अनुभाग उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होना चाहिए। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा उपदेश नहीं पाया जाता है। इसलिए योग अनुभाग का कारण नहीं है, यह सिद्ध होता है।

कहा भी है— 'जीव योग से प्रकृति और प्रदेशबंध को तथा कषाय से स्थिति और अनुभाग को करता है।'

क्षपिक कर्मांशिक स्वरूप से आकर सम्यक्त्व को प्राप्त करके दो छ्यासठ सागरोपम काल तक भ्रमण करके मिथ्यात्व को प्राप्त हो दीर्घ उद्वेलनकाल द्वारा सम्यक्त्व और सम्यङ्मिथ्यात्व की उद्वेलना कर दो समय का प्रमाण एक स्थिति करके स्थित हुए जघन्य सत्व वाले जीव के भी चूँकि सम्यक्त्व और सम्यङ्मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अनुभाग पाया जाता है अतएव इससे जाना जाता है कि समान धनयुक्त वृद्धि से अनुभाग की वृद्धि नहीं होती। इससे समान धन वाले बहुत परमाणुओं के होने से अनुभाग की अधिकता होती है, इस आग्रह का निराकरण होता है।

---

१. धवला पुस्तक १२, पृ. ११७।

विशेषविस्तरस्तु धवलाटीकायां पठितव्यो भवति।

एवं तृतीयस्थले अन्तरप्ररूपणाकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

अधुना काण्डकप्ररूपणाकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

कण्डयपरूवणदाए अत्थि अणंतभागपरिवड्ढिकंडयं असंखेज्जभागपरिवड्ढिकंडयं संखेज्जभागपरिवड्ढिकंडयं संखेज्जगुणपरिवड्ढिकंडयं असंखेज्जगुणपरिवड्ढिकंडयं अणंतगुणपरिवड्ढिकंडयं।।२०२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूक्ष्मनिगोदजघन्यसत्त्वस्थानप्रभृति उपरिमेषु स्थानेषु काण्डकप्ररूपणा क्रियते। किंच—एतस्मादन्यस्य अक्षपकानुभागसत्त्वकर्मणः स्तोकीभूतस्याभावात्।**

एतत्केन प्रमाणेन ज्ञायते ?

अत्र कथयिष्यमानेनैव ज्ञायते। तद्यथा—

सर्वविशुद्धसंयमाभिमुखमिथ्यादृष्टिजीवस्य ज्ञानावरणीयजघन्यानुभागबंधः स्तोकः। सर्वविशुद्धासंज्ञिज्ञानावरणजघन्यानुबंधोऽनन्तगुणः। सर्वविशुद्धचतुरिन्द्रियज्ञानावरणजघन्यानुभागबंधोऽनन्तगुणः। एवं त्रीन्द्रियज्ञानावरणजघन्यानुभागबंधोऽनन्तगुणः। द्वीन्द्रियज्ञानावरणजघन्यानुबंधोऽनन्तगुणः। सर्वविशुद्धबादरैकेन्द्रियज्ञानावरणजघन्यानुभागबंधोऽनन्तगुणः। सर्वविशुद्धसूक्ष्मैकेन्द्रियज्ञानावरणजघन्यानुभागबंधोऽनन्तगुणः।

विशेष विस्तार धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में अन्तर प्ररूपणा का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब काण्डकप्ररूपणा का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

काण्डकप्ररूपणा में अनन्तभागवृद्धिकाण्डक, असंख्यातभागवृद्धिकाण्डक, संख्यातभागवृद्धिकाण्डक, संख्यातगुणवृद्धिकाण्डक, असंख्यातगुणवृद्धिकाण्डक और अनन्तगुणवृद्धिकाण्डक होते हैं।।२०२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूक्ष्म निगोदिया जीव के जघन्य सत्त्वस्थान से लेकर ऊपर के स्थानों में काण्डक प्ररूपणा की जाती है, क्योंकि अक्षपक का इससे अल्प और कोई अनुभागसत्त्व स्थान नहीं है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—यहाँ आगे कहे जाने वाले सूत्रों से ही यह जाना जाता है जो इस प्रकार है—

संयम के अभिमुख हुए सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव के ज्ञानावरणीय का जघन्य अनुभागबंध स्तोक है। उससे सर्वविशुद्ध असंज्ञी पंचेन्द्रिय के ज्ञानावरण का जघन्य अनुभाग बंध अनन्तगुणा है। उससे सर्वविशुद्ध चतुरिन्द्रिय जीव के ज्ञानावरण का जघन्य अनुभागबंध अनन्तगुणा है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीव के ज्ञानावरण का जघन्य अनुभागबंध उससे अनन्तगुणा है। उससे द्वीन्द्रिय जीव के ज्ञानावरण का जघन्य अनुभागबंध अनन्तगुणा है। उससे सर्वविशुद्ध बादर एकेन्द्रिय जीव के ज्ञानावरण का जघन्य अनुभागबंध अनन्तगुणा है। उससे सर्वविशुद्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव के ज्ञानावरण का जघन्य अनुभागबंध अनन्तगुणा है।

तस्यैव हतसमुत्पत्तिकं कृत्वा स्थितज्ञानावरणजघन्यानुभागसत्त्वकर्मानन्तगुणं। बादरैकेन्द्रियजघन्यानुभाग-सत्त्वकर्म अनंतगुणं। द्वीन्द्रियज्ञानावरणजघन्यानुभागसत्त्वकर्म अनंतगुणं। त्रीन्द्रियज्ञानावरणजघन्यानुभागसत्त्वकर्म अनन्तगुणं। चतुरिन्द्रियज्ञानावरणजघन्यानुभागसत्त्वकर्म अनंतगुणं। असंज्ञिपंचेन्द्रियज्ञानावरणजघन्यानुभागसत्त्वकर्म अनंतगुणं। संज्ञिपंचेन्द्रियसंयमाभिमुखमिथ्यादृष्टिज्ञानावरणीयजघन्यानुभागसत्त्वकर्म अनंतगुणमिति अनुभागाल्प-बहुत्वकथनात् एव एतज्ज्ञायते।

एकैकस्य गुणकारोऽसंख्यातलोकमात्रसर्वजीवराशीनां असंख्यातलोकमात्रासंख्यातलोकानां असंख्यातलोकमात्र-उत्कृष्टसंख्यातानां असंख्यातलोकमात्रान्योन्याभ्यस्तराशीनां च गुणकारस्वरूपेण स्थितानां राशीनां संवर्गो ज्ञातव्यः।

अत्र कश्चिदाशंकते—

क्षीणकषायचरमसमये ज्ञानावरणीयजघन्यानुभागसत्त्वकर्म भवतीति स्वामित्वसूत्रे प्रोक्तं। ततः प्रभृति काण्डकप्ररूपणा किन्न क्रियते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

न क्रियते, किंच—ततः प्रभृति क्रमेण षण्णां वृद्धीनामभावात्। न च क्रमेण निरंतरं वृद्धिविरहितस्थानेषु काण्डकप्ररूपणा कर्तुं शक्यते, विरोधात्।

पुनः कश्चिदाह—

अविभागप्रतिच्छेदस्थानान्तरप्ररूपणा किमिति जघन्यबंधस्थानप्रभृति प्ररूपिता ?

हतसमुत्पत्तिक को करके स्थित हुए उसके ही ज्ञानावरण का जघन्य अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा है। उससे बादर एकेन्द्रिय जीव के (ज्ञानावरण का) जघन्य अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा है। उससे द्वीन्द्रिय जीव के ज्ञानावरण कर्म का जघन्य अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा है। उससे त्रीन्द्रिय जीव के ज्ञानावरण कर्म का जघन्य अनुभागसत्व अनन्तगुणा है। उससे चतुरिन्द्रिय जीव के ज्ञानावरण कर्म का जघन्य अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा है। उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के ज्ञानावरण कर्म का जघन्य अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा है। उससे संयम के अभिमुख हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव के ज्ञानावरण कर्म का जघन्य अनुभागसत्व अनन्तगुणा है। इस अनुभाग के अल्पबहुत्व कथन से ही यह जाना जाता है।

इनमें से एक-एक का गुणकार असंख्यात लोकमात्र सब जीवराशियाँ, असंख्यात लोकमात्र असंख्यात लोक, असंख्यात लोकमात्र-उत्कृष्ट संख्यात और असंख्यात लोकमात्र अन्योन्याभ्यस्त राशियों का, इन गुणकार स्वरूप से स्थिति राशियों का संवर्ग जानना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

क्षीणकषाय के अंतिम समय में ज्ञानावरणीय कर्म का जघन्य अनुभागसत्व होता है, वह स्वामित्व सूत्र में कहा जा चुका है। उससे लेकर काण्डकप्ररूपणा क्यों नहीं की जाती है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि—

नहीं की जाती है, क्योंकि उससे लेकर क्रम से छह वृद्धियों का अभाव है और क्रम से निरन्तर वृद्धि से रहित स्थानों में काण्डक प्ररूपणा करना शक्य नहीं है, क्योंकि उसमें विरोध आता है।

पुनः कोई शंका करता है—

फिर अविभागप्रतिच्छेद स्थानान्तर प्ररूपणायें जघन्य बंधस्थान से लेकर क्यों कही गई हैं ?

आचार्यः प्राह—

नैष दोषः, तेषां तत्प्रभृति प्ररूपणायां क्रियमाणायां अपि दोषाभावात्। अथवा, तेष्वपि सूक्ष्मैकेन्द्रिय-जघन्यानुभाग सत्त्वकर्मस्थानप्रभृति उपरिमस्थानानां प्ररूपणा कर्तव्या।

कुतः ?

अधस्तनानां अनुभागबंधस्थानानां सत्त्वस्वरूपेण उपलंभाभावात्।

एतच्च सूक्ष्मनिगोदजघन्यानुभागसत्त्वस्थानं बंधस्थानेन सदृशं अस्ति।

कुत एतज्ज्ञायते ?

एतस्योपरि एकप्रक्षेपोत्तरं कृत्वा बंधेऽनुभागस्य जघन्या वृद्धिः तस्मिंश्चैवान्तर्मुहूर्तेन काण्डकघातेन घातिते जघन्या हानिर्भवतीति कषायप्राभृते प्ररूपितत्वात्। बंधेनासदृशे सूक्ष्मनिगोदजघन्यानुभागस्थाने संजाते एते जघन्यवृद्धिहान्यौ न लभेते।

किं कारणं ?

बंधेन विना वृद्धेरभावात्।

एतद् विस्तरस्तु धवलाटीकायां पठितव्यो भवति, अत्र न प्रतन्यते।

एवं चतुर्थस्थले काण्डकप्ररूपणाप्रतिपादनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

काण्डकप्ररूपणा गता।

अधुना ओजयुग्मप्ररूपणानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

आचार्यदेव इसका भी समाधान देते हैं कि—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उससे लेकर उनकी प्ररूपणा के करने में भी कोई दोष नहीं है। अथवा उनमें भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय के जघन्य अनुभाग सत्वस्थान से लेकर ऊपर के स्थानों की प्ररूपणा करनी चाहिए।

क्यों ?

क्योंकि अधस्तन बंधस्थान सत्तारूप से उपलब्ध नहीं है।

यह सूक्ष्मनिगोद का जघन्य अनुभागसत्वस्थान बंधस्थान के सदृश है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—इसके आगे एक प्रक्षेप अधिक करके बंध होने पर अनुभाग की जघन्य वृद्धि तथा उसी का अन्तर्मुहूर्त में काण्डकघात के द्वारा घात कर डालने पर जघन्य हानि होती है। इस कषायप्राभृत की प्ररूपणा से यह जाना जाता है। सूक्ष्म निगोद के जघन्य अनुभागस्थान के बंध के सदृश न होने पर यह जघन्य वृद्धि और हानि नहीं पाई जा सकती है।

प्रश्न—इसका क्या कारण है ?

उत्तर—कारण यह है कि बंध के बिना वृद्धि की संभावना नहीं पाई जाती है।

इसका विस्तृत वर्णन धवला टीका में पढ़ना चाहिए, यहाँ इसका विस्तार नहीं करते हैं।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में काण्डकप्ररूपणा का प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार काण्डकप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब ओजयुग्मप्ररूपणा के निरूपण हेतु सूत्र अवतरित होता है —

ओजजुम्मपरूवणदाए अविभागपडिच्छेदाणि कदजुम्माणि, ट्ठाणाणि कदजुम्माणि, कंडयाणि कदजुम्माणि।।२०३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अविभागप्रतिच्छेदानां स्वरूपप्ररूपणा पूर्वमेव विस्तरेण कृतमिति नेह क्रियते। सर्वानुभागस्थानानां अविभागप्रतिच्छेदानि कृतयुग्मानि, चतुर्भिः अपह्रियमाणे निरंशत्वात्। सर्वेषां स्थानानां चरमवर्गणाया एकैकपरमाणौ स्थिताविभागप्रतिच्छेदाः कृतयुग्माः, तत्र स्थितानुभागस्यैव स्थानव्यपदेशात्।**

द्विचरमादिवर्गणानामविभागप्रतिच्छेदाः पुनः कृतयुग्माश्चैवेति नास्ति नियमः, तत्र कृतयुग्म-बादरयुग्म-कलिओज-तेजोजानामपि उपलंभात्।

''ठाणाणि कदजुम्माणि'' इत्युक्ते स्थानानि स्वकसंख्यायाः स्पर्द्धकशलाकाभिः एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकाभिः एकैकप्रक्षेपस्पर्द्धकशलाकाभिश्च स्थानानि कृतयुग्मानि इत्युक्तं भवति। 'कंडयाणि कदजुम्माणि' इति भणिते एककाण्डकप्रमाणेन षण्णां वृद्धीनां पृथक्-पृथक् काण्डकशलाकाभिश्च काण्डकानि कृतयुग्मानि।

एवं पंचमस्थले ओजयुग्मप्ररूपणाप्ररूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

एवमोजयुग्मप्ररूपणा समाप्ता।

अधुना षट्स्थानप्ररूपणाप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

छट्ठाणपरूवणदाए अणंतभागपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए वड्ढिदा ? सव्वजीवेहि अणंतभागपरिवड्ढी। एवडिया परिवड्ढी।।२०४।।

सूत्रार्थ—

ओजयुग्म प्ररूपणा में अविभागप्रतिच्छेद कृतयुग्म है, स्थान कृतयुग्म है और काण्डक कृतयुग्म है।।२०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अविभागप्रतिच्छेदों के स्वरूप की प्ररूपणा पहले विस्तार से की जा चुकी है, अतएव अब यहाँ उनकी प्ररूपणा नहीं की जा रही है। समस्त अनुभागस्थानों के अविभागप्रतिच्छेद कृतयुग्म हैं, क्योंकि उन्हें चार से अपहृत करने पर कुछ शेष नहीं रहता है। सब स्थानों की अन्तिम वर्गणा के एक परमाणु में स्थित अविभाग प्रतिच्छेद कृतयुग्म हैं, क्योंकि उसमें स्थित अनुभाग का नाम ही स्थान है।

परन्तु द्विचरमादिक वर्गणाओं के अविभागप्रतिच्छेद कृतयुग्म ही हों ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि उसमें कृतयुग्म, बादरयुग्म, कलिओज और तेजोज संख्यायें भी पाई जाती हैं।

'स्थान कृतयुग्म है' ऐसा कहने पर स्थान अपनी संख्या से स्पर्द्धकशलाकाओं से एक स्पर्द्धक की वर्गणा शलाकाओं से तथा एक-एक प्रक्षेपस्पर्द्धक की शलाकाओं से कृतयुग्म है, ऐसा अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए। 'काण्डक कृतयुग्म हैं' ऐसा कहने पर एक काण्डक के प्रमाण से तथा छह वृद्धियों की पृथक्-पृथक् काण्डकशलाकाओं से काण्डक कृतयुग्म हैं, ऐसा समझना चाहिए।

इस प्रकार पंचमस्थल में ओजयुग्म प्ररूपणा को प्ररूपित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार ओजयुग्मप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब षट्स्थानप्ररूपणाओं का प्ररूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

षट्स्थानप्ररूपणा में अनन्तभागवृद्धि किस वृद्धि के द्वारा वृद्धिंगत हुई है ? अनन्तभागवृद्धि सब जीवों से वृद्धिंगत हुई है। वह इतनी मात्र वृद्धि है।।२०४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—'**अणंतभागपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए वड्ढिदा''** इति पृच्छायां अनंतभागपरिवृद्धिः सर्वजीवैर्वर्द्धिता। 'सव्वजीवेहिं' इत्युक्ते सर्वजीवानां ग्रहणं न भवति, जीवेभ्योऽनुभागवृद्धेरसंभवात्। किन्तु सर्वजीवराशेर्या संख्या सा तदभेदेन 'सर्वजीवैः' इति शब्देन गृहीतव्या। तैः सर्वजीवैर्भागहारे भावेन करणत्वमापन्नैर्वर्द्धिता। सर्वजीवराशिना जघन्यस्थाने भागे हृते यल्लब्धं सा वृद्धिः। जघन्यस्थाने प्रतिराशिं वर्द्धितप्रक्षेपे प्रक्षिप्ते प्रथममनन्तभागवृद्धिस्थानं उत्पद्यते इति भणितं भवति। जघन्यस्थाने सर्वजीवराशिना खण्डिते तत्र एकखण्डेन वर्द्धितप्रथममनन्तभागवृद्धिस्थानमुत्पद्यते यद् भणितं तन्न घटते। तद्यथा— जघन्यस्थानं पंचदशविधं, परमाणुस्पर्द्धकवर्गणाविभागप्रतिच्छेदेषु एकद्विकादि-अक्षसंचारवशेन पंचदशविधजघन्यस्थानोत्पत्ति-दर्शनात्। एतेषु पंचदशविधजघन्यस्थानेषु सर्वजीवराशिना किं स्थानं छिद्यते?

इति प्रश्ने सति—

न तावत्परमाणवो छिद्यन्ते, सर्वजीवैः अभव्यसिद्धिकेभ्योऽनन्तगुणहीनकर्मपुद्गलेषु छिद्यमानेषु एकपरमाणु-अनन्तिमभागस्य उपलंभात्। न च प्रक्षेप एकपरमाणु-अनन्तिम भागमात्रो भवति, अनन्तैः परमाणुभिः अभव्यसिद्धिकेभ्योऽनन्तगुणैः एकप्रक्षेपनिष्पत्तेः। न स्पर्द्धकानि छिद्यन्ते, सर्वजीवैः सिद्धेभ्योऽनन्तगुणहीनजघन्य-स्थानस्पर्द्धकेषु छिद्यमानेषु एकस्पर्द्धकस्यानन्तिमभागानामुपलंभात्। न च जघन्यस्थान-जघन्यस्पर्द्धकानि अनन्तानि आगच्छन्ति इति प्रक्षेपागमो वक्तुं शक्यते, जघन्यस्थानचरमस्पर्द्धकसदृशैरनन्तैः स्पर्द्धकैः प्रक्षेपनिष्पत्तेः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—"अनन्तभागवृद्धि किस वृद्धि के द्वारा वृद्धिंगत हुई है" ऐसा पूछने पर अनंतभागवृद्धि सब जीवों से वृद्धिंगत हुई है, ऐसा उत्तर प्राप्त हुआ है। यहाँ सूत्र में 'सब जीवों से' ऐसा कहने पर सब जीवों का ग्रहण नहीं होता है, क्योंकि जीवों से अनुभागवृद्धि संभव नहीं है। किन्तु सब जीवराशि की जो संख्या है, वह उक्त जीवों से अभिन्न होने के कारण 'सब जीवों से' ग्रहण करने योग्य है। भागहार स्वरूप से करणकारक अवस्थान को प्राप्त हुए उन सब जीवों से वह वृद्धि को प्राप्त हुई है। सब जीवराशि का जघन्य स्थान में भाग देने पर जो लब्ध हो, वह वृद्धि का प्रमाण है। जघन्यस्थान को प्रतिराशि करके उनमें वृद्धि प्राप्त प्रक्षेप को मिलाने पर प्रथम अनंतभाग वृद्धि का स्थान उत्पन्न होता है, यह उसका अभिप्राय है। जघन्य स्थान को सब जीवराशि से खण्डित करने पर उसमें से एक-एक खण्ड द्वारा वर्धित प्रथम अनंतभागवृद्धि का स्थान होता है, यह जो कहा गया है, वह घटित नहीं होता। वह इस प्रकार से है— जघन्य स्थान पन्द्रह प्रकार का है, क्योंकि परमाणु, स्पर्द्धक, वर्गणा और अविभागप्रतिच्छेद इनमें एक-दो आदि रूप से अक्षसंचार के वश पन्द्रह प्रकार के जघन्य स्थान की उत्पत्ति देखी जाती है। इन पन्द्रह प्रकार के जघन्य स्थानों में से सब जीवराशि के द्वारा कौन सा स्थान खण्डित किया जाता है ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर में कहते हैं—

उसके द्वारा परमाणु तो खण्डित किये नहीं जा सकते, क्योंकि अभव्यसिद्धों की अपेक्षा अनंतगुणा और सिद्ध जीवों की अपेक्षा अनंतगुणे हीन कर्मपुद्गलों को सब जीवों द्वारा खण्डित करने पर एक परमाणु का अनंतवां भाग पाया जाता है। परन्तु प्रक्षेप एक परमाणु के अनंतवें भाग मात्र नहीं होता है, क्योंकि अभव्यसिद्धों से अनंतगुणे अनंत परमाणुओं के द्वारा एक प्रक्षेप उत्पन्न होता है। सब जीवों द्वारा स्पर्द्धक भी नहीं खण्डित किये जा सकते, क्योंकि सिद्धों से अनंतगुणे हीन जघन्य स्थान के स्पर्द्धकों को सब जीवों द्वारा खण्डित करने पर एक स्पर्द्धक के अनंतवें भाग का आना पाया जाता है। परन्तु जघन्य स्थान संबंधी जघन्य स्पर्द्धक अनंत नहीं आते हैं। इसीलिए उक्त रीति से प्रक्षेप का आना बतलाना शक्य नहीं है क्योंकि जघन्य स्थान संबंधी अंतिम स्पर्द्धक के सदृश अनंत स्पर्द्धकों से प्रक्षेप की उत्पत्ति होती है और जघन्य स्थान में सब जीवों से

न च जघन्यस्थाने सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणानि स्पर्द्धकानि सन्ति येन सर्वजीवराशिना भागे हृते अनन्तानि स्पर्द्धकानि आगच्छेत्। जघन्यस्थानस्पर्द्धकानि परमाणवश्च सिद्धानामनन्तिमभागमात्राश्चैवेति।

एतत्कुतो ज्ञायते ?

सर्वस्थानपरमाणवः स्पर्द्धकान्यपि सिद्धानामनन्तिमभागमात्राणि चैवेति जिनोपदेशात्।

न जिनोऽसत्यवक्ता, तत्कारणाभावात्।

उक्तं च श्रीवीरसेनस्वामिना—

''ण जिणो चप्पलओ, तक्कारणाभावादो[१]।''

अत्र विशेषविस्तरस्तु धवलाटीकायां दृष्टव्योऽस्ति।

संप्रति असंख्यातभागवृद्धिः कया वृद्ध्या ? इति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

असंखेज्जभागपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए।।२०५।।

असंखेज्जलोगभागपरिवड्ढीए एवडिया परिवड्ढी।।२०६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतत्पृच्छासूत्रं जघन्यपरीतासंख्यातमादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टमसंख्याता-संख्यातपर्यंतमित्येतानि असंख्यातसंख्यास्थानान्यवलम्ब्य स्थितं। एवं पृष्टे सति उत्तरसूत्रेणाचार्यदेवेन परिहार उच्यते—असंख्यातलोकभागवृद्ध्या भवतीति।**

अनन्तगुणे स्पर्द्धक हैं नहीं, जिससे कि उनमें सब जीवराशि का भाग देने पर अनंत स्पर्द्धक आ सकें। जघन्य स्थान के स्पर्द्धक और परमाणु सिद्धों के अनंतवें भाग मात्र ही हैं।

प्रश्न—यह कहाँ से जाना जाता है ?

उत्तर—स्थानों के परमाणु और स्पर्द्धक भी सिद्धों के अनंतवें भाग मात्र ही हैं, ऐसा जो जिन भगवान् का उपदेश है, उसी से वह जाना जाता है।

यदि कहा जाये कि जिन भगवान् असत्यवक्ता है, सो यह संभव नहीं है, क्योंकि उनके असत्यवक्ता होने का कोई कारण नहीं है।

श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है—''जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश असत्य नहीं होता है, क्योंकि असत्यपने के कारण का वहाँ अभाव रहता है।''

इसका विस्तृत वर्णन धवला टीका में देखना चाहिए।

अब असंख्यातभागवृद्धि किस वृद्धि के द्वारा होती है ? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

असंख्यातभागवृद्धि किस वृद्धि के द्वारा होती है ?।।२०५।।

उक्त वृद्धि असंख्यात लोकभागवृद्धि द्वारा होती है। वह इतनी मात्रवृद्धि होती है।।२०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ पृच्छासूत्र जघन्य परीतासंख्यात से लेकर उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात तक इन असंख्यात संख्या के स्थानों का अवलम्बन करके स्थित है। इस प्रकार पूछने पर उत्तर सूत्र से आचार्यदेव उसका परिहार करते हैं—असंख्यातलोकभागवृद्धि के द्वारा होती है, ऐसा जानना चाहिए।

---

१. षट्खंडागम (धवला टीका समन्वित), पु. १२, पृ. १३६।

सूत्रे ''असंखेज्जलोग'' इत्युक्ते जिनदृष्टभावानामसंख्यातानां लोकानां ग्रहणं कर्तव्यं, विशिष्टोपदेशाभावात्। प्रथमानन्तभागवृद्धिकाण्डकस्य चरमानन्तभागवृद्धिस्थाने असंख्यातलोकैः भागे हृते भागलब्धे तस्मिंश्चैव प्रक्षिप्ते प्रथमासंख्यातभागवृद्धिस्थानमुत्पद्यते। एषः प्रक्षेपोऽविभागप्रतिच्छेदादूनो स्थानान्तरं भवति। एतत्स्थानान्तरं अधस्तनस्थानान्तरादनन्तगुणं।

अत्र को गुणकारः ?

असंख्यातलोकैरपवर्तितरूपाधिकसर्वजीवराशिर्गुणकारोऽस्ति। असंख्यातभागवृद्धिप्रक्षेपं स्थापयित्वा अत्रतनस्पर्द्धकशलाकाभिरपवर्तिते असंख्यातभागवृद्धिप्रक्षेपस्य स्पर्द्धकान्तरं भवति। एतत्स्पर्द्धकान्तरं अधस्तनप्रक्षेपस्पर्द्धकान्तरादनन्तगुणं।

अनंतगुणत्वं कथं ज्ञायते ?

भागहारमाहात्म्यात्। तद्यथा—अधस्तनानन्तभागवृद्धिस्पर्द्धकशलाकाभिः रूपाधिकसर्वजीवराशिं गुणयित्वा चरमानन्तभागवृद्धिस्थाने भागे हृते स्पर्द्धकान्तरं भवति।

संप्रति संख्यातभागवृद्धिः कया वृद्ध्या इति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

संखेज्जभागवड्ढी काए परिवड्ढीए ?।।२०७।।

जहण्णयस्स असंखेज्जयस्स रूवूणयस्स संखेज्जभागपरिवड्ढी, एवडिया परिवड्ढी।।२०८।।

सूत्र में 'असंख्यातलोक' ऐसा कहने पर जिन भगवान् के द्वारा जिनका स्वरूप देखा गया है, ऐसे असंख्यात लोकों का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि इस संबंध में विशिष्ट उपदेश का अभाव है। प्रथम अनन्तभागवृद्धिकाण्डक के अंतिम अनन्तभागवृद्धिस्थान में असंख्यात लोकों का भाग देने पर लब्ध हो, उसको उसी में मिलाने पर असंख्यातभागवृद्धि का प्रथम स्थान उत्पन्न होता है। यह प्रक्षेप एक अविभागप्रतिच्छेद से रहित होकर स्थानान्तर होता है। यह स्थानान्तर अधस्तन स्थानान्तर से अनन्तगुणा है।

प्रश्न—यहाँ गुणकार क्या है ?

उत्तर—गुणकार असंख्यात लोकों से अपवर्तित एक अधिक सब जीवराशि है। असंख्यातभागवृद्धिप्रक्षेप को स्थापित करके यहाँ की स्पर्द्धशलाकाओं से अपवर्तित करने पर असंख्यातभागवृद्धि प्रक्षेप का स्पर्धकान्तर होता है। यह स्पर्धकान्तर अधस्तन प्रक्षेप के स्पर्धकान्तर से उक्त अनन्तगुणा है।

शंका—वह उससे अनन्तगुणा है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—वह भागहार के माहात्म्य से जाना जाता है। वह इस प्रकार है—अधस्तन अनन्तभागवृद्धिस्पर्द्धक शलाकाओं से एक अधिक सब जीवराशि को गुणित करके अंतिम अनन्तभागवृद्धिस्थान में भाग देने पर स्पर्धकान्तर होता है।

अब संख्यातभागवृद्धि किस वृद्धि के द्वारा होती है, इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

संख्यातभागवृद्धि किस वृद्धि द्वारा वृद्धि को प्राप्त होती है ?।।२०७।।

एक कम जघन्य असंख्यात की वृद्धि से संख्यातभागवृद्धि होती है। इतनी वृद्धि होती है।।२०८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतत्पृच्छासूत्रं द्विप्रभृति संख्यामादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टसंख्यातपर्यंतं इति तावदेतानि संख्यातविकल्पस्थानानि अपेक्षते। एतस्य निर्णयार्थमुत्तरसूत्रं भण्यते-**

रूपोनजघन्य-असंख्यातस्य वृद्ध्या संख्यातभागवृद्धिर्भवति। अत्र सूत्रे ''जहण्णयस्स असंखेज्जयस्स रूवूणयस्स'' इति भणिते उत्कृष्टं संख्यातं गृहीतव्यं।

कश्चिदाशंकते—

ऋजुकेन 'उक्कस्ससंखेज्जेण' इति अभणित्वा सूत्रगौरवं कृत्वा किमर्थमुच्यते 'जहण्णयस्स असंखेज्जयस्स रूवूणयस्स'' इति ?

आचार्यः समाधत्ते—

उत्कृष्टसंख्यातस्य प्रमाणेन सह संख्यातभागवृद्धेः प्रमाणप्ररूपणार्थं तादृशं कथ्यते।

पुनः कश्चिदाह—परिकर्मवचनात् उत्कृष्टसंख्यातस्य प्रमाणमवगतमितिचेत् ?

आचार्यः प्राह—नैतत् प्रत्यवस्थानं कर्तुं युक्तं, तस्य सूत्रताभावात्। अथवा एतस्य निःशेषस्य आचार्यानुग्रहेण पदविनिर्गतस्य एतस्मात् परिकर्मवचनात् पृथक्त्वविरोधात्, न ततः उत्कृष्टसंख्यातस्य प्रमाणसिद्धिः।

एतेन उत्कृष्टसंख्यातेन रूपाधिककाण्डकेन गुणितकाण्डकमात्राणामनन्तभागवृद्धीनां चरमानन्तभागवृद्धिस्थाने भागे हृते यद् भागलब्धं तत्तस्मिन् एव प्रतिराशिं प्रक्षिप्ते प्रथमसंख्यातभागवृद्धिस्थानमुत्पद्यते। एतस्मात् प्रक्षेपात् एकाविभागप्रतिच्छेदे अपनीते स्थानान्तरं भवति। एतदधस्तनानन्तभागवृद्धिस्थानान्तरेभ्योऽनन्तगुणं।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह पृच्छासूत्र दो से लेकर उत्कृष्ट संख्यात तक इन संख्यात विकल्पों की अपेक्षा करता है, इसके निर्णय के लिए आगे का सूत्र कहते हैं—

एक कम जघन्य असंख्यात की वृद्धि से संख्यातभाग वृद्धि होती है। यहाँ सूत्र में 'एक कम जघन्य असंख्यात' ऐसा कहने पर उत्कृष्ट संख्यात को ग्रहण करना चाहिए।

यहाँ कोई आशंका करता है कि—

सीधे से उत्कृष्ट संख्यात न कहकर सूत्र को बड़ा करके 'एक कम जघन्य असंख्यात' ऐसा किसलिए कहा जा रहा है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं—

उत्कृष्ट संख्यात के प्रमाण के साथ संख्यात भागवृद्धि के प्रमाण की प्ररूपणा करने के लिए वैसा कहा गया है।

पुनः कोई शंका करता है कि—

उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण क्या परिकर्मसूत्र से अवगत है ?

आचार्य समाधान देते हैं—

ऐसा प्रत्यवस्थान करना योग्य नहीं है, क्योंकि उसमें सूत्ररूपता नहीं है अथवा आचार्य के अनुग्रह से परिपूर्ण होकर पदरूप से निकले हुए इस परिकर्म के चूँकि इससे पृथक् होने का विरोध है, अतएव भी उससे उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण सिद्ध नहीं होता है।

इस उत्कृष्ट संख्यात का एक अधिक काण्डक से गुणित काण्डकप्रमाण अनंतभागवृद्धियों से अंतिम अनन्तभागवृद्धिस्थान में भाग देने पर जो लब्ध हो, उसे उसमें ही प्रतिराशि करके मिलाने पर संख्यातभागवृद्धि का प्रथम स्थान उत्पन्न होता है। इसमें से एक अविभागप्रतिच्छेद के कम करने पर स्थानान्तर होता है। यह

असंख्यातभागवृद्धिस्थानान्तरेभ्योऽसंख्यातगुणं। उपरिमानन्तगुणवृद्धेः अधस्तनानन्तभागवृद्धिस्थानान्तरेभ्योऽनन्तगुणं। असंख्यातगुणवृद्धेः अधस्तनासंख्यातभागवृद्धिस्थानान्तरेभ्योऽसंख्यातगुणं। अनंतगुणवृद्धेः अधस्तनसंख्यातभागवृद्धिस्थानान्तरेभ्यः संख्यातभागहीनं संख्यातगुणहीनं असंख्यातगुणहीनं वा। एवं स्पर्द्धकान्तराणां अपि स्तोकबहुत्वं ज्ञात्वा वक्तव्यं। असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानाभ्यन्तरे स्थितसंख्यातभागवृद्धीनामेवं चैव प्ररूपणा कर्तव्या।

संप्रति संख्यातगुणपरिवृद्धिः कया वृद्ध्या ? इत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

संखेज्जगुणपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए?।।२०९।।

जहण्णयस्स असंखेज्जयस्स रूवूणयस्स संखेज्जगुणवड्ढी, एवडिया परिवड्ढी।।२१०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**काण्डकमात्रसंख्यातभागवृद्धीः गत्वा पुनः उपरि संख्यातभागवृद्धिविषये स्थितचरमानन्तभागवृद्धिस्थाने उत्कृष्टसंख्यातेन गुणिते संख्यातगुणवृद्धिर्भवति। पुनः प्रतिराशिभूते अधस्तनस्थाने अस्याः वृद्ध्याः प्रक्षिप्तायां प्रथमं संख्यातगुणवृद्धिस्थानं भवति। उत्कृष्टसंख्यातमात्रउर्वंकेषु एकाविभागप्रतिच्छेदेऽपनीते स्थानान्तरेभ्योऽनन्तगुणं। चतुरंकस्थानान्तरेभ्योऽसंख्यातगुणं। पंचांकस्थानान्तरेभ्योऽसंख्यातगुणं। उपरिमाष्टांक-अधस्तनोर्वंकस्थानान्तरेभ्योऽनन्तगुणं। प्रथमषट्स्थाने उपरिमप्रथमसप्तांकात्**

अधस्तन अनन्तभागवृद्धि स्थानान्तरों से अनन्तगुणा है। असंख्यातभागवृद्धिस्थानान्तरों से असंख्यातगुणा है। उपरिम अनन्तगुणवृद्धि के अधस्तन अनन्तभागवृद्धिस्थानान्तरों से अनन्तगुणा है। असंख्यातगुणवृद्धि के अधस्तन असंख्यातभागवृद्धि स्थानान्तरों से असंख्यातगुणा है। अनन्तगुणवृद्धि के अधस्तन संख्यातभागवृद्धिस्थानान्तरों से संख्यातवें भाग से हीन, संख्यातगुणाहीन अथवा असंख्यातगुणा हीन है। इस प्रकार स्पर्द्धकान्तरों के भी अल्पबहुत्व को जानकर कहना चाहिए। असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानों में भी स्थित संख्यातभागवृद्धियों की इसी प्रकार ही प्ररूपणा करना चाहिए।

अब संख्यातगुणपरिवृद्धि किस वृद्धि के कारण होती है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

संख्यातगुणवृद्धि किस वृद्धि से वृद्धिंगत है ?।।२०९।।

वह एक कम जघन्य असंख्यात की वृद्धि से संख्यातगुणवृद्धिरूप वृद्धिंगत है। इतनी मात्र वृद्धि होती है।।२१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—काण्डकप्रमाण संख्यातभागवृद्धियों तक जाकर फिर आगे संख्यातभागवृद्धि के विषय में स्थित अंतिम अनंतभागवृद्धिस्थान को उत्कृष्ट संख्यात से गुणित करने पर संख्यातगुणवृद्धि होती है। फिर प्रतिराशिभूत अधस्तन स्थान में इस वृद्धि को मिलाने पर प्रथम संख्यातगुणवृद्धि स्थान होता है। उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण उर्वंकों में से एक अविभागप्रतिच्छेद के कम करने पर स्थानान्तर से अनंतगुणा होता है। यह स्थानान्तर अधस्तन उर्वंक स्थानान्तरों से अनन्तगुणा, चतुरंक स्थानान्तरों से असंख्यातगुणा, पंचांक स्थानान्तरों से असंख्यातगुणा, उपरिम अष्टांक के अधस्तन उर्वंकस्थानान्तरों से अनंतगुणा है, प्रथम षट्स्थान में उपरिम प्रथम सप्तांक से अधस्तन चतुरंकस्थानान्तरों से असंख्यातगुणा होता है। इत्यादि वर्णन धवला

अधस्तनचतुः-अंकस्थानान्तरेभ्योऽसंख्यातगुणं। इत्यादिवर्णना धवलाटीकायां दृष्टव्या।

एवमसंख्यातलोकमात्रषट्स्थानाभ्यन्तरे स्थितसंख्यातगुणवृद्धीनां प्ररूपणा कर्तव्या।

संप्रति असंख्यातगुणवृद्धिव्यवस्था प्रतिपादनार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

असंखेज्जगुणपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए ?।।२११।।

असंखेज्जलोगगुणपरिवड्ढी, एवडिया परिवड्ढी।।२१२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**काण्डकमात्रषडंकेषु गतेषु समयाविरोधेन वर्द्धितोपरिमषडंकविषये स्थितचरमोर्वंके असंख्यातैर्लोकैर्गुणितेऽसंख्यातगुणवृद्धिरुत्पद्यते। उर्वंकं प्रतिराशिं तत्र तस्मिंश्च प्रक्षिप्ते असंख्यातगुणवृद्धिस्थानं भवति। असंख्यातगुणवृद्ध्या एकाविभागप्रतिच्छेदे अपनीते स्थानान्तरं भवति। एतदधस्तनानन्तभागवृद्धि-स्थानान्तरेभ्योऽनन्तगुणं। इत्यादि।**

अधुना अनंतगुणवृद्धिव्यवस्थाप्रतिपादनार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

अणंतगुणपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए ?।।२१३।।

सव्वजीवेहि अणंतगुणपरिवड्ढी, एवडिया परिवड्ढी।।२१४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अधस्तनोर्वंके सर्वजीवराशिना गुणिते अनन्तगुणवृद्धिर्भवति। तच्चैव प्रतिराशिं कृत्वा अनन्तगुणवृद्धिं प्रक्षिप्ते अनंतगुणवृद्धिस्थानं भवति। एतस्या एव वृद्धेः अनंतगुणवृद्धिस्पर्द्धकशलाका-**

टीका में देखना चाहिए।

इसी प्रकार असंख्यातलोकमात्रषट्स्थान के अभ्यन्तर में संख्यातगुणवृद्धियों की प्ररूपणा करना चाहिए।

अब असंख्यातगुणवृद्धि व्यवस्था का प्रतिपादन करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

असंख्यातगुणवृद्धि किस वृद्धि के द्वारा वृद्धिंगत है ?।।२११।।

वह असंख्यात लोकों से वृद्धिंगत है, इतनी वृद्धि होती है।।२१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—काण्डकप्रमाण छह अंकों के बीत जाने पर समय—आगम के अविरोध से वृद्धि को प्राप्त उपरिम छह अंक के विषय में स्थित अंतिम ऊर्वंक को असंख्यात लोकों से गुणित करने पर असंख्यातगुणवृद्धि उत्पन्न होती है। ऊर्वंकको प्रतिराशि करके उसमें उसे मिलाने पर असंख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। असंख्यातगुणवृद्धि में से एक अविभागप्रतिच्छेद के कम करने पर स्थानान्तर होता है। यह अधस्तन अनंतभागवृद्धिस्थानों से अनन्तगुणा होता है, इत्यादि कथन जानना चाहिए।

अब अनन्तगुणवृद्धि की व्यवस्था का प्रतिपादन करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

अनन्तगुणवृद्धि किस वृद्धि से वृद्धिंगत है ?।।२१३।।

अनन्तगुणवृद्धि सब जीवों से वृद्धिंगत है, इतनी मात्र वृद्धि होती है।।२१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अधस्तन ऊर्वंकों को सब जीवराशि से गुणा करनेपर अनन्तगुण वृद्धि होती है। उसी को प्रतिराशि करके अनन्तगुणवृद्धि को मिलाने पर अनन्तगुणवृद्धिस्थान होता है। इसी वृद्धि को

भिरपवर्तिते स्पर्द्धकं भवति। अत्रापि स्थानान्तर-स्पर्द्धकान्तराभ्यां तुल्यता कर्तव्या। एवमसंख्यातलोकमात्र-षट्स्थान-स्थितानन्तगुणवृद्धीनां प्ररूपणा कर्तव्या। एतेन सूत्रेण अनन्तरोपनिधा प्ररूपिता।

संप्रति एतेनैव देशामर्शकभावेन सूचिता परंपरोपनिधा च दृष्टव्या धवलाटीकायां।

अत्र मनाक् विशेषो भण्यते—

अत्र अनंतभागवृद्धेः उर्वंकसंज्ञा, असंख्यातभागवृद्धिः चतुरंकः, संख्यातभागवृद्धिः, पंचाङ्कः, संख्यातगुणवृद्धिः षडंकः, असंख्यातगुणवृद्धिः सप्तांकः, अनंतगुणवृद्धिरष्टाङ्कः इति गृहीतव्यः[१]। एतस्याः संज्ञायाः एकषट्स्थान-संदृष्टिर्योजयितव्या।

संप्रति प्रकृतमुच्यते—अत्र कश्चिदाशंकते—

सकाण्डक-काण्डकवर्गमात्रा अनंतभागवृद्धिप्रक्षेपा येऽत्र एकभागहारेण आनीतास्ते सदृशा न भवन्ति, अनंतभागवृद्धि-असंख्यातभागवृद्धिस्वरूपेण तयोरवस्थानात्। असंख्यातभागवृद्धिप्रक्षेपा अपि सदृशा न भवन्ति, अन्योऽन्यमपेक्ष्य असंख्यातभागवृद्धेरवस्थानात्। तत एकभागहारेणानयनं न युज्यते।

अथ पिशुल-पिशुलापिशुलादीनां पृथक्-पृथक् भागहारे उत्पाद्य भागहारपरिहानिं कृत्वा एकभागहारेण आनेष्यते इति चेत्, नेदं अपि घटते, एकभवे संख्यातक्रियायुक्तस्य पुरुषस्य असंख्यातक्रियासु व्यापारविरोधात्। ततः पूर्वप्ररूपितभागहारप्ररूपणा न घटते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

अनन्तगुणवृद्धि स्पर्द्धकशलाकाओं से अपवर्तित करने पर स्पर्द्धक होता है। यहाँ पर भी स्थानान्तर और स्पर्द्धकान्तरों से तुलना करनी चाहिए। इस प्रकार असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानों में स्थित अनंतगुणवृद्धियों की प्ररूपणा करनी चाहिए। इस सूत्र के द्वारा अनन्तरोपनिधा की प्ररूपणा की गई है।

अब इसी सूत्र के द्वारा देशामर्शकरूप से सूचित परंपरोपनिधा का प्रकरण धवला टीका में देखना चाहिए।

यहाँ किंचित् मात्र विशेष वर्णन करते हैं—

यहाँ अनन्तभागवृद्धि की ऊर्वंक संज्ञा, असंख्यातभागवृद्धि की चतुरंक, संख्यातभागवृद्धि की पंचांक, संख्यातगुणवृद्धि की षडंक, असंख्यातगुणवृद्धि की सप्तांक और अनन्तगुणवृद्धि की अष्टांक संज्ञा जानना चाहिए। इस संज्ञा से एक षट्स्थान संदृष्टि की योजना करनी चाहिए।

अब यहाँ प्रकृत का कथन करते हैं—

यहाँ कोई शंका करता है—

काण्डक सहित काण्डक के वर्ग प्रमाण जो अनंतभागवृद्धिप्रक्षेप एक भागहार के द्वारा लाये गये हैं, वे सदृश नहीं हैं, क्योंकि उनका अनन्तभागवृद्धि और असंख्यातभागवृद्धि स्वरूप से अवस्थान है। असंख्यातभागवृद्धि के प्रक्षेप भी सदृश नहीं होते, क्योंकि उनका परस्पर की अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि स्वरूप से अवस्थान है इसीलिए उनका एक भागहार से लाना योग्य नहीं है।

यदि कहा जाये कि पिशुल व पिशुलापिशुल आदिकों के पृथक्-पृथक् भागहारों को उत्पन्न कराकर भागहार की हानि कराकर एक भागहार के द्वारा वे लाये जा सकते हैं तो यह भी घटित नहीं होता है, क्योंकि संख्यात क्रिया युक्त पुरुष के असंख्यात क्रियाओं में व्यापार का विरोध है। इस प्रकार पूर्व प्ररूपित भागहार की प्ररूपणा घटित नहीं होती है ?

आचार्य देव इसका समाधान करते हैं—

---

१. षट्खंडागम, धवलाटीका, पु. १२ पृ. १७०।

सत्यमेतत्, किन्तु प्रक्षेपाणामसदृशत्वस्य विवक्षां अकृत्वा सदृशा इति बुद्ध्या संकल्प्य भागहारप्ररूपणा क्रियते।

पुनः कश्चिदाह—

अलीकवचनेन कथं न कर्मबंधः ?

आचार्यः उत्तरयति—

नेदमलीकवचनं, एकान्ताग्रहाभावात्। न चैतेन वचनेन मिथ्याज्ञानमुत्पाद्यते, असंख्यातैर्वर्षैः पृथक्-पृथक् त्रैराशिं कृत्वा उत्पादितभागहारेभ्यः समुत्पन्नज्ञानसमान-श्रुतज्ञानोत्पत्तेः। न चान्तेवासिनामाचार्याः सर्वसूत्रार्थं भणन्ति, तथा विधशक्तेरभावात्।

पुनरप्याह कश्चित्—

कथं पुनः सकलश्रुतज्ञानोत्पत्तिः ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैष दोषः, अनुक्तावग्रह-ईहा-अवाय-धारणाभिस्तदुत्पत्तेः।

उक्तं च धवलाटीकायां—

पण्णवणिज्जा भावा, अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण, अणंतभागो सुदणिबद्धो।।
आचार्यः पादमाचष्टे, पादः शिष्यः स्वमेधया।
तद्विद्यसेवया पादः, पादः कालेन पच्यते।।[१]

यह सत्य है, किन्तु प्रक्षेपों की असमानता की विवक्षा न करके बुद्धि से उन्हें सदृश कल्पित कर भागहार की प्ररूपणा की जा रही है।

पुनः कोई शंका करता है—

इस असत्य वचन से कर्मबंध क्यों नहीं होगा ?

आचार्य इसका उत्तर देते हैं कि—

यह असत्यभाषण नहीं है, क्योंकि एकान्त आग्रह का अभाव है। इस वचन से मिथ्याज्ञान भी नहीं उत्पन्न कराया जा रहा है, क्योंकि उसके द्वारा असंख्यात वर्षों से पृथक्-पृथक् त्रैराशिक करके उत्पन्न कराये गये भागहारों से उत्पन्न ज्ञान के समान श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, दूसरी बात यह है कि आचार्य शिष्यों के लिए समस्त सूत्रार्थ को नहीं कहते हैं, क्योंकि वैसी शक्ति का अभाव पाया जाता है।

पुनरपि कोई शंका करता है—

तो फिर पूर्ण श्रुतज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अनुक्तावग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के द्वारा वह उत्पन्न हो सकता है।

जैसा कि धवला टीका में कहा है—

गाथार्थ—वचन के अगोचर अर्थात् केवलज्ञान के विषयभूत जीवादिक पदार्थों के अनंतवें भागमात्र प्रज्ञापनीय अर्थात् तीर्थंकर की सातिशय दिव्यध्वनि के द्वारा प्रतिपादन के योग्य हैं तथा प्रतिपादन के योग्य उक्त जीवादिक पदार्थों का अनंतवां भाग मात्र श्रुतनिबद्ध होता है।।

---

१. षट्खंडागम, धवला पुस्तक-१२, पृ. १७१।

एतासां गुणभागवृद्धीनां विस्तरोऽपि धवलाटीकायां पठितव्योऽस्ति।

अत्र मनाक् अल्पबहुत्वमुच्यते—

सर्वस्तोकानि जघन्यस्थाने स्पर्द्धकानि। अनुत्कृष्टे स्थाने स्पर्द्धकानि अनंतगुणानि।

को गुणकारः ?

अविभागप्रतिच्छेदान् प्रतीत्य सर्वजीवैरनन्तगुणः स्पर्द्धकगणनाया अभव्यसिद्धिकैरनन्तगुणः सिद्धानामनन्तिम-भागोऽत्रगुणकारः कथयितव्यः।

उत्कृष्टे स्थाने स्पर्द्धकानि विशेषाधिकानि ज्ञातव्यानि भवन्ति।

एवं षष्ठस्थले षट्स्थानप्ररूपणाप्ररूपकानि एकादश सूत्राणि गतानि।

एवं षट्स्थानप्ररूपणा समाप्ता।

अथ पंचविधाधस्तनस्थानप्ररूपणाभेदगर्भितैः पंचदशसूत्रैरधस्तनस्थानप्ररूपणा प्ररूप्यते—तत्र तावत् प्रथमभेदे पंचसूत्राणि, द्वितीयभेदे चतुःसूत्राणि, तृतीयभेदे त्रिसूत्राणि, चतुर्थभेदे सूत्रद्वयं, पंचमभेदे चैकसूत्रमिति ज्ञातव्यं भवति।

अधुना अधस्तनस्थानप्ररूपणानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते—

हेट्ठाट्ठाणपरूवणदाए अणंतभागवड्ढिब्भहियं कंडयं गंतूण असंखेज्जभाग-वड्ढिब्भहियं ट्ठाणं।।२१५।।

आचार्य एक पाद-चरण को कहते हैं, एक पाद (द्वितीय चरण) को शिष्य अपनी बुद्धि से ग्रहण करता है, एक पाद (तृतीय चरण) उसके जानकार पुरुषों की सेवा से प्राप्त होता है तथा एक पाद (चतुर्थ चरण) समयानुसार परिपाक को प्राप्त होता है।।

इन सब गुणभागवृद्धियों का विस्तार भी धवला टीका में पढ़ने योग्य है।

यहाँ अल्पबहुत्व के विषय में किंचित् कथन करते हैं—

जघन्य स्थान में स्पर्द्धक सबसे स्तोक हैं। अनुत्कृष्ट स्थान में उनसे अनन्तगुणे स्पर्द्धक हैं।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

उत्तर—अविभागप्रतिच्छेदों का आश्रय करके वह सब जीवों से अनन्तगुणा है तथा स्पर्द्धकगणना की अपेक्षा अभवसिद्धिकों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भागमात्र गुणकार जानना चाहिए।

उनसे उत्कृष्ट स्थान में विशेष अधिक स्पर्द्धक होते हैं।

इस प्रकार छठे स्थल में षट्स्थानप्ररूपणा का प्ररूपण करने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्स्थानप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब पाँच प्रकार के अधस्तनस्थानप्ररूपणा के भेदों से सहित पन्द्रह सूत्रों के द्वारा अधस्तनस्थानप्ररूपणा का वर्णन किया जा रहा है—उनमें से प्रथम भेद में पाँच सूत्र हैं, द्वितीय भेद में चार सूत्र हैं, तृतीय भेद में तीन सूत्र हैं, चतुर्थ भेद में दो सूत्र हैं एवं पंचम भेद में एक सूत्र है, ऐसा जानना चाहिए।

अब अधस्तनस्थानप्ररूपणा का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

अधस्तनस्थानप्ररूपणा में अनन्तभागवृद्धि अधिक काण्डकप्रमाण जाकर असंख्यातभागवृद्धि अधिक का स्थान होता है।।२१५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**असंख्यातभागवृद्धिस्थानस्य विवक्षां कृत्वा अधस्तनस्थानानां प्ररूपणार्थमिदं सूत्रमागतं। अनंतभागाभ्यधिकस्थानानां कांडकं गत्वा असंख्यातभागवृद्धिस्थानमुत्पद्यते।**

किं कांडकप्रमाणं ?

अंगुलस्य असंख्यातभागः।

तस्य को भागहारः ?

विशिष्टोपदेशाभावात् न ज्ञायते। स्पर्द्धकवर्गणाप्रमाणमिव सर्वकाण्डकानां प्रमाणं सदृशं।

कुतो ज्ञायते ?

अविसंवादितगुरुवचनात् ज्ञायते।

येनेदं सूत्रं देशामर्शकं तेन अनंतभागाभ्यधिकस्थानानां काण्डकं गत्वा संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिः असंख्यातगुणवृद्धिः अनंतगुणवृद्धिश्च उत्पद्यते इति गृहीतव्यं।

संप्रति संख्यातभागवृद्धिस्थानस्य विवक्षां कृत्वा अधस्तनस्थानप्रपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

असंखेज्जभागब्भहियं कंडयं गंतूण संखेज्जभागब्भहियं ट्ठाणं।।२१६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**कांडकमात्राणि असंख्यातभागाभ्यधिकस्थानानि यावन्न गतानि तावत् निश्चयेन संख्यातभागवृद्धिस्थानं नोत्पद्यते इति भणितं भवति।**

संप्रति संख्यातगुणवृद्धेराधारं कृत्वा अधस्तनस्थानप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंख्यातभागवृद्धिस्थान की विवक्षा करके नीचे के स्थानों की प्ररूपणा करने के लिए यह सूत्र आया है। अनन्तभागवृद्धि स्थानवृद्धि का काण्डक जाकर असंख्यातभागवृद्धि का स्थान उत्पन्न होता है।

प्रश्न—काण्डक का प्रमाण कितना है ?

उत्तर—उसका प्रमाण अंगुल का असंख्यातवाँ भाग है।

प्रश्न—उसका भागहार क्या है ?

उत्तर—विशिष्ट उपदेश का अभाव होने से उसका परिज्ञान नहीं है। स्पर्द्धक की वर्गणाओं के प्रमाण के समान सब काण्डकों का प्रमाण सदृश है।

प्रश्न—वह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

उत्तर—वह गुरु के विंसवादरहित उपदेश से जाना जाता है।

यह सूत्र चूँकि देशामर्शक है अतएव अनन्तवें भाग से अधिक स्थानों का काण्डक जाकर संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि उत्पन्न होती है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

अब संख्यातभागवृद्धिस्थान की विवक्षा करके अधस्तन स्थानों की प्ररूपणा करने हेतु आगे का सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ—

असंख्यातभागवृद्धि काण्डक जाकर संख्यातभागवृद्धिस्थान होता है।।२१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंख्यातभागवृद्धि काण्डकप्रमाण स्थान जब तक नहीं बीतते हैं, तब तक निश्चय से संख्यातभागवृद्धि का स्थान नहीं उत्पन्न होता है, यह उक्त सूत्र का अभिप्राय है।

अब संख्यातगुणवृद्धि का आधार लेकर अधस्तनस्थान को बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

संखेज्जभागब्भहियं कंडयं गंतूण संखेज्जगुणब्भहियं ट्ठाणं।।२१७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**संख्यातभागवृद्ध्यः काण्डकमात्रा यावन्न गतास्तावत् संख्यातगुण-वृद्धिर्नोत्पद्यते, कांडकमात्राः संख्यातभागवृद्ध्यो गत्वा चैवोत्पद्यते इति गृहीतव्यं।**

पुनः असंख्यातगुणवृद्धेराधारं कृत्वा अधस्तनसंख्यातगुणवृद्धिप्रमाणप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

संखेज्जगुणब्भहियं कंडयं गंतूण असंखेज्जगुणब्भहियं ट्ठाणं।।२१८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**असंख्यातगुणवृद्धिरुत्पद्यमाना संख्यातगुणवृद्धीनां काण्डकं गत्वा चैवोत्पद्यते, अन्यथा नोत्पद्यते इति गृहीतव्यं।**

संप्रति अनंतगुणबृद्धिविवक्षां कृत्वाधस्तनस्थानप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

असंखेज्जगुणब्भहियं कंडयं गंतूण अणंतगुणब्भहियं ट्ठाणं।।२१९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अनंतगुणवृद्धिरुत्पद्यमाना सर्वापि असंख्यातगुणवृद्धिनां काण्डकं गत्वा चैवोत्पद्यते, नान्यथेति द्रष्टव्यं।**

अत्र अधस्तनस्थानप्ररूपणायां प्रथमभेदे पंचसूत्राणि कथितानि।

एवं प्रथमाधस्तनस्थानप्ररूपणा समाप्ता।

सूत्रार्थ—

संख्यातभागवृद्धि काण्डक जाकर संख्यातगुणवृद्धि का स्थान होता है।।२१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जब तक संख्यातभागवृद्धियाँ काण्डक प्रमाण नहीं बीतती हैं, तब तक संख्यातगुणवृद्धि नहीं उत्पन्न होती है, किन्तु काण्डक प्रमाण संख्यातभागवृद्धियाँ जाकर ही वह उत्पन्न होती है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

अब असंख्यातगुणवृद्धि को आधार करके उससे नीचे की संख्यातगुणवृद्धि के प्रमाण की प्ररूपणा करने के लिए सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ—

संख्यातगुणवृद्धि काण्डक जाकर असंख्यातगुणवृद्धि स्थान होता है।।२१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंख्यातगुणवृद्धि उत्पन्न होती हुई संख्यातगुणवृद्धियों के काण्डक के बीतने पर ही उत्पन्न होती है, इसके बिना वह उत्पन्न नहीं होती, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

अब अनन्तगुणवृद्धि की विवक्षा करके नीचे के स्थानों की प्ररूपणा करने के लिए आगे के सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

असंख्यातगुणवृद्धिकाण्डक जाकर अनन्तगणुवृद्धि स्थान उत्पन्न होता है।।२१९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनन्तगुणवृद्धि उत्पन्न होती हुई सब ही असंख्यातगुणवृद्धियों के काण्डक को बिताकर ही उत्पन्न होती है, इसके बिना वह उत्पन्न नहीं होती, ऐसा समझना चाहिएं

यहाँ अधस्तनस्थानप्ररूपणा में प्रथम भेद में पाँच सूत्र कहे गये हैं।

इस प्रकार प्रथम अधस्तनस्थान प्ररूपणा समाप्त हुई।

अथ द्वितीयाधस्तनस्थानप्ररूपणाकरणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अणंतभागब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण संखेज्जभागब्भहियट्ठाणं।।२२०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एषा द्वितीयाधस्तनस्थानप्ररूपणा किमर्थमागता ?**

संख्यातभागवृद्धि-संख्यातगुणवृद्धि-असंख्यातगुणवृद्धि-अनंतगुणवृद्धीनां चाधस्तनानन्तभागवृद्धि-असंख्यातभागवृद्धि-संख्यातभागवृद्धि-संख्यातगुणवृद्धीनां प्रमाणप्ररूपणार्थं।

संख्यातभागवृद्धिरुत्पद्यमाना अनंतभागवृद्धीनां काण्डकवर्गं गत्वा चैवोत्पद्यते $\boxed{\frac{16}{4}}$ नान्यथा, विरोधात्। एतेषामुत्पादनविधानमनुपातादुच्यते।

कोऽनुपातः ?

त्रैराशिकम्। तद्यथा—एकस्या असंख्यातभागवृद्ध्या अधस्तने यदि काण्डकमात्रा अनंतभागवृद्धयो लभ्यन्ते तर्हि रूपाधिककाण्डकमात्राणामसंख्यातभागवृद्धीनां कियन्त्यो लभामहे ? इति प्रमाणेन फलगुणितेच्छाया अपवर्तितायां काण्डकसहितकाण्डकवर्गमात्रा अनंतभाग वृद्धयो लभ्यन्ते।

संप्रति असंख्यातभागवृद्ध्यादिव्यवस्थानिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

अब द्वितीय अधस्तनस्थान की प्ररूपणा को बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अनन्तभाग अधिक अर्थात् अनन्तभागवृद्धियों के काण्डक का वर्ग और एक काण्डक जाकर संख्यातभागवृद्धि का स्थान होता है।।२२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ शंका होती है कि—

यह द्वितीय अधस्तनस्थान प्ररूपणा किसलिए कही गई है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

वह संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि व अनन्तगुणवृद्धि, इनके तथा नीचे की अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धि, इन वृद्धियों के भी प्रमाण की प्ररूपणा करने के लिए अधस्तन प्ररूपणा कही गई है।

संख्यातभागवृद्धि उत्पन्न होती हुई अनन्तभागवृद्धियों के एक काण्डक से अधिक काण्डक के वर्ग को बिताकर ही उत्पन्न होती है १६/४, इसके बिना वह उत्पन्न नहीं होती, क्योंकि उसमें विरोध आता है। इनके उत्पन्न कराने की विधि अनुपात से कहते हैं।

शंका—अनुपात किसे कहते हैं ?

समाधान—त्रैराशिक को अनुपात कहते हैं। वह इस प्रकार है—

एक असंख्यातभागवृद्धि के नीचे यदि काण्डक प्रमाण अनन्तभागवृद्धियाँ पाई जाती हैं, तो एक अधिक काण्डक प्रमाण असंख्यातभागवृद्धियों के नीचे वे कितनी पाई जावेंगी, इस प्रकार प्रमाण से फलगुणित इच्छा को अपवर्तित करने पर काण्डक सहित काण्डक के वर्ग प्रमाण अनन्तभागवृद्धियाँ पाई जाती हैं।

अब असंख्यातभागवृद्धि आदि व्यवस्था निरूपित करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

असंखेज्जभागब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण संखेज्जगुणब्भहियट्ठाणं।।२२१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतेषामुत्पादनविधानमुच्यते। तद्यथा—एकस्या संख्यातभागवृद्ध्या अधस्तने यदि काण्डकमात्रा असंख्यातभागवृद्धयो लभ्यन्ते तर्हि रूपाधिककाण्डकमात्राणां किं लभ्यन्ते इति प्रमाणेन फलगुणित-इच्छाया अपवर्तितायां काण्डकसहितकाण्डकवर्गमात्रा असंख्यातभागवृद्धयो भवन्ति।**

संखेज्जभागब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण असंखेज्जगुणब्भहियट्ठाणं।।२२२।। १६/४

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**तद्यथा—एकस्याः संख्यातगुणवृद्धेरधस्तने यदि काण्डकमात्राः संख्यातभागवृद्धयो लभ्यन्ते तर्हि रूपाधिककाण्डकमात्राणां किं लभ्यन्ते इति प्रमाणेन फलगुणित-इच्छायां अपवर्तितायां काण्डकसहित-काण्डकवर्गमात्राः संख्यातभागवृद्धयो लभ्यन्ते। इति सुगमम्।**

संखेज्जगुणब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण अणंतगुणब्भहियं ट्ठाणं।।२२३।। १६/४

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतेषामुत्पत्तिविधानमुच्यते। तद्यथा—एकस्या असंख्यातगुणवृद्धेरधस्तने यदि**

सूत्रार्थ—

असंख्यातभागवृद्धियों का काण्डकवर्ग व एक काण्डक जाकर १६/४ संख्यातगुणवृद्धि का स्थान होता है।।२२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इनके उत्पन्न कराने की विधि बतलाते हैं। वह इस प्रकार है—

एक संख्यातभागवृद्धि के नीचे यदि काण्डक प्रमाण असंख्यातभागवृद्धियाँ पाई जाती हैं, तो एक अधिक काण्डक प्रमाण संख्यात भागवृद्धियों के नीचे वे कितनी पाई जावेंगी, इस प्रकार प्रमाण से फलगुणित इच्छा को अपवर्तित करने पर काण्डक सहित काण्डकवर्ग प्रमाण असंख्यातभागवृद्धियाँ होती हैं।

सूत्रार्थ—

संख्यातभागवृद्धियों का काण्डकवर्ग और एक काण्डक जाकर (१६/४) असंख्यातगुणवृद्धि का स्थान होता है।।२२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका अभिप्राय इस प्रकार है—

एक संख्यातगुणवृद्धि के नीचे यदि काण्डक प्रमाण संख्यातभागवृद्धियाँ पाई जाती हैं, तो एक अधिक काण्डक प्रमाण संख्यातगुणवृद्धियों के नीचे वे कितनी पाई जावेंगी, इस प्रकार प्रमाण से फलगुणित इच्छा को अपवर्तित करने पर काण्डक वर्ग प्रमाण संख्यातभागवृद्धियाँ पाई जाती हैं। शेष कथन सुगम है।

सूत्रार्थ—

संख्यातगुणवृद्धियों का काण्डकवर्ग और एक काण्डक (१६/४) जाकर अनन्तगुणवृद्धि का स्थान होता है।।२२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इनके उत्पन्न कराने की विधि बतलाते हैं। वह इस प्रकार है—

काण्डकमात्राणि संख्यातगुणवृद्धिस्थानानि लभ्यन्ते तर्हि रूपाधिककाण्डकमात्राणामसंख्यातगुणवृद्धिस्थानानां किं लभ्यन्ते इति प्रमाणेन फलगुणित-इच्छाया अपवर्तितायां काण्डकसहितकाण्डकवर्गमात्राणि संख्यातगुण-वृद्धिस्थानानि अष्टांकादधस्तने लब्धानि भवन्ति इति ज्ञातव्यम्।

अत्र अधस्तनस्थानप्ररूपणायां द्वितीयभेदे चतुःसूत्राणि कथितानि सन्ति।

द्वितीयाधस्तनस्थानप्ररूपणा समाप्ता।

अधुना तृतीयाधस्तनस्थानप्ररूपणानिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

संखेज्जगुणस्स हेट्ठदो अणंतभागब्भहियाणं कंडयघणो बेकंडयवग्गा कंडयं च।।२२४।।

६४
१६
१६
४

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**तृतीयाधस्तनस्थानप्ररूपणा किमर्थमागता ?**

संख्यातगुणवृद्धि-असंख्यातगुणवृद्धि-अनंतगुणवृद्धीनामधस्तनात् अनंतभागवृद्धि-असंख्यातभागवृद्धि-संख्यातभागवृद्धीनां यथाक्रमेण प्रमाणप्ररूपणार्थमेषा तृतीयाधस्तनस्थानप्ररूपणा आगता। एतस्यार्थप्ररूपणां करिष्यन्त्याचार्यदेवाः। तद्यथा—एकस्याः संख्यातभागवृद्धेरधो यदि कांडकसहितकांडकवर्गमात्राणि अनंतभागवृद्धिस्थानानि लभ्यन्ते तर्हि रूपाधिककांडकमात्राणां संख्यातभागवृद्धिस्थानानां किं लभ्यन्ते इति कांडकवर्गं काण्डकं च द्विप्रतिराशिं कृत्वा यथाक्रमेण एककाण्डकेन एकरूपेण च गुणित्वा मेलापिते

एक असंख्यातगुणवृद्धि के नीचे यदि काण्डक प्रमाण संख्यातगुणवृद्धियाँ पाई जाती हैं, तो एक अधिक काण्डक प्रमाण असंख्यातगुणवृद्धिस्थानों के नीचे वे कितनी पाई जावेंगी, इस प्रकार प्रमाण से फलगुणित इच्छा को अपवर्तित करने पर अष्टांक के नीचे काण्डक सहित काण्डकवर्ग प्रमाण संख्यातगुणवृद्धिस्थान पाये जाते हैं। ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ अधस्तनस्थान की प्ररूपणा के द्वितीय भेद में चार सूत्र कहे गये हैं।

इस प्रकार द्वितीय अधस्तनस्थानप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब तृतीय अधस्तनस्थानप्ररूपणा के निरूपण हेतु तीन सूत्रों को अवतरित किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

संख्यातगुणवृद्धि के नीचे अनन्तभागवृद्धियों का काण्डकघन, दो काण्डकवर्ग और एक काण्डक होता है।।२२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ एक शंका-समाधान के साथ विषय का प्रतिपादन करते हैं—

शंका—तृतीय अधस्तनस्थानप्ररूपणा किसलिए प्राप्त हुई है ?

समाधान—वह संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि, इन वृद्धियों के नीचे क्रमशः अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागवृद्धि इनका प्रमाण बतलाने के लिए यह तीसरी अधस्तनस्थान प्ररूपणा कही गई है।

आचार्यदेव अब इसकी अर्थप्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—एक संख्यातभागवृद्धि के नीचे यदि काण्डक सहित काण्डकवर्गप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान पाये जाते हैं, तो एक अधिक काण्डकप्रमाण संख्यातभागवृद्धिस्थानों के नीचे वे कितने पाये जावेंगे, इस प्रकार काण्डक वर्ग और काण्डक प्रमाण दो

एककाण्डकघनो द्वौ काण्डकवर्गौ काण्डकं च उपलभ्यते।

असंखेज्जगुणस्स हेट्ठदो असंखेज्जभागब्भहियाणं कंडयघणो वेकंडयवग्गा कंडयं च।।२२५।।

एतस्यार्थ उच्यते। तद्यथा—एकस्य संख्यातगुणवृद्धिस्थानस्य अधो यदि काण्डकसहितकाण्डकवर्ग-मात्राणि असंख्यातभागवृद्धिस्थानानि लभ्यन्ते तर्हि रूपाधिककाण्डकमात्रसंख्यातगुणवृद्धिस्थानानां किं लभ्यन्ते इति पूर्वमिव द्विप्रतिराशिं कृत्वा क्रमेण एककाण्डकेन एकरूपेण च गुणयित्वा मेलापिते एकः काण्डकघनो द्वौ काण्डकवर्गौ कांडकं च उपलभ्यते।

अणंतगुणस्स हेट्ठदो संखेज्जभागब्भहियाणं कंडयघणो वेकंडयवग्गा कंडयं च।।२२६।।

एतस्यार्थ उच्यते। तद्यथा—एकस्यासंख्यातगुणस्याधो यदि काण्डकसहितकाण्डकवर्गमात्राणि संख्यातभाग-वृद्धिस्थानानि लभ्यन्ते तर्हि रूपाधिककांडकमात्राणामसंख्यातगुणवृद्धिस्थानानां किं लभ्यन्त इति फलं द्विप्रतिराशिकृतं क्रमेण एककाण्डकेन एकरूपेण च गुणयित्वा मेलापिते कांडकघनो द्विकाण्डकवर्गौ काण्डकं च लभ्यते।

प्रतिराशियाँ करके क्रमशः एक काण्डक और एक अंक से गुणित करके मिला देने पर एक काण्डक घन, दो काण्डक वर्ग और एक काण्डक पाया जाता है।

सूत्रार्थ—

असंख्यातगुणवृद्धिस्थान के नीचे असंख्यातभागवृद्धियों का एक काण्डकघन, दो काण्डकवर्ग और एक काण्डक होता है।।२२५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका अर्थ स्पष्ट करते हैं। वह इस प्रकार है—

एक संख्यातगुणवृद्धिस्थान के नीचे यदि काण्डक सहित काण्डकवर्गप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिस्थान पाये जाते हैं तो एक अधिक काण्डक प्रमाण संख्यातगुणवृद्धिस्थानों के वे कितने पाये जावेंगे, इस प्रकार पहले के समान दो प्रतिराशियाँ करके क्रमशः एक काण्डक और एक अंक से गुणित करके मिलाने पर एक काण्डकघन, दो काण्डकवर्ग और एक काण्डक पाया जाता है।

सूत्रार्थ—

अनन्तगुणवृद्धिस्थान के नीचे संख्यातभागवृद्धिस्थानों का एक काण्डकघन, दो काण्डकवर्ग और एक काण्डक होता है।।२२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—

एक असंख्यातगुणवृद्धि स्थान के नीचे यदि काण्डक सहित कांडकवर्णप्रमाण संख्यातभागवृद्धिस्थान पाये जाते हैं, तो एक अधिक काण्डकप्रमाण असंख्यातगुणवद्धिस्थानों के नीचे वे कितने पाये जावेंगे, इस प्रकार दो प्रतिराशिरूप किये गये फल को क्रमशः एक कांडक और एक अंक से गुणित करके मिला देने पर एक काण्डकघन, दो कांडकवर्ग और एक कांडक पाया जाता है।

अत्र अधस्तनस्थानप्ररूपणायां तृतीयभेदे त्रीणि सूत्राणि सन्ति।

इति तृतीयाधस्तनस्थानप्ररूपणा समाप्ता।

संप्रति चतुर्थाधस्तनस्थानप्ररूपणाकारणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

असंखेज्जगुणस्स हेट्ठदो अणंतभागब्भहियाणं कंडयवग्गावग्गो तिण्णि-कंडयघणा तिण्णिकंडयवग्गा कंडयं च।।२२७।।

२५६
६४
६४
६४
१६
१६
१६
४

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **चतुर्थी अधस्तनस्थानप्ररूपणा किमर्थमागता?**

असंख्यातगुणाभ्यधिक-अनंतगुणाभ्यधिकस्थानयोः अधस्तनअनंतभागवृद्धिस्थानानां प्रमाणप्ररूपणार्थमियमागता।

अणंतगुणस्स हेट्ठदो असंखेज्जभागब्भहियाणं कंडयवग्गावग्गो तिण्णिकंडय-घणा तिण्णिकंडयवग्गा कंडयं च।।२२८।।

२५६
६४
६४
६४
१६
१६
१६
४

एतेषामंकानामुत्त्पत्तौ भण्यमानायां पूर्वमिव वक्तव्यम्, विशेषाभावात्।

अधस्तनस्थानप्ररूपणायां चतुर्थभेदप्रतिपादनापेक्षया द्वे सूत्रे कथिते स्तः।

चतुर्थी अधस्तनस्थानप्ररूपणा समाप्ता।

अधुना पञ्चमभेदसमन्विताधस्तनस्थानप्ररूपणानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

यहाँ अधस्तन स्थान की प्ररूपणा के तृतीय भेद में तीन सूत्र कहे गये हैं।

इस प्रकार तृतीय अधस्तनस्थान प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब चतुर्थ अधस्तनस्थान की प्ररूपणा करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

असंख्यातगुणवृद्धि के नीचे अनन्तभागवृद्धियों का एक काण्डकवर्गावर्ग, तीन काण्डकघन, तीन काण्डकवर्ग और एक काण्डक होता है।।२२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ शंका-समाधान के द्वारा विषय को स्पष्ट किया है।

शंका — चतुर्थ अधस्तनस्थानप्ररूपणा किसलिए प्राप्त हुई है ?

समाधान — वह अर्थात् चतुर्थ अधस्तनस्थान प्ररूपणा असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि स्थानों के नीचे के अनन्तभागवृद्धि स्थानों के प्रमाण की प्ररूपणा करने के लिए कही गई है।

सूत्रार्थ —

अनन्तगुणवृद्धि के नीचे असंख्यातभागवृद्धियों का एक काण्डक वर्गावर्ग, तीन काण्डकघन, तीन काण्डकवर्ग और एक काण्डक होता है।।२२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन अंकों की उत्पत्ति का कथन करते समय पहले के समान प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अधस्तनस्थानप्ररूपणा में चतुर्थ भेद के प्रतिपादन की अपेक्षा दो सूत्र कहे गये हैं।

इस प्रकार चतुर्थ अधस्तनस्थानप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब पञ्चमभेदसमन्वित अधस्तनस्थान की प्ररूपणा के निरूपण हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

अणंतगुणस्स हेट्ठदो अणंतभागब्भहियाणं कंडयो पंचहदो चत्तारिकंडय-वग्गावग्गा छकंडयघणा चत्तारिकंडयवग्गा कंडयं च।।२२९।।

१०२४
२५६
२५६
२५६
२५६
६४
६४
६४
६४
६४
६४
१६
१६
१६
१६
४

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतेषामंकानामुत्पत्तिविधानमुच्यते। तद्यथा—काण्डकवर्गावर्गं त्रिकाण्डकघनान् त्रिकाण्डकवर्गान् काण्डकं च द्वयोः स्थानयोः स्थापयित्वा यथाक्रमेण रूपेण एककाण्डकेन च गुणयित्वा मेलापिते काण्डकः पंचहतः चतुःकाण्डकवर्गावर्गाः षट्काण्डकघनाः चतुकाण्डकवर्गाः काण्डकं च उत्पद्यन्ते।**

अत्र अधस्तनस्थानप्ररूपणायां पंचमभेदप्रतिपादकं एकं सूत्रं अस्ति।

एवं सप्तमस्थले पंचभेदसमन्विताधस्तनस्थानप्ररूपणायां पंचदशसूत्राणि गतानि।

इति पंचमी अधस्तनस्थानप्ररूपणा समाप्ता।

अथ समयप्ररूपणायां चतुरन्तरान्तरस्थलसमन्वितानि षोडश सूत्राणि भवन्ति। तत्र प्रथमान्तरान्तरस्थले ''समयपरूवणदाए'' इत्यादिना चतुःसूत्राणि सन्ति। द्वितीयान्तरान्तरस्थले ''एवं छसमइयाणि'' इत्यादिना द्वे सूत्रे स्तः। तृतीयान्तरान्तरस्थले ''एत्थ अप्पाबहुअं'' इत्यादिसूत्रमादौ कृत्वा षट्सूत्राणि वक्ष्यन्ते। चतुर्थान्तरान्तरस्थले सुहुमतेउ'' इत्यादिना चतुःसूत्राणि प्रतिपादयिष्यन्ते। इतीयं समुदायपातनिका ज्ञातव्या भवति।

अधुना समयप्ररूपणायां चतुःसमयिकानुभागबंधस्थानप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सूत्रार्थ—

अनन्तगुणवृद्धि के नीचे अनन्तभागवृद्धियों का पाँच बार गुणित काण्डक, चार काण्डकवर्गावर्ग, छह काण्डकघन, चार काण्डकवर्ग और एक काण्डक होता है।।२२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन अंकों के उत्पादन की विधि कही जा रही है। वह इस प्रकार है—

एक काण्डक वर्गावर्ग, तीन काण्डकघनों, तीन काण्डक वर्गों और एक काण्डक को दो स्थानों में स्थापित करके क्रमशः एक अंक और एक काण्डक द्वारा गुणित करके मिलाने पर पाँच बार गुणित काण्डक, चार काण्डकवर्गावर्ग, छह काण्डकघन, चार काण्डकवर्ग और एक काण्डक उत्पन्न होता है।

यहाँ अधस्तनस्थान की प्ररूपणा में पंचम भेद को प्रतिपादित करने वाला एक सूत्र कहा गया है।

इस प्रकार सातवें स्थल में पाँच भेदों से समन्वित अधस्तनस्थान की प्ररूपणा में पन्द्रह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार पंचम अधस्तनस्थानप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब समयप्ररूपणा में चार अन्तरान्तर स्थल से समन्वित सोलह सूत्र कहेंगे। उसमें से प्रथम अन्तरान्तर स्थल में ''समयपरूवणदाए'' इत्यादि चार सूत्र हैं। द्वितीय अन्तरांतर स्थल में ''एवं छसमइयाणि'' इत्यादि दो सूत्र हैं। तृतीय अन्तरान्तर स्थल में ''एत्थ अप्पाबहुअं'' इत्यादि सूत्र को आदि में करके छह सूत्र कहेंगे। चतुर्थ अन्तरांतर स्थल में ''सुहुमतेउ'' इत्यादि चार सूत्रों का प्रतिपादन करेंगे। यह सूत्रों की समुदायपातनिका बताई गई है।

अब समयप्ररूपणा में चार समय वाले अनुभागबंधस्थान का प्रमाण निरूपित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

समयपरूवणदाए चदुसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।।२३०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**समयप्ररूपणायां तावत् चतुःसमयिकानि अनुभागबंधाध्यवसानस्थानानि असंख्यातलोकप्रमाणानि भवन्ति।**

अत्र कश्चिदाशंकते—

सत्प्ररूपणामकृत्वा प्रमाण-अल्पबहुत्वयोरेव प्ररूपणा किमर्थं क्रियते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैष दोषः, एतयोर्द्वयोरनुयोगद्वारयोरवगतयोस्तदवगमात्। न च सत्त्वरहितानां प्रमाणं स्तोकबहुत्वं च संभवति, विरोधात्। अथवा, अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणादि-अनुयोगद्वारैश्चैव कालविशेषितानां अनुभागबंधस्थानानां सत्त्वस्य प्ररूपणा कृता, एकसमयादिकालेन अविशेषितानां सत्त्वस्य गगनकुसुमसमानत्वप्रसंगात्।

जघन्यानुभागबंधस्थानप्रभृति यावदुत्कृष्टानुभागबंधस्थानमिति एतेषामसंख्यातलोकमात्राणामनुभाग-बंधस्थानानां प्रज्ञया एक पङ्क्तेः आकारेण रचनायां कृतायां तत्राधस्तनानि असंख्यातलोकमात्रानुभागबंधस्थानानि चतुःसमयिकानि। एकसमयमादिं कृत्वा उत्कृष्टेन निरंतरं चतुःसमयं बध्यन्ते इति भणितं भवति।

चतुःसमयादग्रे किन्न बध्यन्ते ?

स्वाभाविकत्वात् चतुः समयादुपरि न बध्यन्ते।

सूत्रार्थ—

समयप्ररूपणा में चार समय वाले अनुभागबंधाध्यवसानस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं।।२३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्र का अभिप्राय यह है कि समयप्ररूपणा में चार समय वाले अनुभाग बंध अध्यवसानस्थान असंख्यातलोकप्रमाण होते हैं।

यहाँ कोई आशंका करता है कि—

सत्प्ररूपणा न करके प्रमाण और अल्पबहुत्व की ही प्ररूपणा क्यों की जा रही है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि इन दो अनुयोगद्वारों के अवगत हो जाने पर उनके द्वारा सत्प्ररूपणा का अवगम हो जाता है। कारण यह है कि सत्व से रहित पदार्थों का प्रमाण और अल्पबहुत्व संभव नहीं है, क्योंकि उसमें विरोध आता है। अथवा अविभागप्रतिच्छेद प्ररूपणा आदि अनुयोगद्वारों के द्वारा ही काल से विशेषित अनुभागबंधाध्यवसानस्थानों के सत्व की प्ररूपणा की जा चुकी है, क्योंकि एक समय आदि काल की विशेषता से रहित उनके सत्व के आकाशकुसुम के समान होने का प्रसंग आता है।

जघन्य अनुभागबंधस्थान से लेकर उत्कृष्ट अनुभागबंधस्थान तक इन असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबंधस्थानों की वृद्धि से एक पंक्ति के आकार से रचना करने पर उनमें से नीचे के असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबंधस्थान चार समय वाले हैं। ये स्थान एक समय से लेकर उत्कर्ष से निरन्तर चार समय तक बंधते हें, ऐसा अभिप्राय है।

शंका—चार समय से आगे वे क्यों नहीं बंधते हैं ?

समाधान—यह स्वभाव ही है कि वे चार समय के आगे नहीं बंधते हैं।

संप्रति पंचसमयिकादि अनुभागबंधस्थानप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

पंचसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।।२३१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**चतुःसमयिकप्रायोग्यानुभागबंधस्थानेषु यदुत्कृष्टानुभागबंधस्थानमस्ति तत उपरिमानुभागबंधस्थानं पंचसमयिकं। तदनुभागबंधस्थानमादिं कृत्वा असंख्यातलोकमात्रानुभागबंधस्थानानि पंचसमयिकानि, एकसमयमादिं कृत्वा उत्कृष्टेन पंचसमयं बध्यन्ते इत्युक्तं भवति।**

एवं छसमइयाणि सत्तसमइयाणि अट्ठसमइयाणि अणुभागबंधज्झ-वसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।।२३२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पंचसमयिकानुभागबंधस्थानेभ्य उपरि असंख्यातलोकमात्राणि अनुभागबंध-स्थानानि षट्समयिकानि भवन्ति। तेभ्य उपरि सप्तसमयिकानि अनुभागबंधस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति। तेभ्य उपरि अष्टसमयिकानि अनुभागबंधस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति।**

पुणरवि सत्तसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।।२३३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अष्टसमयिकानुभागबंधस्थानेभ्योऽधो येनानुभागबंधस्थानानि सप्तसमयिक-प्रायोग्यानि पूर्वं प्ररूपितानि तेन 'पुणरवि' इति भणितं भवति। एषः 'पुणरवि' इति शब्दः उपरिमषट्पंचचतुः-**

अब पाँच समय आदि के अनुभागबंधस्थान का प्रमाण निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

पाँच समय वाले अनुभागबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं।।२३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चार समय के योग्य अनुभागबंधस्थानों में जो उत्कृष्ट अनुभागबंधस्थान है। उससे आगे का अनुभागबंधस्थान पाँच समय वाला है। उस अनुभागबंधस्थान से लेकर असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबंधस्थान पाँच समय वाले हैं अर्थात् वे एक समय से लेकर उत्कर्ष से पाँच समय तक बंधते हैं, ऐसा अभिप्राय है।

सूत्रार्थ—

इस प्रकार छह समय, सात समय और आठ समय योग्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं।।२३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पाँच समय के योग्य अनुभागबंध स्थानों से आगे असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबंधस्थान छह समय के योग्य हैं। उनसे आगे सात समय के योग्य अनुभागबंधस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं। उनसे आगे आठ समय के योग्य अनुभागबंधस्थान असंख्यातलोकप्रमाण होते हैं।

सूत्रार्थ—

फिर से भी सात समय के योग्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं।।२३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चूँकि आठ समय के योग्य अनुभागबंधस्थानों के नीचे सात समय के योग्य अनुभागबंधस्थानों की प्ररूपणा पहले की जा चुकी है, अतएव सूत्र में 'पुणरवि' अर्थात् 'फिर से भी' इस

समयिकानुभागबंधस्थानेषु अनुवर्तापयितव्यः।

अनुभागबंधस्थानानामनुभागबंधाध्यवसानव्यपदेशः कथं युज्यते ?

नैष दोषः, कार्ये कारणोपचारेण तेषां तदविरोधात्।

अनुभागबंधाध्यवसानस्थानानि नाम जीवस्य परिणामोऽनुभागबंधस्थाननिमित्तः। तेन एतस्य संज्ञा अनुभागबंधाध्यवसानस्थानं भवतीति युज्यते। एतानि सप्तसमयिकप्रायोग्यानुभागबंधस्थानानि असंख्यात-लोकमात्राणि भवन्ति।

कुतः ?

स्वाभाविकत्वात्।

एवं प्रथमान्तरान्तरस्थले चतुःसमयिकादिबंधस्थाननिरूपकानि चत्वारि सूत्राणि गतानि।

अधुना षट्समयिकादीनामनुभागबंधस्थानप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

एवं छसमइयाणि पंचसमइयाणि चदुसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाण-ट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।।२३४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**उपरिमसप्तसमयिकानुभागबंधस्थानेभ्य उपरिमानि षट्समयिकानि अनुभाग-बंधस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि। तेभ्य उपरि पंचसमयिकानि अनुभागबंधस्थानानि असंख्यात-लोकमात्राणि।**

पद का प्रयोग किया गया है। इस 'पुणरवि' शब्द की अनुवृत्ति आगे के छह, पाँच और चार समय के योग्य अनुभागबंधस्थानों में लेनी चाहिए।

शंका—अनुभागबंधस्थानों की अनुभागबंधाध्यवसानस्थान संज्ञा कैसे योग्य है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि कार्य में कारण का उपचार करने से उनकी अनुभागबंध अध्यवसानस्थान यह संज्ञा करने में कोई विरोध नहीं है।

अनुभागबंधाध्यवसानस्थान का अर्थ अनुभागबंधस्थान में निमित्तभूत जीव का परिणाम है। इस कारण इस अनुभागबंधस्थान की संज्ञा अनुभागबंधाध्यवसानस्थान उचित है। ये सात समय के योग्य अनुभागबंधस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं।

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—क्योंकि ऐसा स्वभाव ही है।

इस प्रकार प्रथम अन्तरान्तर स्थल में चार समय आदि वाले बंधस्थानों का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब षट् समय आदि वाले अनुभागबंधस्थानों का प्रमाण निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार छह समय योग्य, पाँच समय योग्य और चार समय योग्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं।।२३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपरिम सात समय के योग्य अनुभागबंधस्थानों से ऊपर के छह समय योग्य अनुभागबंधस्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। उनसे आगे पाँच समय योग्य अनुभागबंधस्थान

तेभ्य उपरि चतुः समयिकानि अनुभागबंधस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति। शेषं सुगममस्ति।

उपरि तिसमइयाणि बिसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।।२३५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**उपरिमचतुःसमयिकेभ्य उपरिमाणि त्रिसमयिकानि द्विसमयिकानि चानुभागबंधस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि भवन्तीति गृहीतव्यं। अत्रतनसूत्रे 'उवरि' शब्दोऽधः सिंहावलोकनक्रमेण उपरि च नदीस्त्रोतक्रमेण अनुवर्तापयितव्यः, अन्यथा तदर्थप्रतिपत्तेरभावात्।**

एवं समयप्ररूपणायां द्वितीयान्तरान्तरस्थले प्रमाणप्रतिपादनपरं सूत्रद्वयं गतम्।

एवं प्रमाणप्ररूपणा समाप्ता।

संप्रति अल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

एत्थ अप्पबहुअं।।२३६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**'कादव्वं' इति शब्दोऽध्याहर्तव्यः।**

किमर्थमत्राल्पबहुत्वं क्रियते ?

नैष दोषः, अल्पबहुत्वेऽनवगते अवगतप्रमाणस्यानवगतसमानत्वप्रसंगात्।

असंख्यातलोकप्रमाण हैं। उनसे आगे चार समय के योग्य अनुभागबंधस्थान असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। शेष कथन सुगम है।

सूत्रार्थ—

आगे तीन समय योग्य और दो समय योग्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं।।२३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपरिम चार समय के योग्य अनुभागबंधस्थानों से ऊपर के तीन समय योग्य और दो समय योग्य अनुभागबंधस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। यहाँ सूत्र में प्रयुक्त 'उवरि' शब्द की अनुवृत्ति पीछे सिंहावलोकन के क्रम से और आगे नदीस्त्रोत के क्रम से कर लेनी चाहिए, क्योंकि इसके बिना अर्थ की प्रतिपत्ति नहीं बनती है।

इस प्रकार समयप्ररूपणा में द्वितीय अन्तरान्तर स्थल में प्रमाण का प्रतिपादन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार प्रमाणप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

यहाँ अल्पबहुत्व का कथन करना योग्य है।।२३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र में 'कादव्वं' अर्थात् करने योग्य है, इस पद का अध्याहार करना चाहिए।

शंका—अल्पबहुत्व किसलिए किया जा रहा है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अल्पबहुत्व के ज्ञान न होने पर जाने हुए प्रमाण के भी

सव्वत्थोवाणि अट्ठसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि।।२३७।।

केभ्यः स्तोकानीति चेत् ? उपरिभण्यमानस्थानेभ्य इति ज्ञातव्यं।

कुतः ? स्वाभाविकत्वात्।

दोसु वि पासेसु सत्तसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि।।२३८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—'**असंख्याता लोकाः' गुणकारोऽत्र ज्ञातव्यः।**

एतत्कुतो ज्ञायते ?

परमगुरूपदेशादेव ज्ञायते। एषोऽविभागप्रतिच्छेदानां गुणकारो न भवति, किन्तु स्थानसंख्याया गुणकारोऽस्ति।

अविभागप्रतिच्छेदस्य गुणकारः किन्न भवति ?

न भवति, अनन्तगुणहीनप्रसंगात्।

तदपि कुतो ज्ञायते ?

अंगुलस्य असंख्यातभागमात्रानुभागबंधस्थानेषु अतिक्रान्तेषु असंख्यातसर्वजीवराशिमात्रगुणकार उपलभ्यते।

अज्ञात रहने के समान प्रसंग आता है।

सूत्रार्थ—

आठ समय योग्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान सबसे स्तोक हैं।।२३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—किनसे वे स्तोक हैं ? वे आगे कहे जाने वाले स्थानों से स्तोक हैं। कैसे ? क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

सूत्रार्थ—

दोनों ही पार्श्वभागों में सात समय योग्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान दोनों ही तुल्य होकर पूर्वोक्त स्थानों से असंख्यातगुणे हैं।।२३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ असंख्यातलोकमात्र गुणकार जानना चाहिए।

प्रश्न—यह कहाँ से जाना जाता है ?

उत्तर—यह परम गुरु के उपदेश से जाना जाता है। यह अविभागप्रतिच्छेदों का गुणकार नहीं है, किन्तु स्थानसंख्यात का गुणकार है।

शंका—यह अविभागप्रतिच्छेद का गुणकार क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं होता है, क्योंकि वैसा होने पर उसके अनन्तगुणे हीन होने का प्रसंग आता है।

शंका—वह भी कहाँ से जाना जाता है ?

समाधान—कारण यह है कि अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र अनुभागबंधस्थानों के अतिक्रान्त होने पर असंख्यात सब जीवराशि प्रमाण गुणकार पाया जाता है।

एवं छसमइयाणि पंचमसमइयाणि चदुसमइयाणि।।२३९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सूत्रे 'एवं' इति निर्देशः किमर्थं कृतः ?**

द्वयोरपि पार्श्वयोः स्थितषट्-पंच-चतुःसमयिकानुभागस्थानानां ग्रहणार्थं तत्तुल्यत्वप्रतिपादनार्थं असंख्यातलोकगुणकारज्ञापनार्थं च 'एवं' पदस्य निर्देशः कृतोऽस्ति।

उवरि तिसमइयाणि।।२४०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**त्रिसमयिकानि अनुभागबंधाध्यवसानस्थानानि असंख्यातगुणानि ज्ञातव्यानि भवन्ति। अत्र गुणकारोऽसंख्याता लोकाः।**

एतस्य सूत्रस्यासंपूर्णत्वं किमिति न प्रसज्यते ?

न प्रसज्यते, उपरिमसूत्रस्य अवयवानामत्र अनुवृत्तिभावेन एतस्य असंपूर्णत्वानुपपत्तेः।

बिसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२४१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र 'उवरि' शब्दोऽनुवर्तते। अथवा अर्थापत्तेश्चैव उपरित्वं ज्ञायते। शेषं**

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार छह समय योग्य, पाँच समय योग्य और चार समय योग्य स्थानों का अल्पबहुत्व समझना चाहिए।।२३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ शंका होती है कि—

सूत्र में 'एवं' पद का निर्देश किसलिए किया गया है ?

समाधान—दोनों ही पार्श्वभागों में स्थित छह, पाँच और चार समय योग्य अनुभागस्थानों का ग्रहण करने के लिए, उनकी समानता बतलाने के लिए तथा असंख्यात लोक गुणकार बतलाने के लिए 'एवं' पद का निर्देश किया गया है।

सूत्रार्थ—

आगे के तीन समय के योग्य अनुभाग बन्धाध्यवसानस्थान उनसे असंख्यातगुणे हैं।।२४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीन समय के योग्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार असंख्यातलोक प्रमाण है।

शंका—इस सूत्र के अपूर्ण होने का प्रसंग क्यों नहीं आता है ?

समाधान—नहीं आता है, क्योंकि आगे के सूत्र के अवयवों की यहाँ अनुवृत्ति होने से इस सूत्र की अपूर्णता घटित नहीं होती है।

सूत्रार्थ—

दो समय के योग्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान उससे असंख्यातगुणे हैं।।२४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ "उपरि" शब्द की अनुवृत्ति हो रही है। अथवा, अर्थापत्ति से ही

सुगमं। एतच्चैव सूत्रमनुभागबंधाध्यवसानस्थानानामपि योजयितव्यं, विशेषाभावात्।

अत्र कश्चिदाशंकते—

अनुभागबंधस्थानानां प्ररूपणायां अनुभागबंधाध्यवसानस्थानानां प्ररूपणा किमर्थं क्रियते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैषा शंका कर्तव्या, किंच—अनुभागबंधस्थानानि सहेतुकानि भवन्ति, न निर्हेतुकानि इति ज्ञापनार्थं तत्कारण-प्ररूपणा क्रियते। अनुभागस्थानप्रतिबद्धत्वात् अनुभागबंधाध्यवसानस्थानप्ररूपणा नासंबद्धापि इति निर्णेतव्या।

पुनरप्याशंकते कश्चित्—

अनुभागबंधाध्यवसानस्थानाविभागप्रतिच्छेदानामनन्तत्वं कुतो ज्ञायते ?

आचार्यवर्यः समाधत्ते—

तत्कार्यकर्मपरमाणूनामविभागप्रतिच्छेदस्य आनंतिकत्वस्यान्यथानुपपत्तेः।

अनुभागस्थानानां संख्यामाहात्म्यज्ञापनार्थं पूर्वोक्ताल्पबहुत्वस्य सर्वपदेषु अवस्थितक्रमेण सूक्ष्मतेजस्कायिक-कायस्थितिश्चैव गुणकारो भवति इति ज्ञापनार्थं च उत्तरसूत्रं भण्यते।

एवं तृतीयान्तरान्तरस्थलेऽल्पबहुत्वसूचनपराणि षट्सूत्राणि गतानि।

अधुना अल्पबहुत्वगुणकारनिर्णयार्थं सूत्रमवतार्यते —

उपरित्व का ज्ञान हो जाता है। शेष कथन सुगम है। इसी सूत्र की योजना अनुभागबंधस्थानों में भी करनी चाहिए, क्योंकि उनमें कोई विशेषता नहीं है।

यहाँ कोई शंका करता है—

अनुभागबंधस्थानों की प्ररूपणा में अनुभागबंधाध्यवसानस्थानों की प्ररूपणा किसलिए की जा रही है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं—

ऐसी शंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि अनुभागबंधस्थान सहेतुक हैं, निर्हेतुक नहीं है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए उनके कारणों की प्ररूपणा की जा रही है। अनुभागस्थानों से संबद्ध होने के कारण अनुभागबंधाध्यवसानस्थानों की प्ररूपणा असंबद्ध भी नहीं है। ऐसा निर्णय करना चाहिए।

पुनरपि कोई शंका करता है—

अनुभागबंधाध्यवसानस्थानों के अविभागप्रतिच्छेदों की अनन्तता कहाँ से जानी जाती है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं—

उनके कार्यभूत कर्मपरमाणुओं के अविभागप्रतिच्छेदों की अनन्तता चूँकि उसके बिना बन नहीं सकती है, अतएव इसी से उनकी अनन्तता सिद्ध है।

अनुभागस्थानों की संख्या की अधिकता बतलाने के लिए तथा पूर्वोक्त अल्पबहुत्व का गुणकार सब पदों में अवस्थित क्रम से तेजकायिक जीवों की कायस्थिति ही होती है, इस बात को भी बतलाने के लिए आगे का सूत्र कहेंगे।

इस प्रकार तृतीय अन्तरान्तर स्थल में अल्पबहुत्व को सूचित करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब अल्पबहुत्व के गुणकार का निर्णय करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सुहुमतेउक्काइया पवेसणेण असंखेज्जा लोगा।।२४२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अन्यकायिकेभ्य आगत्य सूक्ष्माग्निकायिकेषु उपपादः प्रवेशनं नाम। तेन प्रवेशनेन विशेषितास्तेजस्कायिका जीवाः असंख्यातलोकमात्रा भूत्वा स्तोकाः भवन्ति उपरि भण्यमानपदेभ्य इति।**

एतदपेक्षया केऽसंख्यातगुणाः ? इति चेत् सूत्रमवतार्यते —

अगणिकाइया असंखेज्जगुणा।।२४३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अग्निकायिकनामकर्मोदयसंयुक्ताः सर्वे जीवा 'अग्निकायिका' इति नाम। ते असंख्यातगुणा भवन्ति, अन्तर्मुहूर्तसंचितत्वात्।**

को गुणकारः ?

अन्तर्मुहूर्तं गुणकारो ज्ञातव्यः।

अग्निकायिकजीवकायस्थितिज्ञापनार्थं सूत्रमवतार्यते —

कायट्ठिदी असंखेज्जगुणा।।२४४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अन्यकायिकेभ्य आगत्य अग्निकायिकेषु उत्पन्नप्रथमसमये चैवाग्निकायिक-नामकर्मण उदयो भवति। तदुदययुक्तप्रथमसमयप्रभृति उत्कर्षेण यावद् असंख्याता लोका इति तदुदयकालो भवति। सः कालोऽग्निकायिकजीवानां कायस्थितिर्नाम। सा कायस्थितिः अग्निकायिकराशिभ्योऽसंख्यातगुणाः।**

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म तेजकायिक जीव प्रदेश की अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण हैं।।२४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अन्यकायिक जीवों में से आकर सूक्ष्म अग्निकायिक जीवों में उत्पन्न होने का नाम प्रवेश है। उस प्रवेश से विशेषता को प्राप्त हुए तेजकायिक जीव असंख्यात लोक प्रमाण होकर आगे कहे जाने वाले पदों की अपेक्षा सबसे स्तोक—कम हैं, ऐसा सूत्र का अभिप्राय है।

इनकी अपेक्षा से कौन असंख्यातगुणे हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उनसे अग्निकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं।।२४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अग्निकायिक नामकर्म के उदय से संयुक्त सब जीव अग्निकायिक कहे जाते हैं। वे सूक्ष्म अग्निकायिक जीवों से असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अन्तर्मुहूर्त में संचित होते हैं। अर्थात् सूक्ष्म अग्निकायिक जीवों की अपेक्षा बादर अग्निकायिकजीव असंख्यातगुणे होते हैं।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

उत्तर—गुणकार अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए।

अब अग्निकायिक जीवों की कायस्थिति बतलाने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

अग्निकायिकों की कायस्थिति उनसे असंख्यातगुणी है।।२४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अन्य काय वाले जीवों में से अग्निकायिक जीवों में उत्पन्न होने के प्रथम समय से ही अग्निकायिक नामकर्म का उदय होता है। उसके उदय युक्त प्रथम समय से लेकर उत्कर्ष से असंख्यात लोक प्रमाण उसका उदयकाल है। वह काल अग्निकायिकों की कायस्थिति कहा जाता है। वह

को गुणकारः ?

असंख्याता लोकाः।

संप्रति अनुभागबंधाध्यवसानस्थानप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२४५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अनुभागबंधस्थानानि अनुभागबंधाध्यवसानस्थानानि च असंख्यातगुणानि इति भणितं भवति।**

एतत्कथं लभ्यते ?

द्वयोरपि अर्थयोर्वाचकभावेन एतस्य सूत्रस्य उपलंभात्। अत्र गुणकारप्रमाणमसंख्याता लोकाः।

तत्कुतो ज्ञायते ?

गुरूपदेशात् ज्ञायते।

एवं चतुर्थान्तरान्तरस्थले अग्निकायिकजीवसर्वस्तोककथनपराणि चत्वारि सूत्राणि गतानि।

एवमष्टमस्थले समयप्ररूपणायां चतुरन्तरस्थलगर्भितानि षोडशसूत्राणि गतानि।

एवं समयप्ररूपणा समाप्ता।

कायस्थिति अग्निकायिक जीवों की राशि से असंख्यातगुणी है।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

उत्तर—गुणकार असंख्यातलोक प्रमाण है।

अब अनुभागबंध अध्यवसानस्थान का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अनुभागबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनुभागबंधस्थान और अनुभागबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं, यह अभिप्राय है।

शंका—यह कैसे पाया जाता है ?

समाधान—कारण यह है कि यह सूत्र इन दोनों ही अर्थों के वाचक स्वरूप से पाया जाता है। यहाँ गुणकार का प्रमाण असंख्यातलोक प्रमाण है।

प्रश्न—वह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

उत्तर—-वह गुरु के उपदेश से जाना जाता है।

इस प्रकार चतुर्थ अन्तरान्तर स्थल में अग्निकायिक जीव सबसे कम हैं इस कथन की मुख्यता वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार आठवें स्थल में समयप्ररूपणा में चार अन्तरस्थलों से समन्वित सोलह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार समयप्ररूपणा समाप्त हुई।

वृद्धिप्ररूपणा

संप्रति वृद्धिप्ररूपणायां षट्वृद्धि-हानिप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

वड्ढिपरूवणदाए अत्थि अणंतभागवड्ढि-हाणी असंखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्जगुणवड्ढि-हाणी असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणी अणंतगुणवड्ढि-हाणी।।२४६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतेन सूत्रेण षण्णां वृद्धि-हानीनां सत्त्वप्ररूपणा कृता।**

अत्र कश्चिदाशंकते—

षट्स्थानप्ररूपणायां चैवावगतास्तित्वानां षण्णां वृद्धिहानीनां नात्र प्ररूपणा क्रियते, पुनरुक्तदोषप्रसंगात्?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नात्र पुनरुक्तदोषो ढौकते, वृद्धिहानीनां कालस्य प्रमाणाल्पबहुत्वप्ररूपणार्थं षण्णां वृद्धि-हानीनां अस्तित्वस्य स्मारणकरणात्। अथवा अनंतगुणवृद्धि-हानिकालः इति कालशब्दस्य अध्याहारे कृते षण्णां वृद्धिहानीनां कालस्य सत्त्वप्ररूपणा इति कृत्वा न पुनरुक्तदोषो ढौकते।

अधुना पंचवृद्धि-पंचहानिकालप्ररूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

पंचवड्ढि-पंचहाणीओ केवचिरं कालादो होंति ?।।२४७।।

वृद्धिप्ररूपणा

अब वृद्धिप्ररूपणा में छह प्रकार की वृद्धि और हानि को प्ररूपित करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

वृद्धिप्ररूपणा की अपेक्षा अनन्तभागवृद्धि-हानि, असंख्यातभागवृद्धि-हानि संख्यातभागवृद्धि-हानि, संख्यातगुणवृद्धि-हानि, असंख्यातगुणवृद्धि-हानि और अनन्तगुणवृद्धि-हानि होती है।।२४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र के द्वारा छह प्रकार की वृद्धि और हानियों की सत्त्वप्ररूपणा की गई है।

यहाँ कोई शंका करता है—

छह वृद्धियों व हानियों का अस्तित्व चूँकि षट्स्थानप्ररूपणा से ही जाना जा चुका है अतएव उनकी प्ररूपणा यहाँ नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि पुनरुक्त दोष का प्रसंग आता है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं—

यहाँ पुनरुक्त दोष नहीं आता है, क्योंकि वृद्धियों व हानियों के काल के प्रमाण व अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करने के लिए इस सूत्र द्वारा छह वृद्धियों व हानियों के अस्तित्व का स्मरण कराया गया है। अथवा अनन्तगुणवृद्धि-हानिकाल इस प्रकार काल शब्द का अध्याहार करने पर छह वृद्धियों व हानियों के काल की यह सत्त्वप्ररूपणा है, ऐसा मानकर पुनरुक्त दोष नहीं आता है।

अब पाँच वृद्धि और पाँच हानियों का काल प्ररूपित करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

पाँच वृद्धियाँ व हानियाँ कितने काल तक होती हैं ?।।२४७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतत्पृच्छासूत्रं एकसमयमादिं कृत्वा यावत्संभवोऽस्ति इति कालमपेक्षते।**

जहण्णेण एगसमओ।।२४८।।

एताः पंचवृद्धि-हानीः एकसमयमेव कृत्वा द्वितीयसमये अनर्पितवृद्धिहानीषु गते सति एकसमयो लभ्यते।

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।।२४९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पंचानां वृद्धि-हानीनां मध्ये यदि एकस्यां वृद्धौ हानौ वा सुष्ठु दीर्घकालं तिष्ठति तर्हि आवलिकाया असंख्यातभागमात्रं चैव तिष्ठति, न आवलिकाया अतिक्रांतं कालं, स्वाभाविकत्वात्।**

कश्चिदाशंकते—

अनंतभागवृद्धिविषयमपेक्ष्य असंख्यातभागवृद्धिविषयोऽङ्गुलस्य असंख्यातभागगुण इति असंख्यात-भागवृद्धिकालः असंख्यातपल्योपममात्रः किन्न जायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैषो वक्तव्यः, विषयगुणकारप्रतिभागेन अनुभागबंधकाले इष्यमाणे अनंतगुणवृद्धि-हानीनामसंख्यात-लोकमात्रबंधकालप्रसंगात्।

न चैवं, सूत्रे तासामन्तर्मुहूर्तमात्रोत्कृष्टकालनिर्देशात्।

अधुना अनंतगुणवृद्धिहानिकालनिर्णयार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह पृच्छासूत्र एक समय से लेकर जहाँ तक संभव है, उतने काल की अपेक्षा करता है।

सूत्रार्थ—

जघन्य से इनका एक समय है।।२४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन पाँच वृद्धियों व हानियों को एक समय ही करके द्वितीय समय में अविवक्षित वृद्धियों व हानियों के प्राप्त होने पर उनका एक समय काल उपलब्ध होता है।

सूत्रार्थ—

वे उत्कृष्ट से आवली के असंख्यातवें भाग काल तक होती हैं।।२४९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पाँच वृद्धियों व हानियों के मध्य में यदि एक वृद्धि अथवा हानि में अतिशय दीर्घकाल रहता है, तो वह आवली के असंख्यातवें भागमात्र ही रहता है, आवली का अतिक्रमण कर वह अधिक काल तक नहीं रहता, क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

यहाँ कोई शंका करता है—

अनन्तभागवृद्धि के विषय की अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि का नियम चूंकि अंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणित है, अतएव असंख्यातभागवृद्धि का काल असंख्यात पल्योपम प्रमाण क्यों नहीं होता है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि विषयगुणकार के प्रतिभाग से अनुभागबंध के काल को स्वीकार करने पर अनन्तगुणवृद्धि व हानि संबंधी बंधकाल के असंख्यात लोकमात्र होने का प्रसंग आता है।

परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि सूत्र में उनके उत्कृष्ट काल का निर्देश अन्तर्मुहूर्त मात्र काल ही किया है।

अब अनन्तगुणवृद्धि और हानि का काल निर्णय करने हेतु प्रश्नोत्तर रूप से तीन सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

अणंतगुणवड्ढि-हाणीयो केवचिरं कालादो होंति ?।।२५०।।

जहण्णेण एगसमओ।।२५१।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२५२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अनंतगुणवृद्धिबंधमनन्तगुणहानिबंधं चैकसमयं कृत्वा द्वितीयसमयेऽनर्पित-वृद्धिहानीनां गतस्य तासां एकसमयकालदर्शनात्।**

एतयोर्द्वयोर्वृद्धिहान्योर्मध्ये एकस्यां वृद्धौ हानौ वा सुष्ठु यदि दीर्घकालं तिष्ठति तर्हि अन्तर्मुहूर्तमेव नाधिकं, जिनोपदेशाभावात्। विशुद्ध्यमानो जीवो निरन्तरमन्तर्मुहूर्तकालमशुभानां प्रकृतीनामनुभागस्थानानि अनंतगुणहान्या सह बध्नाति, शुभानां प्रकृतीनामनन्तगुणवृद्ध्या सह इति। संक्लिष्यमाणो जीवोऽशुभानां प्रकृतीनामनुभागस्थानानि निरन्तरमन्तर्मुहूर्तकालमनन्तगुणवृद्ध्या सह, शुभानां प्रकृतीनामनुभागस्थानानि अनंतगुणहान्या सह बध्नाति इति भणितं भवति।

संप्रति एताभ्यां द्वाभ्यामनुयोगद्वाराभ्यां सूचितमनुभागवृद्धिहानिकालानामल्पबहुत्वं वक्ष्यन्ते। तद्यथा—

सर्वस्तोकोऽनन्तभागवृद्धि-हानिकालः। असंख्यातभागवृद्धि-हानिकालः असंख्यातगुणः।

का गुणकारः ?

सूत्रार्थ—

अनन्तगुणवृद्धि और हानि कितने काल तक होती है ?।।२५०।।

जघन्य से वे एक समय तक होती हैं।।२५१।।

उत्कृष्ट से वे अन्तर्मुहूर्त काल तक होती हैं।।२५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण यह है कि अनन्तगुणवृद्धिबंध और अनन्तगुणहानिबंध को एक समय में करके द्वितीय समय में अविवक्षित वृद्धि अथवा हानि के बंध को प्राप्त हुए जीव के उनका एक समय काल देखा जाता है।

इन दो वृद्धि-हानियों के मध्य में एक वृद्धि अथवा हानि में अतिशय दीर्घकाल तक यदि रहता है, तो अन्तर्मुहूर्त ही रहता है, अधिक काल तक नहीं, क्योंकि वैसा जिन भगवान् का उपदेश नहीं है। विशुद्धि को प्राप्त होने वाला जीव निरन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक अशुभ प्रकृतियों के अनुभागस्थानों को अनंतगुण हानि के साथ बांधता है और शुभ प्रकृतियों के अनुभागस्थानों को अनन्तगुणवृद्धि के साथ बांधता है। इसके विपरीत संक्लेश को प्राप्त होने वाला जीव अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग स्थानों को निरन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक अनंतगुणवृद्धि के साथ बांधता है तथा शुभ प्रकृतियों के अनुभाग स्थानों को अनन्तगुणहानि के साथ बांधता है, यह उक्त कथन का अभिप्राय है।

इन दो अनुयोगद्वारों के द्वारा सूचित अनुभाग की वृद्धि एवं हानि के काल संबंधी अल्पबहुत्व को कहते हैं। वह इस प्रकार है—

अनन्तभागवृद्धि व हानि का काल सबसे स्तोक है। उससे असंख्यातभागवृद्धि व हानि का काल असंख्यातगुणा है।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

आवलिकाया असंख्यातभागः।

कुतः ?

अनंतभागवृद्धिहानिविषयात् असंख्यातभागवृद्धि-हानिविषयस्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्। संख्यातभागवृद्धि-हानिकालः संख्यातगुणः।

कुतः ?

असंख्यातभागवृद्धिहानिविषयमपेक्ष्य संख्यातभागवृद्धिहानिविषयस्य संख्यातगुणत्वोपलंभात्।

तच्च संख्यातगुणत्वं कस्मात् प्रमाणात् ज्ञायते ?

युक्तेर्ज्ञायते। सा च युक्तिः पूर्वं प्ररूपिता इति नेह प्ररूप्यते। संख्यातगुणवृद्धि-हानिकालः संख्यातगुणः, पूर्वोक्तविषयात् एतासां विषयस्य संख्यातगुणत्वदर्शनात्। असंख्यातगुणवृद्धि-हानिकालः असंख्यातगुणः, पूर्वोक्तवृद्धिहानिविषयात् एतासां विषयस्य युक्तेः असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

को गुणकारः ?

आवलिकायाः असंख्यातभागः। अनंतगुणवृद्धि-हानिकालः असंख्यातगुणः, पूर्वोक्तविषयात् एतासां वृद्धिहानीनां विषयस्य युक्तेः असंख्यातगुणत्वदर्शनात्।

को गुणकारः ?

आवलिकायाः असंख्यातभागः।

उत्तर—गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।

कैसे ?

क्योंकि अनन्तभागवृद्धि व हानि के विषय की अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि व हानि का विषय असंख्यातगुणा पाया जाता है और संख्यात भाग वृद्धि-हानि का काल संख्यातगुणा है।

ऐसा क्यों ?

क्योंकि असंख्यातभागवृद्धि व हानि के विषय की अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि व हानि का विषय संख्यातगुणा पाया जाता है।

शंका—वह संख्यातगुणत्व किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—वह युक्ति से जाना जाता है और वह युक्ति चूँकि पहले बतलाई जा चुकी है, अतएव उसकी प्ररूपणा यहाँ नहीं की जाती है।

उससे संख्यातगुणवृद्धि और हानि का काल संख्यातगुणा है, क्योंकि पूर्व की वृद्धि और हानि के विषय की अपेक्षा इनका विषय संख्यातगुणा देखा जाता है। उससे असंख्यातगुणवृद्धि और हानि का काल असंख्यातगुणा है, क्योंकि पूर्व की वृद्धि और हानि के विषय की अपेक्षा इनका विषय युक्ति से असंख्यातगुणा पाया जाता है।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

उत्तर—गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। उससे अनन्तगुणवृद्धि और हानि का काल असंख्यातगुणा है, क्योंकि पूर्व की वृद्धि व हानि के विषय की अपेक्षा इन वृद्धि-हानियों का विषय युक्ति से असंख्यातगुणा देखा जाता है।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

उत्तर—गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।

वृद्धिकालो विशेषाधिकः।

कियन्मात्रेण विशेषाधिकः इति चेत् ?

अधस्तनाशेषवृद्धिकालमात्रेण विशेषाधिको ज्ञातव्यः।

हानिकालोऽपि वृद्धिकालेन सह किन्न प्ररूपितः ?

न प्ररूपितः, किंच — वृद्धिकालेन हानिकालः समानः इति पृथक् प्ररूपणायाः फलाभावात्।

अत्र वृद्धिकालाल्पबहुत्वं समाप्तम्।

एवं नवमस्थले वृद्धिप्ररूपणायां षड्वृद्धिहानिप्ररूपकानि सप्तसूत्राणि गतानि।

इति वृद्धिप्ररूपणा गता।

अथ यवमध्यप्ररूपणा प्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

जवमज्झपरूवणदाए अणंतगुणवड्ढी अणंतगुणहाणी च जवमज्झं।।२५३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **यवमध्यप्ररूपणायां अनंतगुणवृद्धिरनन्तगुणहानिश्च यवमध्यमस्ति।**

अत्र कश्चिदाह —

एतत् किं कालयवमध्यं आहोस्वित् जीवयवमध्यमिति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

जीवयवमध्यं न भवति, अनुभागस्थानेषु जीवानामवस्थानक्रमस्य पूर्वमप्ररूपितत्वात्। ततः कालयव-

---

वृद्धि का काल उससे विशेष अधिक है।

प्रश्न — कितने मात्र से वह विशेष अधिक है ?

उत्तर — वह अधस्तन समस्त वृद्धियों के काल से विशेष अधिक है।

प्रश्न — वृद्धिकाल के साथ हानिकाल की प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

उत्तर — नहीं की है, क्योंकि हानिकाल वृद्धिकाल के बराबर है, अतः उसकी अलग से प्ररूपणा करना निष्फल है।

यहाँ वृद्धिकाल का अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार नवमें स्थल में वृद्धिप्ररूपणा में छह प्रकार की वृद्धि-हानि का प्ररूपण करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

यह वृद्धिप्ररूपणा पूर्ण हुई।

अब यवमध्य प्ररूपणा को प्ररूपित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

यवमध्य की प्ररूपणा में अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानि यवमध्य है।।२५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ सूत्र का तात्पर्य यह है कि यवमध्य की प्ररूपणा में अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानि यवमध्य होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

यह क्या कालयवमध्य है या जीवयवमध्य है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि —

वह जीवयवमध्य नहीं होता है, क्योंकि अनुभागस्थानों में जीवों के अवस्थान के क्रम की पहले

मध्यमेतदस्ति।

पुनः कश्चिदाशंकते—

यद्येवं तर्हि यवमध्यप्ररूपणा न कर्तव्या, समयप्ररूपणायाश्चैव असंख्यातलोकमात्राणामष्टसमयिकाना-मनुभागस्थानानां कालमाश्रित्य यवमध्यत्वसिद्धेः।

आचार्यदेवः समाधत्ते—

सत्यमेतत्, कालयवमध्यं समयप्ररूपणायाश्चैव सिद्धमिति, किन्तु तस्य यवमध्यस्य प्रारम्भः परिसमाप्तिश्च कस्यां वृद्धौ हानौ वा जाता इति न ज्ञायते। तस्य प्रारम्भपरिसमाप्ती एतासु वृद्धिहानिषु जाते इति ज्ञापनार्थं यवमध्यप्ररूपणा आगता। अनंतगुणवृद्धेर्यवमध्यस्य आदिर्भवति, पूर्वमुद्दिष्टत्वात् गुरुपदेशाद्वा। पारिशेषात् अनंतगुणहानेः परिसमाप्तिर्भवतीति गृहीतव्यं।

येनेदं सूत्रं देशामर्शकं तेन यवमध्यात् अधस्तन-उपरिम-चतुः-पंच-षट्-सप्तसमयप्रायोग्यस्थानानां त्रिसमय-द्विसमयप्रायोग्यस्थानानां च प्रारम्भः अनन्तगुणवृद्धेः परिसमाप्तिः अनंतगुणहानेरिति सिद्धं।

एवं दशमस्थले यवमध्यप्ररूपणानिरूपणपरं एकं सूत्रं गतम्।

इति यवमध्यप्ररूपणा समाप्ता।

अधुना सर्वस्थानानां पर्यवसानप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

पज्जवसाणपरूवणदाए अणंतगुणस्स उवरि अणंतगुणं भविस्सदि त्ति पज्जवसाणं।।२५४।।

प्ररूपणा नहीं की गई है। इस कारण यह कालयवमध्य है।

पुनः कोई शंका करता है कि—

यदि ऐसा है तो फिर यवमध्य की प्ररूपणा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि समय प्ररूपणा से ही आठ समय योग्य असंख्यात लोकमात्र अनुभागस्थानों को काल का आश्रय करके यवमध्यपना सिद्ध है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं—

सचमुच में यह कालयवमध्य समयप्ररूपणा से ही सिद्ध है, किन्तु उस यवमध्य का प्रारंभ और समाप्ति कौन सी वृद्धि अथवा हानि में हुई है, यह नहीं जाना जाता है। इस कारण उसका प्रारंभ और समाप्ति इन वृद्धि हानियों में हुई है, यह बतलाने के लिए यवमध्य प्ररूपणा प्राप्त हुई है। अनन्तगुणवृद्धि से यवमध्य का प्रारंभ होता है, क्योंकि वह पूर्व में उद्दिष्ट—कथित है अथवा गुरु का वैसा उपदेश है। पारिशेष न्याय से अनन्तगुणहानि से उसकी समाप्ति होती है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

चूँकि यह सूत्र देशामर्शक है अतएव यवमध्य से नीचे के और ऊपर के चार, पाँच, छह और सात समय योग्य स्थानों का तथा तीन समय व दो समय योग्य स्थानों का प्रारंभ अनन्तगुणवृद्धि से होता है और समाप्ति अनन्तगुणहानि से होती है, यह सिद्ध हुआ।

इस प्रकार दशवें स्थल में यवमध्यप्ररूपणा का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार यवमध्यप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब सभी स्थानों की पर्यवसानप्ररूपणा करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

पर्यवसानप्ररूपणा में अनन्तगुणा के ऊपर अनन्तगुणा होगा यह पर्यवसान है।।२५४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूक्ष्मैकेन्द्रियजघन्यस्थानप्रभृति पूर्वप्ररूपिताशेषस्थानानां पर्यवसानं अनंतगुणस्योपरि अनंतगुणं भवतीति भूत्वा स्थितम्।**

एवं एकादशस्थले पर्यवसानप्ररूपणानिरूपणपरं एकं सूत्रं गतम्।

इति पर्यवसानप्ररूपणा समाप्ता।

अथ अल्पबहुत्वानुयोगद्वारे प्रथमान्तरस्थले द्विभेदसूचनपरं एकं सूत्रं। अनंतरं द्वितीयेऽन्तरस्थले अनंतरोपनिधानामप्रथमभेदस्याल्पबहुत्वनिरूपणपराणि षट्सूत्राणि। पुनश्च तृतीयेऽन्तरस्थले परंपरोपनिधानामद्वितीय-भेदस्याल्पबहुत्वप्रतिपादकानि षट्सूत्राणि वक्ष्यन्ते।

अधुना अल्पबहुत्वानुयोगद्वारभेदप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

अप्पाबहुए त्ति तत्थ इमाणि दुबे अणुयोगद्दाराणि अणंतरोवणिधापरंपरोवणिधा।।२५५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अनंतगुणवृद्धौ असंख्यातगुणवृद्धौ संख्यातगुणवृद्धौ संख्यातभागवृद्धौ असंख्यातभागवृद्धौ अनन्तभागवृद्धौ अनन्तराधस्तनस्थानमवलोक्य स्थितस्थानानां या स्तोकबहुत्वप्ररूपणा सा अनंतरोपनिधा कथ्यते। जघन्यस्थानमपेक्ष्य अनंतभागाभ्यधिकादिस्वरूपेण स्थितस्थानानां या स्तोकबहुत्व-प्ररूपणा सा परंपरोपनिधा गीयते। एवमत्र द्विविधमेव अल्पबहुत्वं भवति, तृतीयस्य अल्पबहुत्वभंगस्यासंभवात्।**

एवं प्रथमेऽन्तरस्थले अल्पबहुत्वानुयोगभेद सूचकं एकं सूत्रं गतम्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव के जघन्य स्थान से लेकर पहले कहे गये समस्त स्थानों का पर्यवसान अनन्तगुणा के ऊपर अनन्तगुणा होगा, इस प्रकार होकर स्थित है।

इस प्रकार ग्यारहवें स्थल में पर्यवसान प्ररूपणा का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार पर्यवसानप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब अल्पबहुत्वानुयोगद्वार में प्रथम अन्तरस्थल में दो भेदों को सूचित करने वाला एक सूत्र है। उसके बाद द्वितीय अन्तरस्थल में अनंतरोपनिधा नामक प्रथम भेद का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले छह सूत्र हैं। पुनश्च तृतीय अन्तरस्थल में परंपरोपनिधा नामक द्वितीय भेद का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र कहेंगे।

अब अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार के भेदों का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अल्पबहुत्व-इस अधिकार में अनन्तरोपनिधा और परंपरोपनिधा ये दो अनुयोगद्वार होते हैं।।२५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनन्तगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि और अनन्तभागवृद्धि में अनन्तर अधस्तन स्थान को देखते हुए अवस्थित स्थानों की जो अल्पबहुत्व प्ररूपणा है, वह अनन्तरोपनिधा कहलाती है। जघन्य स्थान की अपेक्षा करके अनन्तवें भाग से अधिक इत्यादि स्वरूप स्थित स्थानों की जो अल्पबहुत्वप्ररूपणा है, वह परम्परोपनिधा है। इस प्रकार यहाँ दो प्रकार का ही अल्पबहुत्व होता है, क्योंकि तृतीय अल्पबहुत्वभंग की यहाँ संभावना नहीं है।

इस प्रकार प्रथम अन्तरस्थल में अल्पबहुत्वानुयोग के भेद की सूचना देने वाला एक सूत्र हुआ।

अधुना प्रथमभेदस्वरूपानन्तरोपनिधाप्ररूपणायां अल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

तत्थ अणंतरोवणिधाए सव्वत्थोवाणि अणंतगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि।।२५६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **यद्यपि एतदल्पबहुत्वं सर्वस्थानान्याश्रित्यावस्थितं तर्ह्यपि अव्युत्पन्नजनस्य व्युत्पत्तिजननार्थमेकषट्स्थानमाश्रित्य अल्पबहुत्वप्ररूपणा क्रियते। येन एकषट्स्थाने अनंतगुणवृद्धिस्थानमेकं चैव तेन सर्वस्तोकमिति भणितमस्ति।**

असंखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२५७।।

अत्र गुणकार एककाण्डकमात्रो भवति, एकषट्स्थानाभ्यन्तरे काण्डकमात्राणां चैव असंख्यातगुणवृद्धीनामुपलंभात्।

संखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२५८।।

अत्र गुणकारो रूपाधिककाण्डकं। विशेषोऽत्र धवलाटीकायां द्रष्टव्यः।

संखेज्जभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२५९।।

अत्रापि गुणकारो रूपाधिककाण्डकं ज्ञातव्यम्।

अब प्रथम भेदरूप अनंतरोपनिधा की प्ररूपणा में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उनमें अनन्तरोपनिधा में अनन्तगुणवृद्धिस्थान सबसे स्तोक हैं।।२५६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यद्यपि यह अल्पबहुत्व सब स्थानों का आश्रय करके स्थित है, तो भी अव्युत्पन्नजन को व्युत्पन्न बनाने के लिए एक षट्स्थान का आश्रय करके अल्पबहुत्वप्ररूपणा की जा रही है। चूँकि एक षट्स्थान में अनन्तगुणवृद्धिस्थान एक ही है, अतएव 'सबसे स्तोक' ऐसा कहा गया है।

सूत्रार्थ —

उनसे असंख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ गुणकार एक काण्डक मात्र है, क्योंकि एक षट्स्थान के भीतर काण्डक प्रमाण ही असंख्यातगुणवृद्धि पाई जाती हैं।

सूत्रार्थ —

उनसे संख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ गुणकार एक अंक से अधिक काण्डक है। इसका विस्तार धवला टीका में देखना चाहिए।

सूत्रार्थ —

उनसे संख्यातभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२५९।।

यहाँ भी गुणकार एक अंक से अधिक काण्डक जानना चाहिए।

असंखेज्जभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२६०।।

अत्रापि गुणकारो रूपाधिककाण्डकं मन्तव्यं।

अणंतभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२६१।।

अत्रापि गुणकारो रूपाधिककाण्डकमवबोद्धव्यं। रूपाधिककाण्डकेन असंख्यातभागवृद्धिस्थानेषु गुणितेषु एकषट्स्थानाभ्यन्तरे अनंतभागवृद्धिस्थानानामुत्पत्तेः। अत्रापि विस्तरो धवलाटीकायां अवलोकनीयं।

एवं द्वितीयेऽन्तरस्थले अनन्तरोपनिधायां अल्पबहुत्वनिरूपकानि षट्सूत्राणि गतानि।

इति अनन्तरोपनिधाल्पबहुत्वं समाप्तम्।

अधुना परंपरोपनिधाल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

परंपरोपणिधाए सव्वत्थोवाणि अणंतभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि।।२६२।।

असंखेज्जभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२६३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्यां परंपरोपनिधायां अनंतभागाभ्यधिकानि स्थानानि सर्वस्तोकानि, एक-काण्डकप्रमाणत्वात्।**

असंख्यातभागाभ्यधिकानि स्थानानि असंख्यातगुणानि सन्ति। अत्र गुणकारो रूपाधिककाण्डकं वर्तते।

सूत्रार्थ—

उनसे असंख्यातभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२६०।।

यहाँ भी गुणकार एक अंक से अधिक काण्डक मानना चाहिए।

सूत्रार्थ—

उनसे अनन्त भागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ पर भी गुणकार एक अधिक काण्डक जानना चाहिए, असंख्यात भागवृद्धिस्थानों को गुणित करने पर एक षट्स्थान के भीतर अनन्तभागवृद्धिस्थान उत्पन्न होते हैं।

इसका भी विस्तृत वर्णन धवला टीका में देखना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय अन्तर स्थल में अनन्तरोपनिधा में अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार अनन्तरोपनिधा में अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

अब परंपरोपनिधा में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

परम्परोपनिधा में अनन्तभागवृद्धिस्थान सबसे स्तोक हैं।।२६२।।

उनसे असंख्यातभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२६३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस परम्परोपनिधा में अनन्तभाग अधिक वाले स्थान सबसे कम हैं, क्योंकि वे एक काण्डक के बराबर हैं।

असंख्यातभाग अधिक वाले स्थान उनसे असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार एक अंक से अधिक काण्डक है।

संखेज्जभागब्भहियट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।२६४।।

संखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।।२६५।।

असंखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२६६।।

अणंतगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२६७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्राल्पबहुत्वे समाप्ते अनुभागबंधाध्यवसानस्थानप्ररूपणा समाप्ता कृतास्ति। संप्रति एतेन सूत्रेण सूचितानां अनुभागसत्त्वकर्मस्थानानां प्ररूपणां करिष्यन्त्याचार्यदेवाः—**

अत्र कश्चिदाह—पूर्वं प्ररूपितबंधस्थानानां अत्र भण्यमानसत्त्वकर्मस्थानानां च को विशेषः?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

उच्यते—बंधेन यानि स्थानानि निष्पद्यन्ते तानि बंधस्थानानि। अनुभागसत्त्वे घातायिष्माने यानि स्थानानि निष्पद्यन्ते। तान्यपि कान्यपि बंधस्थानानि चैव भण्यन्ते, बध्यमानानुभागस्थानेन समानत्वात्। यानि पुनः अनुभागस्थानानि घातात् चैव उत्पद्यन्ते न बंधात्, तानि अनुभागसत्त्वकर्मस्थानानि भण्यन्ते। तेषां चैव हतसमुत्पत्तिकस्थानानीति द्वितीया संज्ञा वर्तते।

अत्र कश्चिदाह—

बंधस्थानप्ररूपणां मुक्त्वा प्रथमं हतसमुत्पत्तिकस्थानप्ररूपणा किन्न कृता ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

सूत्रार्थ—

उनसे संख्यातभागवृद्धिस्थान संख्यातगुणे हैं।।२६४।।

उनसे संख्यातगुणवृद्धिस्थान संख्यातगुणे हैं।।२६५।।

उनसे असंख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२६६।।

उनसे अनन्तगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ अल्पबहुत्व के समाप्त होने पर अनुभागबंधअध्यवसानस्थान की प्ररूपणा समाप्त की गई है।

अब इस सूत्र से सूचित अनुभागसत्त्वकर्मस्थानों की प्ररूपणा आचार्य देव करेंगे।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

पूर्व में प्ररूपित किये गये बंधस्थानों में और यहाँ कहे जाने वाले सत्त्वकर्मस्थानों में क्या विशेष अन्तर है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि—

बंध से जो स्थान उत्पन्न होते हैं, वे बंधस्थान कहे जाते हैं। अनुभागसत्त्व के घाते जाने पर जो स्थान उत्पन्न होते हैं, उनमें से कुछ तो बंधस्थान ही कहे जाते हैं, क्योंकि वे बांधे जाने वाले अनुभागस्थान के समान हैं। परन्तु जो अनुभागस्थान घात से ही उत्पन्न होते हैं, बंध से उत्पन्न नहीं होते हैं, वे अनुभागसत्त्वस्थान कहे जाते हैं, उनकी ही हतसमुत्पत्तिकस्थान यह दूसरी संज्ञा है।

यहाँ कोई शंका करता है—

बंधस्थान प्ररूपणा को छोड़कर पहले हतसमुत्पत्तिकस्थानों की प्ररूपणा क्यों नहीं की गई हैं ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

न कृता, बंधात् उत्पद्यमानानां हतसमुत्पत्तिकस्थानानां अनवगतबंधस्थानस्य अन्तेवासिनः प्रज्ञापनोपायाभावात्।

संप्रति सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तजघन्यानुभागस्थानप्रभृति यावत् पर्यवसानानुभागस्थानमिति तावत् एतानि असंख्यात-लोकमात्रबंधसमुत्पत्तिकस्थानानि एकश्रेण्याकारेण रचयित्वा पुनः एतेषां बंधस्थानानां घातकारणानां असंख्यातलोकमात्राध्यवसानस्थानानां जघन्यपरिणामस्थानमादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टाध्यवसानस्थानपर्यवसानामेक-श्रेण्याकारेण वामपार्श्वेन रचनां कृत्वा ततो घातस्थानप्ररूपणां करिष्यन्ति।

एतेषां विस्तरो धवलाटीकायां द्रष्टव्योऽस्ति।

अत्र मनाक् विशेष उच्यते—

कश्चिदाशंकते—

संख्यातासु घातपरिपाटीषु गतासु पुनः सर्वपश्चिमस्य अनुभागस्य घातितशेषस्य घातो नास्तीति कुतो ज्ञायते ?

आचार्यवर्यश्रीवीरसेनः समाधत्ते—उक्तं च धवलाटीकायां—

''अविरुद्धाइरियवयणादो, सरागाणमाइरियाणं वयणं णप्पमाणमिदि ण वोत्तुं जुत्तं, अविरुद्धविसेसणेण ओसोरिदरागादिभावादो। ण च अविरुद्धाइरियपरंपरागदउवएसो एसो चप्पलो होदि, अव्ववत्थापत्तीदो[१]।''

ज्ञानावरणीयस्य सर्वस्तोकानि बंधसमुत्पत्तिकस्थानानि। हतसमुत्पत्तिकस्थानानि असंख्यातगुणानि। गुणकारोऽत्र असंख्याता लोकाः। हतसमुत्पत्तिकस्थानानि (हतहतसमुत्पत्तिकस्थानानि) असंख्यातगुणानि। अत्रापि

नहीं किया है, क्योंकि वैसा होने पर जो शिष्य बंध स्थानों के ज्ञान से रहित है, उसको बंध से उत्पन्न होने वाले हतसमुत्पत्तिकस्थानों का ज्ञान कराने के लिए उपाय नहीं रहता है।

अब सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीव के जघन्य अनुभागस्थान से लेकर पर्यवसान अनुभागस्थान तक इन असंख्यातलोकमात्र बंधसमुत्पत्तिकस्थानों को एक पंक्ति के आकार से रचकर फिर इन बंधस्थानों के घात के कारणभूत असंख्यात लोकमात्र अध्यवसानस्थानों में जघन्य परिणाम स्थान से लेकर उत्कृष्ट अध्यवसानस्थान पर्यन्त स्थानों को एक पंक्ति के आकार से वाम पार्श्वभाग में रचकर पश्चात् घातस्थानों की प्ररूपणा करेंगे।

इसका विस्तृत वर्णन धवला टीका में द्रष्टव्य है।

यहाँ किंचित् विशेष कहते हैं—

कोई शंका करता है कि—

संख्यात घातपरिपाटियों के समाप्त होने पर फिर घातने से शेष रहे सर्वपश्चिम अनुभाग का घात नहीं होता है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

आचार्यश्री वीरसेन स्वामी इसका समाधान करते हैं, जो कि धवला टीका में वर्णित है—

''यह अविरुद्ध आचार्य वचन से जाना जाता है। यदि कहा जावे कि आचार्य चूँकि सरागी होते हैं, अतएव उनके वचन प्रमाण नहीं हो सकते, सो ऐसा कहना युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि अविरुद्ध इस विशेषण से रागादिभाव का निराकरण किया गया है। कारण कि आचार्य परम्परा से आया हुआ यह उपदेश मिथ्या नहीं हो सकता, क्योंकि वैसा होने पर अव्यवस्था का होना अनिवार्य है।''

ज्ञानावरणीय के बंधसमुत्पत्तिकस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे हतसमुत्पत्तिकस्थान असंख्यातगुणे हैं। गुणकार असंख्यातलोक है। उनसे हतसमुत्पत्तिकस्थान (हतहतसमुत्पत्तिक स्थान) असंख्यातगुणे हैं। यहाँ

---

१. धवला पुस्तक-१२, पृ. २४०।

गुणकारोऽसंख्याता लोकाः। एषा तावत् ज्ञानावरणीयस्य त्रिविधा स्थानप्ररूपणा प्ररूपिता। एवं शेषसप्तानामपि कर्मणां त्रिविधा स्थानप्ररूपणा ज्ञात्वा प्ररूपयितव्या। विशेषस्तु आयुषः परिवर्तमानमध्यमपरिणामेन अपर्याप्तसंयुक्ततिर्यगायुर्जघन्यानुभागे प्रबद्धे तदेकं बंधसमुत्पत्तिकस्थानं। पुनः प्रक्षेपोत्तरे प्रबद्धे द्वितीयबंधसमुत्पत्तिकस्थानं। आयुषः जघन्यपरिणामस्थानप्रभृति असंख्यातलोकमात्राणि परिणामस्थानानि भवन्ति। यावन्ति परिणामस्थानानि तावन्त्यैव अनुभागबंधसमुत्पत्तिक-स्थानानि। हतसमुत्पत्तिक-हतहतसमुत्पत्तिकस्थानप्ररूपणायां क्रियमाणायां ज्ञानावरणसमानभंगो ज्ञातव्यः।

एवं तृतीयेऽन्तरस्थले परंपरोपनिधानामल्पबहुत्वप्रतिपादकानि षट्सूत्राणि गतानि।

इत्थं द्वादशे स्थले त्रिभिरन्तरस्थलैः समन्वितायां अल्पबहुत्वानुयोगद्वारप्ररूपणायां त्रयोदशसूत्राणि गतानि।

इति अल्पबहुत्वानुयोगप्ररूपणा समाप्ता।

एवं अनुभागबंधाध्यवसानस्थानप्ररूपणानाम द्वितीयाचूलिका समाप्ता।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य वेदनाखण्डनाम्नि चतुर्थखण्डे एकादशे ग्रन्थे भाववेदनाविधाननाम्नि सप्तमानुयोगद्वारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां चतुर्थे महाधिकारे द्वितीयचूलिकानामायं द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

पर भी गुणकार असंख्यातलोक है। यह ज्ञानावरणीय की तीन प्रकार की स्थानप्ररूपणा कही गई है। इसी प्रकार से शेष सातों कर्मों की तीन प्रकार की स्थानप्ररूपणा को जानकर कहना चाहिए। विशेष इतना है कि आयुकर्म का परिवर्तमान मध्यम परिणाम के द्वारा अपर्याप्त संयुक्त तिर्यंच आयु के जघन्य अनुभाग को बांधने पर वह एक बंधसमुत्पत्तिकस्थान होता है। पुनः उसे एक प्रक्षेप अधिक बांधने पर द्वितीय बंधसमुत्पत्तिकस्थान होता है। आयु के जघन्य परिणाम स्थान से लेकर असंख्यातलोकप्रमाण परिणामस्थान होते हैं। जितने परिणामस्थान हैं, उतने ही उसके अनुभागबंधसमुत्पत्तिक स्थान हैं। हतसमुत्पत्तिक और हतहतसमुत्पत्तिकस्थानों की प्ररूपणा के करने पर वह ज्ञानावरण के समान है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार से तृतीय अन्तरस्थल में परम्परोपनिधा के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार बारहवें स्थल में तीन अन्तरस्थलों से समन्वित अल्पबहुत्वानुयोगद्वार की प्ररूपणा में तेरह सूत्र पूर्ण हुए हैं।

इस प्रकार यह अल्पबहुत्व प्ररूपणा समाप्त हुई।

यहाँ इस प्रकार अनुभागबंधअध्यवसानस्थान नाम की द्वितीय चूलिका समाप्त हुई।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम के वेदनाखण्ड नामक चतुर्थ खण्ड में ग्यारहवें ग्रंथ में भाववेदना विधान नाम के सप्तम अनुयोगद्वार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में चतुर्थ महाधिकार में द्वितीय चूलिका नाम का यह द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ तृतीयाचूलिका

(वेदनाभावविधानस्य)

तृतीयोऽधिकारः

(चतुर्थमहाधिकारान्तर्गत)

मंगलाचरणम्

भक्तिर्धुनी तव विभोः कलुषं धुनीते, नानाविकल्पहतदुष्टमनः पुनाति।
संसारघर्मभवतापमपाकरोति, रागाद् विदूरयति भावश्रुतं ददाति।।१।।

अथ षट्खंडागमग्रन्थस्य वेदनाखण्डनाम्नि ग्रन्थे द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-सप्तम-वेदनाभावविधानानुयोगद्वारे चतुर्थे महाधिकारे तृतीयाचूलिकानाम-तृतीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् सप्तचत्वारिंशत्सूत्रेषु अष्टौ स्थलानि सन्ति। ततः प्रथमस्थले अष्टानुयोगद्वारनामएकस्थानजीवप्रमाणानुगम-लक्षणप्रतिपादनपरं ''जीवसमुदाहारे त्ति'' इत्यादि सूत्रद्वयम्। ततः परं द्वितीयस्थले निरंतरस्थानजीव-प्रमाणानुगमनिरूपणार्थं ''णिरंतरट्ठाण'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततश्च तृतीयस्थले सान्तरस्थानजीव-प्रमाणानुगम-प्ररूपणार्थं ''सांतरट्ठाण'' इत्यादिना एकं सूत्रं कथ्यते। तदनंतरं चतुर्थस्थले नानाजीवकालप्रमाणा-नुगमप्रतिपादनार्थं ''णाणाजीव-'' इत्यादिना सूत्रत्रयं वक्ष्यते। तत्पश्चात् पंचमस्थले वृद्धिप्ररूपणायाः द्विभेदगर्भिताया निरूपणार्थं ''वड्ढिपरूवणदाए'' इत्यादिना पंचदश सूत्राणि भवन्ति। पुनः षष्ठस्थले

अथ तृतीय चूलिका प्रारंभ

(वेदनाभावविधान की तृतीय चूलिका)

तृतीय अधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—हे विभो! आपकी दिव्यध्वनि प्राणियों के कलुष—पापों को नष्ट करने वाली है, उनके हृदय-मन को नाना विकल्पों से हटाकर पवित्र करने वाली है, उनके संसारताप को दूर करने वाली है, राग से उन्हें दूर कर देती है और भावश्रुत को प्रदान करती है। अर्थात् हे भगवन्! आपकी दिव्यध्वनिरूप जिनवाणी का श्रवण करने से भावश्रुतज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।।१।।

यहाँ इस षट्खण्डागम ग्रंथ के वेदनाखण्ड नामक ग्रंथ में द्वितीयवेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत वेदनाभावविधान नामक सातवें अनुयोगद्वार के चतुर्थ महाधिकार में तृतीय चूलिका नाम से तृतीय अधिकार प्रारंभ होता है। इसमें सैंतालिस सूत्रों में आठ स्थल हैं। उनमें से प्रथम स्थल में आठ अनुयोगद्वार के अन्तर्गत प्रथमानुयोगद्वार का लक्षण प्रतिपादन करने वाले ''जीवसमुदाहारेत्ति'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में निरंतरस्थानजीवप्रमाणानुगम का निरूपण करने हेतु ''णिरंतरट्ठाण'' इत्यादि एक सूत्र है। आगे तृतीय स्थल में सान्तरस्थानजीव प्रमाणानुगम का प्ररूपण करने वाला ''सांतरट्ठाण'' इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। तदनंतर चतुर्थ स्थल में नानाजीवकाल प्रमाणानुगम का प्रतिपादन करने हेतु ''णाणाजीव'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे।

तत्पश्चात् पंचमस्थल में वृद्धिप्ररूपणा के दो भेदों का निरूपण करने के लिए ''वड्ढिपरूवणदाए''

यवमध्यप्ररूपणाकथनार्थं ''जवमज्झ'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि निगदन्ति। पुनश्च सप्तमस्थले स्पर्शनप्ररूपणा-कथनार्थं ''फोसणपरूवणदाए'' इत्यादिना एकादश सूत्राणि वक्ष्यन्ते। तदनंतरं अष्टमस्थले अल्पबहुत्वनिरूपणार्थं ''अप्पाबहुए त्ति'' इत्यादिना एकादश सूत्राणि निरूपयिष्यते इति समुदायपातनिकात्र सूचिता भवति।

अधुना तृतीयचूलिकायामष्टानुयोगद्वारनामनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

जीवसमुदाहरे त्ति तत्थ इमाणि अट्ठ अणुयोगद्दाराणि-एयट्ठाणजीव-पमाणाणुगमो णिरंतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमो सांतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमो णाणाजीवकालपमाणाणुगमो वड्ढिपरूवणा जवमज्झपरूवणा फोसण-परूवणा अप्पाबहुए त्ति।।२६८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **जीवसमुदाहारनाम्नि अस्मिन्नधिकारेऽष्टानुयोगद्वाराणि सन्ति। एकस्थानजीव-प्रमाणानुगम-निरंतरस्थानजीवप्रमाणानुगम-सांतरस्थानजीवप्रमाणानुगम-नानाजीवकालप्रमाणानुगम-वृद्धिप्ररूपणा-यवमध्यप्ररूपणा-स्पर्शनप्ररूपणा-अल्पबहुत्वानि चेति।**

अत्र जीवसमुदाहारः किमर्थमागतः ?

पूर्वं प्ररूपितबंधानुभागस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेषु जीवाः किं सर्वेषु सदृशाः आहोस्विद् विसदृशा वा सदृशा विसदृशा वा इति प्रश्ने सति एतेन स्वरूपेण तत्र तिष्ठन्ति इति ज्ञापनार्थं अयं जीवसमुदाहार आगतोऽस्ति।

इत्यादि पन्द्रह सूत्र हैं। पुनः छठे स्थल में यवमध्यप्ररूपणा के कथन हेतु ''जवमज्झ'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। इसके बाद सातवें स्थल में स्पर्शन प्ररूपणा को कहने हेतु ''फोसणपरूवणदाए'' इत्यादि ग्यारह सूत्रों को प्रस्तुत करेंगे। तदनन्तर आठवें स्थल में अल्पबहुत्व के निरूपण हेतु ''अप्पाबहुएत्ति'' इत्यादि ग्यारह सूत्रों का प्ररूपण करेंगे, यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब तृतीय चूलिका में आठ अनुयोगद्वारों के नाम निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

जीवसमुदाहार इस अधिकार में ये आठ अनुयोगद्वार हैं — एकस्थानजीवप्रमाणानुगम, निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, नानाजीवकालप्रमाणानुगम, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा और अल्पबहुत्व।।२६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जीव समुदाहार नाम के इस अधिकार में आठ अनुयोगद्वार बतलाये गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं — १. एकस्थानजीवप्रमाणानुगम, २. निरंतरस्थानजीवप्रमाणानुगम, ३. सांतरस्थान-जीवप्रमाणानुगम, ४. नानाजीवकालप्रमाणानुगम, ५. वृद्धिप्ररूपणा, ६. यवमध्यप्ररूपणा, ७. स्पर्शनप्ररूपणा और ८. अल्पबहुत्व।

शंका — यहाँ जीवसमुदाहार किसलिए आया है ?

समाधान — पहले कहे गये बंधानुभागस्थानों के असंख्यातलोकप्रमाण सभी स्थानों में जीव क्या सदृश होते हैं अथवा जीव क्या विसदृश होते हैं, अथवा सदृश-विसदृश दोनों होते हैं, ऐसा पूछे जाने पर वे वहाँ इस स्वरूप से स्थित होते हैं, यह बतलाने के लिए जीवसमुदाहार यहाँ प्राप्त हुआ है।

अष्टानुयागेद्वारेषु एकस्थानजीवप्रमाणानुगमः किमर्थमागतः ?

एकैकस्मिन् स्थाने जीवा जघन्येन एतावन्तो भवन्ति उत्कृष्टेनापि एतावन्त इति ज्ञापनार्थमागतः।

निरंतरस्थानजीवप्रमाणानुगमः किमर्थमागतः ?

निरन्तरजीवसहगतानि अनुभागस्थानानि जघन्येन एतावन्ति उत्कृष्टेनापि एतावन्त्यपि भवन्तीति ज्ञापनार्थं।

सांतरस्थानजीवप्रमाणानुगमः किमर्थमागतः ?

निरन्तरजीवविरहितस्थानानि जघन्येन इयन्ति उत्कृष्टेनापि इयन्त्यपि भवन्तीति ज्ञापनार्थं।

नानाजीवकालप्रमाणानुगमः किमर्थमागतः ?

एकैकस्मिन् स्थाने जीवा जघन्येन एतावत्कालमुत्कृष्टेनापि एतावत्कालं तिष्ठन्ति इति सूचनार्थं।

वृद्धिप्ररूपणा किमर्थमागतः ?

अनंतरोपनिधा-परंपरोपनिधास्वरूपेन जीवानां वृद्धिप्ररूपणार्थं।

यवमध्यप्ररूपणा किमर्थमागता ?

क्रमेण वर्द्धमानानां जीवानां स्थानानामसंख्यातभागे यवमध्यं भूत्वा तस्मादुपरिमसर्वस्थानानि जीवैः विशेषहीनानि भूत्वा गतानि इति ज्ञापनार्थमागता।

स्पर्शनप्ररूपणा किमर्थमागता ?

अतीते काले एकजीवेन एकमनुभागस्थानमियत्कालं स्पर्शितमिति ज्ञापनार्थं।

शंका—आठ अनुयोगद्वारों में एकस्थानजीवप्रमाणानुगम किसलिए आया है ?

समाधान—एक-एक स्थान में जीव जघन्य से इतने होते हैं और उत्कृष्ट से इतने होते हैं, इस बात को बतलाने के लिए उपर्युक्त अनुगम प्राप्त हुआ है।

शंका—निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम किसलिए आया है ?

समाधान—निरन्तर जीवों से सहित अनुभागस्थान जघन्य से इतने और उत्कृष्टरूप से इतने ही होते हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ उक्त अनुयोगद्वार प्राप्त हुआ है।

शंका—सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम किसलिए आया है ?

समाधान—निरन्तर जीवों से रहित स्थान जघन्य से इतने और उत्कृष्टरूप से भी इतने ही होते हैं, इस बात का ज्ञान कराने हेतु वह अधिकार प्राप्त हुआ है।

शंका—नाना जीवकालप्रमाणानुगम किसलिए आया है ?

समाधान—एक-एक स्थान में जीव जघन्य से इतने काल तक और उत्कृष्ट से भी इतने काल तक रहते हैं इसके सूचनार्थ यह अधिकार आया है।

शंका—वृद्धिप्ररूपणा किसलिए आयी है ?

समाधान—वह अनन्तरोपनिधा और परंपरोपनिधा स्वरूप से जीवों की वृद्धिप्ररूपणा करने के लिए आयी है।

शंका—यवमध्यप्ररूपणा किसलिए आयी है ?

समाधान—क्रम से वृद्धि को प्राप्त होने वाले जीवों के स्थानों के असंख्यातवें भाग में यवमध्य होकर उससे आगे के सब स्थान जीवों से विशेषहीन होकर गये हैं, यह बतलाने के लिए यवमध्यप्ररूपणा प्राप्त हुई है।

शंका—स्पर्शनप्ररूपणा किसलिए आयी है ?

समाधान—अतीतकाल में एक जीव के द्वारा एक अनुभागस्थान का इतने काल स्पर्शन किया गया है,

अल्पबहुत्वं किमर्थमागतम्।

पूर्वोक्तत्रिविधानुभागस्थानेषु जीवानां स्तोकबहुत्वप्ररूपणार्थमिति ज्ञातव्यम्।

संप्रति एकस्थानजीवप्रमाणानुगमनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एयट्ठाणजीवपमाणाणुगमेण एक्केक्कम्हि ट्ठाणम्हि जीवा जदि होंति एक्को वा दो वा तिण्णि वा जाव उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्ज-दिभागो।।२६९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**असंख्यातलोकमात्राणि अनुभागस्थानानि ऊर्ध्वमेकपंक्त्याकारेण प्रज्ञया स्थापयित्वा तत्र एकैकानुभागस्थाने जघन्योत्कृष्टेन जीवप्रमाणमुच्यते। तद्यथा—जघन्येन एको वा जीवस्तत्र भवति द्वौ वा भवतः त्रयो वा भवन्ति एवमेकोत्तरवृद्ध्या एकैकानुभागस्थाने उत्कृष्टेन यावदावलिकाया असंख्यातभागमात्रा भवन्ति।**

अत्र कश्चिदाह—

अनुभागस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि, जीवराशिः पुनरनन्तः, तेन एकैकस्मिन्ननुभागस्थाने जघन्योत्कृष्टेन अनन्तैर्जीवैः भवितव्यं, अनुभागस्थानानि विरलय्य जीवराशिं समखण्डं कृत्वा दीयमाने एकैकस्मिन् स्थाने अनंतजीवोपलंभात् इति ?

यह बतलाने के लिए स्पर्शनप्ररूपणा प्राप्त हुई है।

शंका—अल्पबहुत्व किसलिए आया है ?

समाधान—वह पूर्वोक्त तीन प्रकार के अनुभागस्थानों में जीवों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करने के लिए आया है, ऐसा जानना चाहिए।

अब एकस्थानजीवप्रमाणानुगम का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

एकस्थानजीवप्रमाणानुगम से एक-एक स्थान में जीव यदि होते हैं, तो एक अथवा दो अथवा तीन अथवा उत्कृष्ट से आवली के असंख्यातवें भाग तक होते हैं।।२६९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागस्थानों को ऊपर एक पंक्ति के आकार से बुद्धि द्वारा स्थापित करके उनमें से एक-एक अनुभागस्थान में जघन्य व उत्कृष्ट से जीवों के प्रमाण को कहते हैं। वह इस प्रकार है—

उसमें जघन्य से एक जीव होता है अथवा दो होते हैं अथवा तीन होते हैं, इस प्रकार उत्तरोत्तर एक-एक की वृद्धिपूर्वक एक-एक अनुभागस्थान में उत्कृष्ट से वे आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण तक होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है—

अनुभागस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं, परन्तु जीवराशि अनन्तानन्त है, अतएव एक-एक अनुभागस्थान में जघन्य व उत्कृष्ट से अनन्त जीव होने चाहिए, क्योंकि अनुभागस्थानों का विरलन करके जीवराशि को समखण्ड करके देने पर एक-एक स्थान में अनन्त जीव पाये जाते हैं ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैष दोषः, त्रसजीवानाश्रित्य जीवसमुदाहारस्य प्ररूपितत्वात्।

स्थावरजीवानाश्रित्य किमर्थं जीवसमुदाहारो न प्ररूपितः ?

न प्ररूपितः, अनुभागस्थानेषु त्रसजीवानामवस्थानविधाने अवगते स्थावरजीवानां तत्रावस्थानविधानस्य सुखेन अवगन्तुं शक्यमानत्वात्।

पुनः कश्चिदाह—

स्थावरजीवानामवस्थानविधानेऽवगते त्रसजीवानामवस्थानविधानं किन्नावगम्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, एकैकेस्मिन् स्थाने त्रसजीवप्रमाणस्य निरंतरं त्रसजीवैर्निरुद्धस्थानप्रमाणस्य त्रसजीवविरहिता-नुभागस्थानप्रमाणस्य च तस्माद् अवगन्तुमशक्यमानत्वात्।

एवं प्रथमस्थले अनुयोगद्वाराणां नामतत्प्रथमभेदस्वरूप-एकस्थानजीवप्रमाणानुगमप्रतिपादनपरं सूत्रद्वयं गतम्।

एवं एकस्थानजीवप्रमाणानुगमः समाप्तः।

अधुना द्वितीयानुयोगद्वारप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

णिरंतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमेण जीवेहि अविरहिदट्ठाणाणि एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।।२७०।।

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जीवसमुदाहार की प्ररूपणा त्रस जीवों का आश्रय करके की गई है।

शंका—स्थावर जीवों का आश्रय करके जीवसमुदाहार की प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

समाधान—नहीं प्ररूपित की है, क्योंकि अनुभागस्थानों में त्रस जीवों के रहने के विधान को जान लेने पर उनमें स्थावर जीवों के रहने पर विधान सुखपूर्वक जाना जा सकता है।

पुनः कोई शंका करता है—

स्थावर जीवों के रहने के विधान को जान लेने पर त्रस जीवों के रहने का विधान क्यों नहीं जाना जाता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उसमें एक-एक स्थान में त्रस जीवों के प्रमाण को, निरन्तर त्रस जीवों से निरुद्ध स्थानप्रमाण को तथा त्रस जीवों से रहित अनुभागस्थानों के प्रमाण को जानना शक्य नहीं है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अनुयोगद्वारों के नाम, उसके प्रथम भेदस्वरूप-एकस्थानजीव प्रमाणानुगम का प्रतिपादन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार एकस्थान जीवप्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

अब द्वितीय अनुयोगद्वार का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम से जीवों से सहित स्थान एक अथवा दो अथवा तीन, इस प्रकार उत्कृष्ट से आवली के असंख्यातवें भाग तक होते हैं।।२७०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**जीवसहितानि स्थानानि एक-द्वि-त्रिस्थानानि आदिं कृत्वा यावदुत्कृष्टेन निरंतरं जीवसहितस्थानानि आवलिकाया असंख्यातभागमात्राणि चैव भवन्ति।**

अत्र कश्चिदाशंकते—

संप्रति कषायप्राभृते उपयोगो नाम अर्थाधिकारः। तत्र कषायोदयस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि तेषु वर्तमानकाले यावन्तस्त्रसाः सन्ति तावन्मात्राणि आपूर्णानीति कषायप्राभृतसूत्रेण भणितं। तत एषो वेदनासूत्रार्थो न घटते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, सूत्रस्य जिनवचनविनिर्गतस्य अविरुद्धाचार्यपरंपराया आगतस्य अप्रमाणत्वविरोधात्।

पुनः कश्चिदाह—

कथं पुनः द्वयोःसूत्रयोरविरोधः संभवति ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

उच्यते—अत्र वेदनाधिकारे जीवसहितानि स्थानानि निरन्तरं यदि भवन्ति तर्हि आवलिकाया असंख्यातभागमात्राणि चेव भवन्तीति भणितं। कषायप्राभृते ग्रन्थे पुनः जीवसहित निरंतरस्थानप्रमाणप्ररूपणा न कृता, किन्तु वर्तमानकाले निरन्तरानिरंतरविशेषणेन विना जीवसहितस्थानानां प्रमाणप्ररूपणा कृता। तेन जीवसहितस्थानानि तत्र प्रतरस्य असंख्यातभागमात्राणि भवन्ति। भवन्तोऽपि त्रसजीवमात्राणि स्थानानि त्रसजीवसहितानि वर्तमानकाले भवन्ति, एकैकोदयस्थाने एकैकत्रसजीवे स्थापिते जीवसहितस्थानानां

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जीव सहित स्थान एक अथवा दो अथवा तीन स्थानों से लेकर उत्कृष्ट से निरन्तर जीव सहित स्थान आवली के असंख्यातवें भाग मात्र ही होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है—

कसायपाहुड़ में उपयोग नाम का अर्थाधिकार है। उसमें कषायोदयस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं। उनमें वर्तमानकाल में जितने त्रस जीव हैं उतने मात्र पूर्ण हैं, ऐसा कषायपाहुड़सूत्र के द्वारा बतलाया गया है। इसलिए यह वेदनासूत्र का अर्थ घटित नहीं होता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि जिन भगवान् के मुख से निकले और अविरुद्ध आचार्य परम्परा से आये हुए सूत्र के अप्रमाण होने का विरोध है। अर्थात् वे अप्रमाणीक नहीं हो सकते हैं।

पुनः कोई शंका करता है—

फिर इन दोनों सूत्रों में अविरोध कैसे संभव होगा ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं—

यहाँ वेदना अधिकार में, जीव सहित स्थान निरन्तर यदि होते हैं, तो आवली के असंख्यातवें भाग मात्र ही होते हैं, ऐसा कहा गया है। परन्तु कषायप्राभृतग्रंथ में पुनः जीव सहित निरंतर स्थानों के प्रमाण की प्ररूपणा नहीं की गई है, किन्तु वहाँ वर्तमानकाल में निरंतर व सांतर विशेषण के बिना जीव सहित स्थानों के प्रमाण की प्ररूपणा की गई है। इसलिए जीव सहित स्थान वहाँ प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं। उतने होकर के भी त्रस जीवों के बराबर स्थान त्रस जीवों से सहित वर्तमान काल में होते हैं, क्योंकि एक-एक उदयस्थान में एक-एक त्रस जीव को स्थापित करने पर जीवों सहित स्थान त्रस जीवों के बराबर पाये जाते

त्रसजीवमात्राणामुपलंभात्। अत्र अनुभागबंधाध्यवसानस्थानेषु जीवसमुदाहारः प्ररूपितः। तत्र कषायप्राभृते कषायोदयस्थानेषु तस्य प्ररूपणा कृता। ततः द्वयोर्जीवसमुदाहारयोः एकमधिकरणं नास्तीति विरोधोद्-भावनमयुक्तम्। तस्मात् द्वयोः सूत्रयोर्नास्ति विरोध इति सिद्धम्।

एवं द्वितीयस्थले तृतीयचूलिकायां द्वितीयानुयोगद्वारनामनिरंतरस्थानजीवप्रमाणानुगमप्रतिपादनपरं सूत्रमेकं गतम्।

इत्थं निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगमः समाप्तः।

अधुना सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगमप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सांतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमेण जीवेहि विरहिदाणि ट्ठाणाणि एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।।२७१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**जीवैर्विरहितमेकमनुभागबंधस्थानं भवति। निरन्तरं द्वे अपि भवतः, त्रीण्यपि भवन्ति, एवं यावदुत्कृष्टेन जीवविरहितस्थानानि निरन्तरमसंख्यातलोकमात्राण्यपि भवन्ति, असंख्यातलोक-मात्रानुभागबंधस्थानेषु यद्यपि लोकमात्रस्थानानि त्रसजीवसहगतानि भवन्ति तर्ह्यपि जीवविरहितस्थानानां निरन्तरमसंख्यात-लोकमात्राणामुपलंभात्।**

एवं तृतीयस्थले सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगमप्रतिपादकं एकं सूत्रं गतम्।

इत्थं सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगमः समाप्तः।

अधुना नानाजीवकालप्रमाणानुगमनिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

हैं। यहाँ अनुभागबंधाध्यवसानस्थानों में जीवसमुदाहार की प्ररूपणा की गई है और वहाँ कषायप्राभृत में कषायोदय स्थानों में उसकी प्ररूपणा की गई है। अतः उन दोनों समुदाहारों का आधार न होने से विरोध बतलाना अनुचित है। इस कारण उन दोनों सूत्रों में कोई विरोध नहीं है, यह सिद्ध होता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तृतीय चूलिका में द्वितीय अनुयोगद्वार नामक निरंतरस्थानजीवप्रमाणानुगम को प्रतिपादित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

अब सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

सान्तरस्थान जीवप्रमाणानुगम से जीवों से रहित स्थान एक अथवा दो अथवा तीन, इस प्रकार उत्कृष्ट से असंख्यातलोकप्रमाण होते हैं।।२७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जीवों से रहित एक अनुभागबंधाध्यवसानस्थान होता है, निरन्तर दो भी होते हैं और तीन भी होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट से जीव रहित स्थान निरन्तर असंख्यातलोकप्रमाण भी होते हैं, क्योंकि असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधस्थानों में यद्यपि लोकप्रमाणस्थान त्रस जीव सहित होते हैं, तो भी जीव रहित स्थान निरन्तर असंख्यातलोकप्रमाण पाये जाते हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार सान्तरस्थान जीवप्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

अब नानाजीवकालप्रमाणानुगम के निरूपण हेतु तीन सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

णाणाजीवकालपमाणाणुगमेण एक्केक्कम्हि ट्ठाणम्हि णाणाजीवा केवचिरं कालादो होंति।।२७२।।

जहण्णेण एगसमओ।।२७३।।

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।।२७४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतत्पृच्छासूत्रं समय-आवलिका-क्षण-लव-मुहूर्त-दिवस-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-संवत्सरमादिं कृत्वा यावत्कल्प इत्येवं कालविशेषमपेक्षते। उत्तरसूत्राभ्यां समाधत्ते—**

एकस्य जीवस्य एकमनुभागबंधस्थानमेकसमयं बंधयित्वा द्वितीयसमये वर्धयित्वा अन्यमनुभागस्थानं बध्यमानस्य जघन्येन एकसमयकालोपलंभात्। उत्कृष्टेन एको जीव एकस्मिन् स्थाने एकसमयमादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टेन अष्टौ समया इति तिष्ठति। यावत्सोऽन्यं स्थानान्तरं न गच्छति तावदन्येष्वपि जीवेषु तत्र आगच्छत्सु जीवैरविरहितं भूत्वा येन स्थानमावलिकाया असंख्यातभागमात्रकालं तिष्ठति तेन आवलिकाया असंख्यातभागमात्रश्चैव एकैकस्य स्थानस्य अशून्यकाल इति भणितं ज्ञातव्यं।

एवं चतुर्थस्थले नानाजीवकालप्रमाणानुगमापेक्षया जघन्योत्कृष्टकालनिरूपकानि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इत्थं नानाजीवकालप्रमाणानुगमः समाप्तः।

सूत्रार्थ—

नानाजीवकालप्रमाणानुगम से एक-एक स्थान में नाना जीवों का कितना काल है ?।।२७२।।

जघन्य काल एक समय है।।२७३।।

उत्कृष्ट काल आवली के असंख्यातवें भाग है।।२७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह पृच्छा सूत्र समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और संवत्सर से लेकर कल्पकालपर्यंत इस प्रकार काल विशेष की अपेक्षा करता है।

आगे के दो सूत्रों के द्वारा इसका समाधान किया गया है—

एक जीव एक अनुभागबंधस्थान को एक समय बांधकर द्वितीय समय में वृद्धि को प्राप्त होकर अन्य अनुभागबंधस्थान को बांधने वाले एक जीव का काल जघन्य से एक समय पाया जाता है। एक जीव एक स्थान में एक समय से लेकर उत्कृष्ट से आठ समय तक रहता है। जब तक वह अन्य स्थान को नहीं प्राप्त करता है, तब तक अन्य जीवों के भी वहाँ जाने पर जीवों के विरह से रहित होकर चूँकि एक स्थान आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक रहता है, अतएव आवली के असंख्यातवें भागमात्र ही एक स्थान का अशून्य-अविरहकाल होता है, यह सूत्र का अभिप्राय है।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में नानाजीवकालप्रमाणानुगम की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार नानाजीवकालप्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

अथ वृद्धिप्ररूपणा नाम पंचमे स्थलेऽन्तराधिकारः

अथ वृद्धिप्ररूपणानामपंचमे स्थलेन्ऽतराधिकारे भेदप्ररूपणपरमेकं सूत्रं। ततः अनन्तरोपनिधानामप्रथम-भेदनिरूपणार्थं षट्सूत्राणि। तदन्तरं परंपरोपनिधानामद्वितीयभेदप्रतिपादनार्थं अष्टौ सूत्राणीति पंचदशसूत्रैस्त्रि-भिरन्तरस्थलसहितैरियं पातनिका सूच्यते।

अधुना वृद्धिप्ररूपणाभेदनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

वड्ढिपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुबे अणुयोगद्दाराणि-अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा।।२७५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र वृद्धिप्ररूपणाया द्वौ भेदौ स्तः —अनन्तरोपनिधा परंपरोपनिधा च।**

अत्र कश्चिदाह —

प्ररूपणा-प्रमाण-भागाभागानुयोगद्वाराणि अत्र किन्न प्ररूपितानि ?

आचार्यदेवः प्राह —

न तावत्प्ररूपणा उच्यते, शेषानुयोगद्वारप्ररूपणाया अन्यथानुपपत्तेश्चैवानुभागस्थानेषु जीवानामस्तित्वसिद्धेः। न प्रमाणानुयोगद्वारमपि वक्तव्यं, एकस्थानजीवप्रमाणानुगमाच्चैव तदवगमात्। न भागाभागः, अल्पबहुत्वादेव तदवगमात् । तेन अनंतरोपनिधा परंपरोपनिधा चेति द्वे चैवात्रानुयोगद्वारे स्तः। न वृद्धिनिबंधनसत्त्वादिप्ररूपणापि युज्यते, एताभ्यां द्वाभ्यामनुयोगद्वाराभ्यामेव तदवगमात्।

अब वृद्धिप्ररूपणा नाम के पंचम स्थल में अन्तराधिकार प्रारंभ होते हैं—

अब वृद्धिप्ररूपणा नामक पंचम स्थल में अन्तराधिकार में भेद का प्ररूपण करने वाला एक सूत्र है। आगे अनन्तरोपनिधा नाम के प्रथम भेद का निरूपण करने हेतु छह सूत्र हैं। उसके पश्चात् परंपरोपनिधा नामक द्वितीय भेद का प्रतिपादन करने वाले आठ सूत्र हैं। इस प्रकार तीन अन्तरस्थलों से सहित यह पन्द्रह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब वृद्धिप्ररूपणा के भेद निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

वृद्धिप्ररूपणा इस अधिकार में ये दो अनुयोगद्वार हैं—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा।।२७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ वृद्धिप्ररूपणा के दो भेद बताये हैं—अनंतरोपनिधा और परंपरोपनिधा।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

यहाँ प्ररूपणा, प्रमाण और भागाभागानुगम अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

आचार्य देव इसका समाधान करते हैं कि—

प्ररूपणा के कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसके बिना शेष अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा चूँकि बनती नहीं है, अतः इसी से अनुभागस्थानों में जीवों का अस्तित्व सिद्ध है। प्रमाणानुयोगद्वार भी यहाँ कहने योग्य नहीं है, क्योंकि एकस्थान जीव प्रमाणानुगम से ही उसका परिज्ञान हो जाता है। भागाभागानुगम अनुयोगद्वार भी संभव नहीं है, क्योंकि अल्पबहुत्व से ही उसका परिज्ञान हो जाता है। इसलिए यहाँ अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा ये दो ही अनुयोगद्वार हैं। वृद्धि के कारणभूत सत् आदि अनुयोगद्वारों की

एवं प्रथमान्तरस्थले वृद्धिप्ररूपणाभेदनिरूपकमेकं सूत्रं गतम्।

संप्रति प्रथमभेदनाम-अनंतरोपनिधाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

अणंतरोवणिधाए जहण्णए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे थोवा जीवा।।२७६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अनंतरोपनिधाया जघन्येऽनुभागबंधाध्यवसानस्थाने स्तोका जीवाः सन्ति। कुतः ? अतिविशुद्धौ वर्तमानजीवानां प्रायेण संभवाभावात्। ते च आवलिकाया असंख्यातभागमात्राश्चैव, एकैकस्थाने एकसमयेन सुष्ठु यदि वहवो जीवा भवन्ति तर्हि आवलिकाया असंख्यातभागमात्रा एव भवन्तीति एकस्थानजीव-प्रमाणानुगमानुयोगद्वारे प्ररूपितत्त्वात्।**

अत्र कश्चिदाह—

भवतु वर्तमानकाले एकैकस्थाने उत्कृष्टेन जीवप्रमाणमावलिकाया असंख्यातभागः, एषा अनन्तरोपनिधा च अतीतकालमश्रित्य स्थिता, कुत एतज्ज्ञायते? सर्वानुभागबंधाध्यवसानस्थानेषु एकसमये उत्कृष्टेन संचितैकस्थानजीवानां बुद्ध्या कृतसहयोगानां वृद्धिप्ररूपणत्वात्। तत एकैकस्थाने अनन्तैर्जीवैर्भवितव्यम्?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

प्ररूपणा भी यहाँ योग्य नहीं है, क्योंकि इन दो अनुयोगद्वारों से ही उनका अवगम हो जाता है।

इस प्रकार प्रथम अन्तरस्थल में वृद्धिप्ररूपणा के भेद का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब प्रथमभेदरूप अनन्तरोपनिधा का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अनन्तरोपनिधा से जघन्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान में जीव सबसे स्तोक हैं।।२७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र के माध्यम से यह बतलाया है कि अनन्तरोपनिधा से जघन्य अनुभागबंध अध्यवसान स्थान में जीव सबसे कम पाये जाते हैं।

ऐसा क्यों है ?

इसमें कारण यह है कि अतिशयविशुद्धि में वर्तमान जीवों की प्रायः संभावना नहीं पाई जाती है। वे भी आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही होते हैं, क्योंकि एक-एक स्थान में एक समय में यदि बहुत अधिक जीव होते हैं, तो आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही होते हैं, ऐसा एकस्थान जीवप्रमाणानुगम अनुयोगद्वार में कहा जा चुका है।

यहाँ कोई शंका करता है—

वर्तमानकाल में एक-एक स्थान में उत्कृष्ट से जीवों का प्रमाण आवली के असंख्यातवें भागमात्र भले ही हो और यह अनन्तरोपनिधा अतीतकाल का आश्रय करके स्थित है। यह कहाँ से जाना जाता है? वह सब अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानों में बुद्धिकृत सहयोगयुक्त होते हुए एक समय में उत्कर्ष संचित एक स्थान के जीवों की जो प्ररूपणा की गई है, उससे जाना जाता है। इस कारण एक-एक स्थान में अनन्त जीव होने चाहिए ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि—

नैष दोषः, बहुकेनापि कालेन व्यक्तिस्वरूपेणैव शक्तीनां वृद्धिहान्योरभावात्। न च उदञ्चने समुद्रेऽपि प्रक्षिप्ते बहुकं जलमस्तीति स्वकप्रमाणात् वृद्धिकं पानीयं माति। एवमतीतेऽपि काले वर्तमाने इव एकैकस्मिन् अनुभागबंधस्थाने उत्कृष्टेन आवलिकाया असंख्यातभागमात्राश्चैव जीवा भवन्तीति ज्ञातव्यम्।

पुनः कश्चिदाशंकते—

एकैकस्थानमधिष्ठितसर्वजीवे बुद्ध्या मेलयित्वा तेषामनन्तानामनंतरोपनिधा किन्नोच्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नोच्यते, एवं सति अधस्तनचतुःसमयप्रायोग्यस्थानजीवेभ्यः यवमध्यात् उपरिमद्विसमयप्रायोग्यसर्वस्थान-जीवानामसंख्यातगुणत्वप्रसंगात्। न चैवं, द्विसमयप्रायोग्यसर्वस्थानजीवे जीवेभ्यः अधस्तनचतुःसमयप्रायोग्य-सर्वस्थानजीवा असंख्यातगुणा इत्युपरि भण्यमानत्वात् ततः एकैकस्मिन् स्थाने जीवा आवलिकाया असंख्यातभागमात्राश्चैव उत्कृष्टेन भवन्तीति गृहीतव्यम्।

अधुना द्वितीयानुभागबंधाध्यवसानस्थानजीवप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

विदिए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा विसेसाहिया।।२७७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**जघन्यस्थानात् असंख्यातलोकमात्रस्थानानि उपरि गत्वा यत्स्थानं स्थितं तद् द्वितीयानुभागबंधाध्यवसानस्थानमिति गृहीतव्यम्।**

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि बहुतकाल में भी व्यक्तिस्वरूप से ही शक्तियों की हानि-वृद्धि का अभाव देखा जाता है। उदञ्चन को समुद्र में भी फेकने पर बहुत जल है, इसलिए उसमें अपने प्रमाण से अधिक पानी समा सकेगा, ऐसा नहीं है, कारण कि उदञ्चन—मिट्टी के पात्र विशेष को समुद्र में भी रखने पर चूँकि वहाँ बहुत जल भरा हुआ है, अतः उसमें-उदञ्चन में अपने प्रमाण से अधिक जल समा जावेगा, यह संभव नहीं है। इसी प्रकार से अतीतकाल में वर्तमानकाल के समान एक-एक अनुभागस्थान में उत्कृष्ट से आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही जीव होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

पुनः कोई शंका करता है—

एक-एक स्थान को प्राप्त सब जीवों को बुद्धि से मिलाकर उन अनन्तानन्त जीवों की अनन्तरोपनिधा क्यों नहीं कही जाती है ?

आचार्यदेव इसका भी समाधान करते हैं—

नहीं कही जाती है, क्योंकि ऐसा होने पर अधस्तन चार समय योग्य स्थानों के जीवों की अपेक्षा यवमध्य से ऊपर के दो समय योग्य सब स्थानों के असंख्यातगुणे होने का प्रसंग आता है। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि दो समय योग्य सब स्थानों के जीव में जीवों से अधस्तन चतुःसमययोग्य जीव असंख्यातगुणे हैं, ऐसा आगे कहा जाने वाला है। इस कारण एक-एक स्थान में जीव आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही उत्कृष्ट से होते हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

अब द्वितीय अनुभागबंधअध्यवसानस्थानजीवप्रमाण का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

उनसे द्वितीय अनुभागबंधाध्यवसानस्थान में जीव विशेष अधिक हैं।।२७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जघन्य स्थान से आगे असंख्यातलोकमात्र स्थान जाकर जो स्थान स्थित है, वह द्वितीय अनुभागबंधाध्यवसानस्थान है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

अत्र कश्चिदाह—

असंख्यातलोकमात्रस्थानानि उपरि चटित्वा स्थितस्थानस्य कथं द्वितीयत्वम् ?

आचार्यःप्राह—नैतद्, वृद्धिमाश्रित्य प्ररूपणायां क्रियमाणायां अन्यस्यासंभवात्। न च वृद्धौ प्ररूपयिष्यमाणायां वृद्धिविरहितं स्थानं द्वितीयं भवति, अनवस्थाप्रसंगात्।

पुनः कश्चिदाशङ्कते—

असंख्यातलोकमात्राणि जीवाधारत्वेन जघन्यस्थानेन समानानि इति कथं ज्ञायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैतद्, अन्यथा यवमध्यादधः उपरि च असंख्यातलोकमात्रद्विगुणवृद्धिहानिप्रसंगात्। न चैवं, नानाजीवानुभाग-बंधाध्यवसानद्विगुणवृद्धिहानिस्थानान्तराणि आवलिकाया असंख्यातभाग इति उवरि परंपरोपनिधायां भण्यमानत्वात्।

किं च, न निरंतरं सर्वस्थानेषु जीववृद्धिर्भवति, यवमध्ये आवलिकाया असंख्यातभागं मुक्त्वा असंख्यातलोक-मात्रजीवप्रसंगात्।

पुनरपि कश्चित् पृच्छति—

कियन्मात्रेण विशेषाधिकाः ?

आचार्यदेवः उत्तरयति—

एकजीवमात्रेण विशेषाधिका ज्ञातव्याः। जघन्यस्थानजीवान् विरलय्य तांश्चैव विरलनरूपं प्रति समखंडं

यहाँ कोई शंका करता है—

असंख्यातलोकप्रमाण स्थान आगे जाकर स्थित स्थान द्वितीय कैसे हो सकता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं—

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि वृद्धि का आश्रय करके प्ररूपणा के करने पर अन्य द्वितीय स्थान संभव नहीं है। वृद्धि की प्ररूपणा की जाने पर वृद्धि से रहित स्थान दूसरा होता नहीं है, क्योंकि वैसा होने पर अनवस्था का प्रसंग आता है।

पुनः कोई शंका करता है—

असंख्यातलोकप्रमाणस्थान जीवाधारस्वरूप से जघन्य स्थान के समान है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं—

ऐसा भी नहीं कहना, क्योंकि इसके बिना यवमध्य से नीचे व ऊपर असंख्यात लोकप्रमाण दुगुणवृद्धि-हानिस्थानों के होने का प्रसंग आता है। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि नानाजीवों संबंधी अनुभागबंधाध्यवसानस्थानों के द्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर आवली के असंख्यातवें भाग है, ऐसा आगे परम्परोपनिधा में कहा जाने वाला है।

दूसरी बात यह है कि सब स्थानों में निरन्तर जीवों की वृद्धि होती हो, ऐसा भी नहीं है, क्योंकि यवमध्य में आवली के असंख्यातवें भाग को छोड़कर असंख्यातलोकमात्र जीवों का प्रसंग आता है।

पुनः कोई पूछता है—

कितने प्रमाण से वे विशेष अधिक हैं ?

आचार्यदेव इसका उत्तर देते हैं—

एक जीव मात्र से वे विशेष अधिक हैं। जघन्य स्थान के जीवों का विरलन कर उनको ही विरलन अंक

कृत्वा दत्तेषु तत्र एकखण्डमात्रेण विशेषाधिका इति भणितं भवति।

संप्रति तृतीयानुभागबंधाध्यवसानस्थानजीवप्रमाणप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

तदिए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा विसेसाहिया।।२७८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्रापि पूर्वमिव अवस्थितमसंख्यातलोकमात्राध्वानं गत्वा द्वितीयो जीवो वर्द्धते। अधस्तनसर्वस्थानानि जीवैर्जघन्यस्थानजीवेभ्यः एकजीवाधिकस्थानेन समानानि।**

कुतः?

स्वाभाविकत्वात्।

संप्रति अग्रेतनप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव जवमज्झं ।।२७९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतेन क्रमेण अंसख्यातलोकमात्राध्वानं गत्वा एकैकं जीवं वर्धापयित्वा नेतव्यं यावद् यवमध्यं इति।**

सर्वत्र एकैकश्चैव जीवो वर्धते इति कथं ज्ञायते ?

सूत्राविरुद्धाचार्योपदेशात् ज्ञायते। येन गुणहानिं प्रति प्रक्षेपभागहारो द्विगुणद्विगुणक्रमेण यावद् यवमध्यं तावद् गच्छति तेन प्रक्षेपोऽवस्थित एकजीवमात्रश्चैव भवतीति आचार्या भणन्ति। एतदाचार्यवचनं प्रमाणं कृत्वा एकजीव एव वर्धते इति श्रद्धातव्यम्।

के प्रति समखण्ड करके देने पर उनमें एक खंड मात्र वे विशेष अधिक हैं, यह अभिप्राय है।

अब तृतीय अनुभागबंध अध्यवसानस्थानजीव का प्रमाण प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उनसे तृतीय अनुभागबंधाध्यवसानस्थान में जीव विशेष अधिक हैं।।२७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ पर भी पहले के समान अवस्थित असंख्यातलोकमात्र अध्वान जाकर द्वितीय जीव बढ़ता है। अधस्तन के सभी स्थान जीवों की अपेक्षा जघन्य स्थान के जीवों से एक जीव अधिक स्थान के समान हैं।

प्रश्न—कैसे समान हैं ?

उत्तर—क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

अब आगे का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

इस प्रकार यवमध्य तक जीव विशेष अधिक-विशेष अधिक हैं।।२७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस क्रम से असंख्यातलोक मात्र अध्वान जाकर एक-एक जीव बढ़ाकर यवमध्य तक ले जाना चाहिए।

शंका—सर्वत्र एक-एक ही जीव बढ़ता है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—यह सूत्र के विरोध से रहित आचार्य के उपदेश से जाना जाता है। चूँकि प्रत्येक गुणहानि में यवमध्य तक प्रक्षेपभागहार दुगुणे-दुगुणे क्रम से जाता है, इसलिए प्रक्षेप अवस्थित होता हुआ एक जीव प्रमाण ही होता है, ऐसा आचार्य कहते हैं। आचार्यों के इस वचन को प्रमाण करके एक जीव ही बढ़ता है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए।

संप्रति अनन्तरोपनिधाया भावार्थप्ररूपणां करिष्यन्त्याचार्यदेवाः। तद्यथा—जघन्यस्थानजीवप्रमाणं विरलय्य तेष्वेव जीवेषु समखण्डं कृत्वा दत्तेषु एकैकस्य रूपस्य एकैकजीवप्रमाणं प्राप्नोति। पुनः अत्र एकजीवं गृहीत्वा जघन्ये स्थाने जीवाः स्तोकाः। द्वितीये जीवास्तावन्तश्चैव। एवमसंख्यातलोकमात्रस्थानेषु जीवास्तावन्तश्चैव भवन्तीति। तत उपरिमानंतरस्थाने एको जीवः प्रक्षेपयितव्यः। पुनरपि असंख्यातलोकमात्रस्थानेषु जीवास्तावन्त एव। ततो विरलनराशेः द्वितीयरूपधरितजीवस्तदनंतरोपरिमस्थाजीवेषु प्रक्षेपयितव्यः। ततः एतस्य स्थानस्य जीवैः समानानि भूत्वा असंख्यातलोकमात्रस्थानानि गच्छन्ति। ततोऽनन्तरोपरिमस्थाने तृतीयो जीवो वर्धापयिव्यः। एवमनेन विधानेन पूर्वोक्ताध्वानं ध्रुवं कृत्वा एकैकजीवं वर्धापयित्वा नेतव्यं यावद् जघन्यस्थानजीवेभ्यो द्विगुणजीवा इति।

अत्र विशेषविस्तरो धवलाटीकायां पठितव्योऽस्ति।

अधुना जीवविशेषहीनप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

तेण परं विसेसहीणा।।२८०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**तेन यवमध्येन परमुपरि जीवा विशेषहीना भूत्वा गच्छन्ति।**

कुतः ?

स्वाभाविकत्वात् तीव्रसंक्लेशेण जीवानां प्रायेण संभवाभावाद्वा।

संप्रति विशेषहीनप्रमाणान्तनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अब अनंतरोपनिधा के भावार्थ की प्ररूपणा आचार्य देव करेंगे। वह इस प्रकार है—

जघन्यस्थान के जीवों के प्रमाण का विरलनकर उन्हीं जीवों को समखंड करके देने पर एक-एक अंक के प्रति एक-एक जीव का प्रमाण प्राप्त होता है। पुनः यहाँ एक जीव को ग्रहणकर जघन्य स्थान में जीव स्तोक हैं और द्वितीय स्थान में जीव उतने ही हैं। इस प्रकार असंख्यातलोक मात्र स्थानों में जीव उतने मात्र ही होते हैं। उनसे आगे अनंतर स्थान में एक जीव का प्रक्षेप करना चाहिए। फिर भी असंख्यात लोकमात्र स्थानों में जीव उतने मात्र ही होते हैं। तत्पश्चात् विरलन राशि के द्वितीय अंक के प्रति प्राप्त एक जीव का तदनंतर आगे के स्थान संबंधी जीवों में प्रक्षेप करना चाहिए। फिर इस स्थान के जीवों से समान होकर असंख्यातलोक मात्र स्थान जाते हैं। तत्पश्चात् अनन्तर आगे के स्थान में तृतीय जीव को बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार इस विधि से पूर्वोक्त अध्वान को ध्रुव करके एक-एक जीव को बढ़ाकर जघन्य स्थान के जीवों से दूने जीवों के प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए।

इसका विशेष विस्तृतवर्णन धवला टीका में पढ़ने योग्य है।

अब जीव के विशेष हीनपने का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इसके आगे जीव विशेष हीन हैं।।२८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उससे अर्थात् यवमध्य से आगे जीव विशेष हीन होकर जाते हैं।

प्रश्न—जीव विशेष हीन होकर क्यों जाते हैं ?

उत्तर—क्योंकि, ऐसा स्वभाव है अथवा तीव्र संक्लेश से युक्त जीवों की प्रायः संभावना नहीं पाई जाती है।

अब विशेष हीन प्रमाणान्त का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

एवं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव उक्कस्स अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे त्ति।।२८१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एवं 'विशेषहीणा विसेसहीणा' इति वीप्सा निर्देशोऽस्ति। तेन यवमध्यात् उपरिमसर्वस्थानानि अनन्तरोपनिधाया जीवैर्विशेषहीनानीति द्रष्टव्यं। एतस्य भावार्थ उच्यते। तद्यथा— प्रथमद्विगुणवृद्धिभागहारं जघन्यपरीतासंख्यातस्य द्विभागेन गुणयित्वा विरलय्य यवमध्यजीवेषु समखंडं कृत्वा दत्तेषु एकैकस्य रूपस्य एकैकजीवप्रमाणं प्राप्नोति। तत एतस्य एवमेव स्थापयित्वा प्ररूपणा क्रियते। एतस्य विस्तरोऽपि धवलाटीकायां द्रष्टव्यः।**

एवं द्वितीयेऽन्तरस्थले द्वितीयभेदे अनन्तरोपनिधानामप्रथमभेदनिरूपकानि षट्सूत्राणि गतानि।

अधुना परंपरोपनिधा भेदे अनुभागबंधाध्यवसानजीवप्रमाणप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

परंपरोवणिधाए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणजीवेहिंतो तत्तो असंखेज्जलोगं गंतूण दुगुणवड्ढिदा।।२८२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**असंख्यातलोकमात्रानुभागबंधाध्यवसानस्थानेषु जीवा जघन्यानुभागबंधाध्यवसानजीवैः सदृशा भूत्वा पुनः तेषामेकजीवेन अधिकत्वोपलंभात्। चतुःसमयिकस्थानप्रभृति यावद्**

सूत्रार्थ—

इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागबंधाध्यवसानस्थान तक जीव विशेषहीन-विशेषहीन होकर जाते हैं।।२८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस प्रकार 'विशेषहीन-विशेषहीन' यह वीप्सा निर्देश है। इसलिए यवमध्य से आगे सब स्थान अनन्तरोपनिधा की अपेक्षा जीवों से विशेषहीन हैं, ऐसा समझना चाहिए। इसका भावार्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—

प्रथम दुगुणवृद्धि के भागहार को जघन्य परीतासंख्यात के द्विभाग से गुणित करने पर जो प्राप्त हो, उसका विरलन करके यवमध्य के जीवों को समखण्ड करके देने पर एक-एक अंक के प्रति एक-एक जीव का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। इसलिए इसको इसी प्रकार से स्थापित करके प्ररूपणा करते हैं।

इसका भी विस्तृत वर्णन धवला टीका में द्रष्टव्य है।

इस प्रकार द्वितीय अन्तरस्थल में द्वितीय भेद में अनन्तरोपनिधा नामक प्रथम भेद का निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब परम्परोपनिधा भेद में अनुभागबंधअध्यवसानस्थान जीव का प्रमाण प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

परम्परोपनिधा में जघन्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान के जो जीव हैं, उनसे असंख्यात लोकमात्र जाकर वे दुगुणी वृद्धि को प्राप्त होते हैं।।२८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण यह है कि असंख्यात अनुभागबंधाध्यवसानस्थान जीव जघन्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान के जीवों से समान होकर फिर वे एक जीव से अधिक पाये जाते हैं। चार

द्विसमयिकानामसंख्यातभाग इति तावत्सर्वस्थानानि जीवैः सदृशानीति भणितं भवति।

अवस्थितमात्राध्वानं गत्वा एकैकजीववृद्ध्या जघन्यस्थानजीवमात्रेषु जीवेषु जघन्यस्थानजीवानामुपरि वर्द्धितेषु द्विगुणवृद्धिसमुत्पत्तेः गुणहानि-अध्वानमसंख्यातलोकमात्रं भवतीति गृहीतव्यम्।

अधुना द्विगुणवृद्धिकालनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं दुगुणवड्ढिदा जाव जवमज्झं।।२८३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सुगममेतत्, अनन्तरोपनिधायाः प्ररूपितविशेषत्वात्। यवमध्याद् अधस्तनद्विगुणवृद्धि-अध्वानि सदृशानि, प्रथम द्विगुणवृद्धिप्रभृति उपरिमद्विगुणवृद्धीषु द्विगुणवृद्धिं प्रति अधस्तनगुणवृद्ध्या एकजीववर्धिताध्वानस्य अर्द्धार्द्धं गत्वा एकैकजीववृद्धेः उपलंभात्। यवमध्यादुपरिमद्विगुणहान्योऽपि अधस्तनद्विगुणहानिभिरध्वानेन समानाः, द्विगुणद्विगुणमध्वानं गत्वा एकैकजीवपरिहानेः।**

अधुना एतदेवनिरूपणार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

तेण परमसंखेज्जलोगं गंतूण दुगुणहीणा।।२८४।।

एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सियअणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे त्ति।।२८५।।

समय योग्य स्थानों से लेकर दो समय योग्य स्थानों के असंख्यातवें भाग तक सभी स्थान जीवों की अपेक्षा समान हैं, यह अभिप्राय है।

इतना मात्र अवस्थित अध्वान जाकर एक-एक जीव की वृद्धि द्वारा जघन्यस्थानसंबंधी जीवों के ऊपर जघन्यस्थान संबंधी जीवों के बराबर जीवों के बढ़ जाने पर दूनी वृद्धि के उत्पन्न होने के कारण गुणहानि अध्वान असंख्यात लोकमात्र होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

अब द्विगुणवृद्धिकाल के निरूपण हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इस प्रकार यवमध्य तक वे दूनी-दूनी वृद्धि से युक्त हैं।।२८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र का अर्थ सुगम है, क्योंकि इसकी विशेषता की प्ररूपणा अनन्तरोपनिधा में की जा चुकी है। यवमध्य से नीचे के दुगुणवृद्धिअध्वान सदृश हैं, क्योंकि प्रथम दुगुणवद्धि से लेकर आगे की दुगुणवृद्धियों में से प्रत्येक दुगुणवृद्धि में अधस्तन दुगुणवृद्धि के एक जीव वृद्धि युक्त अध्वान का आधा-आधा भाग जाकर एक-एक जीव की वृद्धि पाई जाती है। यवमध्य के ऊपर की दुगुणहानियाँ भी अधस्तन दुगुणहानि से अध्वान की अपेक्षा समान हैं, क्योंकि दूना-दूना अध्वान जाकर एक-एक जीव की हानि होती है।

अब इसी का निरूपण करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे आगे असंख्यात लोक जाकर वे दूने हीन होते हैं।।२८४।।

इस प्रकार से वे उत्कृष्ट अनुभागबंधाध्यवसानस्थान के प्राप्त होने तक दूने-दूने हीन हैं।।२८५।।

एगजीव अणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जा लोगा।।२८६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**गुणहान्यध्वानं पूर्वं प्ररूपितं, पुनरिह किमर्थं प्ररूप्यते ?**

गुणहान्यध्वानात् नानागुणहानिशलाकासु आनीयमानासु मंदमेधाविशिष्यजनविस्मारणार्थं प्ररूप्यते।

णाणाजीवअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि आवलियाए असंखेज्जदिभागो।।२८७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतस्य साधनमुच्यते—एकगुणहानि-अध्वानमात्रासंख्यातलोकानुभाग-बंधाध्यवसानस्थानानां यदि एका द्विगुणवृद्धिशलाका लभ्यते तर्हि सर्वानुभागबंधाध्यवसानस्थानानां किं लभ्यते इति प्रमाणेन फलगुणित-इच्छाराशेः अपवर्तितायां आवलिकाया असंख्यातभागमात्रनानाद्विगुणवृद्धि-हानिशलाकाः लभ्यन्ते।**

णाणाजीवअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि।।२८८।।

एक जीव के अनुभागबंधाध्यवसानस्थानों संबंधी दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।।२८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ शंका-समाधान के माध्यम से सूत्र के अभिप्राय को बताया गया है।

शंका—गुणहानिअध्वान की प्ररूपणा पहले की जा चुकी है, उसकी प्ररूपणा यहाँ फिर किसलिए की जा रही है ?

समाधान—गुणहानि अध्वान से नानागुणहानिशलाकाओं को लाते समय मन्दबुद्धि शिष्यों को स्मरण कराने के लिए उसकी फिर से प्ररूपणा की जा रही है।

सूत्रार्थ—

नाना जीवों से संबंधी अनुभागबंधाध्यवसानस्थानों संबंधी दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।२८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका साधन कहते हैं—एक गुणहानि अध्वान के बराबर असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबंधाध्यवसानस्थानों की यदि एक दुगुणवृद्धिशलाका पाई जाती है, तो समस्त अनुभागबंधाध्यवसानस्थानों की कितनी दुगुणवृद्धिशलाकाएं पाई जावेंगी, इस प्रकार प्रमाण से फलगुणित इच्छा राशि को अपवर्तित करने पर आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण नानादुगुणवृद्धि-हानि शलाकाएँ पाई जाती हैं।

सूत्रार्थ—

नाना जीवों संबंधी अनुभागबंधाध्यवसानदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं।।२८८।।

कुतः एतत्? आवलिकाया असंख्यातभागप्रमाणत्वात्।

एयजीवअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्ज-गुणं।।२८९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**कुतः? असंख्यातलोकप्रमाणत्वात्। अत्र कश्चिदाह—एवमल्पबहुत्वं प्रमाणप्ररूपणादेव अवगतमिति नैव प्ररूपयितव्यम्?**

आचार्यः प्राह—

न, मंदमेधाविशिष्यानुग्रहार्थं प्ररूपणायां क्रियमाणायां दोषाभावात्।

एवं तृतीयेऽन्तरस्थले परंपरोपनिधाप्ररूपणपराणि अष्टौ सूत्राणि गतानि।

इत्थं पंचमस्थले त्रिभिरन्तरस्थलैः समन्वितपंचदशसूत्राणि गतानि।

इति वृद्धिप्ररूपणा समाप्ता।

यवमध्यप्ररूपणा प्ररूप्यते।

अथ यवमध्यप्ररूपणाप्ररूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

जवमज्झपरूवणदाए ट्ठाणाणमसंखेज्जदिभागे जवमज्झं।।२९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ प्रश्न होता है कि-ऐसा कैसे है ? तो उत्तर दिया है कि इसका कारण यह है कि वे आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

सूत्रार्थ—

उनसे एक जीव संबंधी अनुभागबंधाध्यवसानदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं।।२८९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ प्रश्न होता है कि ऐसा क्यों हैं ? इसका उत्तर है कि वे चूँकि असंख्यातलोकप्रमाण हैं इसीलिए असंख्यातगुणे माने गये हैं।

यहाँ कोई शंका करता है—

यह अल्पबहुत्व चूँकि प्रमाण प्ररूपणा से ही जाना जा चुका है, अतएव उसकी यहाँ प्ररूपणा नहीं करनी चाहिए ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि मंदबुद्धि शिष्यों के अनुग्रहार्थ उसकी यहाँ प्ररूपणा करने में कोई दोष नहीं है।

इस प्रकार से तृतीय अन्तरस्थल में परंपरोपनिधा को प्ररूपित करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार पंचमस्थल में तीन अन्तरस्थलों से समन्वित पन्द्रह सूत्र पूर्ण हुए।

यह वृद्धिप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब यवमध्यप्ररूपणा का कथन किया जा रहा है।

उसमें यवमध्यप्ररूपणा के प्ररूपण हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

यवमध्य की प्ररूपणा करने पर स्थानों के असंख्यातवें भाग में यवमध्य होता है।।२९०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सर्वस्थानानि असंख्यातखंडानि कृत्वा तत्र एकखंडे 'यवमध्यं' भवति। एतद्यवमध्यं अधस्तनचतुःसमयिकस्थानप्रभृति उपरि द्विसमयप्रायोग्यस्थानानामसंख्यातभागं गत्वा भवति। त्रिसमयप्रायोग्यस्थानानां चरमसमये यवमध्यं किन्न जायते ?**

न जायते, असंख्यातलोकमात्रगुणहानिप्रसंगात्।

एतत्कुतो ज्ञायते ?

अधस्तनस्थानेभ्यः असंख्यातगुणत्रिसमयप्रायोग्यस्थानेषु असंख्यातलोकैर्गुणितेषु द्विसमयप्रायोग्यस्थानानां प्रमाणोत्पत्तेः।

तदपि कुतो ज्ञायते ?

पूर्वं प्ररूपिताल्पबहुत्वसूत्रात्। तद्यथा—सर्वस्तोकाः अष्टसमयप्रायोग्यानुभागबंधाध्यवसानस्थानानि। द्वयोरपिपार्श्वयोः सप्तसमयप्रायोग्यानुभागबंधाध्यवसानस्थानानि असंख्यातगुणानि। द्वयोपरि पार्श्वयोः षट्समय-प्रायोग्यस्थानानि असंख्यातगुणानि। द्वयोरपि पार्श्वयोः पंचसमयिकप्रायोग्यस्थानानि असंख्यातगुणानि। द्वयोरपिपार्श्वयोः चतुःसमयिकप्रायोग्यस्थानानि असंख्यातगुणानि। त्रिसमयिकप्रायोग्यस्थानानि असंख्यातगुणानि। द्विसमयिकप्रायोग्य-स्थानानि असंख्यातगुणानि।

गुणकारः सर्वत्र असंख्यातलोकमात्रो भवतीति सूत्रे न प्ररूपितः। एतत्सूत्रस्य व्याख्यानं कुर्वन्तः केऽपि आचार्याः गुणकारः कायस्थितिरिति भणन्ति, केऽपि सामान्येन असंख्यातलोका इति। तज्ज्ञात्वा वक्तव्यम्। यवमध्यस्य अधस्तनस्थानानि किं बहुकानि आहोस्वित् उवरिमाणि, उभयथापि स्थानानामसंख्यात-

---

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी स्थानों के असंख्यात खण्ड करके उनमें से एक खण्ड में यवमध्य होता है। यह यवमध्य के अधस्तन चार समय योग्य स्थानों से लेकर ऊपर दो समय योग्य स्थानों के असंख्यातवें भाग जाकर होता है।

शंका—तीन समय योग्य स्थानों के अंतिम समय में यवमध्य क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं होता है, क्योंकि वैसा होने पर असंख्यात लोकप्रमाण गुणहानियों का प्रसंग आता है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—अधस्तन स्थानों की अपेक्षा असंख्यातगुणे तीन समय योग्य स्थानों को असंख्यात लोकों से गुणित करने पर चूँकि दो समय योग्य स्थानों का प्रमाण उत्पन्न होता है। अतः इसी से उक्त प्रसंग सुविदित है।

शंका—वह भी किस प्रकार से जाना जाता है ?

समाधान—वह पूर्व में प्ररूपित अल्पबहुत्व संबंधी सूत्र से जाना जाता है। वह इस प्रकार है—आठ समय योग्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे दोनों ही पार्श्वभागों में सात समय योग्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे दोनों ही पार्श्वभागों में छह समय योग्य स्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे दोनों ही पार्श्वभागों में पाँच समय योग्य स्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे दोनों ही पार्श्वभागों में चार समय योग्य स्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे तीन समय योग्य स्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे दो समय योग्य स्थान असंख्यातगुणे हैं।

गुणकार सब स्थानों में असंख्यात लोकप्रमाण है, यह सूत्र में नहीं कहा गया है। इस सूत्र का व्याख्यान करने वाले कितने ही आचार्य गुणकार कायस्थितिप्रमाण बतलाते हैं और कितने ही सामान्यरूप से उसका प्रमाण असंख्यातलोक प्रमाण बतलाते हैं। उसका ज्ञान करके कथन करना चाहिए।

यवमध्य से नीचे के स्थान क्या बहुत हैं, अथवा ऊपर के बहुत हैं, दोनों प्रकार के ही स्थानों के

भागे यवमध्यमिति सिद्धेः इति भणिते तन्निर्णयार्थमुत्तरसूत्रमस्ति —

जवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि थोवाणि।।२९१।।

उवरिमसंखेज्जगुणाणि।।२९२।।

को गुणकारः ?

आवलिकाया असंख्यातभागः। कारणं पूर्वं प्ररूपितमिति नेह प्ररूप्यते।

इति षष्ठस्थले यवमध्यप्ररूपणायां त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अथ स्पर्शनप्ररूपणा

अथ स्पर्शनप्ररूपणायां एकादशसूत्रेषु स्पर्शनकालनिरूपणार्थं द्वौ अंतराधिकारौ स्तः। प्रथमस्थले असंख्यातगुणितरूपेण ''फोसणपरूवणदाए'' इत्यादिना सप्तसूत्राणि। द्वितीयस्थले विशेषाधिकरूपेण ''जवमज्झस्स'' इत्यादिना चत्वारिसूत्राणीति समुदायपातनिका भवति।

संप्रति स्पर्शनप्ररूपणायां एकजीवानुभागबंधस्पर्शनकालप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

फोसणपरूवणदाए तीदे काले एयजीवस्स उक्कस्सए अणुभागबंध-ज्झवसाणट्ठाणे फोसणकालो थोवो।।२९३।।

असंख्यातवें भाग में यवमध्य हैं, ऐसा सिद्ध है, इस प्रकार पूछे जाने पर उसका निर्णय करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं।

सूत्रार्थ —

यवमध्य के नीचे के स्थान स्तोक हैं।।२९१।।

उनसे ऊपर के स्थान असंख्यातगुणे हैं।।२९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — गुणकार क्या है ? गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। इसका कारण पूर्व में प्ररूपित किया जा चुका है, अतएव उसकी यहाँ प्ररूपणा नहीं की जा रही है।

इस प्रकार छठे स्थल में यवमध्यप्ररूपणा का प्ररूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अथ स्पर्शनप्ररूपणा प्रारंभ

अब स्पर्शनप्ररूपणा में ग्यारह सूत्रों में स्पर्शनकाल का निरूपण करने हेतु दो अंतर अधिकार कहे जाते हैं। उनमें से प्रथम स्थल में असंख्यातगुणितरूप से 'फोसणपरूवणदाए' इत्यादि सात सूत्र हैं। द्वितीय स्थल में विशेष अधिक रूप से ''जवमज्झस्स' इत्यादि चार सूत्र हैं यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब स्पर्शनप्ररूपणा में एक जीव के अनुभागबंधस्पर्शनकाल की प्ररूपणा के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

स्पर्शनप्ररूपणा की अपेक्षा अतीतकाल में एक जीव के उत्कृष्ट अनुभागबंधाध्य-वसानस्थान में स्पर्शन का काल स्तोक है।।२९३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**स्पर्शनप्ररूपणायां अतीते काले एकजीवस्य उत्कृष्टेऽनुभागबंधाध्यवसानस्थाने स्पर्शनकालः स्तोको ज्ञातव्यो भवति।**

अत्र कश्चिदाह—

अत्र सत्प्ररूपणा-प्रमाणप्ररूपणाभ्यां विना अल्पबहुत्वप्ररूपणैव किमर्थमुच्यते?

आचार्यदेवः प्राह—

न तावत्सत्प्ररूपणात्र कर्तव्या, अल्पबहुत्वेन चैवावगमात्।

कुतः ?

अविद्यमानसत्त्वस्य स्तोकबहुत्वप्ररूपणानुपपत्तेः। न प्रमाणप्ररूपणापि वक्तव्या, एकैकजीवेन अतीते काले एकैकस्थानस्पर्शितकालस्य उपदेशेन विनापि अनन्तप्रमाणत्वसिद्धेः। ''उत्कृष्टानुभागबंधाध्यवसानस्थानस्पर्शनकालः'' इति वाक्येन अतीते काले एकजीवेन द्विसमयप्रायोग्यसर्वानुभागबंधाध्यवसानस्थानेषु स्थितकालो गृहीतव्यः।

अत्र कश्चिदाशंकते—

कथं द्विसमयप्रायोग्यसर्वस्थानानां उत्कृष्टस्थानव्यपदेशः ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

अस्याः शंकायाः परिहार उच्यते—उत्कृष्टस्थानसहचारेण द्वयोः समययोः उत्कृष्टव्यपदेशो भवति, असिसहचरितस्य पुरुषस्य असिव्यपदेश इव।

उत्कृष्टस्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थानमुत्कृष्टानुभागबंधाध्यवसानस्थानं, अत्र षष्ठीतत्पुरुषसमासो ज्ञातव्यः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र का अभिप्राय यह है कि स्पर्शनप्ररूपणा में भूतकाल में एक जीव के उत्कृष्ट अनुभागबंध अध्यवसानस्थान में स्पर्शन का काल स्तोक है ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

यहाँ सत्प्ररूपणा व प्रमाणप्ररूपणा के बिना अल्पबहुत्वप्ररूपणा ही किसलिए की जा रही है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं—

यहाँ सत्प्ररूपणा नहीं की गई है, क्योंकि उसका ज्ञान अल्पबहुत्व से ही हो जाता है।

प्रश्न—कैसे हो जाता है ?

उत्तर—कारण यह है कि जिसका अस्तित्व न हो, उसके अल्पबहुत्व की प्ररूपणा नहीं बनती है। प्रमाणप्ररूपणा भी कहने के अयोग्य हैं, क्योंकि एक-एक जीव के द्वारा अतीतकाल में एक-एक स्थान के स्पर्शन किये जाने का काल अनन्त है, इस प्रकार उपदेश के बिना भी उसका अनंत प्रमाण सिद्ध है। उत्कृष्ट अनुभाग बंधाध्यवसानस्थानस्पर्शन काल से अतीतकाल में एक जीव के द्वारा दो समय योग्य सब अनुभागबंधाध्यवसानस्थानों में रहने का काल ग्रहण करना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है—

दो समय योग्य सब स्थानों की उत्कृष्ट स्थान संज्ञा कैसे घटित होती है ?

आचार्यदेव इस शंका का उत्तर कहते हैं—

उत्कृष्ट स्थान के साथ रहने के कारण दो समयों की उत्कृष्ट संज्ञा है, जैसे असियुक्त पुरुष की असि यह संज्ञा हो जाती है।

उत्कृष्ट का अनुभागबंधाध्यवसानस्थान उत्कृष्ट अनुभागबंधाध्यवसानस्थान इस प्रकार यहाँ षष्ठी

तत्र स्पर्शनकालः स्तोकः, एकजीवस्य अतिसंक्लेशो प्रायेण पतनाभावात् (२) अत्र द्वयंकप्रमाणा संदृष्टिः ज्ञातव्या। न च एषः तत्र निरंतरं स्थितकालः, किन्तु अन्तरं कृत्वा कृत्वा स्थितकाले संकलिते स्तोक इति भणितमस्ति।

अधुना जघन्यस्पर्शनकालप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

जहण्णए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे फोसणकालो असंखेज्ज-गुणो।।२९४।। (४)

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**''जघन्यानुभागबंधाध्यवसानस्थाने'' इति भणिते अधस्तनचतुःसमय-प्रायोग्यसर्वस्थानानां ग्रहणं कर्तव्यम्।**

कथं तेषां सर्वेषां जघन्यव्यपदेशः ?

उच्यते—चतुर्णां समयानां जघन्यस्थानसहचारेण जघन्यसंज्ञा। तस्य स्थानानि जघन्यानुभागबंधाध्यव-सानस्थानानि। तत्र स्पर्शनकालः असंख्यातगुणोऽस्ति।

कुतः ?

असंख्यवारं चतुःसमयप्रायोग्यस्थानेषु परिभ्रम्य सकृत् द्विसमयप्रायोग्यस्थानानां गमनात्।

संप्रति काण्डकादिस्पर्शनकालप्रतिपादनार्थं सूत्रपंचकमवतार्यते —

कंडयस्स फोसणकालो तत्तियो चेव।।२९५।। (४)

तत्पुरुषसमास है। उसमें स्पर्शनकाल स्तोक है। इसका कारण यह है कि एक जीव का प्रायः अतिशय संक्लेश में पतन नहीं होता है (२)। यहाँ दो अंक प्रमाण संदृष्टि जानना चाहिए और यह वहाँ निरन्तर रहने का काल नहीं है, किन्तु बीच-बीच में अन्तर करके वहाँ रहने के काल का संकलन करने पर उसे स्तोक ऐसा कहा गया है।

अब जघन्य स्पर्शकाल का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

उससे जघन्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान में स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है।।२९४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जघन्य अनुभागबंध अध्यवसानस्थान ऐसा कहने पर नीचे के चार समय योग्य सब स्थानों का ग्रहण करना चाहिए।

शंका—उन सबकी जघन्य संज्ञा कैसे है ?

समाधान—जघन्य स्थान के साथ रहने के कारण चार समयों की जघन्य संज्ञा कही जाती है। उसके स्थान जघन्य अनुभागस्थान कहे जाते हैं। उनमें रहने का काल असंख्यातगुणा है।

क्यों ?

क्योंकि असंख्यातबार चार समय योग्य स्थानों में परिभ्रमण करके एक बार दो समय योग्य स्थानों को प्राप्त होता है।

अब काण्डकादि का स्पर्शनकाल प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

काण्डक का स्पर्शनकाल उतना ही है।।२९५।। (४)

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पूर्वं प्ररूपितस्यैव किमर्थं प्ररूपणा क्रियते, प्ररूपितप्ररूपणायां फलाभावात्? इति चेत्, आचार्येण कथ्यते—नैष दोषः, ''जहण्णाणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे'' इति वचनात् उत्पन्नसंशयस्य शिष्यस्य संदेहनिवारणार्थं तदुत्पत्तेः।**

जवमज्झफोसणकालो असंखेज्जगुणो।।२९६।। (८)

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**''जवमज्झे'' इति भणिते अष्टसमयप्रायोग्यसर्वस्थानानां ग्रहणं कर्तव्यं। तेषामतीतकाले एकजीवेन स्पर्शितकालोऽसंख्यातगुणः, मध्यमपरिणामैर्यवमध्यस्थानेषु असंख्यातवारं परिभ्रम्य सकृत् चतुःसमयप्रायोग्यस्थानानां गमनसंभवात्।**

कंडयस्स उवरि फोसणकालो असंखेज्जगुणो।।२९७।। (३।२)

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अष्टसमयप्रायोग्यस्थानेभ्यः त्रिसमय-द्विसमयप्रायोग्यस्थानानामसंख्यात-गुणत्वात्।**

जवमज्झस्स उवरिं कंडयस्स हेट्ठदो फोसणकालो असंखेज्ज-गुणो।।२९८।। (७।६।५)

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**किं कारणमिति चेत् ? यद्यपि सप्त-षट्-पंचसमयप्रायोग्यस्थानानि त्रिसमय-द्विसमयप्रायोग्यस्थानानां असंख्यातभागस्तर्ह्यपि एतेषां स्पर्शनकालोऽसंख्यातगुणः, मध्यमपरिणामैरसंख्यातवारं**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पहले जिसकी प्ररूपणा की जा चुकी है, उसी की फिर से प्ररूपणा किसलिए की जा रही है, क्योंकि प्ररूपित की प्ररूपणा करने में कोई लाभ नहीं है ? ऐसी शंका होने पर आचार्य कहते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जघन्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान इस कथन से उत्पन्न हुए संदेह से युक्त शिष्य के उस संदेह को दूर करने के लिए प्ररूपित की भी प्ररूपणा बन जाती है।

सूत्रार्थ—

उससे यवमध्य का स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है।।२९६।। (८)

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—''यवमध्य में'' ऐसा कहने पर आठ समय योग्य सब स्थानों को ग्रहण करना चाहिए। तीन काल में एक जीव के द्वारा उनका स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है। कारण यह है कि मध्यम परिणामों के द्वारा यवमध्यस्थानों में असंख्यात बार परिभ्रमण करके एक बार चार समय योग्य स्थानों में जाना संभव होता है।

सूत्रार्थ—

उससे काण्डक के ऊपर स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है।।२९७।। (३।२)

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण यह है कि आठ समय योग्य स्थानों की अपेक्षा तीन समय व दो समय योग्य स्थान असंख्यातगुणे पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ—

उससे यवमध्य के ऊपर और काण्डक के नीचे स्पर्शन का काल असंख्यातगुणा है।।२९८।। (७।६।५)

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण क्या है ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं कि—

यद्यपि सात, छह और पाँच समय योग्य स्थान तीन समय व दो समय योग्य स्थानों के असंख्यातवें भाग हैं,

परिभ्रम्य सकृत् त्रिसमय-द्विसमयप्रायोग्यस्थानगमनोपलंभात्।

कंडयस्स उवरि जवमज्झस्स हेट्ठदो फोसणकालो तत्तिया चेव।।२९९।। (७।६।५)

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**समानसंख्यत्वात् मध्यमपरिणामैर्बध्यमानत्वेन भेदाभावाच्च।**

एवं स्पर्शनप्ररूपणायां प्रथमेऽन्तरस्थले स्पर्शनकालप्ररूपणपराणि सप्त सूत्राणि गतानि।

संप्रति विशेषाधिकनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

जवमज्झस्स उवरि फोसणकालो विसेसाहिओ।।३००।। (७।६।५। ४।३।२)

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सप्त-षट्-पंचसमयप्रायोग्यस्थानस्पर्शनकालस्योपरि चतुस्त्रिद्विसमय-प्रायोग्य-स्थानानां स्पर्शनकालप्रवेशात्।**

कियन्मात्रोऽत्र विशेषः ?

सप्त-षट्-पंचसमयप्रायोग्यस्थानानां स्पर्शनकालस्य असंख्यातभागो विशेषो ज्ञातव्यः।

कंडयस्स हेट्ठदो फोसणकालो विसेसाहिओ।।३०१।। (४।५।६।७।८। ७।६।५)

तो भी इनका स्पर्शनकाल असंख्यातगुणा है, क्योंकि मध्यम परिणामों के द्वारा असंख्यात बार सात, छह और पाँच समय योग्य स्थानों में परिभ्रमण करके एक बार तीन समय व दो समय योग्य स्थानों में गमन पाया जाता है।

सूत्रार्थ—

काण्डक के ऊपर यवमध्य के नीचे स्पर्शनकाल उतना ही है।।२९९।। (७।६।५)

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एक तो उनकी संख्या समान है, दूसरे मध्यम परिणामों के द्वारा बध्यमान स्वरूप से उनमें कोई भेद भी नहीं है, इसलिए यह स्पर्शनकाल उतना ही होता है, यह सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार स्पर्शनप्ररूपणा में प्रथम अन्तरस्थल में स्पर्शनकाल की प्ररूपणा करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब विशेष अधिक का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उनसे यवमध्य के ऊपर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है।।३००।।(७।६।५।४।३।२)

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका कारण यह है कि सात, छह और पाँच समय योग्य स्थानों के स्पर्शनकाल के ऊपर चार, तीन व दो समय योग्य स्थानों के स्पर्शनकाल का यहाँ प्रवेश है।

प्रश्न—विशेष का प्रमाण यहाँ कितना है ?

उत्तर—यहाँ सात, छह पाँच समय योग्य स्थानों संबंधी स्पर्शनकाल के असंख्यातवें भाग मात्र विशेष जानना चाहिए।

सूत्रार्थ—

इससे काण्डक के नीचे स्पर्शनकाल विशेष अधिक है।।३०१।। (४।५।६।७।८। ७।६।५)

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**कियन्मात्रो विशेषः ?**

स्वककालस्य असंख्याता भागा विशेषोऽस्ति। तद्यथा—यवमध्यकालाभ्यन्तरे चतुःसमयप्रायोग्यस्थान-कालमात्रं गृहीत्वा उपरिमसप्त-षट्-पंचसमयप्रायोग्यस्थानकालानामुपरि स्थापिते एतावद् भवति (४।५।६।७।७।६।५।४)

एष कालः त्रिसमय-द्विसमयप्रायोग्यस्थानानां कालं मुक्त्वा शेषकालानपेक्ष्य द्विगुणहानिरस्ति। पुनः यवमध्यकालस्य अपनीतशेषा असंख्याता भागा सन्ति। पुनस्तान् गृहीत्वा अधस्तनत्रिसमयद्विसमय-प्रायोग्यस्थानकाले शोधिते शुद्धशेषं द्विसमयत्रिसमयप्रायोग्यस्थानकालस्य असंख्याता भागा भवन्ति। पुनः एतस्मिन् पूर्वोक्त द्विगुणकाले शोधिते किंचिन्न्यूनद्विगुणकालः तिष्ठति। तेन विशेषाधिकः इति कालः प्ररूपितः।

कंडयस्स उवरिं फोसणकालो विसेसाहिओ।।३०२।। (५।६।७।८।७।६।५।४।३।२)

कियन्मात्रो विशेषः? उपरिम त्रिसमय-द्विसमयप्रायोग्यस्थानकालमात्रः भवन्ति।

सव्वेसु ट्ठाणेसु फोसणकालो विसेसाहिओ।।३०३।। (४।५।६।७।८।७।६।५।४।३।२)

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ प्रश्न उठता है कि-विशेष कितना है ?

इसका उत्तर देते हुए कहा है कि—

वह विशेष अपने काल के असंख्यात बहुभाग प्रमाण है। जो इस प्रकार है—

यवमध्यकाल के भीतर चार समय योग्य स्थानों के काल मात्र को ग्रहण कर उपरिम सात, छह व पाँच समय योग्य स्थानों संबंधी कालों के ऊपर स्थापित करने पर इतना होता है—(४।५।६।७।७।६।५।४)

यह काल तीन समय व दो समय योग्य स्थानों संबंधी कालों को छोड़कर शेष कालों की अपेक्षा करके दुगुणा हीन है। पुनः यवमध्यकाल को कम करने से शेष रहा असंख्यात बहुभाग है। उसको ग्रहण कर अधस्तन तीन समय और दो समय योग्य स्थानों के काल में से कम कर देने पर शेष दो समय व तीन समय योग्य स्थानों के काल का असंख्यात बहुभाग रहता है। इसको पूर्वोक्त दुगुने काल में से कम कर देने पर कुछ कम दुगुणा काल रहता है। इसीलिए विशेष अधिक काल की प्ररूपणा की गई है।

सूत्रार्थ—

इससे काण्डक के ऊपर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है।।३०२।। (५।६।७।८।७।६।५।४।३।२)

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ विशेष कितना है ? ऐसा प्रश्न होने पर कहा है—

वह ऊपर के तीन समय और दो समय योग्य स्थानों संबंधी काल के बराबर है।

सूत्रार्थ—

इससे सब स्थानों में स्पर्शनकाल विशेष अधिक है।।३०३।।(४।५।६।७।८।७।६।५।४।३।२)

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**कियन्मात्रो विशेषाधिकः?**

अधस्तनचतुःसमयप्रायोग्यस्थानकालमात्रः।

एवं अभव्य सिद्धिकप्रायोग्ये प्ररूपणा कर्तव्या।

अत्र स्पर्शनप्ररूपणा समाप्ता।

अथवा,' उक्कस्सज्झवसाणट्ठाणे' इति भणिते द्विसमयप्रायोग्यस्थानानां चरमं गृह्यते। 'जहण्णज्झवसाणट्ठाणे' इति भणिते चतुःसमयप्रायोग्यानां जघन्यं गृह्यते इति केऽपि आचार्या भणन्ति।

तन्न घटते, उत्कृष्टसंक्लेशे निपतनवारेभ्यः उत्कृष्टविशुद्धौ पतनवाराणामसंख्यातगुणत्वविरोधात्।

'कंडयस्स फोसणकालो तत्तिओ चेव' इत्युक्ते उपरि चतुःसमयप्रायोग्यस्थानानां चरमस्थानकालो गृहीतः इति भणन्ति।

एतदपि न घटते, एकस्य स्थानस्य काण्डकत्वविरोधात्, उत्कृष्टविशुद्धौ परिणमनवारेभ्यो मध्यमसंक्लेश-परिणमनवाराणां समानत्वविरोधात्। तस्मात् द्वितीयाल्पबहुत्वप्ररूपणा अत्र न प्ररूपिता।

इति द्वितीयेऽन्तरस्थले स्पर्शनकालविशेषाधिकप्ररूपकानि चत्वारि सूत्राणि गतानि।

एवं सप्तमे स्थले द्व्यन्तरस्थलगर्भित स्पर्शनप्ररूपणापरत्वेन एकादशसूत्राणि गतानि।

इति स्पर्शनप्ररूपणा समाप्ता भवति।

अथ अल्पबहुत्वप्ररूपणायामेकादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ भी प्रश्न हुआ है कि—विशेष कितना है ?

इसका उत्तर देते हुए कहा है कि—

वह विशेष अधस्तन चार समय के योग्य स्थानों संबंधी काल के बराबर है।

इस प्रकार अभव्यसिद्धिक योग्यस्थान में प्ररूपणा करना चाहिए।

यहाँ स्पर्शन प्ररूपणा समाप्त हुई।

अथवा "उत्कृष्ट अध्यवसानस्थान" ऐसा कहने पर दो समय योग्य स्थानों का अन्तिम स्थान ग्रहण किया जाता है। "जघन्य अनुभागस्थान" ऐसा कहने पर चार समय योग्य स्थानों का जघन्य स्थान ग्रहण किया जाता है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं।

परन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि ऐसा होने पर उत्कृष्ट संक्लेश में पड़ने के बारों की अपेक्षा उत्कृष्ट विशुद्धि में पड़ने के बारों के असंख्यात गुणे होने का विरोध होता हे।

काण्डक का स्पर्शनकाल उतना ही है, ऐसा कहने पर ऊपर चार समय योग्य स्थानों में अन्तिम स्थान के काल को ग्रहण किया गया है, ऐसा वे कहते हैं।

परन्तु वह घटित नहीं होता है, क्योंकि एक स्थान के काण्डक होने का विरोध है तथा उत्कृष्ट विशुद्धि में परिणत होने के बारों की अपेक्षा मध्यम संक्लेश में परिणत होने के बारों की समानता का विरोध है। इस कारण द्वितीय अल्पबहुत्व की प्ररूपणा यहाँ नहीं की गई है।

इस प्रकार द्वितीय अन्तरस्थल में स्पर्शनकाल विशेष अधिक का प्ररूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

यहाँ सप्तम स्थल में दो अन्तरस्थलों से गर्भित स्पर्शनप्ररूपणा को कहने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार स्पर्शनप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब अल्पबहुत्वप्ररूपणा में ग्यारह सूत्र अवतरित होते हैं —

अप्पबहुए त्ति उक्कस्सए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा थोवा।।३०४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**कुतः ? द्विसमयप्रायोग्यस्थानकालस्य स्तोकत्वोपलंभात्।**

जहण्णए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा असंखेज्जगुणा।।३०५।।

कुतो ज्ञायते ? पूर्वोक्तकालात् एतस्य कालोऽसंख्यातगुण इति सूत्रवचनात् ज्ञायते यथा चतुःसमय-प्रायोग्यस्थानेषु परिभ्रमन्ति जीवा बहुका इति।

कंडयस्स जीवा तत्तिया चेव।।३०६।।

कुतः द्वयोः कालयोर्भेदाभावात्।

जवमज्झस्स जीवा असंखेज्जगुणा।।३०७।।

कुतः ? काण्डकस्य यवमध्यकालस्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

कंडयस्स उवरिं जीवा असंखेज्जगुणा।।३०८।।

कुतः ? यवमध्यस्थानेभ्यः त्रिसमयिक-द्विसमयिकप्रायोग्यस्थानानामसंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

सूत्रार्थ—

अल्पबहुत्व की अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागबंधाध्यवसान में जीव स्तोक हैं।।३०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ऐसा कैसे है ? कारण यह है कि दो समय योग्य स्थानों का काल स्तोक पाया जाता है।

सूत्रार्थ—

उनसे जघन्य अनुभागबंधाध्यवसानस्थान में जीव असंख्यातगुणे हैं।।३०५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—पूर्व के काल की अपेक्षा इसका काल असंख्यातगुणा है, इस सूत्र वचन से जाना जाता है कि चार समय योग्य स्थानों में जीव बहुत भ्रमण करने वाले हैं।

सूत्रार्थ—

काण्डक के जीव उतने ही हैं।।३०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ऐसा क्यों है ? कारण यह है कि दोनों में काल की अपेक्षा कोई भेद नहीं हैं।

सूत्रार्थ—

उनसे यवमध्य के जीव असंख्यातगुणे हैं।।३०७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ऐसा क्यों है ? कारण यह है कि काण्डक की अपेक्षा यवमध्यकाल असंख्यातगुणा पाया जाता है।

सूत्रार्थ—

उनसे काण्डक के ऊपर जीव असंख्यातगुणे हैं।।३०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ऐसा क्यों है ? कारण यह है कि यवमध्य के स्थानों की अपेक्षा तीन समय व दो समय योग्य स्थान असंख्यातगुणे पाये जाते हैं।

जवमज्झस्स उवरि कंडयस्स हेट्ठादो जीवा असंखेज्जगुणा।।३०९।।

असंख्यातगुणितस्पर्शनकालत्वात्।

कंडयस्स उवरिं जवमज्झस्स हेट्ठिमदो जीवा तत्तिया चेव।।३१०।।

स्पर्शनकालस्थानसंख्याभिः समानत्वात्।

जवमज्झस्स उवरिं जीवा विसेसाहिया।।३११।।

कंडयस्स हेट्ठदो जीवा विसेसाहिया।।३१२।।

कंडयस्स उवरिं जीवा विसेसाहिया।।३१३।।

सव्वेसु ट्ठाणेसु जीवा विसेसाहिया।।३१४।।

एतेषां सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।

एवं अष्टमस्थलेऽल्पबहुत्वकथनत्वेन एकादश सूत्राणि गतानि।

इति वेदनाभावविधाननाम-अनुयोगद्वारं समाप्तम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे एकादशग्रन्थे भाववेदनाविधाने सप्तमानुयोगद्वारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां तृतीयाचूलिकानामायं तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ—

उनसे यवमध्य के ऊपर और काण्डक के नीचे जीव असंख्यातगुणे हैं।।३०९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कारण यह है कि यहाँ असंख्यातगुणा स्पर्शनकाल पाया जाता है।

सूत्रार्थ—

काण्डक के ऊपर और यवमध्य के नीचे जीव उतने ही हैं।।३१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कारण यह है कि यहाँ स्पर्शनकाल और स्थानसंख्या की अपेक्षा समानता है।

सूत्रार्थ—

उनसे यवमध्य के ऊपर जीव विशेष अधिक हैं।।३११।।

उनसे काण्डक के नीचे जीव विशेष अधिक हैं।।३१२।।

उनसे काण्डक के ऊपर जीव विशेष अधिक हैं।।३१३।।

उनसे सब स्थानों में जीव विशेष अधिक हैं।।३१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है।

इस प्रकार आठवें स्थल में अल्पबहुत्व का कथन करने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार वेदनाभाव विधान नाम का अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ के वेदना नामक चतुर्थ खण्ड में ग्यारहवें ग्रंथ में भाववेदना विधान नाम के सातवें अनुयोगद्वार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में तृतीय चूलिका नाम का यह तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अस्य वेदनाभावविधानस्य उपसंहारः

अत्र वेदनाभावविधाननामतृतीयमहाधिकारस्य मनाक् उपसंहारः क्रियते — श्रीमत्पुष्पदंतभूतबलिसूरिवर्यप्रणीतषट्खण्डागमग्रंथस्यान्तर्गतवेदनानुयोगद्वारनामचतुर्थखण्डे मुख्यरूपेण वेदनायाः षोडश अधिकाराः सन्ति। अस्मिन् एकादशे ग्रंथे वेदनाकालविधान-वेदनाभावविधानानुयोगद्वारे स्तः। अत्र तृतीयमहाधिकारे वेदनाभावविधानमेव एको महाधिकारः कथितः। अस्य विस्तरः किंचित् सूच्यते — प्रथमतस्तावत् नामभाव-स्थापनाभाव-द्रव्यभाव-भावभावानां वर्णनां कृत्वा सर्वेषु भावेषु वेदनाभावविधाने कर्मतद्व्यतिरिक्त-नोआगमद्रव्यस्य पदमीमांसा-स्वामित्व-अल्पबहुत्वनामभिस्त्रयोऽधिकाराः प्ररूपिताः।

पदमीमांसायां ज्ञानावरणादि-अष्टमूलकर्मणां उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यभाववेदनानां कथनमासीत्। अत्र श्रीवीरसेनाचार्येण उत्कृष्टादिचतुःपदैःसह सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव-ओज-युग्म-ओम-विशिष्ट-नोओमविशिष्ट-नामनवपदानां देशामर्शकभावेन सूचयित्वा त्रयोदशपदानां परस्परं सन्निकर्षः प्ररूपितः।

स्वामित्वानुयोगद्वारे ज्ञानावरणादि-अष्टमूलप्रकृतीः आश्रित्य उत्कृष्टादिचतुःपदापेक्षया स्वामित्वं कथितम्।

अल्पबहुत्वानुयोगद्वारे जघन्य-उत्कृष्ट-जघन्योत्कृष्टान् त्रीन् भेदान् कृत्वा मूलप्रकृतिषु उत्तरप्रकृतिषु चाल्पबहुत्वं वर्णितमस्ति।

अतः परं अस्यैव वेदनाभावविधानस्य चतुर्थे महाधिकारे क्रमशः प्रथमा-द्वितीया-तृतीयाः इमास्तिस्त्रः

इस वेदनाभावविधान का उपसंहार करते हैं

यहाँ वेदनाभावविधान नामक तृतीय महाधिकार का किंचित् उपसंहार किया जा रहा है—

श्रीमान् पुष्पदंत-भूतबली आचार्य प्रवर के द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के अन्तर्गत वेदनानुयोगद्वार नामक चतुर्थखण्ड में मुख्यरूप से वेदना के सोलह अधिकार हैं। इस ग्यारहवें ग्रंथ में वेदनाकाल विधान और वेदनाभावविधान ये दो अनुयोगद्वार हैं। यहाँ तृतीय महाधिकार में वेदनाभावविधान नाम का ही एक महाधिकार कहा गया है। इसका कुछ विस्तृत वर्णन यहाँ करते हैं—

इसमें प्राथमिकरूप से नामभाव, स्थापनाभाव, द्रव्यभाव और भावभाव इन चार भेदरूप भाव का वर्णन करके सभी भावों में वेदनाभाव विधान में कर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य के पदमीमांसा-स्वामित्व-अल्पबहुत्व नाम से तीन अधिकार प्ररूपित किये गये हैं।

पदमीमांसा में ज्ञानावरण आदि आठ मूलकर्मों के उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट, जघन्य-अजघन्य भाववेदनाओं का कथन था। यहाँ श्रीवीरसेनाचार्य के द्वारा उत्कृष्ट आदि चार पदों के साथ सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव-ओज-युग्म-ओम-विशिष्ट-नोओमविशिष्ट नाम वाले नौ पदों को देशामर्शकभाव से सूचित करके तेरह पदों का परस्पर में सन्निकर्ष प्ररूपित किया है।

स्वामित्व अनुयोगद्वार में ज्ञानावरण आदि आठ मूल प्रकृतियों का आश्रय लेकर उत्कृष्ट आदि चार पदों की अपेक्षा स्वामित्व कहा है।

अल्पबहुत्वानुयोगद्वार में जघन्य-उत्कृष्ट और जघन्योत्कृष्ट ये तीन भेद करके मूल प्रकृतियों और उत्तरप्रकृतियों में अल्पबहुत्व वर्णित है।

इसके आगे इसी वेदनाभावविधान के चतुर्थ महाधिकार में क्रशमः प्रथम, द्वितीय और तृतीय चूलिका

चूलिकाः प्ररूपिताः। यस्मिन् प्रकरणे विवक्षितानुयोगद्वारे कथितं विषयमवलम्ब्य विशेषव्याख्यानं क्रियते सा चूलिका कथ्यते। अतः चूलिका सर्वथा स्वतंत्रं न भूत्वा विवक्षितानुयोगद्वारस्यैव एकोऽवयवो मन्यते। एतादृश्यः अत्र तिस्रश्चूलिका निर्दिष्टाः सन्ति। एता एव त्रयोऽधिकारा चतुर्थमहाधिकारे सन्ति।

प्रथमचूलिकायां गुणश्रेणीनिर्जराणामेकादशस्थानानि वर्णितानि। सम्यक्त्वोत्पत्ति-श्रावक-विरत-अनंतानुबंधिविसंयोजक-दर्शनमोहक्षपक-चारित्रमोहोपशामक-उपशांतकषाय-क्षपक-क्षीणमोह-स्वस्थानजिन-योगनिरोधप्रवृत्तजिनाः सन्ति। एषु एकादशस्थानेषु गुणश्रेणिनिर्जरा उत्तरोत्तरासंख्यातगुणिता भवन्ति, किन्तु एतेषां काला उत्तरोत्तरसंख्यातगुणा हीना ज्ञातव्याः। तत्त्वार्थसूत्रग्रंथे दशस्थानानि वर्णितानि, तत्र जिनस्य द्वौ भेदौ न स्तः।

द्वितीयचूलिकायां अनुभागबंधाध्यवसानस्थानस्य कथनमस्ति। अस्य द्वादशानुयोगद्वाराणि — अविभाग-प्रतिच्छेदप्ररूपणा-स्थानप्ररूपणा-अंतरप्ररूपणा-काण्डकप्ररूपणा-ओजयुग्मप्ररूपणा-षट्स्थानप्ररूपणा-अधस्तनस्थानप्ररूपणा-समयप्ररूपणा-वृद्धिप्ररूपणा-यवमध्यप्ररूपणा-पर्यवसानप्ररूपणा-अल्पबहुत्व-प्ररूपणाश्चेति।

तृतीयचूलिकायां जीवसमुदाहारविचारणास्ति। अस्य जीवसमुदाहरस्य अष्टौ अनुयोगद्वाराणि — एकस्थानजीवप्रमाणानुगम-निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम-सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम-नानाजीवकाल-प्रमाणानुगम-वृद्धिप्ररूपणा-यवमध्यप्ररूपणा-स्पर्शनप्ररूपणा-अल्पबहुत्वानि चेति।

अत्र पर्यंततृतीयचतुर्थमहाधिकारयोश्चतुर्दशाधिकत्रिशतसूत्राणि सन्ति। तात्पर्यमेतत् — एतन्महाग्रंथं

नाम से तीन चूलिकाएँ कही गई हैं।

जिस प्रकरण में विवक्षित अनुयोगद्वार में कहे गये विषय का अवलम्बन लेकर विशेष व्याख्यान किया जाता है, वह चूलिका कहलाती है। अतः चूलिका सर्वथा स्वतंत्र न होकर विवक्षित अनुयोगद्वार का ही एक अवयव मानी जाती है। ऐसी चूलिकाएँ यहाँ तीन बतलाई गई हैं। ये ही तीन अधिकार चतुर्थ महाधिकार में है।

प्रथम चूलिका में गुणश्रेणी निर्जरा के ग्यारह स्थान वर्णित हैं। जो कि इस प्रकार नाम वाले हैं- १. सम्यक्त्वोत्पत्ति २. श्रावक ३. विरत ४. अनन्तानुबंधिविसंयोजक ५. दर्शनमोहक्षपक ६. चारित्रमोहउपशामक ७. उपशांतकषाय ८. क्षपक ९. क्षीणमोह १०. स्वस्थानजिन ११. योगनिरोधप्रवृत्तजिन।

इन ग्यारह स्थानों में गुणश्रेणिनिर्जरा उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी होती हैं, किन्तु इनके काल उत्तरोत्तरसंख्यातगुणा हीन जानना चाहिए। तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में दश स्थान कहे हैं, वहाँ जिन — सयोगकेवली और अयोगकेवली नाम के दो भेद नहीं माने हैं।

द्वितीय चूलिका में अनुभागबंध अध्यवसानस्थान का कथन है। इसके बारह अनुयोगद्वार हैं— १. अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा २. स्थानप्ररूपणा ३. अन्तरप्ररूपणा ४. काण्डकप्ररूपणा ५. ओजयुग्मप्ररूपणा ६. षट्स्थानप्ररूपणा ७. अधस्तनस्थानप्ररूपणा ८. समयप्ररूपणा ९. वृद्धिप्ररूपणा १०.यवमध्यप्ररूपणा ११. पर्यवसानप्ररूपणा एवं १२. अल्पबहुत्वप्ररूपणा।

तृतीयचूलिका में जीवसमुदाहार की विचारणा-प्ररूपणा की गई है। इस जीवसमुदाहार के आठ अनुयोगद्वार हैं-१. एक स्थानजीवप्रमाणानुगम २. निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम ३. सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम ४. नानाजीवकालप्रमाणानुगम ५. वृद्धिप्ररूपणा ६. यवमध्यप्ररूपणा ७. स्पर्शनप्ररूपणा और ८. अल्पबहुत्व।

यहाँ तक तृतीय-चतुर्थ महाधिकार में तीन सौ चौदह सूत्र हैं।

पठित्वा कर्मबंधकारणेभ्यो विरज्य स्वात्मतत्त्वचिन्तनं विधातव्यम्। ममात्मा भगवान् आत्मास्ति, कदाहं रागद्वेषमोह-क्रोधमानमायालोभपंचेन्द्रियविषयव्यापारेभ्यः स्वात्मानं पृथक्कृत्य निजशुद्धबुद्धनिरंजनपरमात्मानं ध्यायन् सन् परमाल्हादं प्राप्नुवन् परमानंदपदं प्राप्स्ये इति भावनया रत्नत्रयशुद्धिं सिद्धिं पूर्णतां च लभन्ते भव्यजीवाः। वयमपि एवमेव याचामहे श्रीमहावीरस्वामिनां चरणकमलयोःस्थित्वा इति तथा च प्रार्थ्यते —

वीरस्य जन्मभूमिर्या, कुण्डलाख्यापुरी भुवि।
स्थेयाद् वीरस्य सिद्धांतं, भव्यानां च श्रियं क्रियात्।।१।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिसूरिवर्यप्रणीतषट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे एकादशे ग्रंथे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रंथाधारेण विरचिते विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यश्चारित्रचक्रवर्ती-श्रीशांतिसागरगुरुस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्य-स्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीपरचना-भगवन्महावीरजन्मभूमिकुण्डलपुरनंद्यावर्तमहल-आदितीर्थोद्धारिका-गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धांतचिंतामणिटीकायां द्वितीय-वेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-सप्तमवेदनाभावविधाना-नुयोगद्वारस्य चूलिकात्रयसमन्वितोऽयं चतुर्थो महाधिकारः समाप्तः।

तात्पर्य यह है कि इस महाग्रंथ को पढ़कर कर्मबंध के कारणों से विरक्त होकर स्वात्मतत्त्व का चिन्तन करना चाहिए। मेरी आत्मा भगवान आत्मा है, मैं कब राग-द्वेष-मोह-क्रोध-मान-माया-लोभ एवं पंचेन्द्रिय विषयव्यापार से अपनी आत्मा को पृथक् करके निज शुद्ध-बुद्ध-निरंजन परमात्मा को ध्याते हुए परम आल्हाद को प्राप्त करते हुए परमानंद पद को प्राप्त करूँगा। इस भावना से रत्नत्रय की शुद्धि-सिद्धि और पूर्णता को भव्यजीव प्राप्त करते हैं। हम लोग भी श्री महावीर स्वामी के चरण कमलों में बैठकर यही याचना करते हैं तथा यह प्रार्थना करते हैं कि-

श्लोकार्थ — भगवान् महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुरी जगत् में सदैव स्थित रहे और वीरप्रभु के सर्वोदयी सिद्धान्त भव्यों का कल्याण करें।।१।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के वेदना नाम के चतुर्थ खण्ड में ग्यारहवें ग्रंथ में श्रीवीरसेनाचार्य रचित धवला टीका को प्रमुख करके नाना ग्रंथों के आधार से विरचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज उनके प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागराचार्य उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका भगवान् महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर में नंद्यावर्त महल आदि तीर्थों की उद्धारिका गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत सप्तमवेदनाभावविधान अनुयोगद्वार की तीन चूलिकाओं से समन्वित चतुर्थ महाधिकार समाप्त हुआ।

उपसंहारः

अथ ग्रन्थस्योपसंहारः क्रियते—

संप्रति श्रीमहावीरस्वामिशासनं कथ्यते—

भगवतो महावीरतीर्थंकरस्य जन्मभूमिः 'कुण्डलपुरनगरी' इति दिगम्बरपरम्परागतजिनागमेऽस्ति। तथाहि—

'सिद्धत्थरायपियकारिणीहिं, णयरम्मि कुंडले वीरो।
उत्तरफग्गुणि-रिक्खे, चित्तसिया तेरसीए उप्पण्णो'[१]।।५४९।।

इयं गाथा तिलोयपण्णत्तिग्रन्थस्यास्ति। 'कसायपाहुड' ग्रंथराजस्य जयधवलाटीकायामपि- ''आसाढजोण्ण-पक्खछट्ठीए कुंडलपुरणगराहिव-णाहवंस-सिद्धत्थणरिंदिस्स तिसिलादेवीए गब्भमागंतूण तत्थ अट्ठदिवसाहिय-णवमासे अच्छिय चइत्तसुक्क-पक्ख-तेरसीए रत्तीए उत्तरफग्गुणीणक्खत्ते गब्भादो णिक्खंतो वड्ढमाणजिणिंदो।[२]''

कश्मिंश्चिद् ग्रन्थे कुण्डपुरनामापि वर्तते तदपि कुण्डलपुरमेव न च वैशाली-अन्तर्गतकुण्डग्राम इति निश्चेतव्यं। किं च कुंडलपुरनगरी राजधानी पृथगस्ति तथा च वैशाली पृथगेव राजधानी आसीत्। उक्तं च—

तस्मिन् षण्मास शेषायुष्यानाकादागमिष्यति।
भरतेऽस्मिन् विदेहाख्ये विषये भवनांगणे।।२५१।।
राज्ञः कुण्डपुरेशस्य वसुधारापतत्पृथुः।
सप्तकोटिर्मणिः सार्धा सिद्धार्थस्य दिनं प्रति।।२५२।।

उपसंहार

अब ग्रंथ का उपसंहार करते हैं-

वर्तमान युग को श्री महावीर स्वामी का शासन कहा जाता है—

भगवान् महावीर तीर्थंकर की जन्मभूमि 'कुण्डलपुर नगरी' है, ऐसा दिगम्बर परम्परा के जिनागम-ग्रंथों में है। वह इस प्रकार है—

गाथार्थ—भगवान् महावीर कुण्डलपुर में पिता सिद्धार्थ और माता प्रियकारिणी (त्रिशला) से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न हुए।।५४९।।

यह गाथा तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ की है। 'कसायपाहुड़' ग्रंथराज की जयधवला टीका में भी वर्णन आया है—

''आषाढ़ शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि के दिन कुण्डलपुर नगर के अधिपति नाथवंशी सिद्धार्थ नरेन्द्र की रानी त्रिशला देवी के गर्भ में आकर और वहाँ आठ दिवस अधिक नौ मास रहकर श्रीवर्धमान जिनेन्द्र चैत्र शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी की रात्रि में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में गर्भ से बाहर आए।''

किन्हीं ग्रंथों में (उत्तरपुराण में) कुण्डपुर नाम भी है, वह भी कुण्डलपुर ही है, न कि वैशाली के अन्तर्गत कुण्डग्राम ऐसा निश्चय से जानना चाहिए। क्योंकि कुण्डलपुर नगरी राजधानी पृथक् है तथा वैशाली नगरी पृथक् (सिंधुदेश की) राजधानी थी।

कहा भी है—

श्लोकार्थ—अच्युतस्वर्ग के इन्द्र की आयु जब छह मास की बाकी रह गई और वह स्वर्ग से आने को उद्यत हुआ, तब इसी भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में विदेह देश के कुण्डपुर नगर के राजा सिद्धार्थ के महल के प्रांगण में प्रतिदिन साढ़े सात-सात करोड़ रत्नों की मोटी धारा बरसने लगी।।२५१-२५२।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति अ. ४। २. षट्खण्डागम, धवला पु. ९, पृ. १६१ ।

आषाढस्य सिते पक्षे षष्ठ्यां शशिनि चोत्तरा-
षाढे सप्ततलप्रासादस्याभ्यन्तरवर्तिनि।।२५३।।
नंद्यावर्तगृहे रत्नदीपिकाभिः प्रकाशिते।
रत्नपर्यंकके हंसतूलिकादिविभूषिते।।२५४।।
दरनिद्रावलोकिष्ट विशिष्टफलदायिनः।
स्वप्नान् षोडशविच्छिन्नान् प्रियास्य प्रियकारिणी[1]।।२५५।।

विशिष्टा राजधानीयं इति कथितं—

सखेटखर्वटाटोपि - मटम्बपुटभेदनैः।
द्रोणामुखाकरक्षेत्र - ग्रामघोषैर्विभूषितः।।३।।

विशेषेण वर्णयित्वा पुनः कथितं—

एतावतैव पर्याप्तं, पुरस्य गुणवर्णनम्।
स्वर्गावतरणे तद् यद् वीरस्याधारतां गतम्[2]।।१२।।

तस्मिन्नेव हरिवंशपुराणे वीरस्य पितामहनाम कथितं—

सर्वार्थश्रीमतीजन्मा, तस्मिन् सर्वार्थदर्शनः।
सिद्धार्थोऽभवदर्काभो, भूपः सिद्धार्थपौरुषः।।

वैशालीनगर्याः कथनमपि उत्तरपुराणे वर्तते। तथाहि—

सिंध्वाख्यविषये भूभद् वैशालीनगरेऽभवत्।
चेटकाख्योऽतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः।।३।।

आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन जब चन्द्रमा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में था, तब राजा सिद्धार्थ की प्रसन्नबुद्धि वाली रानी प्रियकारिणी सात खण्ड वाले राजमहल के भीतर रत्नमय दीपकों से प्रकाशित नंद्यावर्त नामक राजभवन में हंस-तूलिका आदि से सुशोभित रत्नों के पलंग पर सो रही थीं। उस समय उन्होंने रात्रि के अंतिम प्रहर में कुछ खुली सी निद्रा में विशिष्ट फल को प्रदान करने वाले सोलह स्वप्न देखें।।२५३-२५४-२५५।।

विशिष्ट राजधानी के विषय में हरिवंशपुराण में कहा है—

श्लोकार्थ—वह विदेह देश खेट, कर्वट, मटम्ब, पुटभेदन, द्रोणामुख, सुवर्ण, चांदी की खानों, खेत, ग्राम और घोषों से विभूषित है।।३।।

इस विषय में श्रीजिनसेनाचार्य विशेष वर्णन करते हुए आगे कहते हैं—

श्लोकार्थ—इस नगर के गुणों का वर्णन तो इतने से ही पर्याप्त हो जाता है कि वह नगर स्वर्ग से अवतार लेते समय भगवान महावीर का आधार हुआ-भगवान महावीर वहाँ स्वर्ग से अवतीर्ण हुए।।१२।।

उसी हरिवंशपुराण में महावीर के पितामह का नाम कहा है—

श्लोकार्थ—राजा सर्वार्थ और रानी श्रीमती से उत्पन्न समस्त पदार्थों के देखने वाले सूर्य के समान दैदीप्यमान और समस्त अर्थ-पुरुषार्थ सिद्ध करने वाले सिद्धार्थ वहाँ के राजा थे।।

वैशाली नगरी का कथन भी उत्तरपुराण में आया है। जो इस प्रकार है—

श्लोकार्थ—सिंधु नाम के देश की वैशाली नगरी में चेटक नाम के अतिशय प्रसिद्ध, विनीत और जिनेन्द्र देव के अतिशय भक्त राजा थे।।३।।

---

१. उत्तरपुराण पर्व ७४। २. हरिवंशपुराण सर्ग २

तस्य देवी सुभद्राख्या तयोः पुत्रा दशाभवन्।
सप्तर्धयो वा पुत्र्यश्च ज्यायसी प्रियकारिणी।
विदेहविषये कुण्डसंज्ञायां पुरि भूपतिः।।
नाथो नाथकुलस्यैकः सिद्धार्थाख्यस्त्रिसिद्धिभाक्।
तस्य पुण्यानुभावेन प्रियासीत् प्रियकारिणी[1]।।८।।

एतत्प्रमाणेन ज्ञायते 'वैशाली नगरी' सिंधुदेशस्य राजधानी, तस्य राजा चेटकः, कुण्डलपुरनगरी कुण्डपुरी नगरी वा विदेहदेशस्य राजधानी तस्य राजा सर्वार्थः। अस्य पुत्रस्य सिद्धार्थनरेन्द्रस्य राज्ञी प्रियकारिणी अपरनामधेया त्रिशला राज्ञः चेटकस्य ज्यायसी पुत्री।

भगवतो महावीरस्य जन्म चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां रात्रौ बभूवेति जयधवलायां वर्तते ''तेरसीए रत्तीए'' इत्यादिना।

यदा तीर्थंकरस्य जन्म भवति तदानीं चतुर्णिकायदेवेषु नानाविधवाद्यानि अवादितान्येव ध्वनन्ति—

कल्पेषु घण्टा भवनेषु शंखो, ज्योतिर्विमानेषु च सिंहनादः।
दध्वान भेरी वनजालयेषु, यज्जन्मनि ख्यात जिनः स एषः[2]।।

सौधमेन्द्रेण मर्त्यलोके तीर्थंकरप्रभोर्जन्म ज्ञात्वा असंख्यदेव-देवांगनाभिः सहागत्य तीर्थंकरजन्मनगरीं प्रदक्षिणीकृत्य जिनबालकं नीत्वा सुदर्शनमेरोः पांडुकशिलाया उपरि जन्माभिषेकं कृत्वा जन्ममहोत्सवः कृतः।

उनकी पत्नी का नाम सुभद्रा था उन्होंने दशधर्म के समान दश पुत्रों को जन्म दिया था और सप्तऋद्धियों के समान उनकी सात पुत्रियाँ थीं, जिनमें सबसे बड़ी प्रियकारिणी थीं। विदेह देश के कुण्डपुर नामक नगर में नाथवंश के शिरोमणि एवं सिद्धियों से सम्पन्न राजा सिद्धार्थ राज्य करते थे, पुण्य के प्रभाव से प्रियकारिणी उन्हीं की प्रिया हुई थीं।।८।।

इस प्रमाण से यह स्पष्ट हो जाता है कि ''वैशाली नगरी'' सिंधु देश की राजधानी थी और उसके राजा 'चेटक' थे तथा कुण्डलपुरी अथवा कुण्डपुरी नगरी विदेह देश की राजधानी थी, उसके राजा 'सर्वार्थ' थे। उनके पुत्र सिद्धार्थ नरेन्द्र की रानी प्रियकारिणी अपरनाम त्रिशला राजा चेटक की सबसे बड़ी पुत्री थीं।

भगवान् महावीर का जन्म चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की रात्रि में हुआ था ऐसा जयधवला की 'तेरसीए रत्तीए' इन पंक्तियों से जाना जता है।

जब तीर्थंकर भगवान का जन्म होता है, उस समय चारों निकाय के देवों के यहाँ नाना प्रकार के वाद्य बिना किसी के बजाए ही बजने लगते हैं—

श्लोकार्थ—जिनका जन्म होते ही कल्पवासी देवों के यहाँ घंटे बजने लगे, भवनवासियों के भवनों में शंख ध्वनि होने लगी, ज्योतिर्वासी देवों के विमानों में सिंहनाद होने लगा, व्यंतर देवों के यहाँ भेरी बजने लगी, ऐसे वे जिनेन्द्र भगवान् इस प्रतिमा में अवतीर्ण होवें अर्थात् इन्हीं समस्त विशेषताओं से समन्वित यह जन्मकल्याणक समन्वित जिनेन्द्र हैं।।

सौधर्म इन्द्र ने मनुष्यलोक में तीर्थंकर प्रभु के जन्म को जानकर असंख्य देव और देवियों के साथ आकर तीर्थंकर जन्म की नगरी की प्रदक्षिणा करके जिनबालक को लेकर सुदर्शनमेरु की पाण्डुकशिला के ऊपर उनका जन्माभिषेक करके जन्म महोत्सव किया था।

---

१. उत्तरपुराण पर्व ७५। २. प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ।

पुनः— अलं तदिति तं भक्त्या विभूष्योद्घविभूषणैः।
वीरः श्रीवर्द्धमानश्चेत्यस्याख्याद्वितयं व्यधात्।।२७६।।

अनन्तरं जिनबालकमानीय कुण्डलपुरे पितरौ प्रदाय तत्रापि जन्ममहामहोत्सवं चकार।

ततश्च— संजयस्यार्थसंदेहे संजाते विजयस्य च।
जन्मानंतरमेवैन - मभ्येत्यालोकमात्रतः।।२८२।।
तत्संदेहे गते ताभ्यां चारणाभ्यां स्वभक्तितः।
अस्त्येष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः।।२८३।।

अन्यत्रापि कथितमस्ति—

बुज्झिय-परमक्खर-कारणेहिं। जो संजय-विजयहिं चारणेहिं।।
अवलोइउ सेसवि देवदेउ। णट्ठउ भीसणु संदेहहेउ।।
सम्मइ कोक्किड संजमधणेहिं। विरइय गुरु-विणय-पयाहिणेहिं[१]।।

एताभ्यां संयमधारि चारणर्षिभ्यां अत्यन्तविनयभावेन तस्य भगवतः प्रदक्षिणां कृत्वा 'सन्मतिः' इति नाम कृतम्।

भगवतो भोगोपभोगसामग्रीं स्वर्गादानीय धनपतिना स्वयं प्रत्यहं दत्तं।

तस्य कालवयोवाञ्छावशेनैलविलः स्वयम्।
भोगोपभोगवस्तूनि स्वर्गसाराण्यहर्दिवम्।।२८७।।

पुनः—

श्लोकार्थ—अधिक कहने से क्या ? इन्द्र ने उन्हें भक्तिपूर्वक उत्तमोत्तम आभूषणों से विभूषित कर वीर और वर्धमान इस प्रकार दो नाम रक्खे।।२७६।।

अनन्तर जिनबालक को लाकर कुण्डलपुर में माता-पिता को सौंपकर वहाँ भी जन्म का महामहोत्सव किया था, उस विषय में भी उत्तरपुराण में वर्णन है।

उसके पश्चात्—

श्लोकार्थ—एक बार संजय और विजय नाम के दो चारण मुनियों को किसी पदार्थ में संदेह उत्पन्न हुआ था पुनः भगवान के जन्म के बाद ही वे उनके समीप आये और उनके दर्शन मात्र से ही उनका संदेह दूर हो गया, इसलिए उन चारणऋद्धिधारी मुनियों ने बड़ी भक्ति से कहा था कि यह बालक सन्मति तीर्थंकर होने वाला है अर्थात् उन्होंने उनका सन्मति नाम रक्खा था।।२८२-२८३।।

अन्यत्र—'वीरजिणिन्दचरिउ' नामक ग्रंथ में भी महाकवि श्रीपुष्पदंत ने कहा है—

श्लोकार्थ—संजय और विजय नामक चारण ऋद्धिधारी देवों ने परमोपदेशरूप वाणी को समझकर ही उनके शैशवकाल में ही देखकर उन्हें देवों के देव तीर्थंकर जान लिया और उनके भीषण सन्देह का कारण दूर हो गया। संयमधारी मुनियों ने अत्यन्त विनयभाव से उनकी प्रदक्षिणा की और उन्हें सन्मति कहकर पुकारा।।

उन सकलसंयम के धारक चारणऋद्धिधारी युगलऋषियों ने अत्यन्त विनयभाव से उन भगवान् की—जिनबालक की प्रदक्षिणा करके उनका 'सन्मति' यह नाम रखा था।

भगवान् की भोगोपभोग सामग्री धनपति कुबेर स्वर्ग से स्वयं लाकर प्रतिदिन देते हैं, इसका वर्णन उत्तरपुराण में आया है—

---

१. वीरजिणिंदचरिउ (पृ. २०)।

शक्राज्ञया समानीय व्ययं प्रावर्तयत्सदा।
अन्येद्युः स्वर्गनाथस्य सभायामभवत्कथा[1]।।२८८।।

एकदा स्वर्गे सभायां वीरस्य शूरत्वं श्रुत्वा एकः संगमनामदेवः आगत्य उद्याने बालकैः सह क्रीडन्तं वर्द्धमानं विलोक्य महानागाकृतिं दधन् द्रुमक्रीडापरायणं प्रभुं विभीषयितुं भूजस्य मूलात्प्रभृति यावत्स्कंधमवेष्टत। महाभये समुत्पन्ने अन्ये बालकाः पलायिताः किन्तु वीरः—

ललज्जिह्वाशतात्युग्रमारूह्य तमहिं विभीः।
कुमारः क्रीडयामास मातृपर्यंकवत्तदा।।२९४।।
विजृम्भमाणहर्षांभोनिधिः संगमकोऽमरः।
स्तुत्वा भवान्महावीरः इति नाम चकार सः[2]।।२९५।।

एकदा त्रिंशद्वर्षानन्तरं मतिज्ञानक्षयोपशमविशेषतः स्मृतपूर्वभवान्तरो महाबोधिं संप्राप्य लौकान्तिकदेवैः स्तुतिं प्राप्तवान्। तदानीं सौधमेन्द्रेण समस्तदेवपरिवारैः आगत्य चन्द्रप्रभाशिबिकायां प्रभुमारोह्य षण्डवनं ज्ञातृवनं वा नीत्वा दीक्षाकल्याणकं कृतम्। मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां वर्द्धमानस्य तपःकल्याणकं बभूव। भगवान् दीक्षानन्तरं अन्तर्मुहूर्त्तेनैव मनःपर्ययज्ञानस्वामी बभूव। तस्य प्रभोः केवलं सामायिकं चारित्रमेव।

उक्तं च—तस्याद्यमेव चारित्रं द्वितीयं तु प्रमादिनाम्[3]।।३१४।।

श्लोकार्थ—इन्द्र की आज्ञा से कुबेर प्रतिदिन उन भगवान् के समय-आयु और इच्छा के अनुसार स्वर्ग की सारभूत भोगोपभोग की सब वस्तुएँ स्वयं लाया करता था और सदा खर्च करवाया करता था।।२८८।।

एक बार स्वर्ग में वीरप्रभु की शूरवीरता का बखान सुनकर एक संगम नाम का देव आकर कुण्डलपुर के उद्यान में बालकों के साथ खेलते हुए बालक वर्धमान को देखकर बहुत बड़े नाग का रूप धारण करके वृक्ष पर क्रीड़ा करते प्रभु को डराने के लिए वृक्ष की जड़ से लेकर ऊपर स्कन्धों तक लिपट गया। इस दृश्य से भयभीत होकर अन्य सभी बालक भाग गये, किन्तु वीर वर्धमान ने उनका सामना किया—

श्लोकार्थ—जो लहलहाती हुई सौ जिह्वाओं से अत्यन्त भयंकर दिख रहा था, ऐसे उस सर्प पर चढ़कर कुमार महावीर ने निर्भय हो, उस समय इस प्रकार क्रीड़ा की जिस प्रकार कि माता के पलंग पर किया करते थे।।२९४।।

कुमार की इस क्रीड़ा से जिसका हर्षरूपी सागर उमड़ रहा था, ऐसे उस संगम देव ने भगवान की स्तुति की और 'महावीर' यह नाम रखा।।२९५।।

एक बार तीस वर्ष के पश्चात् तीस वर्ष की आयु के अनन्तर महावीर को अपने मतिज्ञान के क्षयोपशम विशेष से पूर्वभव का जातिस्मरण हो जाने से महाबोधि वैराग्य हो गया तब लौकान्तिकदेवों ने आकर उनकी स्तुति की। उस समय सौधर्म इन्द्र समस्त देवपरिवार के साथ आकर चन्द्रप्रभा नाम की पालकी में प्रभु को बिठाकर षण्डवन अथवा ज्ञातृवन में ले जाकर उनका दीक्षाकल्याणक महोत्सव किया। मगसिर कृष्णा दशमी तिथि को वर्धमान तीर्थंकर का तपकल्याणक हुआ। दीक्षा के अनन्तर भगवान् अन्तर्मुहूर्त में ही मनःपर्ययज्ञान के स्वामी हो गये। उन महामुनि तीर्थंकर प्रभु के तब केवल एक सामायिक चारित्र ही था।

कहा भी है—"उन भगवान् के पहला सामायिक चारित्र ही था, क्योंकि दूसरा छेदोपस्थापनाचारित्र प्रमादी जीवों के होता है।।३१४।।"

---

१. उत्तरपुराण पर्व ७४। २-३. उत्तरपुराण पर्व ७४।

षष्ठोपवासानन्तरं कूलग्रामपुर्याः नृपतिः कूलः वकुलो वा प्रथममाहारदानं पायसस्य दत्वा पञ्चाश्चर्यं संप्राप्य प्रथमदाता प्रसिद्धः।

अन्येद्युः उज्जयिनीनगर्याः अतिमुक्तकनाम्नि श्मशाने प्रतिमायोगधारिणं वर्द्धमानजिनमवलोक्य रुद्रः रौद्रभावेन धैर्यं परीक्षितुं उपसर्गं चकार।

स्वयं स्खलयितुं चेतः समाधेरसमर्थकः।
स महतिमहावीराख्यां कृत्वा विविधाः स्तुतीः।।३३६।।
उमया सममाख्याय नर्तित्वागादमत्सरः।
पापिनोऽपि प्रतुष्यन्ति प्रस्पष्टं दृष्टसाहसाः[१]।।३३७।।

एवमेव कौशाम्ब्यां महासती चन्दना शृँखलाबद्धभागिनी तं कायस्थित्यै विशंतं महावीरं विलोक्य प्रत्युद्व्रजन्ती शृँखलाबंधनरहिता बभूव, तत्क्षणे विगलन्मालतीमालादिव्याम्बरभूषणा भक्तिभारभरानता नवधाभक्तिं कृत्वा भगवते क्षीरान्नाहारं अदात्।

उक्तं च— शीलमाहात्म्यसंभूतपृथुहेमशराविका ।
शाल्यन्नभाववत्क्रोद्रवौदनं विधिवत्सुधीः।।३४६।।
अन्नमाश्राणयत्तस्मै तेनाप्याश्चर्यपंचकम्।
बंधुभिश्च समायोगः कृतश्चन्दनया तदा।।३४७।।

तीर्थंकर महामुनि महावीर को षष्ठोपवास-बेला (दो दिन के उपवास) के अनंतर कूलग्राम के राजा कूल अथवा वकुल ने खीर का प्रथम आहार देकर देवों के द्वारा पंचाश्चर्यवृष्टि को प्राप्त किया, इस प्रकार वे प्रथम आहारदाता प्रसिद्ध हुए।

आगे चलकर एक बार महावीर उज्जयिनी नगरी के अति मुक्तक नाम के श्मशान में प्रतिमायोगपूर्वक ध्यान में स्थित थे, उन्हें ध्यानस्थ देखकर एक रुद्र ने रौद्रभाव से उनकी परीक्षा लेने हेतु उन पर घोर उपसर्ग किया।

श्लोकार्थ—उस रुद्र ने अपनी विद्या के प्रभाव से किये हुए अनेक भयंकर उपसर्गों से उन्हें समाधि से विचलित करने का प्रयत्न किया परन्तु वह उसमें समर्थ नहीं हो सका। अन्त में उसने भगवान् के महति महावीर ऐसा नाम रखकर अनेक प्रकार से स्तुति की, अपनी उमा नाम की भार्या के साथ नृत्य किया और सब मात्सर्यभाव छोड़कर वह वहाँ से चला गया सो ठीक ही है क्योंकि साहस को स्पष्ट रूप से देखने वाले पापी जीव भी सन्तुष्ट हो जाते हैं।।३३६-३३७।।

इसी प्रकार कौशाम्बी नगरी में बेड़ियों में जकड़ी महासती चंदना महामुनि महावीर को देखकर ज्यों ही भक्तिपूर्वक उठकर खड़ी हुई, उसकी बेड़ियाँ टूट गईं, वह तत्क्षण ही सुन्दर मालती पुष्पों की माला एवं दिव्य वस्त्राभूषणों से सहित होकर भक्तिपूर्वक महामुनि महावीर का पड़गाहन करके नवधाभक्तिपूर्वक उन्हें खीर का आहार देने लगी। यह प्रकरण भी उत्तरपुराण में उल्लिखित है।

कहा भी है—

श्लोकार्थ—शील के माहात्म्य से उसका मिट्टी का सकोरा सुवर्णपात्र बन गया और कोदों का भात शाली चांवलों का भात हो गया। उस बुद्धिमती ने विधिपूर्वक पड़गाहनकर भगवान् को आहार दिया। इसलिए उसके यहाँ पंचाश्चर्यों की वर्षा हुई और भाई-बंधुओं के साथ उसका समागम हो गया। इधर जगद् बंधु भगवान्

---

१. उत्तरपुराण पर्व ७४।

पुनश्च —

भगवान् वर्द्धमानोऽपि नीत्वा द्वादशवत्सरान्।
छाद्मस्थ्येन जगद्बंधुर्जृम्भिकाग्रामसन्निधौ।।३४८।।
ऋजुकूलानदीतीरे मनोहरवनान्तरे।
महारत्नशिलापट्टे प्रतिमायोगमावसन्।।३४९।।
स्थित्वा षष्ठोपवासेन सोऽधस्तात्सालभूरूहः।
वैशाखे मासि सज्ज्योत्स्नदशम्यामपराण्हके।।३५०।।
हस्तोत्तरान्तरं याते शशिन्यारूढशुद्धिकः।
क्षपकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानेन सुस्थितः।।३५१।।
घातिकर्माणि निर्मूल्य प्राप्यानन्तचतुष्टयम्।
चतुस्त्रिंशदतीशेषव्याभासिमहिमालयः।।३५२।।
सयोगभावपर्यन्ते स्वपरार्थप्रसाधकः।
परमौदारिकं देहं बिभ्रदभ्राङ्गणे बभौ।।३५३।।
चतुर्विधामरैः सार्धं सौधमेन्द्रस्तदागतः।
तुर्यकल्याणसत्पूजाविधिं सर्वं समानयत्[1]।।३५४।।

केवलज्ञानसूर्योदयानन्तरं भगवान् महावीरः पृथ्वीतलादुपरि पञ्चसहस्रधनुःपर्यन्तं — विंशतिसहस्रहस्तस्योपरि आकाशांगणे व्यराजत। सौधर्मेन्द्राज्ञया धनकुबेरेण अर्धनिमिषमात्रेण समवसरणरचना कृता। अस्यां समवसरणसभायां द्वादशसभाः श्रीमण्डपभूमौ सुशोभिता आसन् किन्तु प्रभोर्दिव्यध्वनिर्नाभवत्। मध्ये मध्ये भगवतः श्रीविहारोऽपि बभूव।

धर्मतीर्थस्योत्पत्तिः कथ्यते —

वर्धमान ने भी छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष व्यतीत किये। किसी एक दिन वे जृम्भिक ग्राम के समीप ऋजुकूला नदी के किनारे मनोहर नामक वन के मध्य में रत्नमयी एक बड़ी शिला पर सालवृक्ष के नीचे बेला का नियम लेकर प्रतिमा योग से विराजमान हुए। वैशाख शुक्ला दशमी के दिन अपराण्ह काल में हस्त और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के बीच में चन्द्रमा के आ जाने पर परिणामों की विशुद्धता को बढ़ाते हुए वे क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। उसी समय उन्होंने शुक्लध्यान के द्वारा चारों घातिया कर्मों को नष्टकर अनन्तचतुष्टय प्राप्त किये और चौंतीस अतिशयों से सुशोभित होकर वे महिमा के धनी हो गये, अब वे सयोगकेवली गुणस्थान के धारक हो गये, निज और पर का प्रयोजन सिद्ध करने लगे तथा परमौदारिक शरीर को धारण करते हुए आकाशरूपी आंगन में सुशोभित होने लगे। उसी समय सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र चारों प्रकार के देवों के साथ आया और उसने ज्ञानकल्याणक संबंधी पूजा की समस्त विधि पूर्ण की।।३४६-३५४।।

केवलज्ञान सूर्य उदय के अनन्तर-केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् भगवान महावीर पृथ्वीतल से पाँच हजार धनुष, बीस हजार हाथ ऊपर अधर आकाश में विराजमान हो गये। सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से धनकुबेर ने अर्धनिमिष मात्र में ही समवसरण की रचना कर दी। उस समवसरण सभा में श्रीमण्डपभूमि में बारह सभाएँ सुशोभित थीं, उनके बीचों बीच गन्धकुटी में तीर्थंकर महावीर विराजमान थे। किन्तु प्रभु की दिव्यध्वनि नहीं खिरी। बीच-बीच में प्रभु का श्रीविहार भी हुआ।

धर्मतीर्थ की उत्पत्ति के संबंध में हरिवंशपुराण में वर्णन आया है —

---

१. उत्तरपुराण, पर्व ७४।

उक्तं च—

षट्षष्टिदिवसान् भूयो, मौनेन विहरन् विभुः। आजगाम जगत्ख्यातं, जिनो राजगृहं पुरम्।।६१।।
आरुरोह गिरिं तत्र, विपुलं विपुलश्रियम्। प्रबोधार्थं स लोकानां, भानुमानुदयं यथा।।६२।।
इन्द्राग्निवायुभूताख्या, कौंडिन्याख्याश्च पंडिता। इन्द्रनोदनयाऽऽयाताः, समवस्थानमर्हतः।।६८।।
प्रत्येकं सहिताः सर्वे, शिष्याणां पञ्चभिः शतैः। त्यक्ताम्बरादिसंबंधाः, संयमं प्रतिपेदिरे।।६९।।
सुता चेटकराजस्य, कुमारी चंदना तदा। धौतेकाम्बरसंवीता, जातार्याणां पुरःसरी।।७०।।
श्रेणिकोऽपि च संप्राप्तः, सेनया चतुरंगया। सिंहासनोपविष्टं तं, प्रणनाम जिनेश्वरम्।।७१।।
प्रत्यक्षीकृतविश्वार्थं, कृतदोषत्रयक्षयम्। जिनेन्द्रं गौतमोऽपृच्छत्, तीर्थार्थं पापनाशनम्।।८९।।
स दिव्यध्वनिना विश्व-संशयच्छेदिना जिनः। दुन्दुभिध्वनिधीरेण, योजनान्तरयायिना।।९०।।
श्रावणस्यासिते पक्षे, नक्षत्रेऽभिजिति प्रभुः। प्रतिपद्यन्हि पूर्वाण्हे, शासनार्थमुदाहरत्[१]।।९१।।

गणधराभावेन भगवतो दिव्यध्वनिर्न संभूता, गौतमगोत्रीय इन्द्रभूतिब्राह्मणो वेदवेदांगपारगो यदा समायातः, आगत्य च मिथ्यात्वमदविरहितो भूत्वा सम्यक्त्वं संयमं च प्रतिपद्य प्रभुं प्रति समर्पितो जातः तदानीमेव गौतमगणधरनिमित्तेन प्रभुमहावीरस्य दिव्यध्वनिः प्रादुर्बभूव।

जयधवलायां लिखितमस्ति प्रश्नोत्तररूपेण—

श्लोकार्थ—तदनन्तर छ्यासठ दिन तक मौन से विहार करते हुए श्री वर्धमान जिनेन्द्र जगत् प्रसिद्ध राजगृह नगर आये। वहाँ जिस प्रकार सूर्य उदयाचल पर आरूढ़ होता है, उसी प्रकार वे लोगों को प्रतिबुद्ध करने के लिए विपुल लक्ष्मी के धारक विपुलाचल पर आरूढ़ हुए।।६१-६२।।

इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति तथा कौण्डिन्य आदि पण्डित इन्द्र की प्रेरणा से श्री अरहन्तदेव के समवसरण में आये।।६८।। वे सभी पण्डित अपने पाँच-पाँच सौ शिष्यों से सहित थे तथा सभी ने वस्त्रादि का संबंध त्यागकर संयम धारण कर लिया।।६९।। उसी समय राजा चेटक की पुत्री चन्दना कुमारी, एक स्वच्छ वस्त्र—सफेद साड़ी धारणकर आर्यिकाओं में प्रमुख हो गई।।७०।। राजा श्रेणिक भी अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ समवसरण में पहुँचा और वहाँ सिंहासन पर विराजमान श्रीवर्धमान जिनेन्द्र को उसने नमस्कार किया।।७१।।

तब समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष देखने वाले एवं राग, द्वेष और मोह इन तीनों दोषों का क्षय करने वाले पापनाशक श्रीजिनेन्द्रदेव से गौतम गणधर ने तीर्थ की प्रवृत्ति करने के लिए पूछा—प्रश्न किया।।८९।। तदनन्तर श्रीवर्धमान प्रभु ने श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के प्रातःकाल के समय अभिजित् नक्षत्र में समस्त संशयों को छेदने वाले, दुन्दुभि के शब्द के समान गंभीर तथा एक योजन तक फैलने—पहुँचने वाली दिव्यध्वनि के द्वारा शासन की परम्परा चलाने के लिए उपदेश दिया।।९०-९१।।

गणधर के अभाव में भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरी थी। पुनः जब वेद-वेदांग के पारंगत, गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण आये और समवसरण में आकर मिथ्यात्व मद से रहित होकर उन्होंने सम्यक्त्व और संयम को प्राप्त करके प्रभु के प्रति वे समर्पित हो गये, उसी क्षण गौतम गणधर के निमित्त से प्रभु महावीर की दिव्यध्वनि खिरने लगी।

जयधवला में प्रश्नोत्तररूप से इसका वर्णन लिखा है—

---

१. हरिवंशपुराण, सर्ग २।

''दिव्वज्झुणीए किमट्ठं तत्थापउत्ती ?

गणिंदाभावादो।

सोहम्मिंदेण तक्खणे चेव गणिंदो किण्ण ढोइदो ?

ण, काललद्धीए विणा असहेज्जस्स देविंदस्स तड्ढोयणसत्तीए अभावादो[1]।''

भगवतो दिव्यध्वनिः अष्टादशमहाभाषा-सप्तशतलघुभाषारूपेण भवति। सर्वभाषामयी च गीयते।

उक्तं च —

जोयणपमाणसंट्ठिद-तिरियामर-मणुव णिवहपडिबोधो।
मिदमधुरगभीरतरा-विसदविसयसयल-भासाहिं।।
अट्ठरहमहाभासा खुल्लयभासा वि सत्तसयसंखा।
अक्खर अणक्खरप्पय-सण्णी जीवाण सयलभासाओ।।
एदासिं भासाणं तालुवदंतोट्ठ - कंठ - वावारं।
परिहरिय एक्ककालं भव्वजणाणंदकर भासो[2]।।

इन्द्रभूतिनामगौतमगणधरेण तदानीं भगवतो दिव्यध्वनिं श्रुत्वावधार्य च अन्तर्मुहूर्तेण द्वादशांगरचना कृता। एतत्कथनं धवलाटीकायामस्ति।

''तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम-जणिदचउरमल-बुद्धिसंपण्णेण बह्मणेण गोदमगोत्तेण सयलदुस्सुदि-पारएण जीवाजीवसयसंदेह-विणासणट्ठ-मुवगयवड्ढमाण-

---

प्रश्न — दिव्यध्वनि क्यों उत्पन्न नहीं हुई थी ?

उत्तर — गणीन्द्र — गणधर के अभाव के कारण दिव्यध्वनि उत्पन्न नहीं हुई थी।

प्रश्न — तब सौधर्म इन्द्र ने उसी समय गणधर को क्यों नहीं प्रस्तुत किया ?

उत्तर — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि काललब्धि के बिना असमय में देवेन्द्र — सौधर्म इन्द्र में गणधर को लाने की शक्ति का अभाव पाया जाता है। अर्थात् ६६ दिनों के बाद काललब्धि आने पर ही गणधर को उपस्थित करने की शक्ति सौधर्म इन्द्र में प्रगट हुई, ऐसा समझना चाहिए।

भगवान की दिव्यध्वनि अठारह महाभाषा एवं सात सौ लघुभाषारूप से होती है और सर्वभाषामयी दिव्यध्वनि भी मानी जाती है।

तिलोयपण्णत्ती में कहा भी है —

गाथार्थ — मृदु, मधुर, अति गंभीर और विषय को विशद करने वाली भाषाओं से एक योजन प्रमाण समवसरण सभा में स्थित तीर्थंकर भगवान तिर्यंच, देव और मनुष्यों के समूह को प्रतिबोधित करने वाले हैं, संज्ञी जीवों की अक्षर और अनक्षररूप सकल भाषा एवं अठारह महाभाषा तथा सात सौ छोटी भाषाओं में परिणत हुई और तालु, दन्त, ओठ तथा कण्ठ के हलन-चलनरूप व्यापार से रहित होकर एक ही समय में भव्यजनों को आनन्द करने वाली भाषा के स्वामी हैं।।६०-६१-६२।।

इन्द्रभूति नाम के गौतम गणधर स्वामी ने उसी समय भगवान की दिव्यध्वनि को सुनकर और उसे अवधारण करके अन्तर्मुहूर्त में ही द्वादशांग की रचना कर दी। ऐसा धवला टीका में कथन है।

''इस प्रकार केवलज्ञान से विभूषित उन भगवान् महावीर के द्वारा कहे गये अर्थ को, उसी काल में और उसी क्षेत्र में क्षयोपशम विशेष से उत्पन्न हुए चार प्रकार के निर्मल ज्ञान से युक्त, वर्ण से ब्राह्मण, गौतम गोत्री,

---

१. कसायपाहुड़ पु. १। २. तिलोयपण्णत्ति अ. १।

पादमूलेण इंदिभूदिणावहारिदो[१]।''

''पुणो तेणिंदभूदिणा भावसुदपज्जय-परिणदेण बारहंगाणं चोद्दसपुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण रयणा कदा।[२]''

अद्यप्रभृति पुरा षष्टि-अधिकपञ्चविंशतिशतवर्षपूर्वं प्रभोर्महावीरस्य राजगृहीनगर्यां विपुलाचलपर्वतस्योपरि समवसरणसभायां प्रथमदेशना संजाता श्रावणकृष्णस्य प्रतिपत्तिथौ पूर्वाण्हकाले इति ततः इयं तिथिः 'वीरशासनजयंती' नाम्ना भारतवर्षे प्रसिद्धास्ति। इयं कालगणना वीरनिर्वाणसंवत्सरे त्रिंशदधिकपञ्च-विंशतिशततमे ज्ञातव्या।

अनन्तरं भगवान् महावीरः एकोनस्त्रिंशद्वर्ष-पञ्चमास-विंशतिदिवसपर्यंतं केवलिकाले संपूर्णभारतदेशे भरतक्षेत्रस्यार्यखंडे विहृत्य पावापुरीं संप्राप्नोत्।

केचिदाचार्याः श्रीमहावीरस्वामिनः आयुः द्वासप्ततिवर्षं कथयन्ति। केचिच्च एकसप्ततिवर्ष-त्रिमास-पञ्चविंशतिदिनप्रमाणं गणयन्ति इति जयधवलाटीकायां कथनमस्ति।

पावापुरीनगर्याः सरोवरमध्ये यद्मन्दिरं वर्तते तदेव भगवतो निर्वाणस्थानं अस्ति। संप्रतिकाले केचित् श्वेतपटधारिणो मन्यन्ते-भगवतो निर्वाणभूमिरन्या इदं जलमंदिरं तु संस्कारभूमिरस्ति किन्तु नैतत्संभवति। या निर्वाणभूमिः सैव संस्कारभूमिर्मन्तव्या दिगम्बरजैनग्रन्थाधारेण, तदेव कथ्यते—

पद्मवनदीर्घिकाकुल-विविधद्रुमखण्डमंडिते रम्ये।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः।।१६।।

संपूर्ण दुःश्रुति में पारंगत और जीव-अजीवविषयक संदेह को दूर करने के लिए श्री वर्धमान के पादमूल में उपस्थित हुए ऐसे इन्द्रभूति ने अवधारण किया।''

''अनंतर भावश्रुतरूप पर्याय से परिणत उन इन्द्रभूति गौतम गणधर ने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रंथों की एक ही मुहूर्त में क्रम से रचना कर दी।''

आज से पच्चीस सौ साठ वर्ष पूर्व प्रभु महावीर की प्रथम देशना राजगृही नगरी में विपुलाचल पर्वत पर समवसरण सभा में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा तिथि को पूर्वाण्ह काल में उत्पन्न हुई थी-खिरी थी, इसलिए वह तिथि ''वीरशासनजयंती'' के नाम से भारत वर्ष में प्रसिद्ध है। यह काल गणना वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तीस (२५३०) से जानना चाहिए।

अनन्तर भगवान् महावीर उनतीस वर्ष पाँच महीने बीस दिन तक केवली काल में सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में विहार करके भारतदेश की पावापुरी नगरी में आ गये।

कुछ आचार्यश्री महावीर स्वामी की आयु बहत्तर वर्ष की बताते हैं तथा कुछ आचार्य इकहत्तर वर्ष तीन माह पच्चीस दिन प्रमाण आयु कहते हैं, ऐसा जयधवला टीका में कथन आया है।

पावापुरी नगरी के सरोवर के बीच में जो जलमंदिर विद्यमान है, वही भगवान का निर्वाणस्थान है। वर्तमान में कुछ श्वेताम्बर लोग मानते हैं कि-भगवान् की निर्वाणभूमि दूसरी जगह है और यह जलमंदिर तो उनके शरीर की संस्कार भूमि है, किन्तु ऐसा संभव नहीं है। दिगम्बर जैन ग्रंथों के आधार से जो निर्वाणभूमि होती है, वही संस्कार भूमि मानना चाहिए। उसी को कहते हैं—

गाथार्थ—कमलों से व्याप्त सरोवर, अनेक प्रकार के वृक्षों से मण्डित पावापुरी के सुन्दर उद्यान में वे महामुनि भगवान महावीर कायोत्सर्ग से स्थित—खड़े हो गये।।१६।।

१-२. षट्खण्डागम धवलाटीका समन्वित पु. १।

कार्तिककृष्णस्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं संप्रापद्-व्यजरामरमक्षयं सौख्यम्।।१७।।

परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं ज्ञात्वा विबुधा ह्यथाशु चागम्य।
देवतरुरक्तचंदन - कालागुरुसुरभिगोशीर्षैः।।१८।।

अग्नीन्द्राज्जिनदेहं मुकुटानलसुरभिधूपवरमाल्यैः।
अभ्यर्च्य गणधरानपि, गता दिवं खं च वनभवने।।१९।।

पुनश्च—

पावापुरस्य बहिरुन्नतभूमिदेशे, पद्मोत्पला-कुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्रीवर्द्धमानजिनदेव इति प्रतीतो, निर्वाणमाप भगवान् प्रविधूतपाप्मा[१]।।२४।।

श्रीगुणभद्रसूरिणापि कथ्यते—

क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहरवनान्तरे।
बहूनां सरसां मध्ये, महामणिशिलातले।।५०१।।

स्थित्वा दिनद्वयं वीत-विहारो वृद्धनिर्जरः।
कृष्णकार्तिकपक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये।।५१०।।

स्वातियोगे तृतीयेद्ध-शुक्लध्यानपरायणः।
कृतत्रियोगसंरोधः समुच्छिन्नक्रियं श्रितः।।५११।।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या के उषाकाल में स्वाति नक्षत्र में शेष अघातिया कर्मों का नाश करके भगवान् ने अजर-अमर-अक्षय सुख को प्राप्त किया।।१७।।

महावीर जिनेन्द्र ने निर्वाण को प्राप्त कर लिया है यह जानकर देवगण तुरन्त देवदारु, लालचंदन, कृष्णागरु, गोशीर चन्दन आदि की धूप लेकर आ गये।।१८।।

अग्निकुमार इन्द्रों ने अपने मुकुटानल की अग्नि से पवित्र धूप-माला आदि से पूजा करके प्रभु के शरीर का संस्कार किया और गणधरों की पूजा करके सभी देवता अपने-अपने स्थान को चले गये।।१९।।

पुनः आगे कहा है—

पावापुर नगर के बाहर पद्म—कमल और कुमुदनी—कमलिनियों से सुशोभित सरोवर के मध्य भाग के उन्नत भूमि प्रदेश में विराजमान होकर वर्धमान जिनदेव ने समस्त कर्मों से रहित होकर अघातिया कर्मों का नाश करके निर्वाण धाम को प्राप्त कर लिया।।२४।।

श्री गुणभद्र आचार्य भी उत्तरपुराण में कहते हैं—

श्लोकार्थ—अन्त में वे पावापुर नगर में पहुँचेंगे, वहाँ के मनोहर नाम के वन के भीतर अनेक सरोवरों के बीच में मणिमयी शिला पर विराजमान होंगे। विहार छोड़कर निर्जरा को बढ़ाते हुए वे दो दिन तक वहाँ विराजमान रहेंगे और फिर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन रात्रि के अंतिम समय स्वाति नक्षत्र में अतिशय देदीप्यमान तीसरे शुक्ल ध्यान में तत्पर होंगे। तदनन्तर तीनों योगों का निरोधकर समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाती नामक चतुर्थ शुक्लध्यान को धारणकर चारों घातिया कर्मों का क्षय कर देंगे और शरीर रहित केवलगुणरूप होकर एक हजार मुनियों के साथ सबके द्वारा वाञ्छनीय मोक्षपद प्राप्त करेंगे। वही उनके सुख को करने वाला सबसे बड़ा पुरुषार्थ होगा—उनके पुरुषार्थ की अंतिम सीमा होगी। तदनन्तर इन्द्रादि सब देव आवेंगे

---

१. निर्वाणभक्ति-श्रीपूज्यपादस्वामीकृत।

हताघातिचतुष्कः सन्नशरीरो गुणात्मकः।
गन्ता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववाञ्छितम्।।५१२।।

तदेव पुरुषार्थस्य पर्यंतोऽनन्तसौख्यकृत्।
अथ सर्वेऽपि देवेन्द्रा वह्नीन्द्रमुकुटस्फुरत्।।५१३।।

हुताशनशिखान्यस्तस्तद्देहा मोहविद्विषम्।
अभ्यर्च्य गंधमाल्यादि-द्रव्यैर्दिव्यैर्यथाविधि।।५१४।।

वन्दिष्यन्ते भवातीत-मर्घ्यैर्वन्दारवः स्तवैः।
वीरनिर्वृतिसम्प्राप्तदिन एवास्तघातिकः।।५१५।।
भविष्याम्यहमप्युद्यत्केवलज्ञानलोचनः ।
भव्यानां धर्मदेशेन विहृत्य विषयांस्ततः[1]।।५१६।।

यदा पञ्चमकालप्रारंभे त्रिवर्ष-अष्टमासैकपक्षावशेषमासीत्तदा कार्तिककृष्णामावस्यायां प्रत्यूषवेलायां भगवान् निर्वाणमाप।

ततःप्रभृति दीपमालिकापर्व संजातं—

जिनेंद्रवीरोऽपि विबोध्य संततं, समन्ततो भव्यसमूहसन्ततिम्।
प्रपद्य पावानगरीं गरीयसीं, मनोहरोद्यानवने तदीयके।।१५।।
चतुर्थकालेऽर्धचतुर्थमासकै - र्विहीनताविश्चतुरब्दशेषके।
स कार्तिके स्वातिषु कृष्णभूतसु-प्रभातसन्ध्यासमये स्वभावतः।।१६।।
अघातिकर्माणि निरुद्धयोगको, विधूय घातीन्धनवद् विबंधनः।
विबन्धनस्थानमवाप शंकरो, निरन्तरायोरुसुखानुबन्धनम् ।।१७।।

और अग्नीन्द्र कुमार के मुकुट से प्रज्वलित होने वाली अग्नि की शिला पर भगवान् महावीर स्वामी कर शरीर रक्खेंगे। स्वर्ग से लाये हुए गंध, माला आदि उत्तमोत्तम पदार्थों के द्वारा मोह के शत्रुभूत उन तीर्थंकर भगवान की विधिपूर्वक पूजा करेंगे और फिर अनेक अर्थों से भरी हुई स्तुतियों के द्वारा संसार-भ्रमण से पार होने वाले उन भगवान् की स्तुति करेंगे। जिस दिन भगवान् महावीर स्वामी को निर्वाण प्राप्त होगा, उसी दिन मैं भी घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञानरूपी नेत्र को प्रगट करने वाला होऊँगा और भव्य जीवों को धर्मोपदेश देता हुआ अनेक देशों में विहार करूँगा।।५०९-५१६।।

पंचम काल के प्रारंभ में जब तीन वर्ष आठ मास एक पक्ष शेष था, तब कार्तिक कृष्णा अमावस्या की प्रत्यूष बेला में भगवान् ने निर्वाणधाम को प्राप्त किया।

तब से ही दीपावली पर्व प्रारंभ हुआ है। इस संदर्भ में कहा है—

श्लोकार्थ— भगवान महावीर भी निरन्तर सब ओर के भव्य समूह को संबोधकर पावानगरी पहुँचे और वहाँ के 'मनोहरोद्यान' नामक वन में विराजमान हो गये।।१५।। जब चतुर्थकाल में तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रहे तब स्वाति नक्षत्र में कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन प्रातःकाल के समय स्वभाव से ही योग निरोधकर घातिया कर्मरूप ईंधन के समान अघातिकर्म को भी नष्टकर बंधरहित हो संसार के प्राणियों को सुख उपजाते हुए निरन्तराय तथा विशाल सुख से सहित निर्बन्ध—मोक्षस्थान को प्राप्त हुए।।१६-१७।।

---

१. उत्तरपुराण पर्व ७६।

स पञ्चकल्याणमहामहेश्वरः, प्रसिद्धनिर्वाणमहे चतुर्विधैः।
शरीरपूजाविधिना विधानतः, सुरैः समभ्यर्च्यत सिद्धशासनः।।१८।।
ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया, सुरासुरैर्दीपितया प्रदीप्तया।
तदा स्म पावानगरी समन्ततः, प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते।।१९।।
तथैव च श्रेणिकपूर्वभूभुजः, प्रकृत्य कल्याणमहं सहप्रजाः।
प्रजग्मुरिन्द्राश्च सुरैर्यथायथं, प्रयाचमाना जिनबोधिमर्थिनः।।२०।।
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात्, प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं, जिनेंद्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक्।।२१।।[१]

यस्मात् स्थानात् तीर्थंकरभगवान् मोक्षं प्राप्नोति तत्स्थाने इन्द्रः स्ववज्रेण चरणचिन्हं उत्कीर्णं करोति। एतदपि लिखितं वर्तते। तथाहि—

ऊर्जयन्तगिरौ वज्री वज्रेणालिख्य पावनीम्।
लोके सिद्धशिलां चक्रे जिनलक्षण पङ्क्तिभिः।।१४।।[२]

श्रीसमन्तभद्रस्वामिनापि श्रीनेमिनाथस्तुतौ कथितम्।

ककुदं भुवः खचरयोषिदुषितशिखरैरलंकृतः।
मेघपटलपरिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा।।१२७।।
वहतीति तीर्थमृषिभिश्च, सततमभिगम्यतेऽद्य च।
प्रीतिविततहृदयैः परितो, भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः।।१२८।।

गर्भादि पाँचों कल्याणकों के महान् अधिपति, सिद्धशासन ऐसे भगवान् महावीर के निर्वाण महोत्सव के समय चारों निकाय के देवों ने विधिपूर्वक उनके शरीर की पूजा की।।१८।। उस समय सुर और असुरों के द्वारा जलाई हुई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावानगरी का आकाश सब ओर से जगमगा उठा।।१९।।

श्रेणिक आदि राजाओं ने भी प्रजा के साथ मिलकर भगवान के निर्वाणकल्याणक की पूजा की। तदनन्तर बड़ी उत्सुकता के साथ जिनेन्द्र भगवान से रत्नत्रय की याचना करते हुए इन्द्र देवों के साथ-साथ यथास्थान चले गये।।२०।। उस समय से लेकर भगवान् के निर्वाणकल्याण की भक्ति से युक्त संसार के प्राणी इस भरतक्षेत्र में प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान् महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे।

भावार्थ—उन्हीं की भक्ति में दीपावली का उत्सव मनाने लगे।।२१।।

जिस स्थान से तीर्थंकर भगवान को मोक्ष प्राप्त होता है, उस स्थान पर इन्द्र अपने वज्र के द्वारा चरणचिन्ह उत्कीर्ण करते हैं। यह भी ग्रंथों में लिखा है, जो इस प्रकार है-

श्लोकार्थ—गिरनार पर्वत पर इन्द्र ने वज्र से उकेर कर इस लोक में पवित्र सिद्धशिला का निर्माण किया तथा उसे जिनेन्द्र भगवान के लक्षणों के समूह से युक्त किया।।१४।।

श्री समन्तभद्रस्वामी ने भी श्री नेमिनाथ स्तुति में कहा है—

श्लोकार्थ—जो पृथिवी का ककुद है-बैल के कंधे के समान ऊँचा तथा शोभा उत्पन्न करने वाला है, जो विद्याधरों की स्त्रियों से सेवित शिखरों के द्वारा सुशोभित है, जिसके तट मेघों के समूह से घिरे रहते हैं, जो इन्द्र के द्वारा लिखे हुए प्रभु के चिन्हों को धारण करता है, इसीलिए तीर्थस्थान है, हमेशा तथा आज भी प्रीति से विस्तृत चित्त वाले ऋषियों के द्वारा जो सब ओर से अत्यधिक सेवित है, ऐसा वह अतिशय प्रसिद्ध

---

१. हरिवंशपुराण सर्ग ६६। २. हरिवंशपुराण सर्ग ६५।

यस्मिन् दिने गौतमस्वामी मोक्षमवाप, तस्मिन् दिने सुधर्मस्वामी केवलज्ञानमवाप्नोत्। यस्मिन् दिने सुधर्मगणधरो निर्वाणपदं लेभे तस्मिन् दिने जम्बूस्वामी केवली बभूव, यस्मिन् दिने जंबूस्वामी निर्वाणधाम प्राप तस्मिन् दिने कश्चिदपि महामुनिः केवली न जातः अतोऽनुबद्धकेवली अयं जंबूस्वामी एवान्तिम आसीत्।

गौतमस्वामिप्रभृतिकेवलिनां धर्मप्रवर्तनकालो द्विषष्टिवर्षं, ततश्च नन्दि-नन्दिमित्र-अपराजित-गोवर्द्धन-भद्रबाहुपर्यन्ता इमे पञ्च चतुर्दशपूर्विणः श्रुतकेवलिनो बभूवुः। एतेषां कालः शतवर्षाणि।

पुनः विशाख-प्रोष्ठिल-क्षत्रिय-जय-नाग-सिद्धार्थ-धृतिषेण-विजय-बुद्धिल-गंगदेव-सुधर्मनामानः एकादश आचार्याः दशपूर्वधारिणः संजाताः, एतेषां कालः त्र्यशीत्यधिकैकशतवर्षं।

ततः नक्षत्र-जयपाल-पाण्डु-ध्रुवसेन-कंसनामधेया इमे पञ्च आचार्याः एकादशांगधारिणो बभूवुः, एतेषां कालः विंशत्यधिकद्विशतवर्षाणि।

तत्पश्चात् सुभद्र-यशोभद्र-यशोबाहु-लोहार्यनामधेया इमे चत्वार आचार्या आचारांगधरा एकादशांग-चतुर्दशपूर्वाणां एकदेशज्ञातारश्च संजाताः, एषां कालः अष्टादशाधिकशतवर्षाणि।[१] अतएव श्रीगौतमस्वामि-प्रभृतिलोहार्यपर्यंतमेष कालः—

६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३

सपिण्डिताः त्र्यशीत्यधिकषट्शतानि वर्षाणि ज्ञातव्यानि।

एतत्कालानन्तरं श्रीधरसेनाचार्यो बभूव।

नंदिसंघस्य प्राकृतपट्टावलीषु एषु त्र्यशीत्यधिकषट्शतवर्षाभ्यन्तरेष्वेव श्रीधरसेन-पुष्पदंत-भूतबलिसूरीणां कालगणना स्वीकृतास्ति। यथा—

ऊर्जयन्त नाम का पर्वत है।।१२७-१२८।।

जिस दिन गौतम स्वामी ने मोक्ष प्राप्त किया, उसी दिन सुधर्मास्वामी गणधर ने केवलज्ञान को प्राप्त किया। जिस दिन सुधर्मा गणधर ने निर्वाणधाम प्राप्त किया, उस दिन जम्बूस्वामी केवली हुए। जिस दिन जम्बूस्वामी को निर्वाण हुआ, उस दिन कोई भी मुनि केवलज्ञानी नहीं बने, इसलिए अन्तिम अनुबद्धकेवली जम्बूस्वामी ही हुए हैं।

गौतमस्वामी से लेकर केवलियों का धर्मप्रवर्तनकाल बासठ वर्ष है, उसके बाद नंदि-नंदिमित्र-अपराजित-गोवर्द्धन-भद्रबाहुपर्यंत ये पाँच चतुर्दशपूर्वी श्रुतकेवली हुए। इनका काल सौ वर्ष है।

पुनः विशाख-प्रोष्ठिल-क्षत्रिय-जय-नाग-सिद्धार्थ-धृतिषेण-विजय-बुद्धिल-गंगदेव-सुधर्म नाम के ग्यारह आचार्य दशपूर्वधारी हुए, इनका काल एक सौ तेरासी वर्ष है।

उसके पश्चात् नक्षत्र-जयपाल-पाण्डु-ध्रुवसेन-कंसाचार्य नामके पाँच आचार्य ग्यारह अंग के धारी हुए, इनका काल दो सौ बीस वर्ष है।

तत्पश्चात् सुभद्र-यशोभद्र-यशोबाहु और लोहार्य नाम के ये चार आचार्य आचारांग के धारी ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों के एकदेश ज्ञाता हुए, इनका काल एक सौ अठारह वर्ष है। अतएव गौतमस्वामी से लोहार्य तक का यह काल है—६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३ वर्ष। ये सब मिलकर ६८३ वर्ष हुए, ऐसा जानना चाहिए।

इस काल के अनन्तर श्री धरसेनाचार्य हुए।

नंदिसंघ की प्राकृत पट्टावलियों में इन ६८३ वर्षों में ही श्रीधरसेन-श्रीपुष्पदंत-भूतबली आचार्यों की कालगणना स्वीकार की गई है। जैसे—

---

१. तिलोयपण्णत्ति अ. ४।

केवलिकालः द्विषष्टिवर्षं, श्रुतकेवलिकालः शतानि वर्षाणि, दशपूर्विणां त्र्यशीत्यधिकशतवर्षाणि, एकादशांग-धारिणां त्रयस्त्रिंशदधिकशतवर्षाणि, दश-नव-अष्टांगधारिणां सप्तनवतिवर्षाणि, एकांगधारि-अर्हद्बलिकालः अष्टाविंशतिवर्षं, माघनंदिसूरिकालः एकविंशतिवर्षं, धरसेनाचार्यकालः एकोनविंशतिवर्षं, पुष्पदन्ताचार्यकालः त्रिंशद्वर्षं, भूतबलिसूरिकालः विंशतिवर्षं एवं एकांगधारिणां कालः अष्टादशोत्तरशतवर्षाणि आसन्।

सपिंडिताः — ६२+१००+१८३+१२३+९७=५६५

पञ्चषष्ट्यधिकपञ्चशतानि पुनश्च अष्टादशोत्तरशतवर्षमेलने ५६५+११८=६८३ त्र्यशीत्यधिकषट्शतानि वर्षाणि बभूवुः।

एतेन एतद् ज्ञायते श्रीधरसेनाचार्यस्य समयः वीरनिर्वाणसंवत्सरात् षट्शतानि वर्षाणि अनन्तरमेव।

एतत् श्रुततीर्थप्रवर्तनकालः एकविंशतिसहस्रप्रमाणमेव अग्रे व्युच्छेदं प्राप्स्यति।

उक्तं च — गोदममुणिपहुदीणं वासाणं छस्सदाणि तेसीदी।।१४९२।।
वीससहस्सं तिसदा सत्तारस वच्छराणि सुदतित्थं।
धम्मपयट्टणहेदू वोच्छिस्सदि कालदोसेणं[1]।।१४९३।।

अयमस्यार्थः — **श्री गौतमस्वामिप्रभृतिकालस्य प्रमाणं षट्शतत्र्यशीतिवर्षाणि, पुनश्च विंशतिसहस्रत्रिशत-सप्तदशवर्षेषु कालदोषेण यत् श्रुततीर्थं धर्मप्रवर्तनस्य कारणं तत् व्युच्छेद प्राप्स्यतीति ज्ञातव्यं (६८३+२०३१७=२१०००) अतः भगवतो वीरप्रभोः निर्वाणदिवसस्य एकविंशतिसहस्रवर्षपर्यंतमेव श्रुततीर्थं चलिष्यति पश्चात् दुष्षमकालप्रभावेण व्युच्छेदं प्राप्स्यति। तावत्पर्यंतं चतुर्विधसंघः स्थास्यति।**

यद्यपि जैनधर्मः शाश्वतोऽस्ति, तीर्थंकरपरंपरापि शाश्वतिकी तथापि भरतैरावतयोः षट्कालपरावर्तन-

---

केवलीकाल बासठ वर्ष है, श्रुतकेवली काल सौ वर्ष, दशपूर्वियों का एक सौ तिरासी वर्ष, ग्यारह अंगधारियों का एक सौ तेंतीस वर्ष, दश-नव एवं आठ अंगज्ञानधारियों का सत्तानवे वर्ष, एक अंग के ज्ञानधारी अर्हद्बलि का काल अट्ठाईस वर्ष, माघनंदि सूरि का काल इक्कीस वर्ष, धरसेनाचार्य का काल उन्नीस वर्ष, पुष्पदंत आचार्य का काल तीस वर्ष, भूतबली आचार्य का काल बीस वर्ष एवं एक अंगधारियों का काल एक सौ अठारह वर्ष था। इन सबको मिलाकर कुल-६२+१००+१८३+१२३+९७=५६५ वर्ष हुए।

५६५ में पुनः ११८ वर्ष मिलाने पर ५८५+११८=६८३ वर्ष हुए।

इससे यह ज्ञात होता है कि श्रीधरसेनाचार्य का समय वीर निर्वाण संवत्सर से ६०० वर्ष के बाद का ही है।

यह श्रुततीर्थ प्रवर्तन का काल २१ हजार वर्ष प्रमाण ही है, आगे यह व्युच्छेद को प्राप्त हो जाएगा। कहा भी है—

गाथार्थ — गौतमस्वामी प्रभृति के काल का प्रमाण छह सौ तिरासी वर्ष होता है।।१४९२।।

जो श्रुततीर्थ प्रवर्तन का कारण है, वह बीस हजार तीन सौ सत्रह वर्ष तक श्रुततीर्थ रहेगा, इसके बाद कालदोष से व्युच्छेद को प्राप्त हो जाएगा।।१४९३।।

इसका अर्थ यह है कि — श्री गौतम स्वामी से लेकर काल का प्रमाण ६८३ वर्ष है, पुनश्च बीस हजार तीन सौ सत्रह वर्षों में काल दोष से जो श्रुततीर्थ धर्मप्रवर्तन का कारण है वह व्युच्छेद को प्राप्त हो जाएगा, ऐसा जानना चाहिए (६८३+२०३१७=२१०००) अतः भगवान् वीरप्रभु के निर्वाणदिवस का २१००० वर्ष पर्यन्त ही श्रुततीर्थ चलेगा। पश्चात् दुषमाकाल के प्रभाव से व्युच्छेद को प्राप्त होगा, तब तक चतुर्विध संघ का अस्तित्त्व भी रहेगा।

यद्यपि जैनधर्म शाश्वत है, तीर्थंकर परम्परा भी शाश्वत है, फिर भी भरत और ऐरावत क्षेत्रों में षट्काल

---

१. तिलोयपण्णत्ति अ. ४, पृ. ३३८ से ३४०।

निमित्तेनैव श्रुततीर्थस्य व्युच्छित्तिः कथितात्र, विदेहक्षेत्रेषु तु सदा कालमेव धर्मतीर्थपरम्परा वर्तते तीर्थंकरपरम्परापि च तत्र सदैव अस्ति।

अस्मिन् हुण्डावसर्पिणीकाले जैनधर्मस्य प्रथमतीर्थंकरश्रीऋषभदेवेन यो धर्मोपदेशो दत्तः स एवान्यैस्तीर्थंकरदेवैः कथितः न च पार्श्वनाथेन चतुर्यामधर्मं[1] उपदिष्टः, दिगम्बरपरम्परायां तु महावीरस्वामि-पर्यन्तचतुर्विंशतितीर्थंकराणामुपदेशः समान एवासीत्। सैव धर्मोपदेशपरम्परा अग्रे वीरांगजमुनिपर्यंतं चलिष्यति।

श्रीवीरांगजमुनि-सर्वश्रीआर्यिका-अग्निदत्त-पंगुश्रीश्राविकाणां चतुर्विधसंघः स्थास्यति[2]। कार्तिक-कृष्णस्यामावस्यायां एतेषां समाधिमरणानन्तरं कालदोषेण धर्मव्युच्छेदो भविष्यति इति ज्ञातव्यम्।

श्रीगुणभद्रस्वामिनापि प्रोक्तं—

चन्द्राचार्यस्य शिष्यः स्यान्मुनिर्वीराङ्गजाह्वयः।।४३२।।
सर्वश्रीरार्यिकावर्गे पश्चिमः श्रावकोत्तमः।
अग्निलः फल्गुसेनाख्या श्राविका चापि सद्व्रता[3]।।४३३।।

यदा पंचमकालस्य त्रिवर्षाष्टमासैकपक्षशेषो भविष्यति तदा धर्मतीर्थव्युच्छेदो ज्ञातव्यः।

अद्य प्रभृति वीराब्दाद् एकोनत्रिंशदधिकपंचविंशतिशततमाद्[4] अग्रे अष्टादशसहस्रपंचशतवर्षपर्यंत-पंचमकालस्य-अन्तं तावत् धर्मतीर्थोऽयमविच्छिन्नरूपेण चलिष्यति, नात्र संदेहो विधातव्यः।

यत्र कुण्डलपुरनगर्यां 'नंद्यावर्त' प्रासादे तीर्थंकरशिशुमवलोक्य द्वयोश्चारणर्षिमहामुन्योः शंकायाः

परावर्तन के निमित्त से ही श्रुततीर्थ की व्युच्छित्ति यहाँ कही गई है, विदेह क्षेत्रों में तो सदाकाल ही धर्मतीर्थ की परम्परा चलती रहती है और तीर्थंकर परम्परा भी वहाँ सदैव रहती है।

इस हुण्डावसर्पिणीकाल में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने जो धर्मोपदेश दिया है, वही उपदेश अन्य सभी तीर्थंकरों ने दिया है, न कि पार्श्वनाथ ने चतुर्याम धर्म का उपदेश दिया है। दिगम्बर परम्परा में तो महावीरस्वामी पर्यन्त चौबीसों तीर्थंकरों का उपदेश समान ही था। वही धर्मोपदेश परम्परा आगे वीरांगज मुनि पर्यन्त चलेगी। श्री वीरांगज मुनि-सर्वश्री आर्यिका-अग्निदत्तश्रावक और पंगुश्री श्राविका इस प्रकार चतुर्विध संघ रहेगा। कार्तिक कृष्णा अमावस्या को इन सभी के समाधिमरण के पश्चात् कालदोष के कारण धर्म का व्युच्छेद हो जाएगा, ऐसा जानना चाहिए।

श्री गुणभद्रस्वामी ने भी कहा है—

श्लोकार्थ— श्री चन्द्राचार्य के शिष्य वीरांगज नाम के मुनि, आर्यिका वर्ग में सर्वश्री नाम की आर्यिका, अग्निल नाम के श्रावक एवं फल्गुसेना नाम की श्राविका भी सद्व्रतों की धारक होंगी।।४३२-४३३।।

जब पंचमकाल के तीन वर्ष आठ मास और एक पक्ष शेष रहेंगे, तब धर्मतीर्थ का व्युच्छेद होगा, ऐसा जानना चाहिए।

आज से अर्थात् वीर निर्वाण संवत् २५२९ से आगे १८५०० वर्ष तक पंचम काल के अंत तक यह धर्मतीर्थ अविच्छिन्नरूप से चलेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

भावार्थ— जिस समय पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने यह प्रकरण लिखा था, उस समय वीर निर्वाण संवत् २५२९ था।

जहाँ कुण्डलपुर नगरी 'नंद्यावर्त' महल में तीर्थंकर शिशु को देखकर दो चारण ऋषियों—महामुनियों

---

१. श्वेताम्बर परम्परा में पार्श्वनाथ के 'चतुर्याम' धर्म का उपदेश है। दिगम्बर परम्परा में नहीं है। २. तिलोयपण्णत्ति अ. ४। ३. उत्तरपुराण पर्व ७६। ४. टीकालेखनकालोऽयं।

समाधानं जातं। भगवन्मुनिसुव्रतजन्मभूमिराजगृहीनगर्यां समवसरणस्थितमानस्तंभस्य दर्शनं कृत्वा गौतमस्याभिमानं गलितं, स महावीरप्रभोः शिष्यत्वं स्वीकृत्य क्षणेन चतुर्ज्ञानधारी गणधरो बभूव। त्रिंशद्वर्षपर्यंतं भगवतः समवसरणे स्थित्वा प्रभुदिव्यध्वनिमयममृतपानं कारं कारं असंख्यभव्यानामपि धर्मामृतं पायितं।

यत्र पावापुर्यां सरोवरे मध्ये स्थितं मणिमयीशिलाया उपरि कायोत्सर्गेण स्थितः प्रभुः परमातीन्द्रियधाम अवाप।

अस्मात् कुण्डलपुराद् राजगृहीनगरी पञ्चक्रोशे स्थिता पावापुरी च अस्मादष्टक्रोशमात्रे स्थिता।

अयं त्रिवेणीतीर्थसंगमः कस्य भव्यस्य हृदयसरोरुहं न विकासयति अपि तु सर्वेषां भव्यानां मुनीनामार्यिकाणां च चित्तमाल्हादयत्येव।

राजगृहीनगर्यां समवसरणे भगवन्महावीरप्रभुमवलोक्य प्रथमदर्शनकाले एव गौतमस्वामिना भक्त्या शब्दोच्चारितं—

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो। विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।

इत्यादिरूपेण चैत्यभक्तिनाम्ना स्तुतिः प्रसिद्धास्ति।

पुनश्च स्वयं कथितं—

जस्संतियं धम्मपहं णियच्छे, तस्संतियं वेणइयं पउंजे।
काएण वाचा मणसा वि णिच्चं, सक्कारए तं सिरपंचमेण।।

की शंका का समाधान हो गया था। भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि राजगृही नगरी में समवसरण के अंदर स्थित मानस्तंभ का दर्शन करके गौतमस्वामी का अभिमान गलित हो गया था, वे गौतम गणधर महावीर प्रभु की शिष्यता स्वीकार करके क्षणभर में चार ज्ञानधारी गणधर हो गये थे। तीस वर्ष तक भगवान के समवसरण में रहकर प्रभु की दिव्यध्वनि का अमृतपान कर-करके असंख्य भव्य प्राणियों को भी धर्मामृत का पान कराया था।

जिस पावापुर नगरी में सरोवर के मध्य स्थित मणिमयी शिला के ऊपर कायोत्सर्ग से स्थित प्रभु ने परम अतीन्द्रिय धाम को प्राप्त किया था। इस कुण्डलपुर से राजगृही नगरी पाँच कोश पर एवं पावापुरी कुण्डलपुर से आठ कोश मात्र दूरी पर स्थित है।

यह तीर्थ त्रिवेणी (कुण्डलपुर-राजगृही-पावापुरी) का संगम किस भव्यप्राणी के हृदयकमल को विकसित नहीं करती है ? अपितु सभी भव्यों को एवं मुनि-आर्यिकाओं के चित्त को आल्हादित करती ही है।

राजगृही नगरी में समवसरण में भगवान महावीर प्रभु का अवलोकन करके प्रथम दर्शन काल में ही गौतमस्वामी के द्वारा भक्तिपूर्वक ये शब्द उच्चारित किये गये थे—

श्लोकार्थ—हे भगवन्! आप जयशील होवें। आपके चरणकमल जब विहारकाल में स्वर्णकमलों के ऊपर अधर पड़ते हैं, उस समय इन्द्रों के मुकुटों की किरणप्रभा से चुम्बित के समान प्रतिभासित होते हैं। कलुषित हृदय वाले प्राणी भी आपके चरणकमलों के सामीप्य को प्राप्त करके परस्पर में वैरभाव को छोड़कर कलुषता से रहित हो जाते हैं।।१।।

इत्यादिरूप से चैत्यभक्ति नाम की स्तुति प्रसिद्ध है।

पुनश्च वे गौतमस्वामी स्वयं कहते हैं—

श्लोकार्थ—जिनके निकट—चरण सान्निध्य में मैंने धर्मपथ को स्वीकार किया है, उनके निकट मैं परम विनय भाव को प्रकट करते हुए काय-वचन और मन से नित्य ही पंचांग नमस्कारपूर्वक सिर झुकाकर

अनन्तरं यत्र पावापुर्यां भगवतो निर्वाणपदप्राप्तानन्तरं गौतमस्वामी केवलज्ञानी बभूव।

अतएव इदं तीर्थत्रयं तिसृणां नदीनां संगम इव त्रयाणां तीर्थाणां संगमः त्रिवेणीसंगमतीर्थस्वरूपेण जगत्- पूज्यः शतेन्द्रवंद्यो मुनीन्द्रगणीन्द्रनरेन्द्रस्तुत्यश्च वर्तते। लौकिकप्रयागसंगमतीर्थमिव इदं त्रिवेणीतीर्थसंगमः सर्वजैनधर्मानुयायिनां अन्येषां भाक्तिकानां अपि कर्मकलुषप्रक्षालनार्थं भूयादिति भावयाम्यहम्।

ग्रन्थपूर्णताकालः —

अस्याः टीकाया लेखनकाले शौरीपुर-प्रयाग-वाराणसी-चन्द्रपुरी-सिंहपुरी (सारनाथ)-कुण्डलपुरी-राजगृहीतीर्थेषु-तीर्थंकर गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञानकल्याणकपवित्रीकृत तीर्थेषु, कमलदह-(पटना) पावापुरी-राजगृही-गुणावा-सम्मेदशिखरनिर्वाणक्षेत्रेष्वपि विहरन्ती अहं वन्दनाभक्तिस्तुतिध्यानाभ्यासादिकं च कुर्वन्ती संस्कृतटीकां लिखन्ती अपि एवं श्रद्धधाना स्मि। यत्-तीर्थंकरभगवतां स्पृष्टक्षेत्राणां पवित्ररजांसि मम मनोवचनकायान् टीकामपि पवित्रयन्त्येव तस्यां टीकायां अमृतकणान् सम्मिश्रयन्येव, मम एष विश्वासोऽस्ति।

[१]कुण्डलपुरतीर्थादागत्य वीराब्दे एकोनत्रिंशदधिक-पंचविंशतिशततमे श्रावणशुक्लासप्तम्यामद्य त्रयोविंशति-तमतीर्थंकरश्रीपार्श्वनाथनिर्वाणकल्याणकदिवसे भगवन्महावीरनिर्वाणभूमि-पावापुरी-पवित्रतीर्थे अहं वेदनाकालवेदनाभावसमन्वितस्यास्य एकादशमग्रन्थस्य त्रिनवत्यधिकपंचशतसूत्रसहितस्य ''सिद्धान्त-चिन्तामणि'' टीकां पूर्णां कुर्वन्ती विशेषाल्हादमनुभवामि।

वन्दन करता हूँ।।

अनन्तर जिस पावापुरी नगरी में भगवान् ने निर्वाणधाम को प्राप्त किया, उसी पावापुरी में गौतम स्वामी ने केवलज्ञान प्राप्त किया था।

इसलिए तीन नदियों के समान इन तीनों तीर्थों का संगम तीर्थ त्रिवेणी संगम स्वरूप जगत् में पूज्य है, सौ इन्द्रों से वंद्य है, मुनीन्द्र-गणीन्द्र और नरेन्द्र से स्तुत्य है। लौकिक संसार में प्रचलित प्रयाग के संगम तीर्थ के समान यह त्रिवेणी तीर्थ का संगम समस्त जैनधर्म के अनुयायियों के लिए एवं अन्य भक्तजनों के भी कर्मकलुष को प्रक्षालित करने वाला — धोने वाला होवे, ऐसी मेरी भावना है।

ग्रंथ पूर्णता का काल —

इस ग्रंथ की टीका के लेखन काल में शौरीपुर-प्रयाग-वाराणसी-चन्द्रपुरी-सिंहपुरी (सारनाथ)-कुण्डलपुरी-राजगृही तीर्थों पर तीर्थंकरों के गर्भ-जन्म-दीक्षा केवलज्ञानकल्याणक से पवित्र तीर्थों पर तथा कमलदह (पटना का गुलजारबाग)-पावापुरी-राजगृही-गुणावां-सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्रों पर भी विहार करते हुए मैं वन्दना-भक्ति-स्तुति-ध्यानाभ्यास आदि करते हुए संस्कृत टीका को लिखते हुए मन में यह श्रद्धा रखती थी कि-तीर्थंकर भगवन्तों से स्पर्शित क्षेत्रों की जो पवित्र रज है, वह मेरे मन-वचन-काय को एवं मेरे द्वारा लिखी गई टीका को भी पवित्र करती ही है और उस टीका में ये तीर्थक्षेत्र अमृतकणों को भी मिश्रित कर देते हैं, ऐसा मेरा विश्वास है।

कुण्डलपुर तीर्थ से वापस विहार करके वीर निर्वाण संवत् २५२९ में श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन तेइसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ के निर्वाणकल्याणक की तिथि में भगवान महावीर की निर्वाणभूमि पावापुरी पवित्र तीर्थ पर मैं ''वेदनाकाल-वेदनाभाव'' से समन्वित ५९३ सूत्र सहित इस ग्यारहवें ग्रंथ की ''सिद्धान्तचिंतामणि'' टीका को पूर्ण करते हुए विशेष आल्हाद का अनुभव करती हूँ।

---

१. श्रावण शु. ७, वीर सं. २५२९, दिनाँक ४-८-२००३।

अत्रैव प्रभोर्निर्वाणकल्याणकपूर्वं अन्तिमदेशना बभूव। अंतिमसमवसरणरचना, समवसरणविघटनं चात्रैव बभूव।

तस्यां कार्तिककृष्णामावस्यायां तिथौ एव सायंकाले प्रभोः प्रथमगणधरदेवश्रीइन्द्रभूतिनामगौतमस्वामिना केवलज्ञानं संप्राप्तम्। ततः प्रभृति अद्यावधि सर्वे जैनधर्मावलंबिनः कार्तिकामावस्यायां प्रातः उषाकाले — प्रत्यूषबेलायां पावापुर्यां स्व-स्वनगरेष्वपि जैनमंदिरेषु भगवतां महावीरस्वामिनामभिषेकपूजां विधाय निर्वाणलड्डूनाम्ना महामोदकं प्रभुचरणयोः समर्प्य निर्वाणकल्याणमहोत्सवं कुर्वन्ति।

पुनः तस्मिन् एव दिवसे सायंकाले दीपमालिकामहोत्सवं कृत्वा अनंतरं प्रभोर्गणधरश्रीगौतमस्वामि-केवलज्ञानमहोत्सवनिमित्तेन द्वादशगणानामीशःगणेशः, द्वादशगणान् धारयति इति ''गणधरः'' इत्यादिरूपेण गणधरः, गणेशः, गणीशः, गणपतिः, गणाधीशः पर्यायवाचिनामानुसारेण श्रीगौतमस्वामिनं श्रीकेवल-ज्ञानलक्ष्मीं (धनलक्ष्मीं) अपि पूजयन्तः नूतनवसनामुहूर्तमपि कुर्वन्ति।

अद्यत्वे कदाचित् कस्मिंश्चिद् वर्षे मुहूर्तज्ञकथनानुसारेण लौकिकजनाः अमावस्यायाः पूर्वं चतुर्दश्यां रात्रौ एवं दीपमालिकां गणेशलक्ष्मीपूजां कृत्वा नूतनवसनामुहूर्तं कुर्वन्ति। नैतत् सुष्ठु, किंच — श्री-महावीरस्वामि-निर्वाणप्राप्त्यनंतरमेव इन्द्रादिभिर्देवैः दीपमालिकामहोत्सवः कृतः। ततश्च गणधरदेवेन सायं केवलज्ञानं लब्धं।

अतएव जैनभाक्तिकैः भगवन्महावीरनिर्वाणकल्याणकस्यानंतरमेव दीपमालिका गणधरदेव-केवलज्ञानमहालक्ष्मीपूजाविधिः कर्तव्या।

अस्मिन् विषये मुहूर्तो न पृष्टव्यः। किंच — एतन् निर्वाणकल्याणकदिवसं पूर्णमेव अतिशायिमहत्त्वसहितं विद्यते।

यहीं पर भगवान महावीर के निर्वाणकल्याणक से पूर्व उनकी अन्तिम देशना भी हुई थी। उनके अंतिम समवसरण की रचना एवं समवसरण का विघटना (समापन) भी इसी पावापुरी की भूमि पर हुई थी।

यहीं — पावापुरी में ही कार्तिक कृष्णा अमावस्या तिथि में ही सायंकाल में प्रभु के प्रथम गणधरदेव श्री इन्द्रभूति नाम के गौतमस्वामी ने केवलज्ञान प्राप्त किया था। तब से लेकर आज तक सभी जैनधर्मावलम्बी कार्तिक अमावस की प्रातःकालीन उषा बेला में पावापुरी जाकर या अपने-अपने नगरों में भी जैन मंदिरों में भगवान महावीर स्वामी का अभिषेक और पूजन करके निर्वाण लड्डू नाम से महामोदक-बड़ा सा लड्डू बनाकर प्रभु चरणों में समर्पित करके — चढ़ा करके निर्वाणकल्याणक महोत्सव मनाते हैं।

पुनः उसी दिन सायंकाल में दीपमालिका महोत्सव करके अनन्तर गौतम गणधर स्वामी के केवलज्ञान महोत्सव के कारण उस उपलक्ष्य में द्वादशगणों के ईश गणेश और समवसरण की बारह सभारूप गणों को धारण करने वाले प्रमुख ''गणधर'' नाम को सार्थक करने वाले गणधर, गणेश, गणीश, गणपति, गणाधीश आदि पर्यायवाची नाम के अनुसार श्री गौतम गणधर स्वामी की एवं उनकी केवलज्ञानलक्ष्मी एवं (धनलक्ष्मी) की भी पूजन करते हुए नूतन वसनामुहूर्त भी करते हैं।

आजकल कदाचित् किसी वर्ष मुहूर्तज्ञ विद्वानों के कथनानुसार लौकिकजन अमावस्या के पूर्व चतुर्दशी की रात्रि में ही दीपमालिका सजाकर और गणेश-लक्ष्मी की पूजा करके नूतन वसनामुहूर्त कर लेते हैं। किन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि श्री महावीर स्वामी के निर्वाण प्राप्ति के पश्चात् ही इन्द्रादि देवों के द्वारा दीपमालिका महोत्सव किया गया था और उसके बाद गणधरदेव ने सायंकाल में केवलज्ञान प्राप्त किया था। इसलिए जैन श्रद्धालु भक्तों को भगवान महावीर के निर्वाणकल्याणक के अनन्तर ही दीपमालिका और गणधरदेव, केवलज्ञानमहालक्ष्मी की पूजा आदि विधि करना चाहिए। इस विषय में मुहूर्त नहीं पूछना चाहिए। क्योंकि यह

महाधीरधीरं महावीरवीरं, महालोकलोकं महाबोधबोधम्।
महापूज्यपूज्यं महावीर्यवीर्यं, महादेवदेवं महान्तं महामि।।१।।

भगवन्महावीरस्वामिनामन्तिमशरीरं द्रव्यं, तेषां निर्वाणभूमि पावापुरीक्षेत्रं, सा कार्तिककृष्णामावस्या तिथिः कालं, तेषां प्रभूणामनन्तानन्तगुणाः भावः, एतान् सर्वानपि प्रभोर्द्रव्य-क्षेत्रकालभावान् अनंतानन्तवारान् नमस्करोमि, पुनश्च स्वचतुष्टयपूर्तिं याचमाना प्रभोः पंचकल्याणकभूमीः देशनाभूमिं राजगृहीं शाश्वतसिद्धक्षेत्रं सम्मेदशिखर-मपि स्तुवन्ती स्वात्मानं तीर्थं कर्तुं इच्छामि।

श्रीमहावीरस्वामिस्तोत्रम्

बसंततिलकाछंदः—

सिद्धार्थ-राजकुल-मंडन-वीरनाथः, जातः सुकुण्डलपुरे त्रिशलाजनन्यां।
सिद्धिप्रियः सकल-भव्यहितंकरो यः, श्रीसन्मतिर्वितनुतात् किल सन्मतिं मे।।१।।

द्रुतविलंबितछंदः— **त्रिविधबोधयुतः सुदिवश्च्युतः, नहि जनन्युदरेऽपि च मूढता।**
विमल-पुण्यकरं शुभतीर्थकृद्, विधिमुपार्ज्य महाविभवैःश्रितः।।२।।

निर्वाणकल्याणक का सम्पूर्ण दिवस ही अतिशयरूप से महत्त्वपूर्ण होता है।

जैसा कि कहा है—

श्लोकार्थ—जो महान् धैर्यवान् होने से महाधीर धीर कहलाते हैं, महान वीरता के धनी होने से महावीर वीर नाम से प्रसिद्ध हैं, सम्पूर्ण लोक को ज्ञान से देख लेने के कारण महालोक लोक हैं, केवलज्ञानी होने से महाबोध बोध हैं, महान पूज्य जनों से पूज्य होने से महापूज्य पूज्य हैं, महान् शक्तिशालियों में भी शक्तिवान् होने से महावीर्य वीर्य कहलाते हैं और संसार के सबसे महान् देव-देवों के भी देव होने के कारण महादेव देव कहे जाते हैं, ऐसे महान् तीर्थंकर भगवान महावीर की मैं अर्चना करता हूँ।।१।।

भगवान् महावीर स्वामी के अंतिम शरीर द्रव्य को, उनकी निर्वाणभूमि पावापुरी क्षेत्र को, कार्तिक कृष्णा अमावस्या की तिथि के रूप में काल को तथा उन प्रभु के अनन्तानन्तगुणरूप भाव को, इस प्रकार प्रभु के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सभी को मेरा अनन्तानन्त बार नमस्कार है। पुनश्च अपने अनन्त चतुष्टय—अनन्तज्ञान-अनन्तदर्शन-अनन्तसुख और अनन्तवीर्यरूप अनन्तचतुष्टय की पूर्ति के लिए याचना करते हुए प्रभु की पंचकल्याणकभूमि, देशनाभूमि राजगृही तीर्थ तथा शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर तीर्थराज की भी स्तुति करते हुए अपने आत्मा को सच्चा तीर्थ बनाने की मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

श्री महावीर स्वामी स्तोत्र

श्लोकार्थ—राजा सिद्धार्थ के कुल को सुशोभित करने वाले महावीर स्वामी कुण्डलपुर नगरी में माता त्रिशला के गर्भ से उत्पन्न हुए। जो सिद्धि—मुक्तिकन्या के प्रिय हैं तथा समस्त भव्यजीवों का हित करने वाले हैं, ऐसे श्री सन्मतिप्रभु मुझे सन्मति—शीघ्र सद्बुद्धि प्रदान करें।।१।।

देवगति से च्युत हुए भगवान माता के उदर में भी मति-श्रुत-अवधि इन तीन ज्ञानों से युक्त थे इसलिए गर्भ में भी अज्ञानी नहीं थे।

विमल पुण्य को प्रदान करने वाली शुभ तीर्थंकर प्रकृति का उपार्जन—बंध करके महावीर स्वामी ने महान वैभव को प्राप्त किया।।२।।

कनकभूभृति पांडुकसच्छिला, तदुपरि स्म करोत्यभिषेचनम्।
सुरपतिस्तव जन्ममहोत्सवे, ह्यतुल-शक्ति-युतः शुशुभे प्रभुः।।३।।
नुतगणीन्द्रमुनीन्द्रवियच्चर-प्रभुनरेन्द्रसुरेन्द्रसुसन्मतिः।
सदसि मध्य-मृगेन्द्रसुविष्टरे, प्रविरराज सदा किल नौमि तं।।४।।

बसंततिलकाछंदः — **कैवल्य-बोधरवि-दीधितिभिः समंतात्, दुष्कर्मपंकिल-भुवं किल शोषयन् यः।**
भव्यस्य चित्तजलज-प्रविबोधकारी, तं सन्मतिं सुरनुतं सततं स्तवीमि।।५।।
पावापुरे सरसि पद्मयुते मनोज्ञे, योगं निरुध्य किल कर्मवनं ह्यधाक्षीत्।
लेभे सुमुक्तिललना-मुपमाव्यतीताम्, भेजे त्वनंतसुखधाम नमोऽस्तु तस्मै।।६।।

अन्त्यमंगलम्

वर्तते शासनं यस्य, तीर्थकृत्तं जगद्गुरुम्। मुहुर्मुहुर्नमस्कृत्य, टीकेयं परिपूर्यते।।१।।
श्रीधरसेनयोगीन्द्रं, पुष्पदन्तगुरुं स्तुवे। श्रीभूतबलिसूरिं च, वीरसेनगुरुं मुदा।।२।।
षट्खण्डागमशास्त्राब्धीन्, भक्त्या नत्वा पुनः पुनः। सरस्वतीं च वन्देऽहं, द्रव्यभावश्रुताप्तये।।३।।
श्रीशांतिसागरं सूरिं, प्रथमाचार्यं नमामि च। महाव्रतप्रदातारं, सूरिं श्रीवीरसागरम्।।४।।

स्वर्णाचल-सुमेरु पर्वत पर "पांडुक" नाम की सुन्दर शिला है, सौधर्मेन्द्र ने उस पांडुकशिला के ऊपर जन्म महोत्सव में आपका अभिषेक किया था, उस समय वे प्रभु अतुलनीय शक्ति से सहित सुशोभित हो रहे थे।।३।।

गणधर, मुनिगण, विद्याधरेन्द्र, चक्रवर्ती और देवेन्द्रों से वंद्य — स्तुत्य सन्मति भगवान् सभा के मध्य समवसरण के बीचों बीच सिंहासन पर विराजमान थे, उन महावीर भगवान को मैं सदा नमस्कार करता हूँ।।४।।

जो केवलज्ञानरूपी सूर्य की किरणों के द्वारा सभी तरफ से दुष्कर्म कीचड़ से व्याप्त संसार — पृथ्वीरूपी सरोवर को सुखाते हुए भव्यप्राणियों के हृदय कमल को खिला देते हैं। ऐसे देवों के द्वारा स्तुत सन्मति भगवान् की मैं सतत स्तुति करता हूँ।।५।।

जिन्होंने पावापुरी नगरी में कमलों से सहित मनोज्ञ सरोवर के मध्य में योग का निरोध करके समस्त कर्मरूपी वन को दग्ध किया — जला दिया। उपमा रहित मुक्तिरूपी ललना को प्राप्त किया और अनंत सुख के धाम सिद्धपद को प्राप्त कर लिया, उन वीर भगवान् को मेरा नमस्कार होवे।।६।।

अन्त्य मंगल

श्लोकार्थ — वर्तमान में जिन तीर्थंकर जगद्गुरु का शासन चल रहा है, उन भगवान् महावीर स्वामी को बार-बार नमस्कार करके मेरे द्वारा यह टीका पूर्ण की जा रही है।।१।।

श्री धरसेनाचार्य मुनीन्द्र को तथा श्री पुष्पदंत-भूतबली गुरुवर्य को एवं श्री वीरसेनाचार्य गुरुवर्य की परम प्रसन्न भाव से मैं स्तुति करता (करती) हूँ।।२।।

षट्खण्डागम शास्त्ररूपी समुद्र को बारम्बार भक्तिपूर्वक नमन करके, द्रव्य और भावश्रुत की प्राप्ति हेतु मैं श्री सरस्वती माता को वन्दन (करती) करता हूँ।।३।।

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर मुनीन्द्र को मेरा नमन है तथा मेरे महाव्रत प्रदाता गुरुदेव

श्रीवीरशासनं यावत्, स्थेयात्तावज्जिनागमः। गणिनीज्ञानमत्येयं, स्थेयात् टीका कृता भुवि।।५।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिसूरिवर्यप्रणीतषट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखंडे एकादशे ग्रन्थे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचिते विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यचारित्रचक्रवर्ती-श्रीशांतिसागरगुरुस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीपरचना-भगवन्महावीरजन्मभूमिकुण्डलपुरादितीर्थोद्धारिका-गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदनाकालविधानानुयोगद्वार-वेदनाभाव-विधानानुयोगद्वारसमन्वितोऽयं एकादशो ग्रन्थः समाप्तः।

* * *

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

।।वर्धतां जिनशासनम्।।

आचार्य श्री वीरसागर मुनिराज हैं, उन्हें मेरा बारम्बार नमन है।।४।।

जब तक इस पृथ्वीतल पर जिनशासन स्थित रहे, तब तक जिनागम का अस्तित्व बना रहे एवं मुझ गणिनी ज्ञानमती कृत यह टीका भी संसार में स्थाई रूप से विद्यमान रहे, यही प्रभु चरणों में मेरी प्रार्थना है।।५।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदंत-भूतबली सूरि द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के वेदना नाम के चतुर्थ खण्ड में ग्यारहवें ग्रंथ में श्री वीरसेनाचार्य विरचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रचित ग्रंथ में बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर गुरुदेव उनके प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागराचार्य, उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका-भगवान् महावीर जन्मभूमिकुण्डलपुर आदि तीर्थों की उद्धारिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदनाकाल विधान अनुयोगद्वार एवं वेदना-भावविधान अनुयोगद्वार समन्वित यह ग्यारहवाँ ग्रंथ पूर्ण हुआ।

इस प्रकार यह ग्रंथ समाप्त हुआ।

।।जिनशासन सदैव वृद्धिंगत होवे।।

एकादशग्रन्थस्य प्रशस्तिः

मंगलाचरणम्

शौरीपुर्यर्द्धचक्र्याद्यै-र्मान्या मे मंगलं क्रियात्।
इंद्रादिभिः सदा वंद्या, नेमिनाथस्य जन्मभूः।।१।।

शौरीपुरतीर्थे पवित्रभूमौ एकादशग्रन्थस्य टीका प्रारब्धा मंगलाचरणं कृत्वा मया। पुनः द्रुतगत्या विहरन्त्या ज्येष्ठशुक्लाद्वितीयायां[1] तीर्थंकरऋषभदेवतपस्थलीदीक्षाभूमिं संप्राप्य प्रमुदितमनसा तत्र श्रीऋषभदेववन्दनादिभिः पुण्यार्जनं कृतम्। पुनः ज्येष्ठशुक्लादशम्याः लघुपंचकल्याणकमारभ्य ज्येष्ठशुक्ला-पूर्णिमायां मोक्षकल्याणानन्तरं कैलाशपर्वतस्योपरि त्रिकालचतुर्विंशतीनां द्वासप्ततिजिनप्रतिमाः स्थापिताः भाक्तिकैः। कीर्तिस्तंभेषु अष्टौ जिनप्रतिमाः स्थापिताः। अत्रैव वर्षायोगे नानाविधधर्मानुष्ठानानि बभूवुः।

अस्य मध्ये आषाढ़कृष्णाचतुर्थ्यां ब्रह्मचारिरवीन्द्रेण अन्यजनैः सार्धं कुण्डलपुरे नवतीर्थनिर्माणार्थं स्थलं क्रीतं। अत्र प्रयागक्षेत्रे वर्षायोगाभ्यन्तरे आश्विनशुक्लापूर्णिमायां[2] समवसरणमंदिरे श्रीऋषभदेव-समवसरण-स्थापनाभवत्। इलाहाबाद-उच्चन्यायालयस्य न्यायमूर्ति-श्री श्यामलकुमारसेन-मुख्यन्यायाधीशेन स्वस्तिकं लिखित्वा उद्घाटनं कृतम्।

षट्खण्डागम के ग्यारहवें ग्रंथ की प्रशस्ति

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—जो अर्धचक्री—नारायण श्री कृष्ण आदि से मान्य हुई है, इन्द्रादिकों से जो सदैव वंद्य है, वह भगवान् नेमिनाथ की जन्मभूमि शौरीपुर नगरी मेरा मंगल करे—मेरे लिए शुभ मंगलकारी होवे।।१।।

शौरीपुर तीर्थ की पवित्र भूमि पर मैंने इस ग्यारहवें ग्रंथ की टीका को मंगलाचरण करके प्रारंभ किया। पुनः द्रुतगति से विहार करते हुए ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया तिथि को तीर्थंकर ऋषभदेव की दीक्षाभूमि तपस्थली तीर्थ-प्रयाग में पहुँचकर हर्षित मन से वहाँ श्री ऋषभदेव की वंदना आदि करके पुण्यार्जन किया। उसके बाद ज्येष्ठ शुक्ला दशमी से लघु पंचकल्याणक प्रारंभ होकर ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा तक हुआ और पूर्णिमा को मोक्षकल्याणक के अनन्तर कैलाशपर्वत के ऊपर त्रिकाल चौबीसी तीर्थंकर भगवन्तों की ७२ जिनप्रतिमाएँ भक्तों ने स्थापित की। वहाँ निर्मित कीर्तिस्तंभ की वेदियों में ८ जिनप्रतिमाएँ स्थापित की गईं। पुनः यहीं तपस्थली तीर्थ पर संघ का वर्षायोग हुआ, उस वर्षायोग के मध्य नाना प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान आदि सम्पन्न हुए।

इस मध्य आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी को ब्रह्मचारी रवीन्द्र कुमार ने कुछ लोगों के साथ बिहार प्रान्त के कुण्डलपुर में जाकर वहाँ नूतन तीर्थ के निर्माण हेतु भूमि को क्रय किया। यहाँ प्रयाग तीर्थ पर वर्षायोग के मध्य आश्विन शुक्ला पूर्णिमा—शरदपूर्णिमा के दिन समवसरण मंदिर में श्री ऋषभदेव समवसरण की स्थापना हुई। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री श्यामलकुमारसेन-मुख्य न्यायाधीश ने स्वस्तिक बनाकर उस मंदिर का उद्घाटन किया।

---

१. ज्येष्ठ शु. २, २५२८, दिनाँक १२-६-२००२। २. आश्विन शु. १५, दिनाँक-२१-१०-२००२।

प्रयागजैनतीर्थात् कार्तिकशुक्लाषष्ठ्याः कुण्डलपुरं प्रति मंगलविहारोऽभवत्। द्रुतगत्या गच्छन्त्या कार्तिकशुक्लापूर्णिमायां[१] भगवतां पार्श्वनाथानां जन्मभूमौ वाराणस्यां प्रभावनापूर्वकं अस्माकं प्रवेशोऽभवत्। अत्र वाराणस्यां भगवतः सुपार्श्वनाथस्य जन्मभूमि-भदैनी-श्रीश्रेयांसनाथजन्मभूमिसिंहपुरी[२]-सारनाथ-भगवच्चन्द्रप्रभजन्मभूमि[३]-चन्द्रपुरीक्षेत्राणि वन्दित्वा मार्गशीर्षशुक्लासप्तम्यां आरामहानगरे प्रविश्य तत्रापि धर्मप्रभावनां विलोकयन्त्या पटना-पाटलिपुत्रे गत्वा पुनश्च श्री सुदर्शनश्रेष्ठिनो निर्वाणभूमि-गुलजारबागस्थित[४]-कमलदहतीर्थे चरणवन्दनां कृत्वा पौषकृष्णादशम्यां[५] रविवासरे कुण्डलपुरतीर्थे भगवतो महावीरस्य जन्मभूमिं संप्राप्य मनसि महान् आनन्दोऽभवत्। अस्यामेव तिथौ श्रीमहावीरमंदिरस्य शिलान्यासः कारितः[६]। अस्मात् पूर्वं अत्र प्राचीनमंदिरप्रांगणे फाल्गुनशुक्लादशम्यां कीर्तिस्तंभस्य शिलान्यासः कारितोऽभवत्[७]।

कुण्डलपुरतीर्थे अतीव द्रुतगत्या निर्माणकार्यं कारयित्वा अत्रस्थकार्यकर्तृजनैः मत्संघसानिध्ये माघशुक्लाषष्ठ्याः एकादशीपर्यंतं महापंचकल्याणकप्रतिष्ठा[८] कारिता। अस्यां प्रतिष्ठायां अवगाहनाप्रमाण-भगवन्महावीरप्रतिमा, चतुर्दशफुटउत्तुंगपद्मासना श्रीऋषभदेवप्रतिमा, त्रिकालचतुर्विंशतितीर्थंकराणां द्वासप्ततयो जिनप्रतिमाश्च प्रतिष्ठिता बभूवुः।

अस्मिन् पंचकल्याणकप्रतिष्ठामहोत्सवे रक्षामंत्री-श्रीजार्जफर्नांडीज-रेलवेमंत्री-श्रीनितीशकुमार-बिहारप्रदेशराज्यपाल-महामहिमश्रीविनोदचंदपाण्डेयमहानुभावा आगताः। भगवन्महावीरस्वामिनः शासन-

---

प्रयाग जैन तीर्थ से कार्तिक शुक्ला षष्ठी को मेरा कुण्डलपुर की ओर मंगल विहार हो गया। द्रुतगति से चलते हुए कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को भगवान् पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में प्रभावनापूर्वक हमारा संघ सहित मंगल प्रवेश हुआ। यहाँ वाराणसी में भगवान् सुपार्श्वनाथ की जन्मभूमि भदैनी, श्री श्रेयांसनाथ जन्मभूमि सिंहपुरी-सारनाथ, भगवान चन्द्रप्रभ की जन्मभूमि चन्द्रपुरी तीर्थ क्षेत्र की वंदना करके मगसिर शुक्ला सप्तमी को 'आरा' महानगर में प्रवेश करके वहाँ भी धर्मप्रभावना करते हुए 'पटना'-पाटलिपुत्र शहर में जाकर पुनश्च सेठ सुदर्शन की निर्वाणभूमि गुलजारबाग स्थित कमलदह तीर्थ में सेठ सुदर्शन के चरणों की वंदना करके पौष कृष्णा दशमी, रविवार को भगवान् महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर तीर्थ पर पहुँचकर महान् आनन्द की अनुभूति हुई। उसी दिन वहाँ श्री महावीर मंदिर का शिलान्यास दीपक जैन-सौ. सुभाषिनी जैन-वाराणसी द्वारा कराया गया। इससे पूर्व यहाँ प्राचीन मंदिर के प्रांगण में फाल्गुन शुक्ला दशमी (२४ मार्च २००२) को कीर्तिस्तंभ का शिलान्यास कमलचंद जैन-खारीबावली, दिल्ली द्वारा कराया जा चुका था।

कुण्डलपुर तीर्थ पर अत्यन्त तेजगति से निर्माणकार्य करवाकर यहाँ के कार्यकर्ताओं के द्वारा मेरे संघ सान्निध्य में माघ शुक्ला षष्ठी से एकादशी तक महान पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई गई। इस प्रतिष्ठा में अवगाहना प्रमाण (७ हाथ) भगवान् महावीर की खड्गासन प्रतिमा, चौदह फुट उत्तुंग भगवान् ऋषभदेव की पद्मासन प्रतिमा एवं त्रिकाल चौबीसी तीर्थंकरों की बहत्तर जिनप्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हुईं।

इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में केन्द्रीय रक्षामंत्री श्री जार्ज फर्नांडीज, रेल मंत्री श्री नितीश कुमार, बिहार प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री विनोदचंद पाण्डे महानुभाव पधारे। भगवान् महावीर स्वामी के

---

१. कार्तिक शु. १५, वी.नि.सं. २५२९, दि. २१-१०-२००२। २. मगसिर कृ. ४, दि. २४ नवम्बर। ३. मगसिर कृ. ६, दि. २६ नवम्बर। ४. पौष कृ. ४, दि. २३-१२-२००२। ५. पौष कृ. १०, वीर नि. सं. २५२९, दि. २९-१२-२००२, कुण्डलपुर प्रवेश। ६. महावीर मंदिर शिलान्यास कुण्डलपुर में पौष कृ. १०, वी.नि.सं. २५२९, दि. २९-१२-२००२। ७. प्राचीन मंदिर कुण्डलपुर में कीर्तिस्तंभ शिलान्यास-फाल्गुन शु. १०, दि. २४-३-२००२। ८. माघ शु. ६ से ११, वी. नि. सं. २५२९, दि. ७-२-२००३।

प्रभावनाकरणार्थं महामहिमराज्यपालकरकमलाभ्यां श्री महावीरज्योतीरथस्य प्रवर्तनं बभूव।

माघशुक्लैकादश्यां (१२ फरवरी २००३) प्रभोर्महावीरस्वामिनः अष्टोत्तरसहस्त्रमहाकुंभैः महामस्तकाभिषेको महत्प्रभावनापूर्वकमभवत्।

अयं श्री भगवन्महावीरजन्मभूमितीर्थं ''नंद्यावर्तमहलं'' इति नाम्ना प्रसिद्धं कृतम्।

बिहारप्रान्तस्य धार्मिकन्यासबोर्डअध्यक्ष-श्रीरामगोपालजैन-बिहारप्रांतीय दि. जैनतीर्थक्षेत्रकमेटीमानदमंत्री-श्रीअजयकुमारजैनश्रावकौ उभौ जन्मभूमिविकासे विशेष सहभागिनौ भवतः।

अनंतरं शाश्वततीर्थसम्मेदशिखरवन्दनार्थं अस्माकं मंगलविहारः कुण्डलपुरतीर्थात् वीराब्दे एकोनत्रिंश-दधिकपंचविंशतिशततमे फाल्गुनकृष्णातृतीयायाः भूत्वा फाल्गुनकृष्णापंचम्यां राजगृहीसिद्धक्षेत्रं भगवन्मुनिसुव्रतनाथजन्मभूमिं च संप्राप्य वन्दनां विधाय फाल्गुनकृष्णाष्टम्यां पावापुरीसिद्धक्षेत्रं संप्राप्य महद्हर्षातिरेकेण महावीरप्रभुचरणवंदनां जलमंदिरे विधाय फाल्गुनकृष्णानवम्यां श्रीगौतमस्वामिनिर्वाणभूमिं गत्वा दर्शनं कृत्वा तत्र-तत्र तीर्थेषु[१] भगवन्महावीर भगवन्-मुनिसुव्रत-श्रीगौतमस्वामिप्रतिमाविराजमानप्रेरणां दत्वाग्रे सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रं फाल्गुनशुक्लानवम्यां[२] संप्राप्य अपारानन्दोऽभवत्।

वीरनिर्वाणसंवत्सरे एकोननवत्यधिकचतुर्विंशतिशततमे[३] मयासम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रस्य वन्दना कृतासीत्। पुनः स्वप्नेऽपि आशा नासीत् यत् पुनरपि मम वन्दना भविष्यति। किन्तु भगवन्महावीरस्वामिनां कृपाप्रसादेनासंभवोऽपि संभवोऽभवदिति विलोक्य महदाश्चर्यं महदानन्दोऽपि अजायत। अष्टादशदिवसानि

शासन की प्रभावना हेतु महामहिम राज्यपाल के करकमलों से श्री महावीर ज्योति रथ का प्रवर्तन हुआ।

माघ शुक्ला एकादशी (१२ फरवरी २००३) को प्रभु महावीर स्वामी की प्रतिमा का १००८ महाकुंभों के द्वारा महामस्तकाभिषेक महान् प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ।

यह भगवान् महावीर जन्मभूमि तीर्थ ''नंद्यावर्त महल'' नाम से प्रसिद्ध हुआ है।

बिहार प्रान्तीय धार्मिक न्यास बोर्ड के अध्यक्ष श्री रामगोपाल जैन, बिहार प्रान्तीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के मंत्री श्री अजयकुमार जैन, ये दोनों श्रावक महानुभाव जन्मभूमि तीर्थ के विकास में विशेष सहयोगी बने।

अनंतर शाश्वत तीर्थ सम्मेदशिखर की वंदना हेतु हमारा मंगल विहार कुण्डलपुर तीर्थ से वीर निर्वाण संवत् २५२९, फाल्गुन कृष्णा तृतीया तिथि को हुआ, पुनः फाल्गुन कृष्णा पंचमी को राजगृही सिद्धक्षेत्र में भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि की वंदना करके, फाल्गुन कृष्णा अष्टमी को पावापुरी सिद्धक्षेत्र पहुँचकर अति हर्षपूर्वक जलमंदिर में जाकर महावीर स्वामी की चरण वंदना की, पुनः फाल्गुन कृष्णा नवमी को श्री गौतमस्वामी की निर्वाणभूमि गुणावां में जाकर तीर्थ का दर्शन किया और उन-उन तीर्थों पर भगवान महावीर, भगवान मुनिसुव्रत एवं श्री गौतम स्वामी की प्रतिमा विराजमान करने की प्रेरणा देकर आगे बढ़ते हुए फाल्गुन शुक्ला नवमी के दिन सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके वहाँ पहुँचकर अपार आनंद हुआ।

वीर निर्वाण संवत् २४८९ (सन् १९६३) में मैंने सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की वंदना की थी। पुनः स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि पुनः मेरी वंदना होगी। किन्तु भगवान महावीर स्वामी की कृपा प्रसाद से असंभव कार्य भी संभव हो गया, यह देखकर मुझे महान् आश्चर्य और अतीव आनन्द भी हुआ। वहाँ आठ दिन रहकर

---

१. फाल्गुन कृ. ३, वी.नि.सं. २५२९, दि. १९-२-२००३ को विहार कर २१ फरवरी को राजगृही, २४ फरवरी को पावापुरी, २५-२-२००३ को गुणावां के दर्शन किये। २. फाल्गुन शु. ९, वी. नि.सं. २५२९ को दि. १२-३-२००३ को मैं ससंघ शिखर जी पहुँच गई। ३. पहले राजस्थान से वी.नि.सं. २४८९ (सन् १९६३) में मैंने सम्मेदशिखर वंदना की थी।

तत्र स्थित्वा वन्दनाभक्त्यादिना ध्यानाभ्यासेन च सिद्धक्षेत्रोपासना कृता। अत्र पर्वतस्य मध्ये स्थित-चोपड़ाकुण्डस्थलेऽपि उपविश्य मया टीकालेखनं कृतं [१]चैत्रकृष्णापंचम्यां (२२-३-२००३) अतएव मनसि सदैव चिन्त्यते। अस्यां टीकायां सिद्धक्षेत्र-पावापुरी-राजगृही-गुणावा-सम्मेदशिखरक्षेत्राणां पवित्रपरमाणवो मम शब्दवर्गणाः पवित्रयन्त्येव।

शाश्वततीर्थोऽयं सम्मेदशिखरक्षेत्रं। अत्रत्यात् वर्तमानहुण्डावसर्पिणीकाले विंशतितीर्थंकरा निर्वाणमापुः तथा च कोटि-कोटिमहामुनीश्वरः निर्वाणपदं प्राप्ताः। अस्य तीर्थस्य वन्दना कोटि-कोटि-उपवासफलं प्रयच्छति। तत्र तीर्थे ऋषभजयंती दिवसे ऋषभदेवमंदिरस्य शिलान्यासोऽभवत्।

पुनः तत्र क्षेत्रात् प्रत्यागच्छन्त्या गुणावा-पावापुरी क्षेत्रं वन्दित्वा चैत्रशुक्लाष्टम्यां कुण्डलपुरीं प्रविष्टा। तत्रैव महावीरजयंती कारयित्वा ततः कुण्डलपुरे भगवन्महावीरस्य गर्भकल्याणकतिथावेव गर्भकल्याणकं कारयित्वा नवग्रहशांतिजिनबिम्बानां नवतीर्थंकराणां पंचकल्याणकप्रतिष्ठा मध्यमरूपेण कारिता आषाढ़शुक्लाषष्ठ्या[१] आरभ्य दशम्यां यावत्।

पुनश्चाषाढशुक्लाचतुर्दश्यां कुण्डलपुरक्षेत्रे वर्षायोगं संस्थाप्य श्रावणकृष्णाप्रतिपत्तिथौ राजगृहीं गत्वा विपुलाचलस्योपरि भगवन्महावीरदेशनाजयंती कारिता अष्टोत्तरसहस्रकलशैः मस्तकाभिषेकमहोत्सवपूर्वकं वीरशासनजयंतीनाम्नेति।

पर्वत की वंदना, भक्ति और ध्यानसाधना के द्वारा मैंने सिद्धक्षेत्र की उपासना की।

यहाँ पर्वत के ऊपर (मध्य भाग में) स्थित चोपड़ा कुण्ड नामक स्थल पर भी बैठकर जिनमंदिर परिसर में मैंने चैत्र कृष्णा पंचमी को टीका का लेखन किया। इसलिए मेरे मन में सदैव चिंतन चलता है कि इस टीका में सिद्धक्षेत्र पावापुरी-राजगृही-गुणावां-सम्मेदशिखर आदि तीर्थक्षेत्रों के पवित्र परमाणु मेरी शब्दवर्गणा को निश्चित रूप से पवित्र करते ही करते हैं। अर्थात् उन पवित्र परमाणुओं से इस टीका लेखन की पवित्रता वृद्धिंगत हो जाती है।

यह सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र शाश्वत तीर्थ है। यहाँ से वर्तमान हुण्डावसर्पिणी काल में बीस तीर्थंकरों ने निर्वाण प्राप्त किया है तथा करोड़ों-करोड़ों महामुनीश्वरों ने निर्वाण को प्राप्त किया है। इस तीर्थ की वंदना कोटि-कोटि उपवासों का फल प्रदान करती है। वहाँ सम्मेदशिखर तीर्थ पर ऋषभदेव जन्मजयंती के दिन चैत्र कृष्णा नवमी को मेरी प्रेरणा से ऋषभदेव मंदिर का शिलान्यास हुआ।

पुनः उस तीर्थक्षेत्र से वापस आते हुए गुणावां, पावापुरी क्षेत्र की वंदना करके चैत्र शुक्ला अष्टमी को कुण्डलपुर में प्रवेश किया। वहीं पर महावीर जयंती का महोत्सव करवाकर पुनः कुण्डलपुर में भगवान् महावीर की गर्भकल्याणक तिथि में ही आषाढ़ शुक्ला षष्ठी को गर्भकल्याणक करवाकर नवग्रहशांति जिनबिम्बों की नौ तीर्थंकर प्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा मध्यमरूप में करवाई। आषाढ़ शुक्ला षष्ठी से प्रारंभ होकर यह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आषाढ़ शुक्ला दशमी पाँच दिन तक सम्पन्न हुई।

पुनश्च आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को कुण्डलपुर क्षेत्र में वर्षायोग स्थापित करके श्रावण कृष्णा प्रतिपदा तिथि को राजगृही जाकर विपुलाचल पर्वत के ऊपर भगवान् महावीर देशना जयंती सम्पन्न कराई अर्थात् वीरशासन जयंती नाम के उस पवित्र दिवस के उपलक्ष्य में राजगृही तीर्थ के विपुलाचल पर्वत पर निर्मित समवसरण में विराजमान भगवान महावीर की चतुर्मुखी प्रतिमाओं का १००८ कलशों से मस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न हुआ।

---

१. वी.नि.सं. २५२९, चैत्र कृ. ५, दि. २२-३-२००३ को चोपड़ाकुंड पर बैठकर टीका लिखी है।

अनंतर पार्श्वनाथनिर्वाणकल्याणकदिवसे पावापुरीसिद्धक्षेत्रे अयं ग्रन्थः पूर्णीकृतः।

अस्मिन् सूत्रसंख्या त्रिनवत्यधिकपञ्चशतानि, पृष्ठाः द्वादशोत्तरद्विशतानि च सन्ति।

भगवान् पार्श्वनाथः अद्यतनात् वीरनिर्वाणसंवत्सरत्रिंशदधिकपंचविंशतिशततमात् अशीत्यधिक-सप्तविंशतिशतवर्षाणि पूर्वं मोक्षमवाप सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रात् तस्मै भगवते तत्क्षेत्राय च नमो नमः।

अनंतरं ज्येष्ठकृष्णामावस्यायां पावापुरीतीर्थे वयं आगच्छामः। भारतदेशस्य राष्ट्रपतिमहामहिम-डॉ. ए.पी.जे. अब्दुलकलाममहामनाः आगत्य जैनसाध्वीनां मम च आशीर्वादं गृहीत्वा पावापुर्यां श्रीमहावीरस्वामिचरणवंदनां कुर्वन् महद् हर्षं व्यक्तमकरोत्।

भगवन्महतिमहावीरस्वामिनां शासने श्रीगौतमस्वामिप्रभृतिगणधराः, तदनंतरं अनेके आचार्याः बभूवुः। अस्मिन् दिगम्बरजैनशासने मूलसंघे श्री कुंदकुंदाम्नाये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती-श्रीशांतिसागरमहामुनीन्द्रो बभूव। तस्य प्रथमशिष्यः प्रथम एव पट्टाचार्यः श्रीवीरसागरमहामुनिः। तस्य गुरुदेवस्य करकमलाभ्यां आर्यिकादीक्षामादाय अहं गणिनी आर्यिका ज्ञानमती नाम्ना प्रसिद्धास्मि।

मम संघस्थ-प्रज्ञाश्रमणी-आर्यिकाचन्दनामती-जम्बूद्वीपपीठाधीश क्षुल्लकश्रीमोतीसागर-क्षुल्लिका-श्रद्धामती-कर्मयोगी-ब्रह्मचारिरवीन्द्रकुमारजैन (जम्बूद्वीप-अध्यक्ष)-ब्रह्मचारिणी कुमारी बीना कु. आस्था-कु. सारिका-कु. इंदु-कु. चन्द्रिका-कु. अलका-कु. प्रीति-कु. स्वाति-इत्यादिसंघस्थव्रतिगणानामनुकूलत्वमपि मम लेखनकार्ये निमित्तमस्ति।

अनंतर पार्श्वनाथ निर्वाणकल्याणक के दिन श्रावण शुक्ला सप्तमी को पावापुरी सिद्धक्षेत्र में यह ग्रंथ मैंने लिखकर पूर्ण किया।

इसमें सूत्र संख्या ५९३ है और मेरे हस्तलिखित पृष्ठ २१२ हैं।

भगवान पार्श्वनाथ ने आज के वीर निर्वाण संवत्सर २५३० से २७८० वर्ष पूर्व सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र से मोक्ष प्राप्त किया था, उन तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान् को एवं उनके निर्वाणतीर्थ को मेरा बारम्बार नमस्कार है।

अनन्तर अगले वर्ष सन् २००४ में ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को हम लोग पावापुरी तीर्थ पर आये। वहाँ भारत देश के राष्ट्रपति महामहिम डॉ. ए.पी. जे. अब्दुल कलाम महोदय ने आकर उपस्थित जैन साध्वियों का एवं मेरा आशीर्वाद ग्रहण करके श्री महावीर स्वामी के चरणों की वंदना करके अपने वक्तव्य के माध्यम से अतीव हर्ष व्यक्त किया।

भगवन् महति महावीर स्वामी के शासन में श्री गौतम स्वामी आदि ११ गणधर हुए, तदनन्तर अनेक आचार्य हुए हैं। इस दिगम्बर जैन शासन में मूलसंघ के कुन्दकुन्द आम्नाय सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण में बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महामुनीन्द्र हुए हैं। उनके प्रथम शिष्य एवं प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर महामुनि थे, जिनके करकमलों से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर मैं गणिनी आर्यिका ज्ञानमती नाम से प्रसिद्ध हुई हूँ।

मेरे संघ में स्थित प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती, जम्बूद्वीप के पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर, क्षुल्लिका श्रद्धामती एवं कर्मयोगी ब्रह्मचारी रवीन्द्र कुमार जैन (जम्बूद्वीप के अध्यक्ष), ब्रह्मचारिणी कुमारी बीना, कु. आस्था, कु. सारिका, कु. इन्दु, कु. चन्द्रिका, कु. अलका, कु. प्रीति, कु. स्वाति इत्यादि संघस्थ व्रतियों की अनुकूलता भी मेरे लेखनकार्य में निमित्त है।

संप्रति भारतदेशस्य राष्ट्रपति-महामहिम-डॉ. ए.पी.जे. अब्दुलकलाम (शाकाहारी)-प्रधानमंत्री-अटलबिहारीवाजपेयी-महानुभावाः बिहारप्रान्तस्य राज्यपाल-महामहिम-एम. रामाजोयिस-मुख्यमंत्री-श्रीमती-रावड़ीदेव्यः इमे गणतंत्रशासनं रक्षन्ति।

अस्याः टीकायाः सहयोगिनो ग्रन्थाः—षट्खण्डागमग्रन्थ-प्रथम-सप्तम-एकादशम-कषायप्राभृत-जयधवलाटीका-तिलोयपण्णत्ति-प्रतिष्ठातिलक-उत्तरपुराण-हरिवंशपुराण-निर्वाणभक्ति इत्यादयः सन्ति।

महावीरस्य निर्वाण-भूमिः पावापुरी भुवि।
प्रसिद्धास्तामहं वन्दे, निर्वाणसौख्यलब्धये।।१।।
गौतमस्वामिकैवल्य-भूमिं चापि नमाम्यहम्।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं, स्थेयात् सर्वत्र भूतले।।२।।
आचन्द्रतारकं नंद्यात्, अयं ग्रन्थो महीतले।
गणिनीज्ञानमत्येयं, टीकापि नः श्रियं दिशेत्।।३।।

।। इति भद्रं भूयात् ।।

इस समय भारत देश के राष्ट्रपति महामहिम डॉ. ए.पी. जे. अब्दुल कलाम (मुस्लिम होते हुए भी शाकाहारी हैं) एवं अटल बिहारी वाजपेयी महानुभाव प्रधानमंत्री हैं। बिहार प्रान्त के राज्यपाल महामहिम एम. रामाजोयिस, मुख्यमंत्री श्रीमती राबड़ी देवी हैं, ये सभी राजनेता भारतदेश के गणतंत्र शासन की रक्षा कर रहे हैं।

इस टीका के लेखन में सहयोगी ग्रंथों के नाम इस प्रकार है-

१. षट्खण्डागम ग्रंथ (प्रथम), २. सप्तम ग्रंथ, ३. ग्यारहवाँ ग्रंथ ४. कषायप्राभृत (जयधवला टीका), ५. तिलोयपण्णत्ति, ६. प्रतिष्ठातिलक, ७. उत्तरपुराण, ८. हरिवंशपुराण, ९. निर्वाणभक्ति इत्यादि।

श्लोकार्थ— भगवान महावीर की निर्वाणभूमि पावापुरी इस धरती पर पावन तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है, निर्वाण सौख्य की प्राप्ति हेतु मैं उस सिद्धभूमि को वन्दन करती हूँ।।१।।

यह पावापुरी तीर्थ श्री गौतम गणधर स्वामी की केवलज्ञान भूमि के नाम से भी जानी जाती है अतः कैवल्यभूमि के रूप में भी उसे मेरा नमन है। इस तीर्थ की महिमा इस पृथ्वी तल पर सदैव फैलती रहे, यही मंगल भावना है।।२।।

जब तक इस संसार में चन्द्रमा और ताराओं का प्रकाश रहे, तब तक यह ग्रंथ भी सबको ज्ञानामृत का आनंद प्रदान करता रहे तथा मुझ ज्ञानमती गणिनी आर्यिका के द्वारा रचित इस ग्रंथ की सिद्धान्तचिंतामणि टीका भी हम सभी भव्यात्माओं के लिए कल्याण का मार्ग प्रदर्शित करती रहे, यही भगवान् जिनेन्द्र से प्रार्थना है।।३।।

।।इति भद्रं भूयात्।।

हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जिनशासन में अनुयोग चार में बद्ध कही जिनवाणी है।
जो द्वादशांग का अंश बताने वाली प्रभु की वाणी है।।
शिवपथ को दरशाने वाली यह जन जन की कल्याणी है।
इस जिनवाणी को नमन करूँ यह शिवसुख देने वाली है।।१।।

महावीर प्रभू की दिव्यध्वनि गौतम गणधर ने ग्रहण किया।
फिर परम्परा से आचार्यों ने उस श्रुत का अध्ययन किया।।
उस श्रुत को जब श्री पुष्पदंत गुरु भूतबली ने लिख डाला।
वह श्रुत षट्खण्डागम बनकर दे रहा ज्ञान का उजियाला।।२।।

षट्खण्डागम यह सूत्र ग्रंथ कहलाता है जिनशासन में।
है द्वादशांग का सार भरा छह खण्डरूप इस आगम में।।
इसके सूत्रों पर आचार्यों ने टीका कई बनाई हैं।
सब अनुपलब्ध हो गईं मात्र धवला टीका बच पाई है।।३।।

उस धवला टीका का हिन्दी अनुवाद किया विद्वानों ने।
प्रेरणा मिली श्री शांति सिंधु की प्रथम सूरि जो इस युग के।।
सोलह ग्रंथों में हुआ प्रकाशित सबका ज्ञान प्रदाता है।
इनके स्वाध्याय से भव्यात्मा सिद्धान्त ज्ञान पा जाता है।।४।।

श्री वीरसेन आचार्य रचित धवला टीका अध्ययन किया।
गणिनी श्री ज्ञानमती की छत्रच्छाया में कुछ मनन किया।।
कुछ पुण्ययोग आया सबका जो नूतन टीका लिखी गई।
गणिनी माता श्री ज्ञानमती जी के द्वारा जो रची गई।।५।।

सिद्धान्त सुचिन्तामणि नामक यह संस्कृत टीका अनुपम है।
पूरी टीका हो गई प्रकाशित अब यह हिन्दी का क्रम है।।
मातुश्री की प्रेरणा मिली मैंने हिन्दी अनुवाद किया।
उस क्रम में इस ग्यारहवें ग्रंथ का पूर्ण आज अनुवाद किया।।६।।

श्री वीर संवत् पच्चिस सौ अड़तिस कार्तिक शुक्ल चतुर्थी है।
सन् दो हजार ग्यारह में तीस अक्टूबर शनीवार दिन है।।
अपनी गुरु माता के करकमलों में कृति किया समर्पित है।
मेरा पूरा जीवन ही जिनके पावन चरणों में अर्पित है।।७।।

मेरा परिचय तो केवल इनकी शिष्या कहलाने से है।
सौभाग्य द्वितीय कहो तो इनकी लघुभगिनी बनने से है।।

श्री छोटेलाल पिता मोहिनि माँ ने मुझको भी जन्म दिया।
सन् उन्निस सौ अट्ठावन ज्येष्ठ अमावस को था जन्म हुआ।।८।।

माधुरी नाम पाकर मैंने माधुर्य गुणों को नहिं पाया।
गुरु का आशीर्वाद पाकर इस गुण को मैंने अपनाया।।
श्री ज्ञानमती माता का सर्वप्रथम दर्शन जब पाया था।
थी ग्यारह वर्ष उम्र मेरी जीवन को धन्य बनाया था।।९।।

सन् उन्हत्तर में पच्चिस अक्टूबर को शरदपूर्णिमा थी।
मुझ नन्ही सी कन्या को माँ ने ब्रह्मचर्य दीक्षा दी थी।।
दो वर्ष का व्रत लेकर आगे आजन्म उसे स्वीकार लिया।
सन् उन्निस सौ इकहत्तर भादों सुदि दशमी व्रत धार लिया।।१०।।

इस तरह आज ब्यालिस वर्षों को गुरुचरणों में बिताया है।
हर पल को सार्थक कर जीने का मंत्र इन्हीं से पाया है।।
तेरह अगस्त सन् उन्निस सौ नवासी श्रावण सुदि ग्यारस थी।
हस्तिनापुरी तीरथ पर जब माधुरी बनी चन्दनामती।।११।।

फिर तो चौबिस घंटे गुरु के आशीष से शीश पवित्र हुआ।
ज्ञानाराधना का काल मेरा चारित्र से और पवित्र हुआ।।
मेरे जैसा सौभाग्य सभी को मिले भावना है मेरी।
अन्तिम समाधि की ज्योति जले बस यही कामना है मेरी।।१२।।

श्री शांतिसिंधु के शिष्य वीरसागर की शिष्या ज्ञानमती।
उस उपवन की इक कली बनी आर्यिका अज्ञ चंदनामती।।
पाऊँ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग यह गुरुओं का आशीष मिले।
श्रुतज्ञान वृद्धि होकर इक दिन कैवल्यज्ञान की ज्योति जले।।१३।।

इस युग की यह अनमोल निधी टीका सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
युग युग तक अमर रहे टीका गणिनी माँ के इन ग्रंथों की।।
सूरज चंदा तारे जब तक जग में प्रकाश फैलाएंगे।
सिद्धान्तसुचिन्तामणि टीका की गौरव गाथा गाएंगे।।१४।।

-दोहा-

श्री जिनेन्द्र अरु गुरुकृपा, मिले मुझे दिनरात।
अग्रिम ग्रंथों का करूँ, शीघ्र सरल अनुवाद।।१५।।

षट्खण्डागम पुस्तक-11 – संस्कृत टीका लेखन की तिथि, स्थान एवं दिनाँक

क्र.	तिथि	वीर संवत्	ग्राम (स्थान)	दिनाँक
प्रारंभ–				
1.	वैशाख कृ. सप्तमी	2528	शौरीपुर, बटेश्वर	3-5-2002
2.	वैशाख कृ. नवमी	2528	नगला-रामचंद्र स्कूल	5-5-2002
3.	वैशाख कृ. दशमी	2528	नानेमऊ	6-5-2002
4.	वैशाख कृ. एकादशी	2528	सिरसागंज	7-5-2002
5.	वैशाख कृ. एकादशी	2528	सिरसागंज (सभा में)	8-5-2002
6.	वैशाख कृ. द्वादशी	2528	सिरसागंज	9-5-2002
7.	वैशाख कृ. त्रयोदशी	2528	उखरेण्ड (सिरसागंज)	10-5-2002
8.	वैशाख शु. एकम्	2528	पंचशील इण्टर कालेज	13-5-2002
9.	वैशाख शु. दूज	2528	इटावा (सभा में)	14-5-2002
10.	वैशाख शु. तीज	2528	इटावा	15-5-2002
11.	वैशाख शु. चतुर्थी	2528	इटावा (लालपुरा)	16-5-2002
12.	वैशाख शु. पंचमी	2528	इटावा	17-5-2002
13.	वैशाख शु. दशमी	2528	महेवा-इण्टर कालेज	21-5-2002
14.	वैशाख शु. एकादशी	2528	जनता इंटर कालेज, अजीतमल ग्राम	22-5-2002
15.	वैशाख शु. द्वादशी	2528	मिहौली-बाल विद्यालय	23-5-2002
16.	वैशाख शु. त्रयोदशी	2528	महटोली-विद्यालय	24-5-2002
17.	ज्येष्ठ कृ. एकम्	2528	मुइया, संत वै. विद्यालय	27-5-2002
18.	ज्येष्ठ कृ. दूज	2528	परास, घाटमपुर से आगे	28-5-2002
19.	ज्येष्ठ कृ. तीज	2528	जहानाबाद (फतेहपुर)	29-5-2002
20.	ज्येष्ठ कृ. षष्ठी	2528	मलवां	31-5-2002
21.	ज्येष्ठ कृ. षष्ठी	2528	फतेहपुर	1-6-2002
22.	ज्येष्ठ कृ. सप्तमी	2528	विलंदा	2-6-2002
23.	ज्येष्ठ कृ. नवमी	2528	बुधवन-इंटर कॉलेज	4-6-2002
24.	ज्येष्ठ कृ. दशमी	2528	सैनी-गुरुकुल	5-6-2002
25.	ज्येष्ठ शु. एकम्	2528	इलाहाबाद	11-6-2002
26.	ज्येष्ठ शु. सप्तमी से आषाढ़ शु. सप्तमी तक	2528	तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली-प्रयाग	17-6-2002 से 16-7-2002
27.	भाद्रपद कृ. तीज से भाद्रपद कृ. नवमी तक	2528	इलाहाबाद	26-8-2002 से 1-9-2002
28.	आश्विन कृ. दूज से आश्विन शु. एकम् तक	2528	तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली-प्रयाग	23-9-2002 से 7-10-2002

क्र.	तिथि	वीर संवत्	ग्राम (स्थान)	दिनाँक
29.	मार्गशीर्ष कृ. दूज	2529	भेलूपुर-वाराणसी (भगवान पार्श्वनाथ जन्मभूमि)	22-11-2002
30.	मार्गशीर्ष कृ. तीज	2529	मैदागिन-वाराणसी	23-11-2002
31.	मार्गशीर्ष कृ. पंचमी	2529	सारनाथ-सिंहपुरी	25-11-2002
32.	मार्गशीर्ष कृ. सप्तमी	2529	चन्द्रपुरी-काशी	27-11-2002
33.	मार्गशीर्ष कृ. दशमी	2529	सैदपुर	29-11-2002
34.	मार्गशीर्ष कृ. एकादशी	2529	दौपुर	30-11-2002
35.	मार्गशीर्ष कृ. द्वादशी	2529	प्रीति कन्या इंटर कॉलेज	1-12-2002
36.	मार्गशीर्ष शु. एकम्	2529	चिलहरी-विद्यालय	5-12-2002
37.	मार्गशीर्ष शु. दूज	2529	देवकुली-स्कूल (जिला-बक्सर)	6-12-2002
38.	मार्गशीर्ष शु. चतुर्थी	2529	शाहपुर पट्टी (भोजपुर)	7-12-2002
39.	मार्गशीर्ष शु. षष्ठी	2529	मसाढ़ (आरा)	9-12-2002
40.	मार्गशीर्ष शु. सप्तमी	2529	आरा (प्रभात अग्रवाल का घर)	10-12-2002
41.	मार्गशीर्ष शु. सप्तमी	2529	आरा (सभा में)	10-12-2002
42.	मार्गशीर्ष शु. ग्यारस	2529	आरा (सभा में)	15-12-2002
43.	मार्गशीर्ष शु. तेरस	2529	कुलहरिया-विद्यालय	17-12-2002
44.	पौष कृ. एकम्	2529	पटना (मीठापुर)	20-12-2002
45.	पौष कृ. दूज	2529	पटना-मीठापुर	21-12-2002
46.	पौष कृ. दूज	2529	मुरादपुर-पटना	21-12-2002
47.	पौष कृ. तीज	2529	मुरादपुर-पटना	22-12-2002
48.	पौष कृ. चौथ	2529	मुरादपुर-पटना	23-12-2002
49.	पौष कृ. पंचमी	2529	पटना-शहर	24-12-2002
50.	पौष कृ. षष्ठी	2529	फुलवरिया (पटना के निकट)	25-12-2002
51.	पौष कृ. सप्तमी	2529	वेणीपुर	26-12-2002
52.	फाल्गुन कृ. चतुर्थी	2529	कुण्डलपुर (पुराना मंदिर)	20-2-2003
53.	फाल्गुन कृ. पंचमी	2529	सिलाव-विद्यालय	21-2-2003
54.	फाल्गुन कृ. दशमी	2529	घोड़ाकटोरा विद्यालय	25-2-2003
55.	फाल्गुन कृ. एकादशी	2529	गुणावां, बिहार	26-2-2003
56.	फाल्गुन कृ. एकादशी	2529	नवादा, बिहार	26-2-2003
57.	फाल्गुन कृ. द्वादशी	2529	दुधली-विद्यालय	27-2-2003
58.	फाल्गुन कृ. त्रयोदशी	2529	रजौली-इण्टर कालेज	28-2-2003
59.	फाल्गुन शु. एकम्	2529	झुमरीतलैया (झारखंड)	4-3-2003
60.	फाल्गुन शु. दूज	2529	हीरोडीह	5-3-2003
61.	फाल्गुन शु. चतुर्थी	2529	जामू-सरिया	7-3-2003

क्र.	तिथि	वीर संवत्	ग्राम (स्थान)	दिनाँक
62.	फाल्गुन शु. पंचमी	2529	सरिया के निकट	8-3-2003
63.	फाल्गुन शु. पंचमी	2529	सरिया	8-3-2003
64.	फाल्गुन शु. षष्ठी	2529	दोन्दलो (सरिया)	9-3-2003
65.	फाल्गुन शु. सप्तमी	2529	औरा विद्यालय	10-3-2003
66.	चैत्र कृ. पंचमी	2529	चोपड़ा कुण्ड-सम्मेदशिखर जी	22-3-2003
67.	चैत्र कृ. त्रयोदशी	2529	ईसरी	30-3-2003
68.	चैत्र शुक्ला एकम्	2529	वेलकपी-स्कूल	2-4-2003
69.	चैत्र शुक्ला दूज	2529	पंतमाधव स्कूल	3-4-2003
70.	चैत्र शु. चतुर्थी	2529	झुमरीतलैया-जैन भवन	5-4-2003
71.	वैशाख शु. तीज (अक्षय तृतीया)	2529	कुण्डलपुर-नंद्यावर्त महल	4-5-2003
72.	वैशाख शु. चतुर्थी	2529	कुण्डलपुर-नंद्यावर्त महल	5-5-2003
73.	वैशाख शु. पंचमी	2529	पावापुरी	6-5-2003
74.	वैशाख शु. षष्ठी से आषाढ़ कृ. षष्ठी तक	2529	कुण्डलपुर-नंद्यावर्त महल	7-5-2003 से 20-6-2003 तक
75.	श्रावण कृ. एकम् (वीर शासन जयंती)	2529	राजगृही	14-7-2003
76.	श्रावण कृ. षष्ठी से श्रावण कृ. दशमी तक	2529	कुण्डलपुर-नंद्यावर्त महल	19-7-2003 से 23-7-2003

समापन–

77.	श्रावण शु. सप्तमी	2529	पावापुरी (बिहार)	4-8-2003

वेदनाकालविधानानुयोगद्वारम्

(षोडशभेदान्तर्गतषष्ठानुयोगद्वारम्)

प्रथमो महाधिकारः

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१.	वेयणकालविहाणे त्ति। तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति।	६
२.	पदमीमांसा-सामित्तमप्पाबहुए त्ति।	८
३.	पदमीमांसाए णाणावरणीयवेयणा कालदो किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किमजहण्णा?।	९
४.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णा वा अजहण्णा वा।	१०
५.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	१३
६.	सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे।	१३
७.	सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा कालदो उक्कस्सिया कस्स ?।	१४
८.	अण्णदरस्स पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छाइट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स कम्मभूमियस्स अकम्मभूमियस्स वा कम्मभूमिपडिभागस्स वा संखेज्जवासाउअस्स वा असंखेज्जवासाउअस्स वा देवस्स वा। मणुस्सस्स वा तिरिक्खस्स वा णेरइयस्स वा इत्थिवेदस्स वा पुरिसवेदस्स वा णउंसयवेदस्स वा जलचरस्स वा थलचरस्स वा खगचरस्स वा सागार-जागार-सुदोवजोगजुत्तस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उक्कस्सट्ठिदिसंकिलेसे वट्टमाणस्स, अधवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स तस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो उक्कस्सा।	१४
९.	तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।	१८
१०.	एवं छण्णं कम्माणं।	१९
११.	सामित्तेण उक्कस्सपदे आउअवेयणा कालदो उक्कस्सिया कस्स ?।	१९
१२.	अण्णदरस्स मणुसस्स वा पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स वा सण्णिस्स सम्माइट्ठिस्स वा (मिच्छाइट्ठिस्स वा) सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स कम्मभूमियस्स वा कम्मभूमिपडिभागस्स वा संखेज्जवासाउअस्स इत्थिवेदस्स वा पुरिसवेदस्स वा णउंसयवेदस्स वा जलचरस्स वा थलचरस्स वा सागार-जागार-तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स वा (तप्पाओग्गविसुद्धस्स वा) उक्कस्सियाए आबाधाए जस्स तं देव-णिरयाउअं पढमसमए बंधंतस्स आउअवेयणा कालदो उक्कस्सा।	२०
१३.	तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।	२२
१४.	सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेदणा कालदो जहण्णिया कस्स ?।	२४
१५.	अण्णदरस्स चरिमसमयछदुमत्थस्स तस्स णाणावरणीयवेदणा कालदो जहण्णा।	२५
१६.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	२६
१७.	एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं।	२७
१८.	सामित्तेण जहण्णपदे वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णिया कस्स ?।	२७
१९.	अण्णदरस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स तस्स वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णा।	२७
२०.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	२८
२१.	एवं आउअ-णामगोदाणं।	२९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२२.	सामित्तेण जहण्णपदे मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णिया कस्स?।	३०
२३.	अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमयसकसाइयस्स मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णा।	३०
२४.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	३०
२५.	अप्पाबहुए त्ति। तत्थ इमाणि तिण्णि अणुओगद्दाराणि — जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे।	३१
२६.	जहण्णपदेण अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणाओ कालदो जहण्णियाओ तुल्लाओ।	३२
२७.	उक्कस्सपदे सव्वत्थोवा आउअवेयणा कालदो उक्कस्सिया।	३२
२८.	णामा-गोदवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ।	३२
२९.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइयवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।	३३
३०.	मोहणीयस्स वेयणा कालदो उक्कस्सिया संखेज्जगुणा।	३३
३१.	जहण्णुक्कस्सपदे अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणाओ कालदो जहण्णियाओ तुल्लाओ थोवाओ।	३३
३२.	आउअवेयणा कालदो उक्कस्सिया असंखेज्जगुणा।	३४
३३.	णामागोदवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ (असंखेज्जगुणाओ)।	३४
३४.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइयवेयणाओ कालदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।	३४
३५.	मोहणीयवेयणा कालदो उक्कस्सिया संखेज्जगुणा।	३४

अथ प्रथमाचूलिका

(वेदनाकालविधानानुयोगद्वारान्तर्गता)

द्वितीयो महाधिकारः

(अन्तर्गत-प्रथमोऽधिकारः)

३६.	एत्तो मूलपयडिट्ठिदिबंधे पुव्वं गमणिज्जे तत्थ इमाणि चत्तारि अणुयोगद्दाराणि-ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणा णिसेयपरूवणा आबाधाकंडय परूवणा अप्पाबहुए त्ति।	३७
३७.	ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणदाए सव्वत्थोवा सुहुमेइंदिय अपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि।	३९
३८.	बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	३९
३९.	सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	३९
४०.	बादरेइंदियपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	३९
४१.	बीइंदियअपज्जत्तयट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	४०
४२.	तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	४१
४३.	तीइंदियपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	४१
४४.	तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	४१
४५.	चतुरिंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	४१
४६.	तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	४१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
४७.	असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	४१
४८.	तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	४१
४९.	सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	४२
५०.	तस्सेव पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	४२
५१.	सव्वत्थोवा सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेसविसोहिट्ठाणाणि।	४३
५२.	बादरेइंदिय अपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४५
५३.	सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४५
५४.	बादरेइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४५
५५.	बीइंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४५
५६.	बीइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४६
५७.	तीइंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४६
५८.	तीइंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४६
५९.	चउरिंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४६
६०.	चउरिंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४६
६१.	असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४६
६२.	असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४६
६३.	सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४६
६४.	सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स संकिलेस-विसोहिट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	४६
६५.	सव्वत्थोवो संजदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो।	४७
६६.	बादरेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।	५०
६७.	सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५१
६८.	बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५१
६९.	सुहुमेइंदिय अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५१
७०.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५१
७१.	बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५१
७२.	सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५२
७३.	बादरेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५२
७४.	बीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५२
७५.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५२
७६.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५२
७७.	तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५३
७८.	तीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५३
७९.	तीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५३
८०.	तस्सेव उक्कस्सट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
८१.	तीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५३
८२.	चउरिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५४
८३.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५४
८४.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५४
८५.	तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५४
८६.	असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५४
८७.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५५
८८.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५५
८९.	तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	५५
९०.	संजदस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५५
९१.	संजदासंजदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५५
९२.	तस्सेव उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५६
९३.	असंजदसम्मादिट्ठिपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५६
९४.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५६
९५.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५६
९६.	तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५७
९७.	सण्णिमिच्छाइट्ठिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५७
९८.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५७
९९.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५८
१००.	तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	५८
१०१.	णिसेयपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अणुयोगद्दाराणि अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा।	५८
१०२.	अणंतरोवणिधाए पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तयाणं णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइयाणं तिण्णिवाससहस्साणि आबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण तीसं सागरोवमकोडीयो त्ति।	५९
१०३.	पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तयाणं मोहणीयस्स सत्तवाससहस्साणि आबाहं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुअं, जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडि त्ति।	६२
१०४.	पंचिंदियाणं सण्णीणं सम्मादिट्ठीणं वा मिच्छादिट्ठीणं वा पज्जत्तयाणमाउअस्स पुव्वकोडितिभागमाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण तेतीससागरोवमाणि त्ति।	६५
१०५.	पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तयाणं णामागोदाणं बेवाससहस्साणि आबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं	६६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण वीसं सागरोवमकोडीयो त्ति।	
१०६.	पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणमपज्जत्तयाणं सत्तण्णं कम्माणमाउव-वज्जाणमंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण अंतोकोडाकोडीयो त्ति।	६७
१०७.	पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणं चउरिंदिय-तीइंदिय-बीइंदियाणं बादरेइंदिय-अपज्जत्तयाणं सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणमाउअस्स अंतो-मुहुत्तमाबाधं मोत्तूण जाव पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुअं, जं बिदिय-समए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण पुव्वकोडाकोडीयो त्ति।	६८
१०८.	पंचिंदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं बादर-एइंदियपज्जत्तयाणं सत्तण्णं कम्माणं आउअवज्जाणं अंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुअं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण सागरोवमसहस्सस्स सागरोवम-सदस्स सागरोवमपण्णासाए सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमस्स तिण्णि-सत्तभागा सत्त-सत्तभागा बे-सत्तभागा पडिपुण्णा त्ति।	६९
१०९.	पंचिंदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं बादर-एइंदियपज्ज-त्तयाणमाउअस्स पुव्वकोडित्तिभागं बेमासं सोलसरादिंदियाणि सादिरेयाणि चत्तारिवासाणि सत्तवाससहस्साणि सादिरेयाणि आबाहं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो पुव्वकोडि त्ति।	७०
११०.	पंचिंदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं बादरे-इंदियअपज्जत्तयाणं सुहुमे-इंदियपज्जत्तअपज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणमाउअवज्जाणमंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं, जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं, एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण सागरोवमसदस्स सागरोवमपण्णासाए सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमस्स तिण्णिसत्तभागा, सत्त-सत्तभागा, बे-सत्तभागा, पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया त्ति।	७२
१११.	परंपरोवणिधाए पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणं पज्जत्तयाणं अट्ठण्हं कम्माणं जं पढमसमए पदेसग्गं तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागं गंतूण दुगुणहीणा, एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सिया ट्ठिदी त्ति।	७३
११२.	एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि।	७४
११३.	णाणापदेसगुणट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदि-भागो।	७४
११४.	णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि।	७५
११५.	एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।	७५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
११६.	पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणमपज्जत्तयाणं चउरिंदिय-तीइंदिय-बीइंदिय-एइंदिय-बादर-सुहुमपज्जत्तापज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणमाउववज्जाणं जं पढमसमए पदेसग्गं तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागं गंतूण दुगुणहीणा, एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।	७६ ७६ ७६
११७.	एयपदेस गुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि।	७६
११८.	णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदि भागो।	७६
११९.	णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि।	७६
१२०.	एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।	७६
१२१.	आबाधाकंडयपरूवणदाए।	७८
१२२.	पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं एइंदियबादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणमाउववज्जाण-मुक्कस्सियादो ट्ठिदीदो समए समए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-मोसरिदूण एयमाबाधाकंडयं करेदि। एस कमो जाव जहण्णिया ट्ठिदि त्ति।	७९
१२३.	अप्पाबहुए त्ति।	८१
१२४.	पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छाइट्ठीणं पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्तण्हं कम्माण-माउव-वज्जाणं सव्वत्थोवा जहण्णिया आबाधा।	८१
१२५.	आबाहाट्ठाणाणि आबाहाकंडयाणि च दो वि तुल्लाणि संखेज्ज-गुणाणि।	८१
१२६.	उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया।	८२
१२७.	णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि।।	८२
१२८.	एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।	८२
१२९.	एयमाबाहाकंडयमसंखेज्जगुणं।	८३
१३०.	जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।	८३
१३१.	ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	८३
१३२.	उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	८३
१३३.	पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणं पज्जत्तयाणमाउअस्सं सव्वत्थोवा जहण्णिया आबाहा।	८४
१३४.	जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	८४
१३५.	आबाधाट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	८४
१३६.	उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया।	८४
१३७.	णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि।	८५
१३८.	एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।	८५
१३९.	ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	८५
१४०.	उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	८५
१४१.	पंचिंदियाणं सण्णीणमसण्णीणपज्जयाणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं एइंदियबादर-सुहुमपज्जत्तापज्जत्तयाणमाउअस्स सव्वत्थोवा जहण्णिया आबाहा।	८६
१४२.	जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	८६
१४३.	आबाहाट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	८६
१४४.	उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया।	८६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१४५.	ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	८७
१४६.	उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	८७
१४७.	पंचिंदियाणमसण्णीणं चउरिंदियाणं तीइंदियाणं बीइंदियाणं पज्जत्त-अपज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणं आउववज्जाणमाबाहाट्ठाणाणि आबाहाकंडयाणि च दो वि तुल्लाणि थोवाणि।	८७
१४८.	जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा।	८७
१४९.	उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया।	८८
१५०.	णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि।	८८
१५१.	एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।	८८
१५२.	एयमाबाहाकंडयमसंखेज्जगुणं।	८८
१५३.	ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	८८
१५४.	जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	८९
१५५.	उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	८९
१५६.	एइंदियबादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तयाणं सत्तण्हं कम्माणं आउव-वज्जाण-माबाहाट्ठाणाणि आबाहाकंडयाणि च दो वि तुल्लाणि थोवाणि।	८९
१५७.	जहण्णिया आबाहा असंखेज्जगुणा।	८९
१५८.	उक्कस्सिया आबाहा विसेसाहिया।	८९
१५९.	णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि।	९०
१६०.	एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।	९०
१६१.	एयमाबाहाकंडयमसंखेज्जगुणं।	९०
१६२.	ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	९०
१६३.	जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।	९०
१६४.	उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	९०

द्वितीयाचूलिका

(वेदनाकालविधानानुयोगद्वारान्तर्गता)

द्वितीयोऽधिकारः

१६५.	ठिदिबंधज्झवसाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि तिण्णि अणुओगद्दाराणि जीवसमुदाहारो पयडिसमुदाहारो ट्ठिदिसमुदाहारो त्ति।	९४
१६६.	जीवसमुदाहारे त्ति जे ते णाणावरणीयस्स बंधा जीवा ते दुविहा-सादबंधा चेव असादबंधा चेव।	९८
१६७.	तत्थ जे ते सादबंधा जीवा ते तिविहा — चउट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा बिट्ठाणबंधा।	९९
१६८.	असादबंधा जीवा तिविहा — बिट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा चउट्ठाणबंधा त्ति।	१००
१६९.	सव्वविसुद्धा सादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा।	१००
१७०.	तिट्ठाणबंधा जीवा संकिलिट्ठदरा।	१००
१७१.	बिट्ठाणबंधा जीवा संकिलिट्ठदरा।	१००

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१७२.	सव्वविसुद्धा असादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा।	१०१
१७३.	तिट्ठाणबंधा जीवा संकिलिट्ठदरा।	१०१
१७४.	चउट्ठाणबंधा जीवा संकिलिट्ठदरा।	१०१
१७५.	सादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णियं ट्ठिदिं बंधंति।	१०२
१७६.	सादस्स तिट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स अजहण्णअणुक्कस्सियं ठिदिं बंधंति।	१०२
१७७.	सादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा सादस्स चेव उक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधंति।	१०३
१७८.	असादस्स बेट्ठाणबंधा जीवा सत्थाणेण णाणावरणीयस्स जहण्णियं ट्ठिदिं बंधंति।	१०४
१७९.	असादस्स तिट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स अजहण्ण अणुक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधंति।	१०४
१८०.	असादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा असादस्स चेव उक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधंति।	१०५
१८१.	तेसिं दुविहा सेडिपरूवणा अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा।	१०६
१८२.	अणंतरोवणिधाए सादस्स चउट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा जीवा असादस्स बिट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवा थोवा।	१०७
१८३.	बिदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाहिया।	१०८
१८४.	तदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाहिया।	१०८
१८५.	एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव सागरोवमसदपुधत्तं।	१०८
१८६.	तेण परं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव सागरोवमसदपुधत्तं।	१०९
१८७.	सादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा असादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवा थोवा।	१०९
१८८.	बिदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाहिया।	११०
१८९.	तदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाहिया।	११०
१९०.	एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव सागरोवमसदपुधत्तं।	११०
१९१.	तेण परं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव सादस्स असादस्स उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।	११०
१९२.	परंपरोवणिधाए सादस्स चउट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा जीवा असादस्स बिट्ठाणबंधा तिट्ठाणबंधा णाणा-वरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा।	१११
१९३.	एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव जवमज्झं।	११२
१९४.	तेण परं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणा।	११२
१९५.	एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव सागरोवमसदपुधत्तं।	११२
१९६.	सादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा असादस्स चउट्ठाणबंधा जीवा णाणा-वरणीयस्य जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा।	११३
१९७.	एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव सागरोवमसदपुधत्तं।	११३
१९८.	तेण परं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणा।	११३
१९९.	एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव सादस्स असादस्स उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।	११३
२००.	एकजीवदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जाणि पलिदोवमवग्ग-मूलाणि।	११३
२०१.	णाणाजीव-दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो।	११४
२०२.	णाणाजीव-दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि।	११४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२०३.	एगजीव-दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।	११४
२०४.	सादस्स असादस्स य बिट्ठाणियम्मि णियमा अणागारपाओग्गट्ठाणाणि।	११५
२०५.	सागारपाओग्गट्ठाणाणि सव्वत्थ।	११६
२०६.	सादस्स चउट्ठाणिय-जवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि थोवाणि।	११७
२०७.	उवरि संखेज्जगुणाणि।	११७
२०८.	सादस्स तिट्ठाणिय-जवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	११८
२०९.	उवरि संखेज्जगुणाणि।	११८
२१०.	सादस्स बिट्ठाणिय-जवमज्झस्स हेट्ठदो एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	११८
२११.	मिस्सयाणि संखेज्जगुणाणि।	११९
२१२.	सादस्स चेव बिट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि मिस्सयाणि संखेज्ज-गुणाणि।	११९
२१३.	असादस्स बिट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो एयंतसायारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	११९
२१४.	मिस्सयाणि संखेज्जगुणाणि।	१२०
२१५.	असादस्स चेव बिट्ठाणियजवमज्झस्सुवरि मिस्सयाणि संखेज्ज-गुणाणि।	१२०
२१६.	एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	१२०
२१७.	असादस्स तिट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	१२०
२१८.	उवरि संखेज्जगुणाणि।	१२१
२१९.	असादस्स चउट्ठाणियजवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	१२१
२२०.	सादस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।	१२१
२२१.	जट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	१२१
२२२.	असादस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	१२२
२२३.	जट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	१२२
२२४.	जत्तो उक्कस्सयं दाहं गच्छदि सा ट्ठिदी संखेज्जगुणा।	१२२
२२५.	अंतोकोडाकोडी संखेज्जगुणा।	१२२
२२६.	सादस्स बिट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	१२३
२२७.	सादस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	१२३
२२८.	जट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	१२३
२२९.	दाहट्ठिदी विसेसाहिआ।	१२३
२३०.	असादस्स चउट्ठाणिय-जवमज्झस्स उवरिमट्ठाणाणि विसेसाहियाणि।	१२४
२३१.	असादस्स उक्कस्सट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	१२४
२३२.	जट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।	१२४
२३३.	एदेण अट्ठपदेण सव्वत्थोवा सादस्स चउठ्ठाणबंधा जीवा।	१२५
२३४.	तिट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा।	१२५
२३५.	विट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा।	१२५
२३६.	असादस्स बिट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा।	१२५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२३७.	चउट्ठाणबंधा जीवा संखेज्जगुणा।	१२६
२३८.	तिट्ठाणबंधा जीवा विसेसाहिया।	१२६
२३९.	पयडिसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि दुबे अणुओगद्दाराणि पमाणाणुगमो अप्पाबहुए त्ति।	१२९
२४०.	पमाणाणुगमेण णाणावरणीयस्स असंखेज्जा लोगा ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि।	१२९
२४१.	एवं सत्तण्हं कम्माणं।	१३०
२४२.	अप्पाबहुए त्ति सव्वत्थोवा आउअस्स ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि।	१३०
२४३.	णामागोदाणं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्ज-गुणाणि।	१३०
२४४.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि चत्तारि वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि।	१३०
२४५.	मोहणीयस्य ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	१३०
२४६.	ट्ठिदिसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुओगद्दाराणि पगणणा अणुकट्ठी तिव्व-मंददा त्ति।	१३४
२४७.	पगणणाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।	१३४
२४८.	बिदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।	१३४
२४९.	तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।	१३४
२५०.	एवमसंखेज्जा लोगा असंखेज्जा लोगा जाव उक्कस्सट्ठिदि त्ति।	१३६
२५१.	एवं सत्तण्हं कम्माणं।	१३६
२५२.	तेसिं दुविधा सेडिपरूवणा अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा।	१३७
२५३.	अणंतरोवणिधाए णाणावरणीयस्य जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि थोवाणि।	१३८
२५४.	बिदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि।	१३८
२५५.	तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि।	१३९
२५६.	एवं विसेसाहियाणि विसेसाहियाणि जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।	१३९
२५७.	एवं छण्णं कम्माणं।	१३९
२५८.	आउअस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि थोवाणि।	१३९
२५९.	बिदिमाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाण ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	१४०
२६०.	तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	१४०
२६१.	एवमसंखेज्जगुणाणि असंखेज्जगुणाणि जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।	१४०
२६२.	पंरपरोवणिधाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागं गंतूण दुगुण-वड्ढिदा।	१४१
२६३.	एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।	१४१
२६४.	एवं ट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	१४१
२६५.	णाणाट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि अंगुलवग्गमूल-छेदणाणामसंखेज्जदिभागो।	१४१
२६६.	णाणाट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि।	१४२
२६७.	एयट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।	१४२
२६८.	एवं छण्णं कम्माणमाउववज्जाणं।	१४२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२६९.	अणुकट्ठीए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जाणि ट्ठिदि-बंधज्झ-वसाण-ट्ठाणाणि ताणि बिदियाए ट्ठिदीए बंधज्झवसाणट्ठाणाणि अपुव्वाणि।	१४६
२७०.	एवमपुव्वाणि अपुव्वाणि जाव उक्कस्सिया ठ्ठिदि त्ति।	१४८
२७१.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	१५०
२७२.	तिव्व-मंददाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जहण्णयं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणं सव्वमंदाणुभागं।	१५१
२७३.	तिस्से चेव उक्कस्समणंतगुणं।	१५१
२७४.	बिदियाए ट्ठिदीए जहण्णयं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणमणंतगुणं।	१५२
२७५.	तिस्से चेव उक्कस्समणंतगुणं।	१५२
२७६.	तदियाए ट्ठिदीए जहण्णयं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणमणंतगुणं।	१५२
२७७.	तिस्से चेव उक्कस्सयमणंतगुणं।	१५३
२७८.	एवमणंतगुणा जाव उक्कस्सट्ठिदि त्ति।	१५३
२७९.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	१५३

अथ वेदनाभावविधानानुयोगद्वारम्

(द्वितीयवेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-सप्तमवेदनाभावविधानानुयोगद्वारम्)

तृतीयो महाधिकारः

(अन्तर्गत-प्रथमोऽधिकारः)

१.	वेयणाभावविहाणे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति।	१६०
२.	पदमीमांसा सामित्तमप्पाबहुए।	१६२
३.	पदमीमांसाए णाणावरणीयवेयणा भावदो किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किमजहण्णा।	१६३
४.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णा अजहण्णा वा।	१६४
५.	एवं सत्तण्हं कम्माणं।	१६९
६.	सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे।	१७०
७.	सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया कस्स ?।	१७१
८.	अण्णदरेण पंचिंदिएण सण्णिमिच्छाइट्ठिणा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदेण सागारुवजोगेण जागारेण णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठेण बंधल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि।	१७१
९.	तं एइंदियस्स वा बीइंदियस्स वा तीइंदियस्स वा चउरिंदियस्स वा पंचिंदियस्स वा सण्णिस्स वा असण्णिस्स वा बादरस्स वा सुहुमस्स वा पज्जत्तस्स वा अपज्जत्तस्स वा अण्णदरस्स जीवस्स अण्णदवियाए गदीए वट्टमाणस्स तस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा।	१७३
१०.	तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।	१७३
११.	एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।	१७४
१२.	सामित्तेण उक्कस्सपदे वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया कस्स ?।	१७४
१३.	अण्णदरेण खवगेण सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेण चरिमसमयबद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि।	१७४
१४.	तं खीणकसायवीदरागछदुमत्थस्स वा सजोगिकेवलिस्स वा तस्स वेयणीय वेयणा भावदो उक्कस्सा।	१७४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१५.	तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।	१७५
१६.	एवं णामा-गोदाणं।	१७७
१७.	सामित्तेण उक्कस्सपदे आउववेयणा भावदो उक्कस्सिया कस्स ?	१७८
१८.	अण्णदरेण अप्पमत्तसंजदेण सागारजागारतप्पाओग्गविसुद्धेण बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि।	१७८
१९.	तं संजदस्स वा अणुत्तरविमाणवासियदेवस्स वा । तस्स आउववेयणा भावदो उक्कस्सा।	१७९
२०.	तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।	१८०
२१.	सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ?	१८१
२२.	अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमयछदुमत्थस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णा।	१८१
२३.	तव्वदिरित्तं जहण्णा।	१८१
२४.	एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं।	१८१
२५.	सामित्तेण जहण्णपदे वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ?	१८३
२६.	अण्णदरखवगस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स असादवेदणीयस्स वेदयमाणस्स तस्स वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णा।	१८३
२७.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	१८५
२८.	सामित्तेण जहण्णपदे मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ?	१८५
२९.	अण्णदरस्स खवगस्स चरिमसमय-सकसाइस्स तस्स मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णा।	१८५
३०.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	१८५
३१.	सामित्तेण जहण्णपदे आउअवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ?	१८६
३२.	अण्णदरेण मणुस्सेण पंचिंदियतिरिक्खजोणिएण वा परियत्तमाण-मज्झिमपरिणामेण अपज्जत्त-रिक्खिाउअं बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्मं अत्थि तस्स आउअ-वेयणा भावदो जहण्णा।	१८६
३३.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	१८६
३४.	सामित्तेण जहण्णपदे णामवेयणा भावदो जहण्णिया कस्स ?	१८७
३५.	अण्णदरेण सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तएण हदसमुप्पत्तियकम्मेण परियत्तमा-णमज्झिमपरिणामेण बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि तस्स णामवेयणा भावदो जहण्णा।	१८७
३६.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	१८८
३७.	सामित्तेण जहण्णपदे गोदवेयणा भावदो जहण्णिया कस्य ?	१८९
३८.	अण्णदरेण बादरतेउ-वाउजीवेण सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदेण सागारजागारसव्वविसुद्धेण हदसमुप्पत्तियकमेण उच्चागोदमुव्वेल्लिदूण णीचागोदं बद्धल्लयं जस्स तं संतकम्ममत्थि गोदवेयणा भावदो जहण्णा।	१८९
३९.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	१८९
४०.	अप्पाबहुए त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्दाराणि-जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे।	१९०
४१.	जहण्णपदेण सव्वत्थोवा मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णिया।	१९०
४२.	अंतराइयवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।	१९१
४३.	णाणावरणीय-दंसणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णियाओ वि दो वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ।	१९२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
४४.	आउववेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।	१९३
४५.	गोदवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।	१९४
४६.	णामवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।	१९४
४७.	वेयणीयवेदणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।	१९५
४८.	उक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा आउववेदणा भावदो उक्कस्सिया।	१९६
४९.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणा भावदो उक्कस्सिया तिण्णि वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ।	१९६
५०.	मोहणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा।	१९७
५१.	णामा-गोदवेयणाओ भावदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ।	१९७
५२.	वेदणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा।	१९८
५३.	जहण्णुक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णिया।	१९८
५४.	अंतराइयवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।	१९८
५५.	णाणावरणीय-दंसणावरणीयवेयणाओ भावदो जहण्णियाओ दो वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ।	१९८
५६.	आउअवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।	१९९
५७.	णामवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।	१९९
५८.	गोदवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।	१९९
५९.	वेदणीयवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।	१९९
६०.	आउअवेयणा भावदो जहण्णिया अणंतगुणा।	१९९
६१.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणा भावदोउक्कस्सिया तिण्णि वि तुल्लायो अणंतगुणाओ।	१९९
६२.	मोहणीयवेदणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा।	१९९
६३.	णामा-गोदवेयणाओ भावदो उक्कस्सिया दो वि तुल्लाओ अणंतगुणाओ।	१९९
६४.	वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सिया अणंतगुणा।	१९९
६५.	एत्तो उक्कस्सओ चउसट्ठियपदियो महादंडओ कायव्वो भवदि।	२०४
६६.	सव्वतिव्वाणुभागं सादावेदणीयं।	२०५
६७.	जसगित्ती उच्चागोदं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।	२०५
६८.	देवगदी अणंतगुणहीणा।	२०६
६९.	कम्मइयसरीरमणंतगुणहीणं।	२०६
७०.	तेयासरीरमणंतगुणहीणं।	२०६
७१.	आहारसरीरमणंतगुणहीणं।	२०६
७२.	वेउव्वियसरीरमणंतगुणहीणं।	२०६
७३.	मणुसगदी अणंतगुणहीणा।	२०८
७४.	ओरालियसरीरमणंतगुणहीणं।	२०८
७५.	मिच्छत्तमणंतगुणहीणं।	२०८
७६.	केवलणाणावरणीयं केवलदंणावरणीयं असादावेदणीयं वीरियंतराइयं च चत्तारि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।	२१०
७७.	अणंताणुबंधिलोभो अणंतगुणहीणो।	२१०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
७८.	माया विसेसहीणा।	२११
७९.	कोधो विसेसहीणो।	२११
८०.	माणो विसेसहीणो।	२११
८१.	संजलणाए लोभो अणंतगुणहीणो।	२११
८२.	माया विसेसहीणा।	२१२
८३.	कोधो विसेसहीणो।	२१२
८४.	माणो विसेसहीणो।	२१२
८५.	पच्चक्खाणावरणीयलोभो अणंतगुणहीणो।	२१२
८६.	माया विसेसहीणा।	२१३
८७.	कोधो विसेसेहीणो।	२१३
८८.	माणो विसेसहीणो।	२१३
८९.	अपच्चक्खाणावरणीयलोभो अणंतगुणहीणो।	२१३
९०.	माया विसेसहीणा।	२१४
९१.	कोधो विसेसहीणो।	२१४
९२.	माणो विसेसहीणो।	२१४
९३.	आभिणिबोहियणाणावरणीयं परिभोगांतराइयं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।	२१४
९४.	चक्खुदंसणावरणीयमणंतगुणहीणं।	२१५
९५.	सुदणाणावरणीयमचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।	२१६
९६.	ओहि णाणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं लाहंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।	२१७
९७.	मणपज्जयणाणावरणीयं थीणगिद्धी दाणंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।	२१७
९८.	णवुंसयवेदो अणंतगुणहीणो।	२१८
९९.	अरदी अणंतगुणहीणा।	२१८
१००.	सोगो अणंतगुणहीणो।	२१८
१०१.	भयमणंतगुणहीणं।	२१८
१०२.	दुगुंछा अणंतगुणहीणा।	२१९
१०३.	णिद्दाणिद्दा अणंतगुणहीणा।	२१९
१०४.	पयलापयला अणंतगुणहीणा।	२१९
१०५.	णिद्दा अणंतगुणहीणा।	२१९
१०६.	पयला अणंतगुणहीणा।	२१९
१०७.	अजसकित्ती णीचागोदं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणहीणाणि।	२१९
१०८.	णिरयगई अणंतगुणहीणा।	२२०
१०९.	तिरिक्खगई अणंतगुणहीणा।	२२०
११०.	इत्थिवेदो अणंतगुणहीणो।	२२०
१११.	पुरिसवेदो अणंतगुणहीणो।	२२०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
११२.	रदी अणंतगुणहीणा।	२२०
११३.	हस्समणंतगुणहीणं।	२२०
११४.	देवाउअमणंतगुणहीणं।	२२१
११५.	णिरयाउअमणंतगुणहीणं।	२२१
११६.	मणुसाउअमणंतगुणहीणं।	२२१
११७.	तिरिक्खाउअमणंतगुणहीणं।	२२१
११८.	एत्तो जहण्णओ चउसट्ठिपदिओ महादंडओ कायव्वो भवदि।	२२६
११९.	सव्वमंदाणुभागं लोभसंज्वलनं।	२२६
१२०.	मायासंज्वलनमणंतगुणं।	२२७
१२१.	माणसंजलनमणंतगुणं।	२२७
१२२.	कोधसंजलनमणंतगुणं।	२२७
१२३.	मणपज्जयणाणावरणीयं दाणंतराइयं च दोवि तुल्लाणि अणंतगुणाणि।	२२८
१२४.	ओहिणाणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं लाभंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि।	२२८
१२५.	सुदणाणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च तिण्णि वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि।	२२८
१२६.	चक्खुदंसणावरणीयमणंतगुणाणि।	२२८
१२७.	आभिणिबोहियणाणावरणीयं परिभोगंतराइयं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि।	२२९
१२८.	विरियंतराइयमणंतगुणं।	२२९
१२९.	पुरिसवेदो अणंतगुणो।	२३०
१३०.	हस्समणंतगुणं।	२३०
१३१.	रदी अणंतगुणा।	२३०
१३२.	दुगुंछा अणंतगुणा।	२३०
१३३.	भयमणंतगुणं।	२३०
१३४.	सोगो अणंतगुणो।	२३०
१३५.	अरदी अणंतगुणा।	२३१
१३६.	इत्थिवेदो अणंतगुणो।	२३१
१३७.	णवुंसयवेदो अणंतगुणो।	२३१
१३८.	केवलणाणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं च दोवि तुल्लाणि अणंतगुणाणि।	२३१
१३९.	पयला अणंतगुणा।	२३२
१४०.	णिद्दा अणंतगुणा।	२३२
१४१.	पच्चक्खाणावरणीयमाणो अणंतगुणो।	२३२
१४२.	कोधो विसेसाहिओ।	२३२
१४३.	माया विसेसाहिया।	२३२
१४४.	लोभो विसेसाहिओ।	२३३
१४५.	अपच्चक्खाणावरणीयमाणो अणंतगुणो।	२३३
१४६.	कोधो विसेसाहिओ।	२३३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१४७.	माया विसेसाहिया।	२३३
१४८.	लोभो विसेसाहिओ।	२३३
१४९.	णिद्दाणिद्दा अणंतगुणा।	२३३
१५०.	पयलापयला अणंतगुणा।	२३३
१५१.	थीणगिद्धी अणंतगुणा।	२३३
१५२.	अणंताणुबंधिमाणो अणंतगुणो।	२३४
१५३.	कोधो विसेसाहिओ।	२३४
१५४.	माया विसेसाहिया।	२३४
१५५.	लोभो विसेसाहिओ।	२३४
१५६.	मिच्छत्तमणंतगुणं।	२३४
१५७.	ओरालियसरीरमणंतगुणं।	२३५
१५८.	वेउव्वियसरीरमणंतगुणं।	२३६
१५९.	तिरिक्खाउअमणंतगुणं।	२३६
१६०.	मणुसाउअमणंतगुणं।	२३६
१६१.	तेजइयसरीरमणंतगुणं।	२३६
१६२.	कम्मइयसरीरमणंतगुणं।	२३६
१६३.	तिरिक्खगदी अणंतगुणा।	२३७
१६४.	णिरयगदी अणंतगुणा।	२३७
१६५.	मणुसगदी अणंतगुणा।	२३७
१६६.	देवगदी अणंतगुणा।	२३७
१६७.	णीचागोदमणंतगुणं।	२३७
१६८.	अजसकित्ती अणंतगुणा।	२३८
१६९.	असादावेदणीयमणंतगुणं।	२३८
१७०.	जसकित्ती उच्चागोदं च दो वि तुल्लाणि अणंतगुणाणि।	२३८
१७१.	सातावेदणीयमणंतगुणं।	२३८
१७२.	णिरयाउअमणंतगुणं।	२३८
१७३.	देवाउअमणंतगुणं।	२३९
१७४.	आहारसरीरमणंतगुणं।	२३९

अथ प्रथमाचूलिका

वेदनाभावविधानस्य

चतुर्थो महाधिकारः

अन्तर्गत-प्रथमोऽधिकारः

१७५.	सव्वत्थोवो दंसणमोहउवसामयस्स गुणसेडिगुणो।	२५२
१७६.	संजदासंजदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।	२५२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१७७.	अधापवत्तसंजदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।	२५३
१७८.	अणंतानुबंधी विसंजोएंतस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।	२५४
१७९.	दंसणमोहखवगस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।	२५५
१८०.	कसायउवसामगस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।	२५५
१८१.	उवसंतकसायवीयरायछदुमत्थस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।	२५६
१८२.	कसायखवगस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।	२५७
१८३.	खीणकसायवीयरायछदुमत्थस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।	२५७
१८४.	अधापवत्तकेवलिसंजदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।	२५७
१८५.	जोगणिरोधकेवलिसंजदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो।	२५७
१८६.	सव्वत्थोवो जोगणिरोधकेवलिसंजदस्स गुणसेडिकालो।	२५८
१८७.	अधापवत्तकेवलिसंजदस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।	२५८
१८८.	खीणकसायवीयरायछदुमत्थस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।	२५९
१८९.	कसायखवगस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।	२५९
१९०.	उवसंतकसायवीयरायछदुमत्थस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।	२५९
१९१.	कसायउवसामयस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।	२५९
१९२.	दंसणमोहक्खवयस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।	२६०
१९३.	अणंताणुबंधिविसंजोएंतस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।	२६०
१९४.	अधापवत्तसंजदस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।	२६०
१९५.	संजदासंजदस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।	२६०
१९६.	दंसणमोहउवसामयस्स गुणसेडिकालो संखेज्जगुणो।	२६०

अथ द्वितीयाचूलिका

(वेदनाभावविधानस्य)

द्वितीयोऽधिकारः

१९७.	एत्तो अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि बारस अणुयोगद्दाराणि।	२६२
१९८.	अविभागपडिच्छेदपरूवणा ट्ठाणप्ररूवणा अंतरपरूवणा कंडयपरूवणा ओजजुम्मपरूवणा छट्ठाणपरूवणा हेट्ठाट्ठाणपरूवणा समयपरूवणा वड्ढिपरूवणा जवमज्झपरूवणा पज्जवसाणपरूवणा अप्पाबहुए त्ति।	२६३
१९९.	अविभागपडिच्छेदपरूवणदाए एक्केक्कम्हि ट्ठाणम्हि केवडिया अविभागपडिच्छेदा ? अणंता अविभागपडिच्छेदा सव्वजीवेहि अणंतगुणा, एवदिया अविभागपडिच्छेदा।	२६६
२००.	ठाणपरूवणदाए केवडियाणि ट्ठाणाणि ? असंखेज्जलोगट्ठाणाणि एवडियाणि ट्ठाणाणि।	२७२
२०१.	अंतरपरूवणदाए एक्केक्कस्स ट्ठाणस्स केवडियमंतरं ? सव्वजीवेहि अणंतगुणं, एवडियमंतरं।	२७३
२०२.	कण्डयपरूवणदाए अत्थि अणंतभागपरिवड्ढिकंडयं असंखेज्जभागपरिवड्ढिकंडयं संखेज्जभागपरिवड्ढिकंडयं संखेज्जगुणपरिवड्ढिकंडयं असंखेज्जगुणपरिवड्ढिकंडयं अणंतगुणपरिवड्ढिकंडयं।	२७६
२०३.	ओजजुम्मपरूववदाए अविभागपडिच्छेदाणि कदजुम्माणि, ट्ठाणाणि कदजुम्माणि, कंडयाणि कदजुम्माणि।	२७९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२०४.	छट्ठाणपरूवणदाए अणंतभागपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए वड्ढिदा ? सव्वजीवेहि अणंतभागपरिवड्ढी। एवडिया परिवड्ढी।	२७९
२०५.	असंखेज्जभागपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए।	२८१
२०६.	असंखेज्जलोगभागपरिवड्ढीए एवडिया परिवड्ढी।	२८१
२०७.	संखेज्जभागवड्ढी काए परिवड्ढीए ?।	२८२
२०८.	जहण्णयस्स असंखेज्जयस्स रूवूणयस्स संखेज्जभागपरिवड्ढी, एवडिया परिवड्ढी।	२८२
२०९.	संखेज्जगुणपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए?।	२८४
२१०.	जहण्णयस्स असंखेज्जयस्स रूवूणयस्स संखेज्जगुणवड्ढी, एवडिया परिवड्ढी।	२८४
२११.	असंखेज्जगुणपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए ?।	२८५
२१२.	असंखेज्जलोगगुणपरिवड्ढी, एवडिया परिवड्ढी।	२८५
२१३.	अणंतगुणपरिवड्ढी काए परिवड्ढीए ?।	२८५
२१४.	सव्वजीवेहि अणंतगुणपरिवड्ढी, एवडिया परिवड्ढी।	२८५
२१५.	हेट्ठाट्ठाणपरूवणदाए अणंतभागवड्ढिब्भहियं कंडयं गंतूण असंखेज्जभागवड्ढिब्भहियं ट्ठाणं।	२८८
२१६.	असंखेज्जभागब्भहियं कंडयं गंतूण संखेज्जभागब्भहियं ट्ठाणं।	२८९
२१७.	संखेज्जभागब्भहियं कंडयं गंतूण संखेज्जगुणब्भहियं ट्ठाणं।	२९०
२१८.	संखेज्जगुणब्भहियं कंडयं गंतूण असंखेज्जगुणब्भहियं ट्ठाणं।	२९०
२१९.	असंखेज्जगुणब्भहियं कंडयं गंतूण अणंतगुणब्भहियं ट्ठाणं।	२९०
२२०.	अणंतभागब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण संखेज्जभागब्भहियट्ठाणं।	२९१
२२१.	असंखेज्जभागब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण संखेज्जगुणब्भहियट्ठाणं।	२९२
२२२.	संखेज्जभागब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण असंखेज्जगुणब्भहियट्ठाणं।	२९२
२२३.	संखेज्जगुणब्भहियाणं कंडयवग्गं कंडयं च गंतूण अणंतगुणब्भहियं ट्ठाणं।	२९२
२२४.	संखेज्जगुणस्स हेट्ठदो अणंतभागब्भहियाणं कंडयघणो बेकंडयवग्गा कंडयं च।	२९३
२२५.	असंखेज्जगुणस्स हेट्ठदो असंखेज्जभागब्भहियाणं कंडयघणो वेकंडयवग्गा कंडयं च।	२९४
२२६.	अणंतगुणस्स हेट्ठदो संखेज्जभागब्भहियाणं कंडयघणो वेकंडयवग्गा कंडयं च।	२९४
२२७.	असंखेज्जगुणस्स हेट्ठदो अणंतभागब्भहियाणं कंडयवग्गावग्गो तिण्णि-कंडयघणा तिण्णिकंडयवग्गा कंडयं च।	२९५
२२८.	अणंतगुणस्स हेट्ठदो असंखेज्जभागब्भहियाणं कंडयवग्गावग्गो तिण्णिकंडय-घणा तिण्णिकंडयवग्गा कंडयं च।	२९५
२२९.	अणंतगुणस्स हेट्ठदो अणंतभागब्भहियाणं कंडयो पंचहदो चत्तारिकंडय-वग्गावग्गा छकंडयघणा चत्तारिकंडयवग्गा कंडयं च।	२९६
२३०.	समयपरूवणदाए चदुसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।	२९७
२३१.	पंचसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।	२९८
२३२.	एवं छसमइयाणि सत्तसमइयाणि अट्ठसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।	२९८
२३३.	पुणरवि सत्तसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।	२९८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२३४.	एवं छसमइयाणि पंचसमइयाणि चदुसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाण-ट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।	२९९
२३५.	उपरि तिसमइयाणि बिसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा।	३००
२३६.	एत्थ अप्पबहुअं।	३००
२३७.	सव्वत्थोवाणि अट्ठसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि।	३०१
२३८.	दोसु वि पासेसु सत्तसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि।	३०१
२३९.	एवं छसमइयाणि पंचमसमइयाणि चदुसमइयाणि।	३०२
२४०.	उवरि तिसमइयाणि।	३०२
२४१.	बिसमइयाणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	३०२
२४२.	सुहुमतेउक्काइया पवेसणेण असंखेज्जा लोगा।	३०४
२४३.	अगणिकाइया असंखेज्जगुणा।	३०४
२४४.	कायट्ठिदी असंखेज्जगुणा।	३०४
२४५.	अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	३०५
२४६.	वड्ढिपरूवणदाए अत्थि अणंतभागवड्ढि-हाणी असंखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्जगुणवड्ढि-हाणी असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणी अणंतगुणवड्ढि-हाणी।	३०६
२४७.	पंचवड्ढि-पंचहाणीओ केवचिरं कालादो होंति ?।	३०६
२४८.	जहण्णेण एगसमओ।	३०७
२४९.	उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।	३०७
२५०.	अणंतगुणवड्ढि-हाणीयो केवचिरं कालादो होंति ?।	३०८
२५१.	जहण्णेण एगसमओ।	३०८
२५२.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	३०८
२५३.	जवमज्झपरूवणदाए अणंतगुणवड्ढी अणंतगुणहाणी च जवमज्झं।	३१०
२५४.	पज्जवसाणपरूवणदाए अणंतगुणस्स उवरि अणंतगुणं भविस्सदि त्ति पज्जव-साणं।	३११
२५५.	अप्पाबहुए त्ति तत्थ इमाणि दुबे अणुयोगद्दाराणि अणंतरोवणिधापरंपरोवणिधा।	३१२
२५६.	तत्थ अणंतरोवणिधाए सव्वत्थोवाणि अणंतगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि।	३१३
२५७.	असंखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	३१३
२५८.	संखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	३१३
२५९.	संखेज्जभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	३१३
२६०.	असंखेज्जभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	३१४
२६१.	अणंतभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	३१४
२६२.	परंपरोपणिधाए सव्वत्थोवाणि अणंतभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि।	३१४
२६३.	असंखेज्जभागब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	३१४
२६४.	संखेज्जभागब्भहिय ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	३१५
२६५.	संखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि।	३१५
२६६.	असंखेज्जगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	३१५
२६७.	अणंतगुणब्भहियाणि ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	३१५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.

अथ तृतीयाचूलिका

(वेदनाभावविधानस्य)

तृतीयोऽधिकारः

२६८. जीवसमुदाहरे त्ति तत्थ इमाणि अट्ठ अणुयोगद्दाराणि-एयट्ठाणजीव-पमाणाणुगमो णिरंतरट्ठाणजीव-पमाणाणुगमो सांतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमो णाणाजीवकालपमाणाणुगमो वड्ढिपरूवणा जवमज्झ-परूवणा फोसण-परूवणा अप्पाबहुए त्ति। ३१९

२६९. एयट्ठाणजीवपमाणाणुगमेण एक्केक्कम्हि ट्ठाणम्हि जीवा जदि होंति एक्को वा दो वा तिण्णि वा जाव उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। ३२१

२७०. णिरंतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमेण जीवेहि अविरहिदट्ठाणाणि एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। ३२२

२७१. सांतरट्ठाणजीवपमाणाणुगमेण जीवेहि विरहिदाणि ट्ठाणाणि एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। ३२४

२७२. णाणाजीवकालपमाणाणुगमेण एक्केक्कम्हि ट्ठाणम्हि णाणाजीवा केवचिरं कालादो होंति। ३२५

२७३. जहण्णेण एगसमओ। ३२५

२७४. उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। ३२५

२७५. वड्ढिपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुबे अणुयोगद्दाराणि-अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा। ३२६

२७६. अणंतरोवणिधाए जहण्णए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे थोवा जीवा। ३२७

२७७. विदिए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा विसेसाहिया। ३२८

२७८. तदिए अुणभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा विसेसाहिया। ३३०

२७९. एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव जवमज्झं। ३३०

२८०. तेण परं विसेसहीणा। ३३१

२८१. एवं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव उक्कस्स अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे त्ति। ३३२

२८२. परंपरोवणिधाए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणजीवेहिंतो तत्तो असंखेज्जलोगं गंतूण दुगुणवड्ढिदा। ३३२

२८३. एवं दुगुणवड्ढिदा जाव जवमज्झं। ३३३

२८४. तेण परमसंखेज्जलोगं गंतूण दुगुणहीणा। ३३३

२८५. एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सियअणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे त्ति। ३३३

२८६. एगजीव अणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जा लोगा। ३३४

२८७. णाणाजीवअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि आवलियाए असंखेज्जदिभागो। ३३४

२८८. णाणाजीवअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि। ३३४

२८९. एयजीवअणुभागबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्ज-गुणं। ३३५

२९०. जवमज्झपरूवणदाए ट्ठाणाणमसंखेज्जदिभागे जवमज्झं। ३३५

२९१. जवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि थोवाणि। ३३७

२९२. उवरिमसंखेज्जगुणाणि। ३३७

२९३. फोसणपरूवणदाए तीदे काले एयजीवस्स उक्कस्सए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे फोसणकालो थोवो। ३३७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२९४.	जहण्णए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे फोसणकालो असंखेज्ज-गुणो।	३३९
२९५.	कंडयस्स फोसणकालो तत्तियो चेव।	३३९
२९६.	जवमज्झफोसणकालो असंखेज्जगुणो।	३४०
२९७.	कंडयस्स उवरि फोसणकालो असंखेज्जगुणो।।	३४०
२९८.	जवमज्झस्स उवरिं कंडयस्स हेट्ठदो फोसणकालो असंखेज्ज-गुणो।	३४०
२९९.	कंडयस्स उवरि जवमज्झस्स हेट्ठदो फोसणकालो तत्तिया चेव।	३४१
३००.	जवमज्झस्स उवरि फोसणकालो विसेसाहिओ।	३४१
३०१.	कंडयस्स हेट्ठदो फोसणकालो विसेसाहिओ।	३४१
३०२.	कंडयस्स उवरिं फोसणकालो विसेसाहिओ।	३४२
३०३.	सव्वेसु ट्ठाणेसु फोसणकालो विसेसाहिओ।	३४२
३०४.	अप्पबहुए त्ति उक्कस्सए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा थोवा।	३४४
३०५.	जहण्णए अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणे जीवा असंखेज्जगुणा।	३४४
३०६.	कंडयस्स जीवा तत्तिया चेव।	३४४
३०७.	जवमज्झस्स जीवा असंखेज्जगुणा।	३४४
३०८.	कंडयस्स उवरिं जीवा असंखेज्जगुणा।	३४४
३०९.	जवमज्झस्स उवरि कंडयस्स हेट्ठादो जीवा असंखेज्जगुणा।	३४५
३१०.	कंडयस्स उवरिं जवमज्झस्स हेट्ठिमदो जीवा तत्तिया चेव।	३४५
३११.	जवमज्झस्स उवरिं जीवा विसेसाहिया।	३४५
३१२.	कंडयस्स हेट्ठदो जीवा विसेसाहिया।	३४५
३१३.	कंडयस्स उवरिं जीवा विसेसाहिया।	३४५
३१४.	सव्वेसु ट्ठाणेसु जीवा विसेसाहिया।	३४५

एकादशे ग्रन्थे सूत्रसंख्याः—५९३

भजन

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तर्ज–सोनागिरी में सोना.....

शांति-कुंथु-अरनाथ की प्रतिमा प्यारी हैं।
उनके पंचकल्याण की महिमा न्यारी है।।
तीन लोक की रचना सुन्दर बन गई,
ज्ञानमती माताजी की भावना रही।।
शांति-कुंथु-अरनाथ की प्रतिमा प्यारी हैं।
उनके पंचकल्याण की महिमा न्यारी है।।टेक.।।

हस्तिनापुर तीर्थ की धरती हुई पावन।
जो तीन तीर्थंकर प्रभू के जन्म से है धन्य।।
त्रय बार पन्द्रह मास तक बरसे जहाँ रतन।
उस तीर्थ अरु तीर्थंकरों को हम करें वंदन।।
जिनकी महिमा तीन लोक में न्यारी है,
उनके पंचकल्याण की महिमा न्यारी है।।1।।

तीनों प्रभू हैं तीन पदवी से सहित कहे।
तीर्थेश एवं चक्रवर्ती कामदेव रहे।।
छह खण्ड की तब राजधानी हस्तिनापुर थी।
फिर चार-चार कल्याणकों से भी पवित्र हुई।।
सुरनर वंदित जिनकी माँ अति प्यारी हैं,
उनके पंचकल्याण की महिमा न्यारी है।।2।।

प्रतिमा विशाल बनीं प्रथम ही बार प्रभु त्रय की।
श्री शांतिनाथ व कुंथु अर तीनों जिनेश्वर की।।
इक साथ हो गया मस्तकाभिषेक तीनों का।
अब पूर्ण हो गया स्वप्न माता ज्ञानमति जी का।।
यही ''चन्दनामती'' खुशी अब भारी है,
उनके पंचकल्याण की महिमा न्यारी है।।3।।

सरस्वती स्तोत्र

(प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ से)

बारह अंगंगिज्जा दंसणतिलया चरित्तवत्थहरा।
चोद्दसपुव्वाहरणा ठावे दव्वाय सुयदेवी।।1।।

आचारशिरसं सूत्र-कृतवक्त्रां सुकंठिकाम्।
स्थानेन समवायांग-व्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम्।।2।।

वाग्देवतां ज्ञातृकथो-पासकाध्ययनस्तनीम्।
अंतकृद्दशसन्नाभिमनुत्तरदशांगतः।।3।।

सुनितंबां सुजघनां प्रश्नव्याकरणश्रुतात्।
विपाकसूत्रदृग्वाद-चरणां चरणांबराम्।।4।।

सम्यक्त्वतिलकां पूर्व-चतुर्दशविभूषणाम्।
तावत्प्रकीर्णकोदीर्ण-चारुपत्रांकुरश्रियम्।।5।।

आप्तदृष्टप्रवाहौघ-द्रव्यभावाधिदेवताम्।
परब्रह्मपथादृप्तां स्यादुक्तिं भुक्तिमुक्तिदाम्।।6।।

निर्मूलमोहतिमिरक्षपणैकदक्षं,
न्यक्षेण सर्वजगदुज्ज्वलनैकतानम्।
सोषेस्व चिन्मयमहो जिनवाणि! नूनं,
प्राचीमतो जयसि देवि! तदल्पसूतिम्।।7।।

आभवादपि दुरासदमेव,
श्रायसं सुखमनन्तमचिंत्यम्।
जायतेऽद्य सुलभं खलु पुंसां,
त्वत्प्रसादत इहांब! नमस्ते।।8।।

चेतश्चमत्कारकरा जनानां,
महोदयाश्चाभ्युदयाः समस्ताः।
हस्ते कृताः शस्तजनैः प्रसादात्,
तवैव लोकांब! नमोस्तु तुभ्यम्।।9।।

सकलयुवतिसृष्टेरंब! चूणामणिस्त्वं,
त्वमसि गुणसुपुष्टेधर्मसृष्टेश्च मूलम्।
त्वमसि च जिनवाणि! स्वेष्टमुक्त्यंगमुख्या,
तदिह तव पदाब्जं भूरिभक्त्या नमामः।।10।।